कृषक-जीवन-सम्बन्धी

ब्रजभाषा-शब्दावली

(अलीगढ़-क्षेत्र की बोली के आधार पर)

[चित्रों एवं रेखाचित्रों सहित]

(दो खण्डों में)

प्रथम खण्ड

(प्रकरण १ से ११ तक)

लेखक

डॉ० अम्बाप्रसाद 'सुमन'

एम०ए०, पी-एच०डी०

प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय

निर्देशक एवं भूमिका-लेखक

प्रो० श्री वासुदेवशरण अग्रवाल

एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट्०

अध्यक्ष, पुरातत्व विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय

प्रकाशक

हिंदुस्तानी एकेडेमी

उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

प्रकाशकीय

हिंदुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश का सदैव यह प्रयत्न रहा है कि भाषा और साहित्य की समृद्धि के लिए नवीनतम उच्चस्तरीय ग्रंथों का प्रकाशन किया जाय। डा० अम्बाप्रसाद 'सुमन' के प्रस्तुत खोजपूर्ण प्रबन्ध "कृषक-जीवन संबंधी ब्रजभाषा-शब्दावली" का प्रकाशन एकेडेमी की प्रकाशन शृङ्खला में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है।

हिंदी का क्षेत्र विशाल है। उसकी विशालता का रहस्य उसकी उपभाषाएँ हैं। निस्संदेह हिंदी की उपभाषाओं में उसकी प्रतिभा छिपी हुई है। प्रस्तुत खोज प्रबंध इस सत्य को स्पष्ट करता है तथा विद्वानों एवं भाषा-प्रेमियों का ध्यान उस असीम खजाने की ओर आकर्षित करता है, जिसका उपयोग यदि शीघ्र न किया गया तो हिंदी का प्रकृत स्वरूप; उसका निजी स्वरूप विलुप्त हो जावेगा।

डाक्टर 'सुमन' के गूढ़ परिश्रम का फल है कि हिंदी के क्षेत्र में अपने ढंग का यह नया कार्य संभव हो सका है। पैट्रिक कार्नेगी की 'कचहरी टेक्नीकलिटीज़', विलियम क्रुक की 'ए रूरल एण्ड एग्रीकल्चरल ग्लोसरी फ़ार द नार्थ वेस्ट प्राविंसेज़ एण्ड अवध' जार्ज ए० ग्रियर्सन की 'बिहार पेज़ेंट लाइफ़' तथा प्रोफेसर टर्नर की 'नेपाली डिक्शनरी' आदि इस संबंध के मार्ग-निर्देशक ग्रंथ हैं। परंतु प्रस्तुत कृति शब्दों के अध्ययन की दृष्टि से अब तक के हुए कार्यों में श्रेष्ठ ठहरती है। डाक्टर 'सुमन' ने विषय की नीरसता को ध्यान में रख कर वर्णनात्मक तथा विवरणात्मक पद्धति से अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसमें शब्दों की व्युत्पत्ति मिलेगी तथा शब्दों के प्रयोग का प्रमाण वैदिक संस्कृत, लौकिक संस्कृत, पाली, प्राकृत, और अपभ्रंश रूपों से मिलेगा। इस प्रकार शब्दों का सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व स्वयं प्रमाणित हो गया है। चित्रों एवं रेखाचित्रों द्वारा विषय का पारिभाषिक तथा प्राविधिक पक्ष अत्यंत सरल हो गया है। लोकगीतों, मुहावरों, कहावतों आदि द्वारा 'शब्दों' को विशेष अर्थ-गौरव मिला है। डाक्टर 'सुमन' ने लोक साहित्य की सामग्री का भी पूरा उपयोग किया है।

हमारा विश्वास है कि भाषा के अध्ययन के क्षेत्र में यह ग्रंथ नितांत उपादेय सिद्ध होगा। प्रस्तुत ग्रंथ, प्रबंध का प्रथम खंड है। दूसरा खंड शीघ्र प्रकाशित किया जायगा।

हिंदुस्तानी एकेडेमी,
उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद
जनवरी १९६०

विद्या भास्कर
मंत्री तथा कोषाध्यक्ष

नागरी-रोमन-लिपियाँ

नागरी		रोमन
अ	=	a
आ ा	=	ā
इ ि	=	i
ई ी	=	ī
उ ु	=	u
ऊ ू	=	ū
ऋ ृ	=	ṛi
ए े	=	e
ऐ ै	=	ai
ऍ (ऐ)	=	ai͜
ओ ो	=	o
औ ौ	=	au
ऑ	=	au͜
ं	=	ṉ
ँ	=	ṃ
:	=	ḥ
क्	=	k
ख्	=	kh
ग्	=	g
घ्	=	gh
ङ्	=	ṅ
च्	=	c
छ्	=	ch
ज्	=	j
झ्	=	jh
ञ्	=	z

नागरी		रोमन
ट्	=	ṭ
ठ्	=	ṭh
ड्	=	ḍ
ढ्	=	ḍh
ड़्	=	d̤
ढ़्	=	d̤h
ण्	=	ṇ
त्	=	t
थ्	=	th
द्	=	d
ध्	=	dh
न्	=	n
प्	=	p
फ्	=	ph
	=	b
भ्	=	bh
म्	=	m
य्	=	y
र्	=	r
ल्	=	l
व्	=	v
श्	=	ṡ
ष्	=	sh
स्	=	s
ह	=	h

आत्मनिवेदन एवं आभार

सन् १९५७ ई० के अक्तूबर मास में मुझे श्री राज्यपाल, उत्तर प्रदेशीय सरकार, लखनऊ से एक पत्र मिला, जिसमें लिखा था कि आपके शोध-ग्रन्थ 'कृषक-जीवन-सम्बन्धी ब्रजभाषा-शब्दावली' को प्रकाशित कराने के लिए सरकार आपको लगभग आधा व्यय सहायता के रूप में दे सकती है। आप ग्रन्थ की उत्तमता और महत्त्व के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों की सम्मतियाँ शीघ्र भेजें। मैंने सर्वश्री महापण्डित राहुल जी सांकृत्यायन, डा० धीरेन्द्र जी वर्मा, डा० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी और डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल की निम्नांकित सम्मतियाँ तुरन्त उत्तर प्रदेशीय सरकार की सेवा में प्रेषित कर दीं :—

(१) "अलीगढ़ क्षेत्र की कृषक-जीवन-सम्बन्धी ब्रजभाषा-शब्दावली नाम की आपकी पी-एच० डी० की थीसिस मुझे बहुत पसन्द आयी है। भाषा के क्षेत्र में वास्तव में यह एक मौलिक अनुसन्धान है। इसको शीघ्र प्रकाशित करना चाहिए। मुझे आशा है कि प्रकाशन में सरकार जरूर सहायता देगी।"

(महापंडित) राहुल सांकृत्यायन

(२) "मैंने श्री अम्बाप्रसाद 'सुमन' की कृति 'कृषक-जीवन-सम्बन्धी ब्रजभाषा शब्दावली' देखी। हिन्दी-बोलियों की शब्दावली के क्षेत्र में यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है और इसे शीघ्र प्रकाशित होना चाहिए। ग्रन्थ बड़ा है; अतः साधारण प्रकाशक इसे लेने में संकोच करें तो आश्चर्य नहीं।"

(डा०) धीरेन्द्र वर्मा

(३) "श्री अम्बाप्रसाद 'सुमन' ने ब्रजभाषा-क्षेत्र में कृषक जीवन के संपूर्ण रूप का बहुत ही सुन्दर अध्ययन अपने शोध-निबन्ध में किया है। शब्दों की व्युत्पत्ति का अध्ययन भी बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है। सुमन जी का शोध-निबन्ध हिन्दी-भाषा को महत्त्वपूर्ण देन है। लेखक की गवेषणा-शक्ति, विश्लेषण-क्षमता और उपस्थापन-पटुता इससे भली भाँति सिद्ध हो जाती है।"

(डा०) हजारीप्रसाद द्विवेदी

(४) "मेरी निश्चित सम्मति है कि अलीगढ़ क्षेत्र की बोली के आधार पर 'कृषक-जीवन-सम्बन्धी ब्रजभाषा-शब्दावली' शीर्षक बृहत् शोध-प्रबन्ध हिन्दी-बोलियों की समृद्धि का ऐसा पक्का प्रमाण उपस्थित करता है जिसे देखकर हिन्दी की अभिव्यक्ति-क्षमता के प्रति मन में नयी आस्था उत्पन्न होती है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि ग्रियर्सन के 'बिहार पेजेंट लाइफ़' के बाद ऐसे ग्रन्थ का निर्माण नहीं हुआ और यह शोध-ग्रन्थ मुझे ग्रियर्सन से भी अधिक विस्तृत और प्रामाणिक जान पड़ता है। हिन्दी के सम्मान के लिए यह ग्रन्थ छपना ही चाहिए। मैंने इस बीच कई विदेशी विद्वानों से इस ग्रन्थ की चर्चा की है और वे सब इसके प्रकाशन की आवश्यकता से प्रभावित हुए हैं।"

(डा०) वासुदेवशरण अग्रवाल

उपर्युक्त इन सम्मतियों को सरकार की सेवा में प्रेषित करने के उपरान्त मैंने बहुत दिनों तक उत्तर की प्रतीक्षा की। कुछ समय के पश्चात् तत्कालीन राज्यपाल श्रीयुत क० मा० मुन्शी अन्यत्र चले गये और फिर सरकार से मुझे कोई सन्तोषप्रद उत्तर नहीं मिला।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद के मंत्री तथा कोषाध्यक्ष डा० धीरेन्द्र जी वर्मा और सहायक मंत्री डा० सत्यव्रत जी सिन्हा से लेखक का पत्र-व्यवहार पहले से ही चल रहा था। अन्त में समादरणीयवर डा० धीरेन्द्र जी वर्मा का मुझे कृपा-पत्र मिला कि आपके शोध-ग्रन्थ का प्रकाशन एकेडेमी से स्वीकृत हो गया है। प्रयाग में एकेडेमी के दफ्तर में आप डा० सत्यव्रत सिन्हा से मिल सकते हैं।

सन् १९५८ ई० के जून मास के तृतीय सप्ताह में प्रयाग जाकर मैंने डा० सत्यव्रत जी सिन्हा से भेंट की। उनमें सच्चे साहित्य-सेवी की जो भावना तथा साहित्यसेवियों के प्रति जो आत्मीयता मेरे देखने में आयी वैसी बहुत कम व्यक्तियों में पायी जाती है। इस ग्रन्थ के शीघ्रतापूर्वक प्रकाशन में जो स्नेहमयी तत्परता डा० सिन्हा जी ने दिखाई है, उसके लिए मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। आज जिस शीघ्रता से यह ग्रन्थ हिन्दी-जगत् के समक्ष आ सका है, उसका वास्तविक श्रेय समादरणीयवर डा० धीरेन्द्र जी वर्मा तथा मान्य बन्धुवर डा० सत्यव्रत जी सिन्हा को ही है। लेखक इन दोनों महानुभावों की इस कृपा के लिए चिरऋणी और आभारी है। साथ ही लेखक एकेडेमी के उन सब सदस्यों को हार्दिक धन्यवाद देता है जिनकी शुभ सम्मतियों के फलस्वरूप यह ग्रन्थ प्रकाशन में स्थान प्राप्त कर सका है।

सर्वश्री महापंडित राहुल जी सांकृत्यायन, डा० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी, डा० नगेन्द्र जी और गुरुवर डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल के आशीर्वाद का तो यह सब सुफल ही है। इन चारों महानुभावों के प्रति लेखक की श्रद्धाभावनांजलि सादर साभार समर्पित है।

मुद्रण-कार्य के दिनों में मैं कुछ समय अस्वस्थ भी रहा। अतः उन दिनों ग्रन्थ के प्रूफों का संशोधन ठीक तरह न हो सका। यत्र-तत्र कुछ शब्दों की जो अशुद्धियाँ रह गई हैं, उन्हें ग्रन्थ के अन्त में शब्दानुक्रमणी के उपरान्त संलग्न शुद्धि-पत्र में ठीक कर दिया गया है। अन्त में शेष सभी ग्रन्थ-सम्बन्धित महानुभावों और प्रिय जनों को हार्दिक धन्यवाद! भूलों तथा त्रुटियों के लिए क्षमा!

आभारनत

अम्बाप्रसाद 'सुमन'

भूमिका

कुछ वर्ष पूर्व श्री अम्बाप्रसाद जी 'सुमन' ने मुझसे अपने शोध-प्रबन्ध के लिए विषय चुनने का परामर्श किया था। मेरे मन में उस समय श्री ग्रियर्सन कृत 'बिहार पेज़ैन्ट लाइफ़' के जनपदीय एवं भाषा-सम्बन्धी कार्य का आदर्श आकर्षण की वस्तु था। मैंने सुमन जी से कहा कि यदि आप अपने क्षेत्र अलीगढ़ की बोली को छानकर कुछ इसी प्रकार का कार्य करें तो उत्तम वस्तु होगी। इसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया। फिर मैंने उनके सामने दूसरी शर्त रखते हुए कहा कि ग्रियर्सन के ग्रंथ में दस सहस्र शब्द हैं। आपकी शैली में इससे कम संचित निधि न होनी चाहिए, तभी मेरा मन प्रसन्न होगा। उन्होंने यह बात सुनी और अपने मन के कोने में सँजोकर रख ली।

दो वर्ष के भीतर सुमन जी ने मुझे आश्चर्य में डाल दिया और फिर कुछ समय के उपरान्त जब वे अपने शोध-प्रबन्ध के स्वच्छ सुलिखित अध्याय संशोधन के लिए क्रमशः मेरे पास भेजने लगे और मैं उन्हें रुचिपूर्वक पढ़ता गया तब मुझे निश्चय होने लगा कि श्री अम्बाप्रसाद जी द्वारा शोध-प्रबन्ध के लिए आवश्यक परिश्रम का पूरा मूल्य चुकाया जा रहा है। उन्होंने अपने ब्रजप्रदेशीय जनपद के अन्तरंग कृषक-जीवन में प्रविष्ट होकर उसकी पारिभाषिक शब्दावली का विस्तृत भाण्डार संकलित कर लिया। जैसे जनपदीय जीवन में प्रति वर्ष किसानों के कोठार उनके परिश्रम से उत्पादित धान्य-सम्पत्ति से भर जाते हैं, वैसे ही भाषाशास्त्रीय बुद्धि से किया हुआ सुमन जी का लोक-साहित्य एवं लोकभाषा सम्बन्धी परिश्रम सफल हुआ। उनका संग्रह शब्द-संख्या की दृष्टि से ग्रियर्सन से इक्कीस ही रहा। यह और भी प्रसन्नता की बात थी कि सुमन जी को स्वयं रेखा-चित्र बनाने की अभिरुचि तथा अभ्यास था; अतएव उन्होंने शोध-प्रबन्ध के साथ विविध वस्तुओं के लगभग साढ़े आठ-सौ रेखा-चित्र भी तैयार किये।

हिन्दी-क्षेत्र की जनपदानुसारी बोलियों और उपबोलियों के अनेक भेद हैं; जैसे मुख्य बारह बोलियाँ—अवधी, भोजपुरी, मैथिली, मगही, छत्तीसगढ़ी, बघेली, बुंदेली, मालवी, कन्नौजी, ब्रज-भाषा, बाँगरू और कौरवी या हिन्दुस्तानी—हैं। हाल ही में एक लेखक ने राजस्थान के अन्तर्गत बोली जानेवाली प्रमुख सात बोलियों के आधार पर उनकी उनंचास उपबोलियों की ओर ध्यान दिलाया है।[1] ऐसे ही प्रत्येक प्रदेश में स्थानीय उपबोलियाँ अभी तक जीवित हैं और भाषाशास्त्रीय दृष्टि से समृद्धि-युक्त भी हैं। उन्हें लक्ष्य में रखकर यदि सौ के लगभग इस प्रकार के शोध-प्रबन्ध विश्वविद्यालयों के स्तर पर तैयार कराये जा सकें तो हिन्दी-शब्दावली का बहुत बड़ा भाण्डार सामने आ जाएगा। भविष्य में तैयार होने वाले हिन्दी-भाषा के महाकोश के लिए तो ऐसा आयोजन मानों शब्दावली की मूसलाधार वृष्टि ही होगा।

हिन्दी-क्षेत्र में इस समय लगभग बारह विश्वविद्यालय काम कर रहे हैं। उनमें संचालित हिन्दी-विभागों के अध्यक्ष इन विषयों को ध्यान में रखेंगे तो दस वर्ष की अवधि में यह आरम्भिक कार्य पूरा किया जा सकेगा। हम इसे आरम्भिक जान-बूझकर कहते हैं; क्योंकि जनपदों की शब्द-सामग्री पूरे सरोवर के समान है और प्रस्तुत प्रबन्ध जैसा प्रयत्न उसमें से भरा हुआ एक मंगल-कलश ही है।

जनपदों में अनेक प्रकार के शिल्पी अपने-अपने ठीहों पर बैठे हुए सहस्रों वर्षों से शिल्प-साधना में संलग्न हैं। जिन शब्दों का जन्म वैदिक युग, महा जनपदयुग, गुप्त युग और मध्ययुग में हुआ; उनमें से कितने ही अपने मूल या कुछ परिवर्तित रूप में आज भी बचे रह गये हैं। अर्थ और व्युत्पत्ति की दृष्टि से उन शब्दों का संग्रह आवश्यक है। उदाहरण के लिए हिन्दी का '**गड़ुआ**' (=जल का पात्र) शब्द है, जिसे विद्यापति ने 'कीर्तिलता' में 'गाडू' कहा है (खणयक चुप भै रहइ गारि गाडू दे तब ही)। लोक में **गड़ुआ, गड़ुई, गड़इया, गड़वइ, गड्डू, गाडू** आदि रूप प्रचलित हैं; जिनकी व्युत्पत्ति प्रा० 'गड्डुक' से मानकर हम रुक जाते हैं। वस्तुतः यह मूल वैदिक संस्कृत का कद्रुक (=सोमपात्र) शब्द था, जिससे 'गाडू' का विकास हुआ (वै० सं० कद्रुक > कड्डुअ > गड्डुअ > गड्डू > गाडू) और जो संस्कृत-साहित्य में नहीं बचा, केवल लोक में रह गया।

यह भी उल्लेखनीय है कि हिन्दी-भाषा में कृषक जीवन की शब्दावली पर विदेशी शब्दों का रंग या तो बिलकुल नहीं चढ़ा या कम से कम चढ़ा है। अरबी-फारसी के शब्द राज-दरबार, शानशौकत और विलास की वस्तुओं तक ही सीमित रह गये। किसानी, खेती-बारी, हल-बैल, जुताई, बुआई, निराई, सिंचाई आदि के शब्दों की परम्परा बहुत करके ठेठ वैदिक युग तक चली जाती है। हमारा अनुमान है कि यदि ऊपर कहे हुए प्रकार से विविध क्षेत्रों में शब्द-संग्रह का कार्य किया जाए तो उसमें दो प्रकार के शब्द सामने आएँगे; एक वे जो नितान्त स्थानीय होंगे और दूसरे वे जिनका क्षेत्र व्यापक होगा। दूसरे प्रकार के शब्दों की तुलना यदि वैदिक साहित्य से की जाए तो उनमें समानता मिलेगी और जहाँ वैदिक सामग्री उपलब्ध नहीं भी है, वहाँ यह अनुमान सम्भव होगा कि दूरस्थ क्षेत्रों में व्यापक समान शब्द जो अपभ्रंश, प्राकृत और संस्कृत-परम्परा के हैं; वे ही

---

[1] इनमें कुछ उल्लेख्य नाम ये हैं—मारवाड़ी, ढूँढाड़ी, थली, बागरी, शेखावाटी, हाड़ौती, मेवाती, हीरवाटी, मालवी, हरियानी, भीलोड़ी, राठी आदि।

—(श्री मथुराप्रसाद अग्रवाल, 'राजस्थानी भाषा और उसकी बोलियाँ, राजस्थान विद्यापीठ की त्रैमासिक शोध-पत्रिका, भाग १०, मार्च-जून १९५६ ई०, पृ० ७८)

वैदिक युग में भी प्रचलित रहे होंगे। उदाहरण के लिए, हरस, फाल, जाँघ, साल, पाचर, महादेवा, परिहथ, नाथा आदि हल-युग की शब्दावली संस्कृत-परम्परा में प्राचीनतम युग का स्मरण दिलाती है। खेत, क्यार, रास (सं० राशि), चाँक, पैर (सं० प्रकर), मेंढ़िया (सं० मेधिक = वह बैल जो मैंढनी में बीच की मेधि या खूँटे के पास रहता है), सोहनी (सं० शोधनी = पैर में काम आनेवाली कुदारी), साँकी (सं० शंकुका), पँचागुरा, बैना (सं० महापक = एक प्रकार की रस्सी) आदि शब्द इसी प्रकार के हैं। कभी-कभी तो ऐसा देखने में आता है कि बारह-बारह कोस पर बोली बदल जाने की जो किंवदन्ती लोक में प्रचलित है उसमें काफी सचाई है। ग्रामीण अनुभव के आधार पर ही उसका निर्माण हुआ है। हम अलीगढ़ से चलकर गाजियाबाद के क्षेत्र में पहुँच जायँ तो वहाँ हल-सम्बन्धी शब्दावली प्राचीन कौरवी बोली की भिन्न परम्परा में ढली हुई मिलेगी। जैसे हलसोत, कुस, पड़ौंथा, गलौंथिया (छोटा घिसा हुआ हल), पच्छेला (पीछे ठुकी हुई लकड़ी जो पड़ौंथा और फाली के बीच में होती है), ओग, गोखरू (हलस को आगे खिसकने से रोकने के लिए लकड़ी या लोहे की कील), चीचड़ी (पड़ौंथे में कुस को रोकने के लिए दो छोटी लकड़ियाँ), सें (हल का सूराख), हल की छाती (हलस को हल में पूरी फँसाने के लिए जहाँ ओग ठुकती है), हल का पेटा (ठीक ऊपरी भाग), हल का चोटिया, चौंसाली (= पटरी), फाचिरी (= मुथापड़ा), ऊँटड़ा, नाड़ (सं० नद्ध), नाड़ी (सं० नद्धी = चमड़े की रस्सी), सिर-बँधना (नाड़ कसने का फन्दा) आदि—ये शब्द दिल्ली की तलहटी की बोली के हैं। ऐसे ही दुबल्दी या चौबल्दी गाड़ी के अनेक नये शब्द हैं। जैसे—तलौंचीदार पँजाली (बैलवान के बैठने की जगह), सिमल, खँदोल, उरेली, नाथ, जोत नाँगला, नैकस (नाड़ कसनेवाली गुल्ली जिसे नकेल या नरेल भी कहते हैं), उड़ियार (गाड़ी के ढाँचे को भीतर-बाहर सरकने से रोकने वाले अगले-पिछले डंडे), सालवे (अगले-पिछले खड़े डंडे जिन पर रस्सी टिकी रहती है), छैरिया (पहर.चक्र), चौरिया (चार अरों का पहिया), छुलैया (चोर कील पर ठोकी जानेवाली लोहे की पत्ती), फटघुरा, आँचन, सगुनी (अगली लकड़ी जो दो फड़ों में जुड़ी रहती है), भंडारी, फरथली, चाँक, लघैंड़ी, गधैंड़ी, मोकड़ा, ढेंगे, बेलडंडी, साँवगी, बेलना, खड़ौंची (सं० काष्ठांचिका), हलफिल्ली अर्थात् चकेल (पहिये के बाहर धुरी के सिरे पर ठुकी हुई किल्ली। अंग० लिनपिन) और तुलाए (= बाहरी डंडे)।

कभी-कभी व्युत्पत्ति की दृष्टि से इन शब्दों में काफी सौन्दर्य मिलता है। जैसे गोभना (सं० गोस्तन = वह गाय के थन की भाँति की एक छोटी मेख है जो जुए में भीतर की ओर ठुकी रहती है)। इसी के मुकाबले में बाहर की ओर वह मेख होती है जिसे निकालकर बैल खोलते और सिर सिरो देते हैं। कहते हैं कि स्त्री और गाड़ी के शृंगार का अन्त नहीं।

एक बार जो शब्द साहित्य या कोश में आ जाएगा, वह भविष्य के लिए सुरक्षित हो जाएगा। अतएव अधिक से अधिक शब्दों को स्थान देने का प्रयत्न करना चाहिए। [illegible] का जो कार्य हुआ था, उससे भी हमें लाभ उठाना चाहिए। ऐसे शब्दों में [illegible] का कार्य उल्लेखनीय है जिसे [illegible] ने भी अपने लिए आदर्श माना था।[1]'

प्रस्तुत कोश-ग्रन्थ में यथासंभव उपलब्ध शब्दों की व्युत्पत्तियाँ देने का भी यथोचित प्रयत्न किया गया है। हिंदी में शब्द-व्युत्पत्ति का कार्य अभी अपनी प्रारंभिक अवस्था में है। उसके

---

[1] [illegible], 'ग्लॉसरियल [illegible]' [illegible] इलाहाबाद, १८७९ ई०, [illegible] प्रेस।

लिए अत्यधिक गंभीर प्रयत्न अपेक्षित है। विशेषतः कृषक-शब्दावली के शब्द इतने घिसे-पिटे हो गये हैं कि उनके मूल संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश रूपों तक पहुँचने के लिए कितने ही क्षेत्रों से संगृहीत तुलनात्मक शब्दावली सामने आनी चाहिए। मान लीजिए कि एक वस्तु के नाम के दस-बीस रूप अलग-अलग स्थानों से चुनकर ले लिये गये तो उनमें उच्चारण का भेद होते हुए भी ध्वनि-शास्त्र की दृष्टि से उनका मूल कोई एक ही शब्द होगा। कालान्तर के विभिन्न रूप उस मूल शब्द को पहचानने में सहायक होने चाहिए। इसके लिए आजकल जो भाषावैज्ञानिक युक्ति काम में लायी जाती है, उसे भाषा की स्थानीय बोलियों का मानचित्र (लिंग्विस्टिक ज्याग्रेफी) कहते हैं। बारह-बारह कोस पर बोली बदलने की बात इस कार्य में आधारभूत सच्चाई ठहरती है। उसी के हिसाब से क्षेत्रों का बँटवारा करके उन पर अंकों की गिनती डाल ली जाती है। फिर प्रत्येक बोली क्षेत्र से दो-चार हजार मूलभूत शब्दों के तुलनात्मक रूपों का सग्रह कर लिया जाता है। इस तरह का कार्य आँख खोल देता है। प्रत्येक बोली का महत्त्व उठकर खड़ा हो जाता है, फिर उसके बोलने-वालों की संख्या या बोले जाने का क्षेत्र कितना ही छोटा क्यों न हो। स्थानीय जनपद-कार्य-कर्ताओं को अपने-अपने क्षेत्र में इस प्रकार का प्रयोग करके देखना चाहिए। प्रति वर्ष विश्वविद्यालयों से हिन्दी में एम० ए० करनेवाले छात्रों की जो संख्या बढ़ रही है, उससे इस कार्य में सहायता मिल सकती है। जिसका जो देहाती क्षेत्र है, वह वहीं काम करने का पूरा अवसर निकाल सकता है। विशेषतः छुट्टियों में अपनी भूमि और बोली के प्रति भक्ति लेकर भाषा रूपी धेनु का जितना दोहन किया जा सके उतना ही अधिक श्रेयस्कर होगा।

गाँवों की शब्दावली तो कार्य का एक अंग है। वस्तुतः जनपदीय साहित्य का क्षेत्र अति विस्तृत है। हमें अब ऐसा भासित होता है कि भारतीय संस्कृति के परिचय का पूरा सूत्र "लोके वेदेच" वाक्य में है। एक ओर वेद की परम्परा नाना पुराण, आगम, शास्त्र और काव्यों में सुरक्षित है। दूसरी ओर लोक-जीवन में उसकी मौखिक परम्परा की अटूट धारा बहती आई है। लोक के गीतों और कहानियों को, जन-विश्वासों और धार्मिक तीज-त्योहारों को इस दृष्टि से छानने की आवश्यकता है। इन चार स्रोतों से जो वांछित सामग्री मिलेगी, उसकी तुलना शास्त्रीय प्रमाणों के साथ करने से ही भारतीय जीवन की पूरी व्याख्या समझ में आ सकेगी। उदाहरण के लिए अभी पाँच दिन पहले करवा चौथ (करक चतुर्थी) का पर्व आया था, उसकी एक कहानी चली आती है। प्रायः प्रत्येक व्रत के लिए ऐसी कहानियाँ हैं, जिन्हें 'व्रतावदान' कहते थे। यह करवा क्या है? चौथ के साथ इसका क्या सम्बन्ध है? इन प्रश्नों पर विचार करते हुए ज्ञात हुआ कि ऋग्वेद के युग में ही इस व्रत का और इसकी कहानी का मूल रूप बना होगा। वहाँ कहा गया है कि मूल में एक चमस था। उस एक को ऋभु देवों ने चार चमसों के रूप में बदल दिया। इसी से इन्द्र द्वारा कार्य पूरा हुआ—

"एकं चमसं चतुरः कृणोतन"

—(ऋक् १।१६१।२)

चमस का ही पर्याय करक या घट है। प्रत्येक व्यक्ति का अव्यक्त रूप एक घट या कमण्डलु है। वही जीवन के जल से भरा हुआ है। व्यक्त रूप में उसी के तीन रूप हो जाते हैं जिन्हें त्रिपुर या जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्थाएँ अथवा मन, प्राण और भूत कहते हैं। इन तीनों की चरितार्थता के लिए ऐसा विधान रचा है कि माता-पिता के कुल में उत्पन्न कुमारी का सास-ससुर के कुल में उत्पन्न कुमार से विवाह होना चाहिए। यही सोम और अग्नि का सम्बन्ध है। इसी से वह शृङ्खला आगे बढ़ती है जिसकी कड़ी सन्तान है। उसी के लिए राजकुमारी सात

मातृ-देवियों या अप्सराओं की सहायता से सौर से उठे हुए राजकुमार को जीवित करती हैं। ये सात शक्तियाँ ही सात बहनें हैं जिनके लिए कहा है—

"सप्त स्वसारो अभिसंनवन्ते"

—(ऋक् १।१६४।३)

सात बहनें मिलकर देवरथ में बैठे हुए अधिपति का यशोगीत गाती हैं। उनके पास जो अमृत है, वह सातवीं से, जिसका नाम 'वृद्ध सुहागिन' आता है, अर्थात् जो मङ्गलात्मक आशीर्वाद से विश्वकर्ता की सृष्टि को बढ़ाती है, राजकुमारी को मिलता है। ऋतु देवी ने एक सुवर्णीय प्राण-कलश को लेकर उससे जो चार रूप लिये, उनके उस चतुष्टय विधान की स्मारक कहानी करक चतुर्थी का लोकव्रत है। प्रत्येक देह में जन्म से आरम्भ होनेवाला प्राण-स्पन्दन ही 'कुमारसम्भव' अर्थात् राजकुमार का जन्म है, जिससे प्राण या जीवन की धारा नये-नये रूप में आगे बढ़ती है। कुमारी के माता-पिता का सम्मिलन एक यज्ञ है। राजकुमार के माता-पिता का योग दूसरा यज्ञ है। दोनों यज्ञों से उत्पन्न दक्षिणाएँ जब पुनः मिलती हैं तब तीसरा यज्ञ चलता है। यही 'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्' का विधान है। सृष्टि-रचना का यही पहला धर्म है जो बाद की सृष्टियों का नियमन कर रहा है। यह एक उदाहरण है। और भी लोकव्रत अपने वैदिक उद्गम का संकेत देते हैं, जैसे वटसावित्री व्रत, जिसमें संवत्सरात्मक सावित्र विद्या का लौकिक रूप सुरक्षित है। 'लोके वेदे च' सूत्र के दर्पण में लोकसाहित्य और लोकवार्ता शास्त्र का महत्त्व अत्यन्त बढ़ जाता है और कार्यकर्ताओं के सामने एक नया लक्ष्य आ जाता है।

लोक साहित्य की दृढ़ भूमि है। उसकी दीर्घकालीन परम्पराएँ हैं। उसका अपरिमित विस्तार है। अतएव सब दृष्टियों से लोक मेधावी और उत्साही साहित्यसेवियों के सहयोग का समर्पण चाहता है। ईश्वर करे उसकी संख्या में वृद्धि हो!

"प्रत्यक्षदर्शी लोकस्य सर्वदर्शी भवेन्नरः।"

—(उद्योगपर्व ४३।३६)

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
२५-१०-४६

वासुदेवशरण अग्रवाल

"अवैयाकरणस्त्वन्धः, बधिरः कोश-विवर्जितः।"

❀ ❀ ❀

"एकः शब्दः सम्यग् ज्ञातः शास्त्रान्वितः सुप्रयुक्तः
स्वर्गे लोके कामधुग्भवति।"

—पतंजलि, व्या० महाभाष्य

❀ ❀ ❀

"जनता की बोलियों में तद्भव शब्द बहुत बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। साहित्यिक हिन्दी में इनकी संख्या कम होती जाती है, क्योंकि ये गँवारू समझे जाते हैं। वास्तव में ये असली हिन्दी-शब्द हैं और इनके प्रति विशेष ममता होनी चाहिए। 'कृष्ण' की अपेक्षा 'कान्हा' या 'कन्हैया' हिन्दी का अधिक सच्चा शब्द है।"

—डा० धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी भाषा का इतिहास

❀ ❀ ❀

समर्पण

श्रद्धेयवर डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल को

जिनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन ने मुझे ब्रजभाषा के जनपदीय शब्दों के विस्तृत अध्ययन के लिए प्रवृत्त किया और जिनके चरणों में बैठकर मैंने इस ग्रंथ को लिखा।

विनीत
अम्बाप्रसाद 'सुमन'

ग्रन्थ के सम्बन्ध में

ब्रजभाषा अर्थात् ब्रज की बोली मेरी मातृभाषा है। अलीगढ़[1] जिले की कोल तहसील का शेखूपुर गाँव मेरा जन्म-स्थान है; अतः ब्रज-प्रदेश मेरी मातृभूमि भी है। मेरे जीवन का अधिकांश ब्रजभाषा-क्षेत्र में ही व्यतीत हुआ है। सितम्बर सन् १९४८ ई० की बात है—एक दिन मेरे गाँव में पर्याप्त मेह बरसा। उससे किसानों के खेतों के पौधों की प्यास बुझी और उन्होंने फिर से नया जीवन प्राप्त किया। उसी दिन सन्ध्या समय अपने खेतों पर से गाँव की ओर आता हुआ एक किसान हर्षोल्लास की वाणी में कहने लगा—'आजु तौ सोनो बरस्यो ऐ।'[2] मैंने किसान के उक्त वाक्य को अच्छी तरह सुना और मन ही मन उसके अर्थ पर भी विचार करने लगा। मैं उन दिनों अथर्ववेद पढ़ा करता था और एम० ए० (हिन्दी) परीक्षा उत्तीर्ण कर चुका था। किसान के उपर्युक्त वाक्य ने एक साथ मेरे चेतन मन में अथर्ववेद का निम्नांकित वाक्य लाकर उपस्थित कर दिया—

'आपश्चिदस्मै घृतमित् क्षरन्ति।'[3]

अथर्ववेद के ऋषि की भावना एवं भावाभिव्यंजना की छाया अपने गाँव के किसान के एक वाक्य में देखकर मैं चकित हो गया। तब कुछ दिनों के उपरान्त ही मैंने सर्वश्री आचार्यवर डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० बाबूराम सक्सेना, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल आदि की भाषा-शास्त्र सम्बन्धी पुस्तकों और लेखों का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया।

भाषा-विज्ञान की जिन पुस्तकों को मैंने एम० ए० (हिन्दी) में पढ़ा था, उनका फिर से पारायण करने लगा। अध्ययन के क्षणों में एक पुस्तक में मैंने पढ़ा कि—"जनता की बोलियों में तद्भव शब्द बहुत बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। साहित्यिक हिन्दी में इनकी संख्या कम होती जाती है, क्योंकि ये गँवारू समझे जाते हैं। वास्तव में ये असली हिन्दी-शब्द हैं और इनके प्रति विशेष ममता होनी चाहिए। 'कृष्ण' की अपेक्षा 'कान्ह' या 'कन्हैया' हिंदी का अधिक सच्चा शब्द है।"[4] फिर एक दूसरी पुस्तक में यह भी पढ़ा कि—

"जब हमारी भाषा का सम्बन्ध जनपदों से जोड़ा जाएगा तभी उसे नया प्राण और नयी शक्ति प्राप्त होगी। गाँवों की बोलियाँ हिन्दी-भाषा का वह सुरक्षित कोष हैं जिसके धन से वह अपने समस्त अभाव और दारिद्र्य को मिटा सकती है।"[5]

उपर्युक्त कथनों को पढ़कर मुझे शब्द-संकलन के लिए बहुत बड़ी प्रेरणा मिली और मैं अपने जिले (अलीगढ़) के खेतों के शब्दों, लोकोक्तियों तथा मुहावरों के संकलन में लग गया। एक [illegible] ([illegible]), के रूप में जो शब्द-संकलन का कार्य सन् १९४९ ई० में ही आरम्भ हो गया था

[1] अलीगढ़ का प्राचीन नाम 'कोल' है। सूदन कवि ने भी इस प्राचीन नाम का उल्लेख (सुजान-चरित्र, भारतवासी प्रेस, प्रयाग, सन् १९२० ई०, प्रथम जंग, पृ० ३७) किया है।

[2] आज तो सोना बरसा है।

[3] इस सूक्ति के लिए [illegible]।

[4] डा० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी भाषा का इतिहास, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग, सन् १९४९ ई०, पृ० ६८।

[5] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : [illegible] द्वारा संपादित [illegible]

और अपनी मंथर गति से चल भी रहा था। लेकिन फिर सन् १९५२ ई० में मैंने अपने संग्रह-कार्य को डी० फिल्० की उपाधि की आशा से एक शोध का रूप देना चाहा और प्रयाग विश्वविद्यालय में जाकर आचार्यवर डा० धीरेन्द्र वर्मा से प्रार्थना की कि वे मुझे अपना शिष्य बना लें। उदारचेता श्रद्धेय डाक्टर साहब ने मेरी प्रार्थना तो स्वीकार कर ली, किन्तु कुछ अपरिहार्य कारणवश मुझे अपने कालेज से दो वर्ष का अध्ययनावकाश न मिल सका, ताकि मैं प्रयाग-विश्वविद्यालय का शोध-छात्र बनकर अपना कार्य कर सकता। अपनी अभिलाषा की पूर्ति होती हुई न देखकर मैं कुछ चिन्त्य परिस्थिति में भी रहा, किन्तु अन्य योग्य निर्देशक को भी खोजता रहा। अन्त में सौभाग्य से परम पूज्य डा० वासुदेवशरण अग्रवाल जैसे शब्द-पारखी गुरुवर को पाकर मैं आगरा-विश्वविद्यालय के शोध-छात्र के रूप में अपने अनुसन्धान का कार्य करने लगा। मेरे इस शोध-कार्य की पूर्व पीठिका में यही छोटी-सी कहानी है।

अलीगढ़-क्षेत्र की बोली के आधार पर यह शब्द-संग्रह 'कृषक-जीवन-सम्बन्धी ब्रजभाषा-शब्दावली' के नाम से तैयार किया गया है। इस शब्दावली में केवल शब्दों का ही संकलन नहीं है, अपितु प्रचलित लोकोक्तियाँ और मुहावरे भी संकलित किये गये हैं। मैंने स्वयं अलीगढ़ जिले तथा उसके संक्रमण क्षेत्रवाले सीमावर्ती जिलों के गाँवों में घूम-घूमकर शब्दों तथा लोकोक्तियों का संग्रह किया है। संकलन का कार्य विशेषतः अशिक्षित वृद्ध ग्रामीण मनुष्यों और स्त्रियों के मुख से निकली हुई वाक्यावली से ही किया गया है। प्रस्तुत प्रबन्ध में जनपदीय शब्द व्यापक रूप में बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से एकत्र किये गये हैं और ग्रन्थ के अनुच्छेदों में वे स्पष्टतः दृष्टिगोचर हो सकें, इस विचार से उन्हें मोटे अक्षरों में भी कर दिया गया है। जो शब्द जिस तहसील अथवा परगने में अधिक प्रचलित हैं, उसके आगे उसका स्थान भी लिख दिया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह विशेष शब्द अन्य स्थानों में बोला नहीं जाता।

जहाँ तक संभव हो सका है, वहाँ तक कुछ जनपदीय शब्दों की व्युत्पत्तियाँ भी साथ-साथ लिख दी हैं। शब्दों का क्रमिक विकास दिखाते हुए उनकी प्रयोग-पुष्टि के लिए पाद-टिप्पणी के रूप में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिंदी, अरबी तथा फारसी आदि के ग्रन्थों से उद्धरण तथा प्रमाण भी दिये गये हैं और संकलित लोकोक्तियों के अर्थ भी लिखे गये हैं। प्रबंध में संगृहीत संपूर्ण शब्दों की संख्या लगभग चौदह हजार हैं, और लोकोक्तियाँ पाँच सौ के लगभग हैं।

शब्द-संग्रह का कार्य कुछ नीरस-सा है; अतः विषय को रोचक तथा बोधगम्य बनाने के लिए मैंने ऐसी वर्णनात्मक तथा विवरणात्मक पद्धति को अपनाया है जिसके द्वारा कृषकों तथा शिल्पकारों की संस्कृति एवं क्रियाकलापों का परिचय भी प्राप्त हो जाता है। वस्तुओं के नामों तथा रूपों को स्पष्ट करने के लिए यथा स्थान आवश्यकतानुसार रेखा-चित्र तथा चित्र (फोटोग्राफ) भी दिये गये हैं और प्रत्येक प्रकरण को अध्यायों में तथा प्रत्येक अध्याय को अनुच्छेदों में विभक्त करके लिखा गया है।

अलीगढ़-क्षेत्र की बोली का यह शब्द-संग्रह हिन्दी-जगत् के लिए प्रथम मौलिक प्रयास है। अन्य कुछ क्षेत्रों में तो ऐसा कार्य पहले हो चुका है। सन् १८७७ ई० में श्री पेट्रिक कारनेगी ने कोश के रूप में 'कचहरी टेक्नीकलिटीज'[1] के नाम से एक शब्द-संग्रह प्रकाशित कराया था। एक दूसरा शब्द-संग्रह कोश के ही रूप में श्री विलियम क्रुक का है जो 'ए रूरल एण्ड ऐग्रीकल्चरल

[1] प्रकाशक, इलाहाबाद मिशन प्रेस, द्वितीय संस्करण, सन् १८७७ ई०।

तीसरी बार 'दी नार्थ-वेस्ट प्रोविंसिज़ एण्ड अवध'¹ नाम से सन् १८७९ ई० में प्रकाशित हुआ था। जनपदीय शब्द-संग्रह पर तीसरी पुस्तक सर जार्ज ए० ग्रियर्सनकृत 'बिहार पेजेंट लाइफ'² है। इन पंक्तियों के लेखक ने सर ग्रियर्सन की इसी पुस्तक को आदर्श रूप में उसके कार्य के लिए ग्रहण किया है। शब्द-संग्रह के क्षेत्र में प्रो० आर० एल० टर्नर की 'नेपाली डिक्शनरी' भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। लगभग सात वर्ष हुए, आचार्यप्रवर डा० धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में डा० हरिहर-प्रसाद गुप्त ने एक शोध-प्रबंध लिखा था, जिसका विषय था—"आजमगढ़ जिले की फूलपुर तहसील के आधार पर भारतीय ग्रामोद्योगों से सम्बन्धित शब्दावली का अध्ययन।" इस विषय पर उक्त लेखक को प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० फिल्० की उपाधि भी प्राप्त हो चुकी है।

मैं अपने ज्ञान एवं साहित्य-परिचय के आधार पर यह कह सकता हूँ कि 'कृषक-जीवन-सम्बन्धी ब्रजभाषा-शब्दावली' नामक यह पुस्तक प्रबन्ध-विषय के दृष्टिकोण से नहीं, शिल्प में सौकर्य और शैली की दृष्टि से प्रथम है। इस प्रबन्ध से पूर्व लिखी हुई पुस्तकों में सर जार्ज ए० ग्रियर्सन की पुस्तक का शिल्प-विधान प्रथम और डा० हरिहरप्रसाद गुप्त की पुस्तक का द्वितीय माना जा सकता है। किन्तु शब्द-प्रमाणों के उद्धरणों की दृष्टि से तो अलीगढ़-क्षेत्र की बोली के आधार पर लिखा हुआ यह शब्द-संग्रहात्मक प्रबन्ध नितान्त मौलिक ही माना जायगा, जिसमें बहुत-से शब्दों के मूल और विकास को बताने के लिए लगभग सभी प्रामाणिक कोशों का अवलोकन किया गया है और वैदिक काल से लेकर लौकिक संस्कृत तक तथा पाली भाषा से लेकर हिन्दी तक के कुछ प्रमुख-प्रमुख ग्रन्थों से विषय-सम्बद्ध प्रमाण भी दिये गये हैं।

व्युत्पत्तियों के द्वारा हमें शब्दों के अर्थगौरव पूर्ण जीवन और उनकी वंशपरंपरा से परिचय प्राप्त हो जाता है। व्युत्पत्तियों की छान-बीन से ही हम भूले हुए ऐतिहासिक तथ्यों तथा प्रवादों तक पहुँचते हैं और हमें यह भी ज्ञात हो जाता है कि अमुक शब्द की प्राचीनता और विकास-क्रम क्या है? अतः प्रस्तुत प्रबन्ध में शब्द की व्युत्पत्ति की ओर भी कहीं-कहीं ध्यान दिया गया है, पर यह प्रबंध का उद्देश्य न था; और यह स्वतंत्र अनुसंधान का विषय होने के कारण यहाँ अपेक्षित नहीं समझा जा सकता है।

जिला अलीगढ़ की ब्रजभाषा को सर जार्ज ए० ग्रियर्सन ने स्टैंडर्ड ब्रजभाषा माना है। आचार्यवर डा० धीरेन्द्र वर्मा ने अपने ग्रंथ 'ब्रजभाषा'³ में लिखा है कि—'मथुरा, आगरा, अलीगढ़ और बुलंदशहर की बोली परिनिष्ठित अथवा केन्द्रीय ब्रज मानी जा सकती है। इस मत को सर्वमान्य सिद्धान्त भी कहा जा सकता है।' अतएव अलीगढ़-क्षेत्र की शब्दावली ब्रजभाषा-साहित्य के अध्ययन में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा सहायक सिद्ध होगी। मेरा विश्वास है कि प्रस्तुत कोश-प्रबंध की शब्दावली प्राचीन तथा मध्ययुगीन ब्रजभाषा-ग्रंथों के समझने में पर्याप्त सहायता प्रदान करेगी।

वर्तमान युग के भारतवर्ष में नागरिक संस्कृति एवं सभ्यता दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। विज्ञान के नये आविष्कार भी दिन प्रति दिन गाँवों की ओर फैलते जा रहे हैं। ऐसी दशा में हमारे पुराने और दिहातियों के औजारों तथा कार्यप्रणालियों के बदलने में अधिक समय न लगेगा। जब किसानों के हल बैल ट्रैक्टरों से, पुराने औजार और मशीनें बिजली के पुर्जों से बदल जायेंगे, तब हल और बैल के [illegible] सम्बन्धित जनपदीय शब्दावली [illegible]

¹ इलाहाबाद, गवर्नमेंट प्रेस इलाहाबाद, सन् १८७९ ई०।

² कलकत्ता, बंगाल गवर्नमेंट, सन् १८८५ ई०, तथा बिहार सरकार पटना, द्वितीय संस्करण, सन् १९२६ ई०।

³ प्रका० हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, सन् १९५४ ई०, पृ० १८।

उठ जायगी। खड़ी बोली के व्यापक प्रभाव से आज भी बहुत-से शिक्षित मनुष्य ब्रजभाषा की कविताएँ नहीं समझ पाते। जायसी, सूर, तुलसी, सेनापति, बिहारी आदि की कविताओं में आये हुए बहुत-से शब्दों के अर्थ हम साधारणतः नहीं समझ पाते। उपर्युक्त कवियों के काव्य-ग्रन्थों में प्रयुक्त कितने ही शब्दों को मैं अब इस प्रबंध द्वारा समझ सका हूँ। मेरा विश्वास है कि प्रस्तुत शब्द-संग्रह ब्रजभाषा काव्यों में आये हुए पारिभाषिक शब्दों के समझने में सहायक होगा।

'सूरसागर' के एक पद[१] में एक शब्द **'काँपा'** आया है। इस पद को मैंने पहले कई बार पढ़ा था, लेकिन यह न जान सका था कि 'काँपा' क्या और कैसा होता है? 'काँपा' का अर्थ जानने के लिए मैं चिड़ीमारों का आभारी हूँ (देखिए अनु० ४७५ ग)। एम० ए० (हिन्दी) के पाठ्यक्रम में सेनापति का 'कवित्त-रत्नाकर'[२] मैंने कई बार पढ़ा था और उसकी पहली तरंग के द्वितीय छंद में प्रयुक्त 'सार' शब्द ("सुरतरु **सार** की सँवारी है बिरंचि पचि, कंचन-खचित चिंतामनि के जराइ की") को भी अनेक बार देखा था। 'रघुराय की खड़ाउँओं को ब्रह्मा जी ने कल्पवृक्ष के सार से बनाया है' इतनी बात तो में समझता था, किन्तु 'सार' क्या होता है, यह बात समझ में नहीं आयी थी। शब्दावली का संकलन करते समय जब मैं बढ़इयों और पेड़ काटनेवाले चमारों से बातें करने लगा तब एक ग्रामीण चमार ने पक्की तथा अच्छी लकड़ी की पहँ-चान बताते हुए **'सार'** तथा **'राच'** शब्दों का प्रयोग किया और एक बढ़ई ने उसी तरह लकड़ी के लिए **'पकौट'** तथा **'रसीकुर'** शब्दों का व्यवहार किया। उस दिन **'सार'**[३] शब्द का अर्थ ज्ञात हुआ। पेड़ काटनेवाले चमार ने मुझसे कहा—"देखौ, जा कटी भई पींड़ के भीतर बीचाबीच में जो कारी-कारी लकड़िया दीखत्यै, सोई **'सार'** या **'राच'** कहावत्यै। जेई सबते ज्यादै पक्की होत्यै।[४]"

हिन्दी-भाषा के कोश का संकलन करते हुए हमें हिन्दी के जनपदीय शब्दों को भी लेना पड़ेगा। हम अपनी भाषा और साहित्य को जन-जीवन से बहुत कुछ दूर ही दूर हटाते चले जा रहे हैं। यह दुःखद स्थिति है। यदि हमारी राष्ट्रभाषा (हिन्दी) का सम्बन्ध जन-बोलियों से टूट जायगा, तो यह सदा के लिए निष्प्राण हो जाएगी। विद्वद्वर्य महापंडित श्री राहुल सांकृत्यायन का कथन है कि—"कोई भी साहित्यिक या शिष्ट भाषा आकाश से नहीं उतरती; उसका किसी न किसी बोली से विकास होता है। विद्वान् यह भी मानते हैं कि जिस साहित्यिक भाषा का अपनी बोली से अटूट सम्बन्ध रहता है, वह बड़ी सजीव होती है। मुहावरे, संकेत आदि जितने भाषा को सबल बनानेवाले तत्त्व हैं, वे बोलियों की देन हैं। जिस साहित्यिक भाषा का अपने मूल स्रोत—बोली—से सम्बन्ध टूट जाता है, उसकी सजीवता बहुत कुछ नष्ट हो जाती है।[५]

हिन्दी का जो अपना असली रूप है, वह गाँवों की टकसाल में ही ढला था। हिन्दी के आदि जन्मदाता ग्रामीण जन ही हैं। उन्होंने ही संस्कृत, अरबी, फारसी, अंग्रेजी आदि के शब्दों को हिंदी

---

[१] सूरसागर, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, प्रथम संस्करण, स्कन्ध १०। पद ३१८५।

[२] श्री उमाशंकर शुक्ल द्वारा सम्पादित तथा सन् १९४८ ई० में हिन्दी-परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय से प्रकाशित।

[३] प्रस्तुत प्रबन्ध, अनु० ७८७ पृ० ६६३-६९४।

[४] "देखो, इस कटे हुए तने के भीतर ठीक मध्य में जो काली-काली लकड़ी दिखाई देती है, वही 'सार' या 'राच' कहाती है। यही सबसे अधिक पक्की होती है।"

[५] 'हिन्दी की मूल भाषा कौरवी बोली है' शीर्षक लेख, सम्मेलन-पत्रिका, प्रयाग, संवत् २०११ भाग ४०, संख्या ४।

बना दिया है। पाणिनिकालीन संस्कृत भी लोक-भाषा के अनेक शब्दों को अपनाकर चली थी। पाणिनि को विदित था कि कोई साहित्यिक भाषा तभी तक जीवित तथा प्राणवन्त बनी रह सकती है, जब तक वह लोक-भाषा की भूमि से शब्दों को निर्बाध लेती रहे। व्यापक साहित्य की भाषा संस्कृत भी समय-समय पर जन-भाषा से शब्द लेती रही है। अतएव राष्ट्रभाषा हिन्दी को भी व्यापक और सबल बनाने के लिए हमें जनपदीय बोलियों से शब्दों को लेना होगा। इन्हीं बोलियों में ब्रज-भाषा की शब्दावली का भी प्रमुख स्थान है। जनपदीय बोली के व्यापक, सबल तथा अर्थपूर्ण शब्दों को हिन्दी में ले लेने पर प्रान्तिक पक्षपात या आग्रह का कोई प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। हिन्दी के शब्द-कोशकारों, पारिभाषिक शब्दावली- निर्माताओं तथा साहित्यस्रष्टाओं को भाषा के इस अक्षय स्रोत अर्थात् जनपदीय शब्दावली की शरण में जाना अनिवार्य है। बोलियों की शब्दावली से साहित्यिक भाषा सदा पोषित होती रही है। एक समय था जब ब्रजभाषा सारे उत्तरी भारत की साहित्यिक भाषा बन गई थी। भक्ति-आन्दोलन के प्रसंग में इस भाषा की शब्दावली उत्तरी भारत के बहुत बड़े क्षेत्र में फैल गई। अतएव यह स्वाभाविक है कि अलीगढ़-क्षेत्र, जो ब्रजप्रदेश का हृदय है, की शब्दावली भी व्यापक क्षेत्र में पहुँची हो।

इस शब्द-संग्रह में शब्दों का स्वरूप वही रखा गया है जो जनपदीय बोली में है। यदि बोलीगत आवरण हटा दिया जाय तो आशा है कि अनेक शब्द परिनिष्ठित (स्टैंडर्ड) हिन्दी में लिये जा सकेंगे।

लोकोक्तियों के साथ-साथ कुछ मुहावरों (फ्रेज़िज़) का भी संग्रह किया गया है। मुहावरे और लोकोक्तियाँ साहित्य में अलंकारों से भी बढ़कर अर्थवत्ता रखती हैं। लोकोक्ति के छोटे-से सुगठित वाक्य में युगों का अनुभव सिमटकर आ जाता है। मुहावरे जनपदीय भाषा में कभी समासोक्ति या रूपकातिशयोक्ति का काम देते हैं। श्रद्धेय डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि—

"लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। अनन्त काल तक धातुओं को तपाकर सूर्य-रश्मियाँ नाना प्रकार के रत्न-उपरत्नों का निर्माण करती हैं, जिनका आलोक सदा छिटकता रहता है। उसी प्रकार लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटनेवाली ज्योति प्राप्त होती है।"

आचार्यवर डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने एक स्थान पर लिखा है—

"हमारे देश के विशाल क्षेत्र में फैली जनपदीय बोलियों का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन तो हो रहा है; उनके मुहावरों, लोकोक्तियों, शब्द-भण्डारों और लोककथाओं का वैज्ञानिक अध्ययन भी बहुत ही कम हुआ है।"[1]

इस अभाव को लक्ष्य में रख इस ग्रन्थ में कुछ पूरा करने का प्रयत्न किया है। इस प्रबन्ध का विषयानुसार विभाजन संक्षेप में इस प्रकार है—

[1] डा० सावित्री सिन्हा (सम्पादिका): अनुसंधान का स्वरूप, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, सन् १९५४ ई०, पृ० १९।

प्रकरण-क्रम से पारिभाषिक शब्दों की संख्या

प्रकरण-संख्या			संगृहीत शब्दों की संख्या
१	......	......	५१३
२	......	......	६०६
३	......	......	३४८
४	......	......	२६५
५	......	......	२०६
६	......	......	६६५
७	......	......	३०२
८	......	......	२६०
९	......	......	४७१
१०	......	......	३३३
११	......	......	११३५
१२	......	......	३७५१
१३	......	......	१७८३
१४	......	......	३८४
१५	......	......	१४४६
संगृहीत शब्दों का पूर्ण योग =			१३१५८
	कुल चित्र-संख्या =		३६
	कुल रेखाचित्र-संख्या =		८४६

प्रस्तुत प्रबन्ध में आठ हजार से अधिक हिन्दी के साभिप्राय अभिव्यञ्जक सबल शब्द संगृहीत हैं जिनमें से सौ-दो सौ को छोड़कर शेष अभी तक हिन्दी के किसी कोश में नहीं आये हैं। उदाहरण के रूप में इस संग्रह के कुछ शब्द यहाँ प्रकरणानुसार अकारादिक्रम से लिखे जा रहे हैं। शब्दों के आगे लिखे हुए अंक प्रस्तुत प्रबन्ध की अनुच्छेद-संख्या के द्योतक हैं—

प्रकरण १

कृषि सम्बन्धी साधन, यंत्र और उपकरण

(१) अध्याना—६५ (सं० अग्निधान) = आग का एक गड्ढा-सा जिसके पास बैठकर किसान लोग प्रायः जाड़ों में तापते हैं।

(२) कठग्राहीं—३ (सं० काष्ठग्राहु) = चरस में ऊपर के भाग में एक खमदार लकड़ी लगी रहती है, जिसे पकड़कर किसान पानी से भरे चरस को टालता है।

(३) कौंड़र—३ (सं० कुण्डल) = पुर (चरस) के मुँह पर लगा हुआ लोहे का एक गोल घेरा।

(४) गमागमदार—१९ = ढेंकली चलानेवाला जब इतनी शीघ्रता से पानी टालता है कि पानी की धार का तार नहीं टूटता और पानी भी तेज बहता है तब उस क्रिया को **गमागमदार** कहते हैं।

(२०) पाँस—७१ (सं० पांशु) = खाद के काम में आनेवाला सूखा गोबर ।

(२१) पिहान—८६ (सं० अपिधान) = कुठले (मिट्टी का बना हुआ एक घेरा-सा जिसमें अनाज भरा जाता है) के मुँह का ढक्कन ।

(२२) मेंढ़िया—१८५ (सं० मैढिक या मैधिक) = खलिहान की दाँय में केन्द्र भाग पर घूमनेवाले बैल को **मेंढ़िया** और बाहर किनारेवाले बैल को **पागड़ा** कहते हैं ।

(२३) लावा—१६० (सं० लावक) = पकी हुई रबी की फसल (बैसाखिया फसल या बावनी) की **लाई** (कटाई) करनेवाला व्यक्ति **लावा** कहाता है । सावनी (खरीफ की फसल) पक जाने पर ज्वार-बाजरे की बालें काटनेवाले को **कपटा** (सं० क्लृप्ता) कहते हैं।

(२४) स्यावड़ा—१८४ (सं० सीतावट्टक = सीता + वट्टक = हल के कूँड़ का ढेला) = खलिहान में अनाज की रास को पूजने के लिए किसान जंगल से **आन्ना** (सं० आरण्य) **कंडा** (उपला) और अपने खेत से मिट्टी का एक ढेला लाता है । ढेला उसी खेत का होता है जिसमें रास के अनाज की फसल उगाई गई थी । मिट्टी का वह ढेला **स्यावड़ा** कहाता है । कंडे को मेरठ जिले में **गोस्सा** (सं० गोसर्ग) कहते हैं ।

प्रकरण ३

खेत और उनके नाम

(२५) कबिसा—१६३ (सं० कपिश + क)—जिस खेत की मिट्टी काली-पीली होती है, वह **कबिसा** कहाता है ।

(२६) गाद—१६३ (सं० गर्त > प्रा० गड्ड > गाड़ > गाद) = चिकनी-सी मिट्टीवाला नीचे धरातल का खेत ।

(२७) पटिया—१६५ = अधिक लम्बा और कम चौड़ा खेत ।

(२८) पडुआ—१६७ = वे खेत-जिनमें सिंचाई कुओं, बम्बों आदि से नहीं हो सकती और जिन्हें केवल वर्षा का पानी ही मिल पाता है । पडुओं में वर्षा के कारण ही कुछ अन्न उग आता है, अन्यथा खाली पड़े रहते हैं ।

(२९) पूठा—१६७ (सं० पृष्ठ) = जो खेत ऊँचे धरातल पर होते हैं, वे **पूठा** कहाते हैं ।

(३०) डहर—१६२ (सं० ह्रद > दहर > डहर) = नीचे धरातल का खेत, जिसके अन्दर वर्षा के दिनों में प्रायः पानी भरा रहता है, **डहर** कहाता है । हिं० 'दह' का विकास भी सं० 'ह्रद' से है ।

(३१) बरहे—१६४ (सं० बहिर्) = गाँव से बाहर दूरी पर जो खेत होते हैं, वे **बरहे** कहाते हैं ।

(३२) बौहड़ी—१६२ = दो-तीन बीघे का छोटा खेत **बौंहड़ी** या **कौनियाँ** कहाता है ।

(३३) भूड़ा—१६३ = जिस खेत की मिट्टी रेतीली और खुश्क होती है, उसे **भूड़ा** कहते हैं ।

प्रकरण ४

खेती और पशुओं को हानि पहुँचानेवाले जंगली पशु, जीवजन्तु, कीड़े-मकोड़े तथा रोग

(३४) ऐंटा—२१२ = जौ, गेहूँ आदि की पत्तियों में लगनेवाला एक रोग जिससे पत्तियाँ मुड़कर ऐंठी-सी हो जाती हैं ।

(३५) नौरा—२०४ (सं० नगर > नउर > नौर > नौरा) = [illegible] का पूर्वी नगद में उजाड़ ।

(३६) पुलारना—२०६ = धरती को पोला करने के अर्थ में 'पुलारना' क्रिया प्रचलित है ।

प्रकरण ५

बादल, हवाएँ और मौसम

(३७) उनमनि—२१६ = जब दिन भर आकाश में बादल घिरे हुए रहें, मौसम कुछ उमस का हो और वर्षा हुई न हो तब उस वातावरण को उनमनि कहते हैं।

(३८) उमस—२२१ (सं० ऊष्मा) = बदरौटा धूप हो और हवा बन्द हो, तो उस वातावरण को उमस कहते हैं।

(३९) औचक या पंचवारी—२२१ = ये दोनों शब्द सं० मृगमरीचिका के अर्थ में प्रचलित हैं।

(४०) घमछाहीं—२१६ (सं० घर्मछाया) = आकाश में यदि बादल थोड़ी-थोड़ी देर में छा जावें और धूप भी थोड़ी-थोड़ी देर में निकलती रहे तो उसे घमछाहीं कहते हैं।

(४१) झर—२१८ = यदि निरन्तर एक-दो दिन तक थोड़ीथोड़ी वर्षा होती रहे तो 'झर-लगना' कहते हैं।

(४२) निवाये जाड़े—२२२ (सं० निवात > निवाय) = जाड़े के अंतिम दिनों में जब ठण्ड कम हो जाती है, तब वे निवाये जाड़े कहाते हैं (सं० निवात = वायु रहित। "निवाते वातत्राणे"—अष्टा० ३।२।८)।

(४३) बरसौंहा बादल—२१५ = वह बादल, जो पूरी तरह पानी से भरा हुआ होता है, बरसौंहा कहाता है। यह अँग० 'निम्बस' का उपयुक्त पर्यायवाची है।

(४४) भर—२१८ = वर्षा का झर बन्द हो जाने के उपरांत यदि बादल छाये रहें और धूप न निकले तो उस वातावरण को 'भर' कहते हैं।

प्रकरण ६

कृषि तथा कृषक से सम्बन्धित पशु

(४५) अनाबू या गदुआ—२४६ (सं० अन्नाबुक > अनाबू) = जिस बैल की पसुलियों में एक-आध पसुली कम होती है, उसे अनाबू कहते हैं।

(४६) [illegible] या [illegible]—२४० (सं० [illegible] > [illegible] > [illegible] > [illegible] > [illegible]) = आग लग जाने से [illegible] बैल [illegible] है।

(४७) [illegible]—[illegible] (सं० [illegible]) = [illegible]

(४८) [illegible]—२६२ = [illegible] जाती है।

(४९) [illegible]—[illegible] (सं० [illegible]) = [illegible] होते हैं।

प्रकरण ७

पशुओं से सम्बन्धित वस्तुएँ और किसान की सांकेतिक शब्दावली

(५०) गौन—२६१ (सं० गोणी = एक प्रकार का दुरुखा थैला जिसे अनाज आदि से भरकर गधे की पीठ पर लाद देते हैं ("कासू गोणीभ्यांष्टरच्"—अष्टा० ५।३।६०)।

(५१) तिकारना और नहँकारना —२६६ = हल या गाड़ी में जुते हुए बाहिरे (दाईं ओर के) बैल को 'नूहाँ नूहाँ' कहते हुए चलने का संकेत करना **'हँकारना'** या **'नहँकारना'** कहाता है। खुर्जे में इसे **'ओनाना'** भी कहते हैं। भीतरे (बाईं ओर के) बैल को 'तिक् तिक्' कहते हुए संकेत करना **तिकारना** कहाता है।

(५२) मुछीका—२८३ (सं० मुखशिक्यक) = रस्सी की बुनी हुई एक कटोरेनुमा जाली जो बैल आदि के मुँह पर लगा दी जाती है, ताकि वह चारा न खाने पाये।

प्रकरण ८

किसान का घर और घेर

(५३) चौपार—३०० (सं० चतुःपालि) = किसान की बैठक जिसके आगे सपीलोंदार एक बड़ा चबूतरा होता है।

(५४) जूना—३०४ (वै० सं० यून) = गेहूँ की नलई से बनी हुई एक मोठी रस्सी।

(५५) बिटौरा—३०४ (सं० विष्ठाकूट) = किसानों की स्त्रियाँ कंडों (उपलों) को एक जगह चिनकर उनसे एक छोटा टीला-सा बनाती हैं। उसे **बिटौरा** कहते हैं। कंडे का टुकड़ा **करसी** (सं० करीष) कहाता है। जंगल में पड़े हुए गोबर के चोथ के सूख जाने पर स्वतः बना हुआ कंडा **आन्ना** (स० आरण्य) कहाता है। लोकोक्ति प्रचलित है—'जानैं दईऐ रोटीदार। सोई देइगौ कंडा चार।'[1]

प्रकरण ९

किसान के गृह-उद्योग

(५६) चलामनी या दहेंड़ी—३१३ (सं० दधि + भाण्डिका > दही + हण्डिया > दहेंड़ी) = मिट्टी का एक बर्तन, जिसमें रई (मथानी) से दही बिलोया जाता है, **चलामनी** या **दहेंड़ी** कहाता है। पीतल का एक बड़ा बर्तन **परात** (पुर्त० प्रात > परात) कहाता है।

(५७) नौनी या लौनी—३१३ (सं० नवनीत) = औटाकर (गर्म करके) जमाये हुए दूध में से निकला हुआ घृत।

(५८) रैंटी—२११ (सं० अरघट्टिका) = एक यंत्र, जिससे स्त्रियाँ घरों में कपास ओटती हैं अर्थात् रुई और बिनौला अलग करती हैं, **रैंटी** या **चरखी** कहाता है।

---

[1] भाग्य पर पूर्ण आस्था और विश्वास रखनेवाले का कथन है कि जिस ईश्वर ने रोटी दाल दी है, वही चार कंडे भी देगा।

(६६) पनसार या पँसार—६२७ = मकान या दीवाल के चौरस धरातल को **पँसार** कहते हैं। अँग० 'लैविल' के लिए राजों की बोली का यह शब्द बहुत उपयुक्त है।

(७०) बन्दरूम—६४५ = मिट्टी की बनी हुई एक प्रकार की मकान की जाली **चंदरूम** कहाती है। यह जाली रूम या कुस्तुनतुनिया की जाली की अनुकृति है। इसीलिए यह नाम पड़ा है।

(७१) लौखर—८६६ = गँडासा, खुरपी, दराँत आदि किसान के औजार जिन्हें लुहार बनाता है, **लौखर** कहाते हैं। यह शब्द अँग० 'इम्प्लीमेंट्स' के अर्थ में प्रचलित है।

(७२) साँट या जौर—८८२ = करवे या खड्डी की कंघी की खराबी से कपड़े में तागों का एक गूँजटा-सा बन जाता है। वही **साँट** या **जौर** कहाता है। अँग० 'रीडमार्क' के अर्थ में यह प्रचलित शब्द है।

(७३) सावल—६३८ (सं० साधुल > साहुल > सावल) = दीवाल की चिनाई की सीध देखने के लिए राजों का एक यंत्र। यह दीवाल की साधुता अर्थात् सीधापन बताता है, इसीलिए इसे **सावल** (सं० साधुल) कहते हैं।

प्रकरण १४

यात्रा के साधन

(७४) बहली—१११७ (सं० वाह्याली) = एक प्रकार की छतरीदार बैलगाड़ी, जिसका ऊपरी भाग तथा छतरी इक्के की छतरी से मिलती-जुलती होती है, **बहली** या **मँझोली** कहाती है ("एकान्तोपरचित तुरगवाह्यालीविभागम्"—बाण, कादम्बरी)।

(७५) भारकस—१०७० (फा० बारकश) = जनपदीय जन जिन बैलगाड़ियों में माल ढोते तथा यात्रा करते हैं, वे गाड़ियाँ **भारकस** कहाती हैं।

(७६) रब्बा—११२१ (अ० अराबा) = एक प्रकार की बैलगाड़ी, जिसकी छतरी आयताकार होती है और जो आकार तथा आकृति में रहलू से कुछ मिलती-जुलती है, **रब्बा** कहाती है।

प्रकरण १५

कृषक का धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन

(७७) किंगड़ी—१२५४ = इकतारे से मिलता-जुलता एक बाजा जिसमें दो-तीन रौदे होते हैं और जो सारंगी की भाँति गज की रगड़ से बजता है।

(७८) धारगीत—$\frac{११५४}{१}$ = नगरकोटवारी (दुर्गादेवी) की पूजा में प्रातः ब्राह्म मुहूर्त में गाया जानेवाला एक गीत। इसे **बिहान** भी कहते हैं (सं० विभान > बिहान)।

(७९) **नौरता**—(सं० नवरात्रक)—११६२ = क्वार और चैत की नौरातियों (सं० नवरात्रिका = आश्विन तथा चैत मास के शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से नवमी तक के नौ दिन) में गाये जानेवाले गीत विशेष।

(८०) भाँड़ी—१२११ = एक प्रकार का **मर्दाना** नाच जिसमें पेड़ू, कमर और कूल्हू को विशेष रूप से मटकाया जाता है।

अलीगढ़-क्षेत्र की शब्दावली से बिहार-प्रांत की शब्दावली (सर ग्रियर्सन कृत 'बिहार पेज़ेंट लाइफ' में संगृहीत) की तुलना—

(१) हल-सम्बन्धी शब्दावली

(क) हल के मुख्य अंग

अलीगढ़-क्षेत्र में प्रचलित शब्द[1]		बिहार प्रांत के शब्द[2]
शब्द[1]	अर्थ	शब्द[2]
(१) हर=	खेत जोतने में काम आनेवाला किसान का एक यंत्र जो लकड़ी और लोहे से बनाया जाता है (अनु० २३)।	(१) हर या लांगल्, टँटा (पुराना हल), नौठा (नया हल) (अनु० १, २)।
(२) कुड़=	हल का एक प्रधान भाग जो ऊपर एक मोटे डण्डे की तरह होता है। इसका निचला भाग बहुत मोटा तथा भारी होता है। इसी भाग में हर्स और पनिहारी लगी रहती हैं (अनु० २४)।	(२) ......
(३) पनिहारी=	कुड़ के निम्न भाग में एक भारी और नुकीली-सी लकड़ी ठुकी रहती है; वही **पनिहारी** कहाती है। लोहे का फाला इसी के ऊपर लगा रहता है (अनु० २६)।	(३) टोर्, टोरा, नास् या नासा—(अनु० ६)।
(४) फारा या कुस=	लोहे का एक नोंकीला औजार जो खेत की धरती में घुसकर कूँड़ (फाले से बनी हुई गहरी लम्बी रेखा) बनाता है अर्थात् जोतता है (अनु० २६)।	(४) फार्, फारा, फाला या लोहामा—(अनु० १०)।
(५) हर्स=	एक मोटा और भारी लट्ठा सा, जो कुड़ में ठुका रहता है और जिसके आगे के भाग पर जूआ रहता है, हर्स कहाता है (अनु० ३०)।	(५) हरिस्, हरीस् या साँद—(अनु० ५)।

(ख) जूए के मुख्य अंग

शब्द	अर्थ	बिहार प्रांत के शब्द
(६) जूआ=	लकड़ी का एक मोटा और चौड़ा डण्डा-सा, जिसमें चार लकड़ियाँ ठुकी रहती हैं, जूआ कहाता है। यह हल के बैलों के कन्धों पर रहता है। इसी से मिलता-जुलता एक चौखटा-सा और होता है जो सिंचाई के समय पैर में चलनेवाले ज्वारे (बैलों की एक जोड़ी) के कन्धों पर रहता है। उसे मँचैंड़ा कहते हैं (अनु० २४)।	(६) जुआठ्, पालो या पाल। मँचैंड़े को भी बिहार प्रांत में 'जुआठ्' ही कहते हैं (अनु० १४)।
(७) जोता=	चमड़े की पटारें जो जूए में जुते हुए बैलों की गर्दनों के चारों ओर रहती हैं ताकि बैलों के कंधों पर से जूआ अलग न हो सके (अनु० ३४)।	(७) जोता, जोती, फाँद, सनेल या सर्मेल—(अनु० १८)।
(८) तरौंची=	मँचैंड़े का नीचे का डण्डा **तरौंची** कहाता है (अनु० १०)।	(८) तरैला (अनु० १४)।

---

[1] अनुच्छेदों के अंक प्रस्तुत प्रबन्ध से उद्धृत हैं।

[2] शब्दों की अनुच्छेद-संख्या के अंक 'बिहार पेजेंट लाइफ' द्वितीय संस्करण (प्रकाशक-बिहार सरकार पटना) से उद्धृत हैं।

(९) नरा, नाड़ा नागौड़ा या नराउली =	चमड़े की पतली पटारों से बनी हुई एक रस्सी-सी जो जूए के मध्यभाग में और हर्स के खरओं में बाँधी जाती है (अनु० ३०)।	(९) नरैली, नारन्, लरनी, लारन्, नाधा, लैधा, लाधा, हरलधी, दुआली या डोंड़ा (अनु० १७)।
(१०) पचारी या सुन्नैत =	जूए अथवा मँचैंड़े में अन्दर की ओर लगी हुई दो लकड़ियाँ **पचारी** या **सुन्नैत** कहाती हैं। इनमें से एक दाहिने बैल की बाँई ओर और दूसरी बायें (भीतरे) बैल के दाहिनी ओर रहती है (अनु० ३४)।	(१०) समैल, समैला या समैया (अनु० १६)।
(११) सतिया =	मँचैंड़े अथवा जूए के ऊपरी डंडे के ठीक मध्य भाग में एक गाँठ-सी होती है जिस पर नरा फँसाया जाता है। उस गाँठ को **सतिया** कहते हैं (अनु० १०)।	(११) महादेवा, महादओ, महदवा या मँझवार (अनु० १९)।
(१२) सुलहुल =	जूए के सिरों पर जो छोटी-छोटी लकड़ी लगी रहती हैं, सैला या सैल कहाती हैं। उनके सिरे पर आर-पार ठुकी हुई दो अंगुल (एक इंच के लगभग) लम्बी लकड़ी को **सुलहुल** कहते हैं (अनु० १०)।	(१२) सिमल, नक्टी, खात, कनौसी, खैंढ़ी, खड्ढी, खाढ़ी या खाँड़ी (अनु० २०)।
(१३) सैल या सैला =	जूए में बाहर की ओर को लगी हुई दो लकड़ियाँ **सैल** कहाती हैं (अनु० ३४)।	(१३) सैला, समैल, कनैल, या कनकिल्ली (अनु० १५)।

(ग हल में जुते हुए बैलों को हाँकने में काम आनेवाली वस्तुएँ

(१४) पैना =	बाँस का एक पतला डंडा-सा होता है जिसके सिरे पर आर एक चोभा) ठुकी रहती है और चमड़े की **साँट** बँधी रहती है। उसे पैना कहते हैं। पैने की लम्बाई लगभग डेढ़ हाथ होती है।	(१४) पैना। 'साँट' को बिहार में 'छिटि' कहते हैं (अनु० २३)।
(१५) हरपघा या हरवागों =	एक लम्बी रस्सी, जो हल में जुते हुए भीतरे (बाईं ओर के) बैल की नाथ में बँधी रहती है और जिसका दूसरा सिरा हरहारे (हलवाहे) के हाथ में रहता है, **हरपघा** या **हरवागों** कहाती है (अनु० २४)।	(१५) ......

(घ) नाई से सम्बन्धित वस्तुएँ

(१६) नाई =	एक विशेष प्रकार का हल, जिससे जौ, गेहूँ आदि की बुबाई की जाती है **नाई** कहाता है (अनु० २५)।	(१६) टार, टाँड़ी या टोर (अनु० २४)।

शब्द	अर्थ	अन्य नाम
(१७) ओलरी =	नजारे का कटोरानुमा ऊपरी भाग।	(१७) ऊखरी, अकरी, पैला, माला या मल्वाँ (अनु० २४)।
(१८) गोखरु, सुँदेल या पछेली =	एक छोटी-सी लकड़ी जो पनिहारी या जवुरिया को हल या नाई के निचले सूराख में फाँसे रहती है। यह जवुरिया के चूरे (ऊपरी सिरा) के छेद में आर-पार ठुकी रहती है (अनु० २६)।	(१८) खिल्ला (अनु० २४)।
(१९) जवुरिया, गुड़िया, वुड़िया, चिरइया या पड़ौंथा =	नाई में लगनेवाली एक लकड़ी जिसके ऊपर नाई का फाला सधा रहता है (अनु० २७)।	(१९) ......
(२०) नजारा =	एक प्रकार का पोला बाँस जिसका ऊपरी भाग कटोरेनुमा बना होता है नजारा कहाता है। यह नाई में बँधा रहता है। बुवइया (बीज बोनेवाला) गेहूँ, जौ आदि के दाने इसी में डालता है जो कूँड़ में गिरते जाते हैं (अनु० २५)।	(२०) बाँसी, बंसा, चोंगा या हरचाँड़ी (अनु० २४)।
(२१) फरिया या कुसी =	नाई का छोटा फाला जिससे गेहूँ, जौ आदि बोते समय कूँड़ खिंचता जाता है (अनु० २७)।	(२१) टरनुई (अनु० २४)।
(२२) फानी =	नाई के छेद में पीछे की ओर लगनेवाली लकड़ी जो जवुरिया और फरिया को छेद में अपनी जगह रखती है।	(२२) ......

(ङ) कुड़ के अंग-प्रत्यंग

शब्द	अर्थ	अन्य नाम
(२३) मुठिया, मूठ या हतकरी =	कुड़ के सिरे पर के छेद में ८-१० अंगुल लम्बी एक लकड़ी ठुकी रहती है, जिसे पकड़कर हलवाहा हल चलाता है। यह लकड़ी मुठिया कहाती है। (अनु० २४)।	(२३) मुठिया, मूठ, मकरी, चँदुली, परिहत, परिहथ, लागन, लगना, या चँदवा (अनु० ७)।
(२४) मुड्ढा =	कुड़ का निचला मोटा और भारी हिस्सा मुड्ढा कहाता है।	(२४) ......

(च) पनिहारी के विभिन्न भाग और सम्बन्धित वस्तुएँ

शब्द	अर्थ	अन्य नाम
(२५) फरुवा =	खमदार एक प्रकार की कील, जो घाई में फँसे हुए फाले को अपनी जगह पर रोकने के लिए लगाई जाती है, फरुवा कहाती है। (अनु० ६,६)	(२५) फरुआर, फरुआरा, फरुआरी, [illegible], [illegible], [illegible] या [illegible] (अनु० १३)।
(२६) घाई =	पनिहारी के ऊपर एक फिरी-सी बनी रहती है जिसमें फाले को सधा दिया जाता है। यह नाली-नुमा फिरी घाई कहाती है (अनु० २७)।	(२६) खोल या खोली (अनु० २२)।

(२७) पचमासा या फाना =	पनिहारी के पये के ऊपर कुड़ के छेद में पीछे की ओर एक छोटी और मोटी फच्चट लगाई जाती है जिसे **पचमासा** या **फाना** कहते हैं। यह पनिहारी को कुड़ के छेद में से निकलने नहीं देती (अनु० २८)।	(२७) ......
(२८) पया या चूरा =	पनिहारी का ऊपरी सिरा (अनु० २८)।	(२८) माँथ या माँथा (अनु० ६)।
(२९) हल उसलना =	जब पनिहारी कुड़ के छेद में से निकलकर अलग हो जाती है, तब उसे **हल उसलना** कहते हैं (अनु० २८)।	(२९) ......
(३०) हलसोट लाना =	जब किसान बैलों के जूए पर हल को पनिहारी की तरफ से लटका देता है और इस दशा में अपने घर को आता है तब उस क्रिया को **हलसोट लाना** कहते हैं (अनु० ३१)।	(३०) ......

(छ) हर्स से सम्बन्धित वस्तुएँ

(३१) कराई, करारी या पाता =	कुड़ के छेद में आगे की ओर हर्स के नीचे एक छोटी-सी फानी (लकड़ी का टुकड़ा) लगाई जाती है जो **कराई** कहाती है। इसे अधिक ठोकने पर हल **करार** (कड़ा अर्थात् गहरा चलनेवाला) हो जाता है (अनु० ३२)।	(३१) पाटा, पाटी, पट्टा या पाट् (अनु० ११)
(३२) करार हर =	जब हल का फाला गहरा कूँड़ बनाता है, तब उसे **करार हर** कहते हैं (अनु० ३२)। यही **अन्निया करार** (=कराल अनी का) भी कहाता है (अनु० ३२)।	(३२) ठाढ़ा हर, ठाढ़ हर, औगार हर, तरख हर, लगार हर या अवाए हर (अनु० २६)।
(३३) खरयौ, गूल या डील =	हर्स के ऊपरी सिरे के पास चार-चार अंगुल लम्बी लोहे की तीन खुंटियाँ गड़ी रहती हैं जिनमें जुए का नरा फँसाया जाता है। उन खुंटियों को **खरए** कहते हैं (अनु० ३०)।	(३३) खड़हा, खौंढ़ा, खेढ़ा, खेंढ़ी, खाता खाढ़ी, खेढ़ों खेहा या काढ़ (अनु० ८)।
(३४) गरारा करना =	जब हल अधिक अन्निया करार होकर बहुत गहरा कूँड़ बनाता है तब उस क्रिया को **'गरारा करना'** कहते हैं (अनु० ३०)।	(३४) ......

(३५) गाँगरा, फाना या पाचड़ा =	कुड़ के छेद में आगे की ओर हर्स के ऊपर एक छोटी-सी लकड़ी लगाई जाती है ताकि हर्स कुड़ के छेद में से निकल न सके। उस लकड़ी को **गाँगरा** या **पाचड़ा** कहते हैं (अनु० ३२)।	(३५) पाचड़, पचड़ी, उपर पाटी, चेरी, चेल्ली, चैली, पाटी, पाटा, पट्टा या पाट् (अनु० ११)
(३६) गोखरू या बढ़ैर =	हर्स के निचले सिरे पर कुड़ की पिछली ओर छोटी-सी एक लकड़ी आर-पार ठोकी जाती है। वही **गोखरू** या **बढ़ैर** कहाती है (अनु० ३२)।	(३६) बरहन्, बरैनी, बरन्, बरेन्, बरैहन्, बराइन्, सतधरिया, समधरिया, समधर, तरेली या हुमूना (अनु० १२)।
(३७) ज्वारा =	हल की हर्स की दोनों तरफ जूए में जुते हुए दोनों बैलों को सामूहिक रूप में **ज्वारा** कहते हैं (अनु० ८)।	(३७) ......
(३८) नाथ =	बैलों की नाक में पड़ी हुई रस्सी **नाथ** कहाती है (अनु० २४)।	(३८) ......
(३९) सेवटी =	कुड़ के छेद में पीछे की ओर हर्स के सिरे के नीचे जो लकड़ी लगाई जाती है उसे **सेवटी** कहते हैं। इससे फाला सेहा (हलका, ऊपरी तल पर) चलता है (अनु० ३२)।	(३९) ......
(४०) सेहो हर =	जब हल का फाला कम गहरा और हलका चलता है तब उसे **सेहो हर** (सेहा हल) कहते हैं (अनु० ३३)।	(४०) सेव् हर या सेव हर (अनु० २६)
(४१) हल करकना =	जब गाँगरा ढीला हो जाता है तब हर्स कुछ-कुछ हिलने लगती है। उस तरह हिलने के लिए 'करकना' क्रिया प्रचलित है। हर्स को हिलता हुआ देखकर कहा जाता है कि 'हल करक रहा है' (अनु० ३३)।	(४१) ......

२—लुहार से सम्बन्धित शब्दावली

(क) लुहार और लुहार का स्थान

अलीगढ़-क्षेत्र[1]		बिहार प्रान्त[2]
(१) जलहल्ली या जलहेली =	लुहार अपने गर्म औजारों को जिस पानी भरी कुंडी में बुझाता है, उसे **जलहल्ली** कहते हैं (अनु० ६००)	(१) पनिडुब्बा, पनडुब्बा, पनिहारा, लबेरा, लाबर लबेर्, नबेर्, नबेर्, नबेरी, नादा या पननादा (अनु० ४१६)।

[1] प्रस्तुत प्रबन्ध में अनुच्छेद-संख्या देखिए।
[2] 'बिहार पेजेंट लाइफ' द्वितीय संस्करण, बिहार सरकार पटना, के अनुच्छेद द्रष्टव्य हैं।

(२) लुहार =	लोहे की चीजें बनानेवाला तथा लोहे के कुछ औजारों को पैना (तेज) करनेवाला शिल्पकार **लुहार** कहाता है (अनु० ८९९)।	(२) लोहार्, ठाकुर् या कमार (अनु० ४०७)।
(३) लौखर =	गँडासा, खुरपा, दराँत, फाला आदि किसान के औजार **लौखर** कहाते हैं (अनु० ८९९)।	(३) ...
(४) ल्हौसार या ल्हौसारी =	वह स्थान या दुकान जिसमें बैठकर लुहार अपना काम करता है **ल्हौसारी** कहाती है (अनु० ९००)।	(४) लौह्सारी, कमर्सायर, कमर्सारी या मड़ई (अनु० ४०७)।

(ख) लुहार की भट्टी और धौंकनी से सम्बन्धित शब्दावली

(५) आँच =	लुहार की भट्टी में दहकती हुई आग **आँच** कहाती है (अनु० ९०३)।	(५) ...
(६) ओटा =	भट्टी की आग की लपट लुहार के शरीर को न लगे, इसलिए भट्टी के मुँह के आगे एक बड़ी-सी ईंट रख दी जाती है, जिसे **ओटा** कहते हैं (अनु० ९०३)।	(६) ...
(७) कौला =	भट्टी में आग दहकाने के लिए जो कोइला काम आता है, वह **कौला** कहाता है (अनु० ९०२)।	(७) ...
(८) झर =	भट्टी की आग की लपट (अनु० ९०३)।	(८) ...
(९) चूड़िया =	धौंकनी में धौंके के नीचे का भाग (अनु० ९०४)।	(९) ...
(१०) धौंकन =	धौंकनी से भट्टी में हवा पहुँचाने की प्रक्रिया **धौंकन** कहाती है (अनु० ९०२)।	(१०) ...
(११) धौंकना =	चमड़े का बना हुआ एक थैला-सा जिससे भट्टी में हवा पहुँचाई जाती है (अनु० ९०२)।	(११) भाथा, भाँथा या दुहन्थी (दो हाथों से धौंकी जानेवाली धौंकनी) (अनु० ४१४)।
(१२) धौंकनी, खाल या फूँक =	धौंकने से छोटा चमड़े का एक थैला जो हवा देता है (अनु० ९०२)।	(१२) एक् हन्थी (एक हाथ से धौंकी जानेवाली धौंकनी (अनु० ४१४)।
(१३) धौंका =	धौंकनी का ऊपरी भाग, जहाँ से हवा धौंकनी में घुसती है, **धौंका** कहाता है (अनु० ९०४)।	(१३) ...
(१४) पंखा =	चरखे की भाँति घूमकर भट्टी में हवा पहुँचानेवाला एक यंत्र **पंखा** कहाता है (अनु० ९०२)।	(१४) पंखड़ी, पंखा या पंख (अनु० ४१४)।
(१५) पेट =	धौंकनी में चूड़िये से निचला भाग **पेट** कहाता है। हवा भर जाने पर यह फूल जाता है (अनु० ९०४)।	(१५) ...

(१६) फँसने =	धौंके के दोनों किनारों पर एक-एक बाँस की फचट लगी रहती है जिनमें रस्सी या चमड़े की डोरी फंदेदार बँधी रहती है। उनमें लुहार अपना बाँया हाथ डाल लेता है। वे फंदे **फँसने** कहाते हैं। (अनु० ६०४)।	(१६) ...
(१७) मुहारी =	भट्ठी का गोल छेद, जिसमें धौंकनी की लोहे की नली लगी रहती है, **मुहारी** कहाता है (अनु० ६०४)।	(१७) ...
(१८) म्हौंड़ा =	धौंकनी का वह भाग, जिसमें लोहे की नली लगी रहती है, **म्हौंड़ा** कहाता है (अनु० ६०४)।	(१८) मूड़ा, मूढ़ी, मुढ़िया, मूढ़ी, सालक, मोहुला या मोखड़ी (अनु० ४१४)।
(१६) सुरमा या सुरमी =	धौंकनी की लोहे की नली जिसमें होकर हवा भट्टी में जाती है **सुरमा** या **सुरमी** कहाती है। यह मुहारी में लगी रहती है (अनु० ६०४)।	(१६) फुंक, छूँछी, छुच्छी, चोंगी या चोंगा। (अनु० ४१४)।

(ग) लुहार के विभिन्न औज़ार

(२०) अँकुरिया =	लोहे की एक लम्बी सलाई-सी जो सिरे पर कुछ मुड़ी हुई होती है **अँकुरिया** कहाती है। इससे लुहार भट्टी के कोइले कुरेदता है (अनु ६०३)।	(२०) अँकुरी, अँकुड़ा, अंकोरा, औकड़ा, कुलटारा या कोलटारा (अनु० ४१२)।
(२१) अहेरन, ऐरन, ऐरन, अहेन्न, या निहाई =	लोहे की एक ठोस और भारी मुद्दी-सी जो प्रायः लुहार की दुकान में धरती में गड़ी रहती है **निहाई** कहाती है। गड्डेदार एक निहाई **छपरोना** कहाती है। निहाई टीया में लगी रहती है। लुहार निहाई पर रखकर ही अपनी चीजें बनाता और पीटता है (अनु० ६०१)।	(२१) निहाद, नेहाइ, लहाइ या लिहाइ। 'छपरौना' के लिए चपरोना, चपरावन् या चपरौनी शब्द हैं। 'टीया' को बिहार में ठहा, ठीहा, ठिया, परहटा, परियाटा या अंकुठ कहते हैं। (अनु० ४०८, ४०६)।
(२२) इकवाई =	एक प्रकार की हलकी निहाई जो गावदुम नोक की होती है और खाम आदि बनाने में काम आती है (अनु० ६०७)।	(२२) ...
(२३) कमानी =	लकड़ी का एक औज़ार जिसमें चमड़े की पतली पटार-सी बँधी रहती है **कमानी** कहाता है। इसकी आकृति कमान की भाँति होती है। इससे बरमा घुमाया जाता है (अनु० ७४१)।	(२३) कमानी (अनु० ४१५)
(२४) कावला =	चूड़ियोंदार एक डंडा-सा, जिसके पल्ले कसने में काम आते हैं **कावला** कहाता है (अनु० ६०८)।	(२४) कवला (अनु० ४१६)

(२५) खोटा, खुट्टा, खुट्टल या मोंथरा=	जो औजार पैना (तेज) नहीं होता, उसे मोंथरा कहते हैं (अनु० ८६६, ६०६)।	(२५) ..
(२६) घन =	बहुत बड़ा और भारी हथौड़ा जिससे निहाई पर रखकर लोहे की वस्तु पीटी जाती है (अनु० ६०१)।	(२६) घन् (अनु० ४१०)
(२७) चर =	बरमे का मध्यवर्ती भाग जो कमानी की जोती से घूमता है **चर** कहाता है (अनु० ७४१)।	(२७) ...
(२८) चोटिया=	बरमे का ऊपरी भाग जिस पर दाब लगाई जाती है (अनु० ७४१)।	(२८) ...
(२६) छैनी=	ठंडे लोहे को काटनेवाला एक औजार (अनु०-७३८)।	(२६) छेनी (अनु० ४१३)।
(३०) जम्बूर=	एक प्रकार का सड़ाँसा जो किसी वस्तु को दाब-कर या कसकर पकड़ने में काम आता है। यह अँग० प्लिअर्ज के अर्थ में प्रचलित शब्द है। (अनु० ६०५)।	(३०) जमूहूरा या जमूरा (अनु० ४११)।
(३१) जोती=	कमानी की डोरी।	(३१) जोती, दुआली या जेंवर (अनु० ४१५)।
(३२) पाना=	ढिमरी आदि कसने या घुमाने में लोहे का एक औजार काम आता है जिसे पाना कहते हैं। (अनु० ६०८)।	(३२) कवला, छुच्छी (अनु० ४१६)।
(३३) बरमा=	पैनी फली (नोंकीली सलाई) का एक औजार, जो छेद करने में काम आता है, बरमा कहाता है (अनु० ७४१)।	(३३) बरमा। 'फली' को बिहार में फल्ली डंडी, डाँस् या डंटी कहते हैं (अनु० ४१५)।
(३४) बाँक=	लोहे का दो पल्लों का एक औजार जो कसने या दाबने में काम आता है **बाँक** कहाता है। यह किसी तख्ते में जमा हुआ रहता है (अनु०-७३७)।	(३४) बाँक (अनु० ४१६)
(३५) बीरी=	आर-पार छेद की गोल और बहुत हलकी निहाई-सी **बीरी** कहाती है (अनु० ६०४)।	(३५) बीरी, बीर् या हुन्ना (अनु० ४०६)।
(३६) माँठना=	मोटी धार की एक तरह की छेनी-सी **माँठना** कहाती है, जो लोहे के धरातल की **मठाई** (चौरसाई) करने में काम आती है।	(३६) ...
(३७) रेती=	एक प्रकार का लोहे का औजार जिससे किसी लोहे की वस्तु को घिसकर चिकनी बनाते हैं। (अनु० ७३८)।	(३७) रेती (अनु० ४१८)।

शब्द	अर्थ	अन्य रूप
(३८) सँड़ासा =	लोहे का एक औजार जिससे किसी चीज को कसकर पकड़ा जाता है। सँड़ासे की टेढ़ी दो डंडियाँ 'डस' कहाती हैं।	(३८) सँड़सी, गहुआ, बँगुरी, या सुगही (अनु० ४११)।
(३९) सुम्मी या टुपकन्ना =	गावदुम शक्ल की नोंकदार कील की भाँति का एक औजार जो लोहे में छेद करने के लिए काम में लाया जाता है। (अनु० ७३६)।	(३९) सुम्मी, सुम्मा, टोपन्ना, सुम्भा या टोपन्। (अनु० ४१३)
(४०) हतकल =	हाथ का आँक हतकल कहाता है। यह किसी तख्ते आदि में ठुका नहीं होता। इसे हाथ में लेकर कारीगर आसानी से कहीं भी जा सकता है। (अनु० ७३७)	(४०) हथकल्, या हाँथकल (अनु० ४१६)।
(४१) हथौड़ा या हतौड़ा	बहुत हलका घन जो किसी लोहे की वस्तु को टोकने-पीटने में काम आता है। (अनु० ६०१)।	(४१) हथौरा या हथौर। (अनु० ४१०)।
(४१) हतौड़ी =	छोटा और हलका हतौड़ा	(४१) हथौरी या मरिया (अनु० ४१०)

(घ) लोखरों को खोटना

शब्द	अर्थ	अन्य रूप
(४२) धार धरना, पानी धरना, पानी चढ़ाना, चाँड़ना, पैनाना या खोटना =	लुहार जब लोखरों (लोहे की औजार) को भट्ठी में गर्म करके उनकी धार को हथौड़े से पीट कर पतली और पैनी बनाता है तथा जलहली में गर्म लोखर को बुझाता है, तब उस क्रिया को **खोटना या धार धरना** कहते हैं। (अनु० ८६६)	(४२) धार पिटावल, धार फरगावल, धार असराएब, असार, धार पजाव, धार पिजावल, धार बनाएब, फार करालाएब या असार। (अनु० २५)

(ङ) रेतियों के प्रकारों और रूपों से सम्बन्धित शब्दावली

शब्द	अर्थ	अन्य रूप
(४३) खुर्रा या खुर्रा =	वह रेती या रेत जिस पर टकाई के निशान मोटे और दूर-दूर होते हैं खुर्रा कहाता है। यह अँग० रफ फाइल के लिए प्रचलित शब्द है। (अनु० ७३८)	(४३) ...
(४४) गोलकी या गोल रेती =	गोल रेती को गोलकी कहते हैं। (अनु० ७३८)	(४४) गोल रेती, गोलक या गोलस। (अनु० ४१८)
(४५) चौकोरी =	चार पहलुओं की रेती **चौकोरी** कहाती है।	(४५) ...
(४६) छिपैली =	छः पहलुओं की रेती छिपैली कहाती है।	(४६) ...
(४७) टकाई =	रेती की सतह पर जो मोटी अथवा बारीक रेखाएँ होती हैं, वे **टकाई** कहाती हैं। (अनु० ७३८)।	(४७) ...

(४८) तिपैली =	तीन पहलुओं वाली रेती।	(४८) तिन्फल्ला, तिर्फाल, तेफल, तिर्पहल, तिर्पहला तिन्पहल। (अनु० ४१८)
(४९) पट्ट रेती =	जिस रेती के ऊपर-नीचे का धरातल चौरस होता है, वह **पट्ट रेती** कहाती है।	(४९) ...
(५०) बादामी =	जिस रेती का एक तरफ का धरातल खमदार होता है, वह **बादामी** कहाती है। यह ऊपर से कुछ-कुछ महाराबदार गोलाई पर बनी होती है। (अनु० ७३८)।	(५०) नीमगीरिद (अनु० ४१८)।
(५१) मट्ठा =	जिस रेत की टकाई बहुत बारीक और पतली होती है, उसे मट्ठा कहते हैं। यह अँग० 'पौलिश्ड फाइल' के लिए उपयुक्त पर्याय है। (अनु० ७३८)।	(५१) ...

(च) लुहार द्वारा बनाई जानेवाली लोहे की वस्तुएँ (लौखर और कीलें)

किसान के काम में आनेवाले कुछ लौखर—

(५२) खुरपी या खुरपा =	किसान का एक लौखर (औजार) जो खेत निराने और फसल काटने में काम आता है, खुरपी कहाता है। (अनु० ४३)।	(५२) खुरपी (अनु० ६१) खुरपा (अनु० ६०)।
(५३) गड़सा या गड़ासी =	कुट्टी कूटने में काम आनेवाला एक लौखर। (अनु० ५५)	(५३) गँड़ासा, गँड़ासी, गँड़ास, गड़ाँस, गँरास या गँड़सी (अनु० ८६)।
(५४) चचुआ, चूका या चचोंदा =	गँड़ासे में ऊपर को निकली हुई कीलों की भाँति की दो नोकें, जो लकड़ी के **जारे** में घुसी रहती हैं, **चचुआ** कहाती हैं। (अनु० ४३)।	(५४) खुरा, खुरपी, गोड़ा, चोभी, नार, नारी या लार (अनु० ९०)।
(५५) जारो =	गँड़ासे का वह ऊपरी भाग जो लकड़ी का बना होता है **जारो** कहाता है। (अनु० ५६)।	(५५) जाली, जलिया या मुँगरी (अनु० ८७)।
(५६) दँतूली =	दाँतेदार दराँत।	(५६) दँतूला (अनु० ७३)।
(५७) दाभ, दाहा या बाँक =	गँड़ासे से मिलता-जुलता एक लौखर जो लकड़ी काटने में काम आता है (अनु० ५४)।	(५७) बँकुआ (अनु० ६१) डाब, सँगिया या चिलोही (अनु० ७३)।
(५८) पावरो, कस्सा, कसुला, पामरो =	मिट्टी खोदने का एक लौखर (अनु० ४०)।	(५८) फड़ुआ, फरुहा या फहुरी (अनु० ६३)।
(५९) बैंट =	खुरपी, फावड़े आदि में लगा हुआ लकड़ी का एक हत्था (अनु० ४१)।	(५९) बेंट (अनु० ६०)।

(६०) स्याम=	खुरपी आदि के बेंट के अगले सिरे के ऊपर चारों ओर लोहे की एक पत्ती लगी रहती है ताकि चचुए से बेंट फट न सके। उस छल्लानुमा पत्ती को स्याम कहते हैं। (अनु० ४३)।	(६०) साम्, सामी, चुरिया या मूँदरी (अनु० ६०)।
(६१) हँसिया, हँसुली या दराँत=	लोहे का अर्द्धवृत्ताकार एक औज़ार जो फसल काटने तथा साग-तरकारी बनारने (छोटे-छोटे टुकड़ों की हालत में काटना) में काम आता है। (अनु० ५३)।	(६१) हँसुआ (अनु० ७३)। हँसुली (अनु० ७४)।

(छ) विभिन्न प्रकार की कीलें, चोभे, ढिमरी आदि

(६२) करवा=	कमान की आकृति की छोटी-सी कील जिसके दोनों सिरे नुकीले होते हैं **करवा** कहाती है। यह पनिहारी में लगे हुए फाले के ऊपर लगती है। (अनु० ६०६)।	(६२) करुआर या करुआरा (अनु० १३)।
(६३) गोलरु=	एक प्रकार की कील जिसकी गोलाईदार टोपी पर छोटे-छोटे काँटे-से उठे रहते हैं। (अनु० ६०६)।	(६३) ...
(६४) गोल डँड़िया=	जिस कील की टोपी के नीचेवाली डंडी गोल होती है, वह **गोल डँड़िया** कहाती है। (अनु० ६०६)।	(६४) ...
(६५) छपरौनियाँ=	छपरौने (गोल या चौखुंटे गड्ढों की एक निहाई) में दाबकर जिस कील की टोपी बनाई जाती है, उसे **छपरौनिया** कील कहते हैं।	(६५) ...
(६६) टिप्पा या फुल्ला=	चोभे की छोटी और गोल टोपी को **टिप्पा या फुल्ला** कहते हैं। (अनु० ६०६)।	(६६) ...
(६७) डँड़ियाँ=	कील या चोभे की डंडी **डँड़िया** कहाती है।	(६७) ...
(६८) ढिबरी या ढिमरी=	पहलुओंदार आर-पार छेद की लोहे की एक चीज ढिबरी या ढिमरी कहाती है, जिसे चूड़ियों पर कसते हैं। (अनु० ६०८)।	(६८) ढिबरी (अनु० ४१७)।
(६९) ढिमियाँ=	जिस कील की टोपी ठोस और गोल गाँठ की तरह होती है, उसे **ढिमियाँ** कील कहते हैं। (अनु० ६०६)	(६९) ...
(७०) बतसिया या बतासेदार=	जिस कील की टोपी बतासे की भाँति उभरी हुई और गोल होती है उसे **बतसिया या बतासेदार** कील कहते हैं। (अनु० ६०६)।	(७०) ...

हिन्दी-गवेषणा के सम्बन्ध में डा० विश्वनाथप्रसाद जी ने एक बार अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था कि—'विविध कला-कौशलों तथा व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में पारिभाषिक शब्दों की समस्या को हल करने के लिए हमें एक दूसरी दिशा में भी खोज-कार्य को प्रवर्तित करना है। किसानों, मजदूरों तथा अन्य श्रमजीवियों की बोलचाल की भाषा में समाजशास्त्र, शिल्प तथा उद्योग-धंधों के बहुतेरे बढ़िया-बढ़िया शब्द मिलेंगे जो राष्ट्र-भाषा की समृद्धि के पूरक हो सकते हैं। ऐसे शब्दों का सर्वे और संग्रह कराना परमावश्यक है; अन्यथा केवल अँगरेजी की तालिका तैयार करके उनका पर्याय प्रस्तुत करते जाने की परिपाटी पर ही निर्भर करने से हम अपनी लोक-भाषाओं के हजारों अर्थपूर्ण उपयोगी जीवित पारिभाषिक शब्दों से वंचित हो जाएँगे।'[1]

अलीगढ़-क्षेत्र के गाँवों में घूमकर यहाँ वही कार्य किया गया है जिसकी ओर डा० विश्वनाथप्रसाद जी ने अपने उक्त कथन में संकेत किया है। इस शब्द-संग्रह के कार्य में मुझे कहाँ तक सफलता मिली है, इसे तो भाषाविज्ञ विद्वज्जन ही ठीक समझ सकेंगे।

प्रस्तुत प्रबन्ध में मेरी जो त्रुटियाँ हों, उनके लिए क्षमा-याचना के अतिरिक्त और क्या उपाय है? इसी भावना के साथ मैं इस प्रबन्ध को विद्वानों तथा गुणी पाठकों के समक्ष विनीत भाव से उपस्थित कर रहा हूँ।

परमपूज्य गुरुवर प्रो० श्री वासुदेवशरण जी अग्रवाल एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्० के निर्देशन में मुझे इस प्रबन्ध के लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनके सहज उदार एवं कृपालु हृदय का जो ममत्व तथा साधनामय पाण्डित्यपूर्ण गम्भीर ज्ञान का जो लाभ मुझे उनके पुनीत चरणों में बैठकर प्राप्त हुआ है, उसे व्यक्त करने में मैं असमर्थ हूँ। मुझे संतोष है कि इस प्रबन्ध के प्रत्येक पृष्ठ की पाण्डुलिपि उन्होंने पढ़ी। इससे मुझे पर्याप्त मार्ग-दर्शन और बल प्राप्त हुआ। प्रबन्ध के निर्देशक-पद की स्वीकृति देते समय उन्होंने मेरे लिए यह शर्त रक्खी थी कि संग्रह में दस सहस्र से कम शब्द न होंगे और संग्रह का क्षेत्र ग्रियर्सन के 'बिहार पेजेन्ट लाइफ' के क्षेत्र से कम व्यापक न रहेगा। मेरे लिए यह सौभाग्य की बात है कि उनकी दोनों शर्तों की मैं पूर्ति कर सका। प्रस्तुत प्रबन्ध में तेरह सहस्र से अधिक शब्दों का समावेश है और जैसा कि पाठक देखेंगे इसके अनुसंधान का क्षेत्र ग्रियर्सन के ग्रंथ से कहीं अधिक व्यापक और विस्तृत है। इसमें संज्ञा, विशेषण और अव्यय शब्दों के साथ-साथ धातुएँ संगृहीत हैं और लोकोक्तियाँ एवं लोकगीत भी।

जिन-जिन विद्वानों की कृतियों से इस प्रबन्ध-लेखन में लाभ उठाया गया है, उनका निर्देश यथास्थान पादटिप्पणी में कर दिया गया है। मैं उन सब महानुभावों के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। अलीगढ़क्षेत्र के उन जनपदीय जनों का तो मैं चिर ऋणी रहूँगा, जिन्होंने मेरी शब्द-लोकोक्ति-संग्रह-जिज्ञासा को ही पूर्ण नहीं किया, अपितु जिनकी सरल एवं स्वाभाविक वाणी से मेरे हृदय को भी अपूर्व रस मिला है।

एक जिज्ञासु भाषा-सेवी के नाते मैंने अनुसंधान के मार्ग में जिन विद्वानों के सत्परामर्शों से लाभ उठाया है, उनमें निम्नांकित कृपालु महानुभावों के नाम विशेषरूपेण उल्लेखनीय हैं—सर्व श्री डा० सुनीतिकुमार जी चटर्जी, डा० धीरेन्द्र जी वर्मा, डा० बाबूराम जी सक्सेना, डा० उदय-नारायण जी तिवारी और डा० गौरीशंकर श्रीसत्येन्द्र। इन आदरणीय विद्वानों को हार्दिक धन्य-वाद देते हुए भी मैं सदैव इनकी कृपा का आभारी रहूँगा।

---

[1] भारतीय हिन्दी-परिषद् के दशम अधिवेशन सन् १९५२ (आगरा) में 'हिन्दी गवेषणा और पाठ्यक्रम का पुनः सगठन' शीर्षक से दिये गये भाषण से उद्धृत। यह भाषण अन्वेषण-विभाग के अध्यक्ष पद से दिया गया था।

जिन महानुभावों ने दुष्प्राप्य ग्रंथों के जुटाने में मुझे अपनी सहायता प्रदान की है उनमें श्री तारकनाथ जी राय एडवोकेट, अलीगढ़ तथा डा० हरवंशलाल जी शर्मा प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, संस्कृत-हिन्दी-विभाग मुस्लिम विश्व-विद्यालय, अलीगढ़ के नाम प्रमुख हैं। इन दोनों महानुभावों को मैं हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

जिस मुद्रित एवं प्रकाशित रूप में यह ग्रन्थ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है उसकी प्रेरणा का प्रमुख श्रेय पूज्यवर डा० वासुदेवशरण जी अग्रवाल, डा० हजारीप्रसाद जी द्विवेदी और डा० नगेन्द्र जी को ही है। आदरणीय डा० धीरेन्द्र जी वर्मा, डा० बाबूराम जी सक्सेना, डा० माताप्रसाद जी गुप्त और डा० सत्यव्रत जी सिन्हा ने हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग के माध्यम से इसके प्रकाशन में अपनी कृपा तथा स्नेह का परिचय देकर लेखक की आकांक्षाओं को साकारता प्रदान की है। इसके लिए लेखक उनका परमानुगृहीत और चिर ऋणी है।

प्रकाशित ग्रन्थ में आये हुए चित्रों और रेखाचित्रों के निर्माण-कार्य के मूल में जो सहयोग और सहायता मुझे मेरे मित्र श्री रोशनलाल शर्मा, प्रिय शिष्य चि० कमल कृष्ण माजूदार तथा धर्म-बन्धु चि० महेशचन्द्र शर्मा से मिली है, वह चिरस्मरणीय है। अतः मित्र-वर को धन्यवाद और किशोर-द्वय को आशीर्वाद !

इस प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध के निर्माण का वास्तविक मूल श्रेय तो मेरी कर्तव्यपरायणा कर्मशीला जीवनसंगिनी श्रीमती बसन्ती देवी को ही है। इस सम्बन्ध में मैं यहाँ और अधिक लिखने में असमर्थ हूँ—'लेखनी धारण करती मौन देख भावों का पारावार।'

हिन्दी-विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ़

अम्बाप्रसाद 'सुमन'

—

ग्रंथ-संकेत

वैदिक ग्रन्थ

संकेत			ग्रन्थ का नाम
अथर्व०	...	...	अथर्ववेद
ऋक०	...	...	ऋग्वेद
ऐत०	...	...	ऐतरेय ब्राह्मण
कात्या०	...	...	कात्यायन श्रौत सूत्र
कौषी०	...	...	कौषीतकि उपनिषद्
तैत्ति०	...	...	तैत्तिरीय ब्राह्मण
निरु०	...	...	निरुक्त (यास्क कृत)
बृह०	...	...	बृहदारण्यक उपनिषद्
यजु०	...	...	यजुर्वेद
वाज०	...	...	वाजसनेयी संहिता
शत०	...	...	शतपथ ब्राह्मण

व्याकरण-ग्रन्थ

अष्टा०	...	...	पाणिनिकृत अष्टाध्यायी
काशिका०	...	...	वामनजयादित्य कृत काशिका
व्या० महा०	...	...	पतंजलिकृत पाणिनीय व्याकरण महाभाष्य
सिद्धान्त०	...	...	भट्टोजिदीक्षित कृत सिद्धान्तकौमुदी

कोश-ग्रन्थ

अभिधान०	...	...	हेमचन्द्र कृत अभिधान चिन्तामणि
अमर०	...	...	अमरसिंह कृत अमरकोश
ऐनसाइ०	...	...	डा० प्रसन्नकुमार आचार्य कृत ऐनसाइक्लोपीडिया आफ़ हिंदू आर्किटेक्चर।
ग्रै० डि०	...	...	डा० सूर्यकान्त शास्त्रीकृत ग्रैमेटिकल डिक्शनरी आफ़ संस्कृत।
टर्नर०	...	...	प्रो० आर० एल० टर्नर कृत नैपाली डिक्शनरी।
डेविड्स०	...	...	टी० डब्लू० राईस डेविड्स कृत पाली-इँगलिश-डिक्शनरी।
दे० ना० मा०	...	...	हेमचन्द्र कृत देशी नाममाला
निघण्टु०	...	...	निघण्टु (वैदिक शब्द-कोश)
पा० स० म०	...	...	पं० हरगोविन्ददास त्रिकमचन्द शेठ कृत पाइअसद्द महण्णवो (प्राकृत-शब्द-महार्णव)

संकेत			ग्रन्थ का नाम
प्लाट्स०	...	...	जान ए० प्लाट्स कृत डिक्शनरी आफ उर्दू, क्लैसिकल हिन्दी एण्ड इँगलिश।
फैलन०	...	...	एस० डब्लू० फैलन कृत न्यू हिन्दुस्तानी-इँगलिश डिक्शनरी।
मो० वि०	...	...	सर मोनियर विलियम्स कृत संस्कृत-इँगलिश डिक्शनरी।
स्टाइन०	...	...	एफ० स्टाइगास कृत पर्शियन-इँगलिश डिक्शनरी। एफ० स्टाइनगास कृत अरैबिक-इँगलिश डिक्शनरी।
हिं० श० नि०	...	...	डा० वासुदेवशरण अग्रवाल कृत हिन्दी के सौ शब्दों की निरुक्ति।
हिं० श० सा०	...	...	हिन्दी-शब्द-सागर (काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, बनारस)

संस्कृत-काव्य-ग्रन्थ

अभिज्ञान०; अभि० शाकुं०		...	अभिज्ञान शाकुंतलम् (कालिदास कृत)
उत्तर०	...	...	उत्तर रामचरितम् (भवभूति कृत)
काद०	...	...	कादम्बरी (बाण भट्ट कृत)
कुमार०	...	...	कुमार संभवम् (कालिदास कृत)
नैषध०	...	...	नैषधीय चरितम् (श्री हर्ष कृत)
महा०	...	...	महाभारत (श्रीपाद दामोदर सातवलेकर द्वारा संपादित)
मृच्छ०	...	...	मृच्छकटिकम् (शूद्रक कृत)
मेघ०	...	...	मेघदूतम् (कालिदास कृत)
रघु०	...	...	रघुवंशम् (कालिदास कृत)
रत्ना०	...	...	रत्नावली नाटिका (हर्ष कृत)
वाल्मीकि०	...	...	वाल्मीकि रामायण (पं० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी द्वारा संपादित तथा टीका कृत)
शिशु०	...	...	शिशुपालवधम् (माघ कृत)
हर्ष०	...	...	हर्ष चरितम् (बाण भट्ट कृत)

भाषा-संकेत

अँग०	...	...	अँगरेजी
अ०	...	...	अरबी
अप०	...	...	अपभ्रंश
अव०	...	...	अवधी
कौर०	...	...	कौरवी
खड़ी०	...	...	खड़ी बोली
तु०	...	...	तुर्की
देश०	...	...	देशी, देशज
पह०	...	...	पहलवी
पा०	...	...	पाली
पुर्त०	...	...	पुर्तगाली भाषा
प्रा०	...	...	प्राकृत
फा०	...	...	फारसी
ब्रज०	...	...	ब्रजभाषा
(मुहा०)	...	...	(मुहावरा)
(लोको०)	...	...	(लोकोक्ति)
(लो० गी०)	...	...	(लोक-गीत)
वै० सं०	...	...	वैदिक संस्कृत
सं०	...	...	संस्कृत
हिं०	...	...	हिन्दी

विशेष—प्रत्येक अध्याय को अनुच्छेदों (=अनु०) में विभक्त किया गया है।

अनु०	...	...	अनुच्छेद
चि०	...	...	चित्र
पृ०	...	...	पृष्ठ
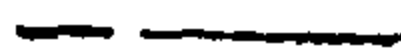
स्थान-संकेत

(तहसीलों तथा अन्य स्थानों की सूची जहाँ से शब्दावली एकत्र की गई)

अत०	... ...	अतरौली
अनू०	... ...	अनूपशहर
अली०	... ...	अलीगढ़
इग०	... ...	इगलास
एटा	... ...	एटा
कास०	... ...	कासगंज
कोल	... ...	कोल
खुर्जा	... ...	खुर्जा
खैर	... ...	खैर
जले०	... ...	जलेसर
(जि०)	... ...	(जिला)
झाझ०	... ...	झाझर
टप्प०	... ...	टप्पल
(त०)	... ...	(तहसील)
नोंह०	... ...	नोंह झील
बुलं०	... ...	बुलंदशहर
महा०	... ...	महावन
माँट	... ...	माँट
राज०	... ...	राजघाट
सादा०	... ...	सादाबाद
सिकं०	... ...	सिकंदराराऊ
	... ...	सोरों
हाथ०	... ...	हाथरस

———

कार्य-क्षेत्र की सीमा, क्षेत्रफल और जनसंख्या

सीमा— अलीगढ़ जिले की सीमाओं को छूनेवाले जिले—उत्तर में बदायूँ, दक्षिण में मथुरा तथा आगरा, पूरब में एटा और पश्चिम में बुलंदशहर तथा गुड़गाँवा। मानचित्र से प्रकट है कि अलीगढ़ जिले तथा उसके चारों ओर के संक्रमण-क्षेत्र से शब्दावली का संग्रह किया गया है। शब्द-संग्रह के कार्य-क्षेत्र की सीमाएँ इस प्रकार हैं—

उत्तर में अनूपशहर, खुर्जा और झाझर; दक्षिण में सादाबाद तथा जलेसर; पूरब में सोरों तथा कासगंज और पश्चिम में नोंहझील तथा माँट। इन सीमाओं के अन्तर्वर्ती भू-भाग को 'अलीगढ़-क्षेत्र' कहा गया है।

क्षेत्रफल— अलीगढ़-क्षेत्र का क्षेत्रफल लगभग दो हजार वर्ग मील है। कृषि का क्षेत्रफल लगभग दस लाख एकड़ है[1]।

जनसंख्या—अलीगढ़ क्षेत्र की जनसंख्या लगभग अठारह लाख है जो कि संपूर्ण ब्रज-प्रदेश की जनसंख्या[2] का लगभग सातवाँ भाग है।

---

[1] क्षेत्रफल तथा जनसंख्या के आँकड़े अलीगढ़ डिस्ट्रिक्ट सेंसस हैंडबुक सन् १९५१ ई० (प्रकाशक सुपरिन्टेन्डेन्ट गवर्नमेंट प्रिंटिंग एण्ड स्टेशनरी, उत्तर-प्रदेश, इलाहाबाद, सन् १९५४ ई०) को आधार मानकर लिखे गये हैं।

[2] डा० धीरेन्द्र वर्मा का कथन है कि आधुनिक ब्रजभाषा लगभग १ करोड़ २३ लाख जनता द्वारा बोली जाती है।
(ब्रजभाषा : प्रकाशक—हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, सन् १९५४, पृ० २३।)

ब्रजभाषा - क्षेत्र के अन्तर्गत
अलीगढ़ की बोली का विस्तार
सिकन्दराबाद
बदायूं
कोसी
छाता
वृन्दावन
गोवर्धन
डीग
मथुरा
फतेहगढ़
एटा
अवागढ़
जलेसर
चिह्न-परिचय
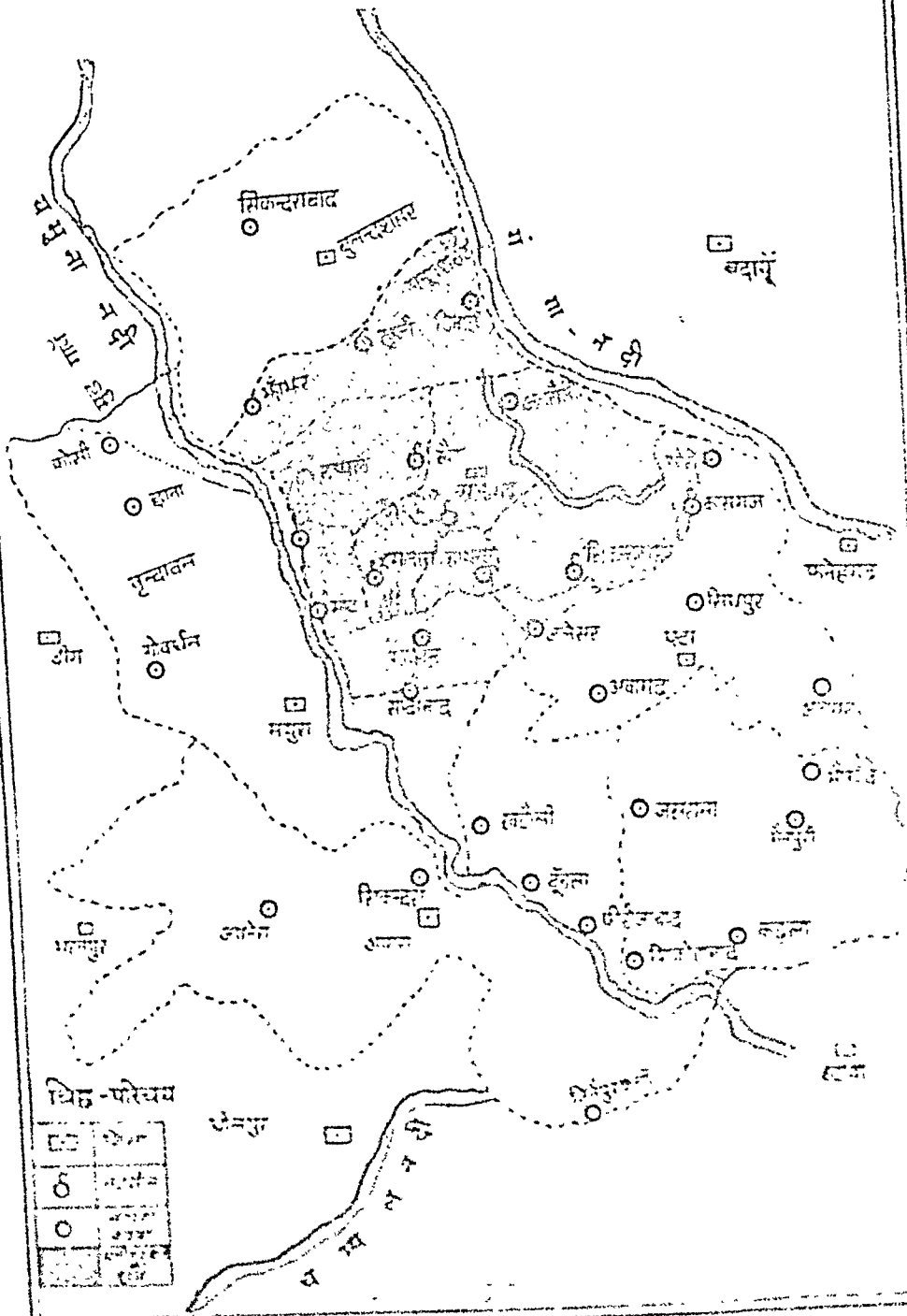
विषय-सूची

(ग्रन्थ में बाईं ओर के प्रारम्भिक अंक अनुच्छेद-संख्या के द्योतक हैं और संलग्न मान-चित्र कार्य-क्षेत्र को प्रकट करता है।)

[प्रथम खंड]

विषय — पृष्ठ-संख्या

कार्य-क्षेत्र की सीमा, क्षेत्रफल और जनसंख्या सहित मानचित्र इस विषय-सूची से पूर्व है।

प्रकरण १

कृषि-सम्बन्धी साधन, यंत्र और उपकरण

विभाग १

सिंचाई के साधन, यंत्र और उपकरण

अध्याय

विभाग २

जुताई, सुहगियाई और खुदाई सम्बन्धी साधन, यंत्र और उपकरण

अध्याय

विभाग ३

उगी हुई खेती की रक्षा के साधन और उपकरण

अध्याय

विभाग ४

अध्याय

फसल काटने, ढोने और तैयार करने के साधन, औजार और वस्तुएँ

प्रकरण २

खेत और फसल की तैयारी

विभाग १

खाद, जुताई और बीज

अध्याय

विभाग २

बुवाई, नराई और भराई

अध्याय

विभाग ३

उगी हुई फसलों का क्रमशः बढ़ना और उनकी विभिन्न दशाएँ

अध्याय

विभाग ४

खलिहान और रास

अध्याय

प्रकरण ३

खेत और उनके नाम

अध्याय

प्रकरण ४

खेती और पशुओं को हानि पहुँचानेवाले जंगली पशु, जीवजन्तु, कीड़े-मकोड़े तथा रोग

अध्याय

प्रकरण ५

बादल, हवाएँ और मौसम

अध्याय

प्रकरण ६

कृषि तथा कृषक से सम्बन्धित पशु

अध्याय

प्रकरण ७

पशुओं से सम्बन्धित वस्तुएँ और किसान की सांकेतिक शब्दावली

अध्याय

प्रकरण ८

किसान का घर और घेर

अध्याय

प्रकरण ९

किसान के गृह-उद्योग

विभाग १

पुरुषों के गृह-उद्योग

अध्याय

विभाग २

किसान स्त्रियों के गृह-उद्योग

अध्याय

प्रकरण १०

बर्तन, खिलौने और संदूक

अध्याय

प्रकरण ११

पहनाव उढ़ाव, साज-सिंगार और खान-पान

अध्याय

प्रकरण १

कृषि-सम्बन्धी साधन, यंत्र और उपकरण

विभाग १

सिंचाई के साधन, यंत्र और उपकरण

अध्याय १

पुर और उसके अंग-प्रत्यंग

§१—किसान का काम **किसनई** कहाता है। किसनई में पहले खेत की सिंचाई ही होती है, जिसे **भराई** भी कहते हैं। फिर क्रमशः **जुताई, बुवाई, कटाई** और **दाँव चलाई** होती है।

किसान (सं० कृषाण) की किसनई कभी पुरानी नहीं पड़ती। प्रसिद्ध है—"किसनई, नित नई।" खेती अपने हाथों से ही लाभप्रद होती है। कहावतें प्रचलित हैं—

"खेती, खसम सेती।"[1]

"खेती क्यारी बीनती, और घोड़ा कौ तंग।
अपने हाथ सँवारियौ, लाख लोग होइँ संग॥"[2]

किसान के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

"आलस नींद किसानऐ खोवै
चोरऐ खोवै खाँसी।
टका ब्याजु बाबाजीऐ खोवै
राँड़ऐ खोवै हाँसी॥"[3]

§२—चमड़े का एक बड़ा-सा थैला, जिससे किसान कुएँ का पानी निकालता है, **पुर** या **चरस** कहाता है। पुर की सहायता से जिस विधि से कुएँ का पानी बाहर निकाला जाता है, वह **पैर** कहाती है। जिस कुएँ पर दो पुरों से पानी की सिंचाई होती है, वह कुआँ **दुपैरा** या **दुनाया** कहाता है। इसी प्रकार **चौपैरे** (चार पैरों वाले) या **चौनाये** और **अठपैरे** या **अठनाये** कुएँ भी होते हैं। "**चौनाये खुदाना**" मुहावरा भी प्रचलित है।

§३—पुर में कई चीज़ें लगी रहती हैं। पुर के अन्दर किनारे-किनारे जो चमड़े की छेददार कतलें लगी रहती हैं, वे **कतरियाँ** कहाती हैं। जिन-जिन स्थानों पर पुर में कतरियाँ लगी रहती हैं, वे स्थान **कोठे** (भीट में दीवा) कहाते हैं। एक पुर में प्रायः २४ कोठे होते हैं। पैर में काम आनेवाले पुर के मुँह पर लोहे का एक घेरा-सा लगा रहता है जिसे **कौंड़र** (सं० कुंडल) कहते हैं। यही अनू० में **मौंडल** (सं० मंडल) कहाता है। कौंड़र में लोहे की एक सलाख कुछ ऊपर को उठी हुई हालत में लगाई जाती है जिसे **बाहीं** (सिकं० में बाहूँ—सं० बाहु) कहते हैं। लोहे की बाहीं में संकल सी-सी

---

[1] खेती का स्वामी किसान जब स्वयं अपने हाथों से खेती करता है, तभी सुख से जीवन बिता सकता है।

[2] खेती-क्यारी, बिनती (सं० विज्ञप्ति—विण्णत्ति—बिनती = प्रार्थना, निवेदन) और घोड़े का तंग अपने हाथों से सँभालो, चाहे कितने ही मनुष्य उन्हें करने के लिए तैयार हों।

[3] आलस्य और निद्रा किसान को, खाँसी चोर को, ब्याज तथा पैसे-टके साधु को और हँसी-मज़ाक विधवा को नष्ट कर देती है।

दो कड़ियाँ डाली जाती हैं जो **क्यौली** या **कौली** (माँट और सादा० में **डौल**) कहाती हैं। कौंड़र, बाहीं और क्यौली मिलकर सामूहिक रूप में **हुरावर** (खुर्जा में **हुड़ा** और अनू० में **हुरौ**) कहाती हैं। हुरावर के कौंड़र को **कसावों** (चमड़े की पटारों) से कस दिया जाता है। कसाव पुर को कौंड़र से सम्बद्ध रखते हैं। लोहे की बाहीं की भाँति की कौंड़र में एक **कठबाहीं** (=लकड़ी की बाहीं) भी लगी
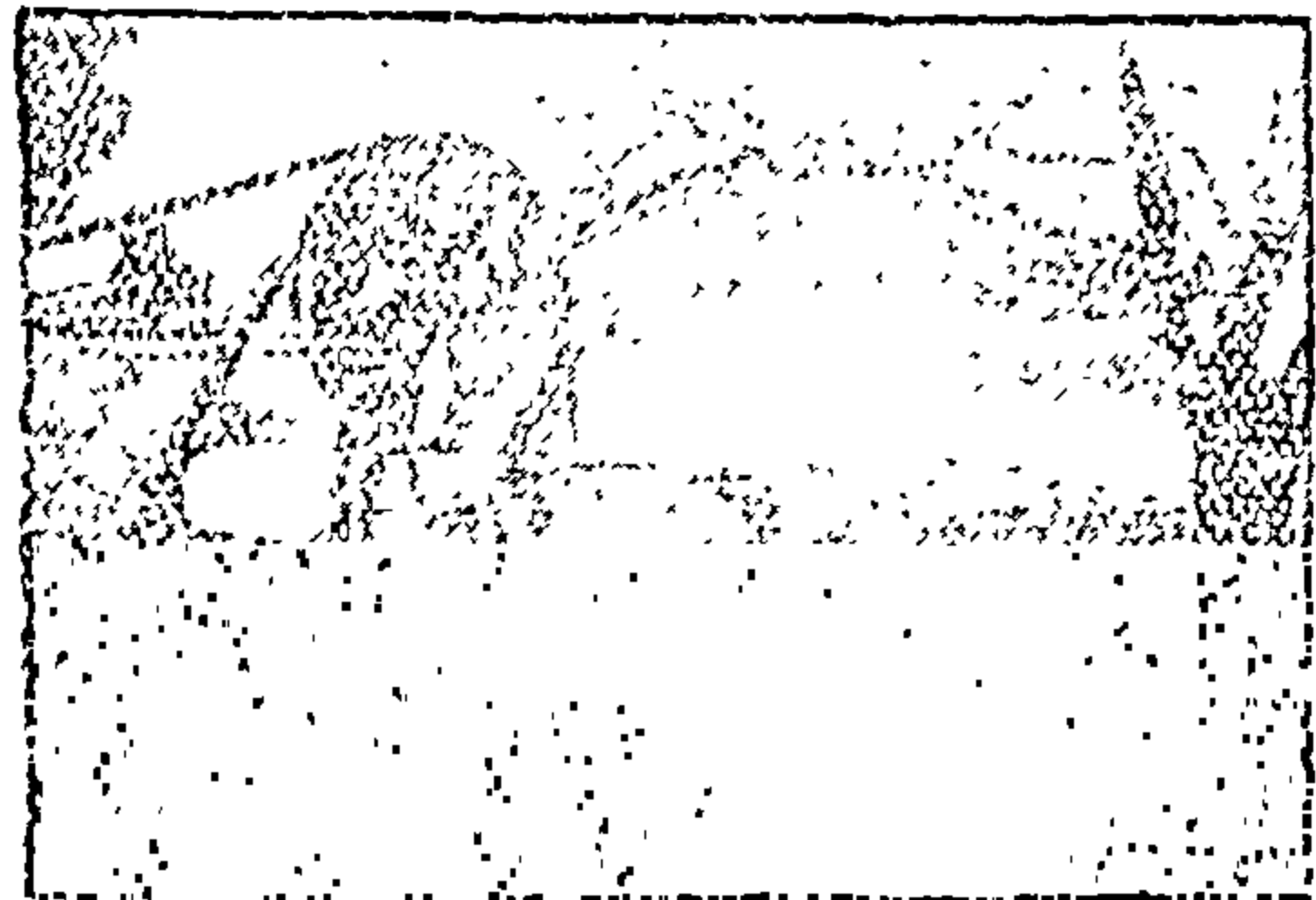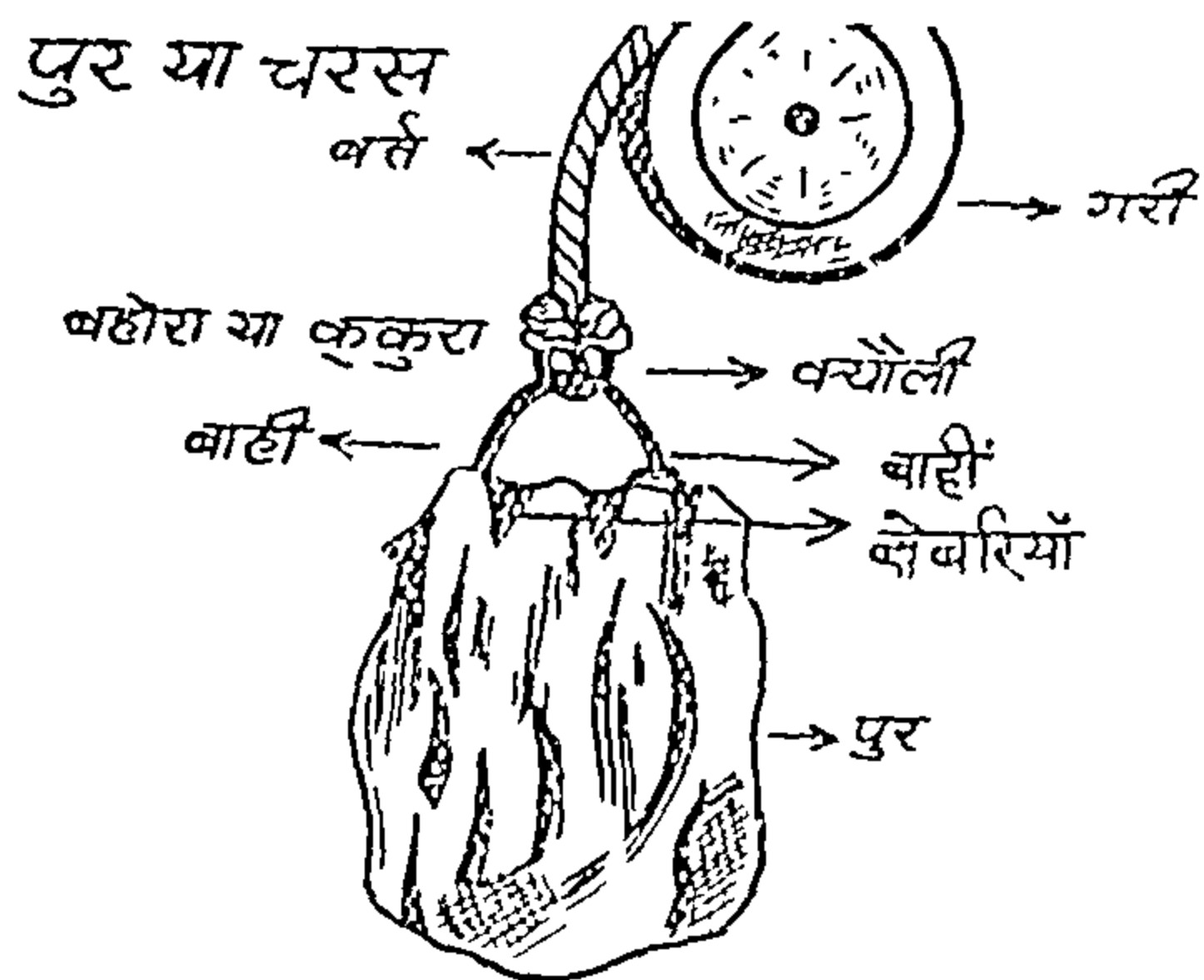
[रेखा-चित्र १]

[चित्र १]

होती है। दोनों बाहियों के चारों हत्थे **चौहता** कहाते हैं। चौहते और २४ कोठों के सम्बन्ध में पहेली प्रसिद्ध है—

"चार मर्द चौबीस लुगाईं।
बाँट करौ तो छै-छै आईं।"[1]

कोठों को कौंड़र पर कस देने के उपरांत पुर की किनारी का कुछ चमड़ा बाहर की ओर निकला रहता है; उसे **बोवरी** या **ओक** कहते हैं। पैर चलते समय जब भरा हुआ पुर कुएँ से ऊपर को आता है तब बोवरियों में से पानी कुछ-कुछ गिरता रहता है। [रेखा-चित्र १, चित्र १]

——

अध्याय २

कुआँ और उसके ओखर-पाखर

§४—जिस कुएँ पर पैर चलती है वह **पैरा कुआ** कहाता है। पैरे कुएँ पर जो लकड़ी का ठाठ लगा रहता है, उसे **ओखर-पाखर** कहते हैं। पैर चलते समय पुर लेनेवाले और उसमें से पानी ढालनेवाले व्यक्ति को **परछिआ** या **पच्छिआ** कहते हैं। कुएँ के किनारे के पास जहाँ परछिआ खड़ा होता है, वह स्थान **पारछा** (खैर और खुर्जा में) या **पाच्छा** कहाता है। पारछे में अरहर की **लौदों** (लकड़ियों) का बनाया हुआ एक जाल-सा डाल दिया जाता है जिसे **किरा** (अत० में **छरैरा**) कहते हैं। लौदों को हाथ० में **लगौद** भी कहते हैं। यदि परछिआ एक ही पारछे में दो पुर लेता और ढालता है तो उस क्रिया को **डंगा लेना** कहते हैं। कुएँ का वह भाग जहाँ पारछा बनता है **मनखंडा** या **जगत** कहाता है। जगत के पास में ही सब ओखर-पाखर गड़े रहते हैं।

§५—**ओखर-पाखरों के नाम**—पैरे कुएँ के किनारे पर एक मोटी और भारी लकड़ी लगी

---

[1] पुर के २४ कोठों में चमड़े की सोंट डालकर बाहियों के चार हत्थों से बँधाव कर दिया जाता है। चार हत्थे चार मनुष्य, और २४ कोठे स्त्रियाँ बताये गये हैं।

रहती है जिसे डाँगर (खैर में डाँग, इग० में डँग, अत० में मोंगरि, सादा० में पाठि, इग० और हाथ० की सीमा-सन्धि पर महरि या मेर और सिकं० में डँगर) कहते हैं। डाँगर के ऊपर ठीक मध्य भाग में एक लकड़ी बँधी रहती है जो फड्डी (सिकं० में देहर) कहाती है। डाँगर के दोनों सिरों पर एक-एक सिल्ल या स्याल (स्याल) होता है, जिनमें से प्रत्येक में लकड़ी का एक-एक खम्भा गड़ा रहता है जो चूरा (सं० चूलक, चूडक—मो० वि०) कहाता है। दोनों चूरों के ऊपरी सिरों पर मोटी और भारी एक लकड़ी रहती है जो छौंहर (अनू० में छौंगुर और माँट में नटैना) कहाती है। छौंहर को साधने के लिए दुसंखी (सं० द्विशंकु) दो लकड़ियाँ भी लगाई जाती हैं जिन्हें गलहैत या गलहँत कहते हैं। पारछे के पीछे मिट्टी से बनाई हुई ऊँची और ढालू जगह होती है, जो भौंरा (सं० भूमिगृह —भुइँहर + क—भुइँहरा—भौंरा) कहाती है। पारछे के पास में भौंरे का ऊँचा उठा हुआ किनारा लिलारा (सं० ललाटक) कहाता है। वास्तव में भौंरे का मस्तक यही होता है। दोनों गल्हैतों के निचले सिरे एक-एक करके लिलारे के दोनों किनारों पर गाड़ दिये जाते हैं और दुसंखे भाग में छौंहर फँसाई जाती है। (चित्र १)।

यदि दुसंखों के बीच में फँसी हुई छौंहर ढीली हो तो छोटी-छोटी लकड़ियाँ ठोक देते हैं जिन्हें फानी या फाना नाम से पुकारते हैं।

§६—छौंहर के ऊपर मध्य में छोटी-छोटी दो लकड़ियाँ ठुकी रहती हैं जो गुड़िया कहाती हैं। दोनों गुड़ियों के बीच में एक-एक छेद होता है जिसमें एक मोटा और छोटा डंडा-सा पड़ा रहता है जो गंडरा (इग०, खैर और अनू० में गँड़ेरा) कहाता है। गंडरे पर पहिये की आकृति का लकड़ी का बना हुआ एक गोल घेरा चढ़ाया जाता है जिसे गरी (सं० घूर्णिका—घिर्री—गिर्री—गरी) कहते हैं। गरी के दोनों किनारे बारि कहाते हैं। बारि के बीच की जगह, जिस पर वर्त (= एक मोटा रस्सा; सं० वरत्रा[1]— वर्त) घूमती है, गल्ता कहाती है। एक विशेष प्रकार की गरी अरों (सं० अर = नाभि और नेमि के बीच की लकड़ियाँ) और नाइ (सं० नाभि)[2] के योग से बनती है; उसे अरा कहते हैं। 'अरा' नाम की गरी में नाइ ठीक केन्द्र स्थान पर लगती है। नाइ के छेद में एक गोल लोहे का लम्बा-सा पोला छल्ला फँसा रहता है, जिसे औंवन या कूम कहते हैं। अरे की बारि पुट्ठियों (अर्द्ध चन्द्राकार मोटी लकड़ियाँ जिन्हें आपस में मिलाकर गरी का चक्का—गोल घेरा—बन जाता है) पर बनती है।

§७—वर्त के अङ्ग—वर्त (खुर्जा में लाव) का टुकड़ा वर्तैंड़ा कहाता है। जब वर्त कमज़ोर हो जाती है तब उसे मजबूत रस्सी द्वारा जोड़ते हैं और उस रस्सी को वर्त की लड़ों में होकर एक खास तरह से फाँसते हैं। यह प्रक्रिया सौंटना कहाती है। पुर की ओर बँधनेवाला वर्त का सिरा काफी मोटा होता है और उसमें लकड़ी का एक गट्ठा-सा बँधा रहता है जो बहोरा (खैर और इग० में क्रूरा) कहाता है। बाहीं की दोनों कर्यालियाँ बहोरे के सिरों पर चढ़ा दी जाती हैं। बहोरे के छेदों में एक रस्सी डालकर कर्यालियों को बाँध दिया जाता है। यह रस्सी चौर या औंर कहाती है। वर्त की तीनों लड़ों में ऐंठा देकर तीनों लड़ों को जब आपस में एक विशेष ढंग से मिलाया जाता है तब यह क्रिया भानना कहाती है। एक वर्तैंड़ा जब लड़ों में अलग-अलग विभक्त कर दिया जाता है तब उसकी प्रत्येक लड़ गुद कहाती है। वर्त का दूसरा सिरा पूँछरा कहाता है। पूँछरे का छेद, जिसमें फीली (गाजर की आकृतिवाली एक लकड़ी) लगती है, नक्की या नकुआ कहाता है।

---

[1] "शुनं वरत्रा बध्यन्ताम्।"

—अथर्व० ३।१७।६

[2] "पिन्विरा नाभिः भ्राम्र कोश्के गु स्तोरणिः।"

—ऋग्० ८।२२।४

§८—**भौंरे के अङ्ग**—जिन दो बैलों द्वारा पुर खिंचता है, वे **जोट** या **ज्वारा** (सं० युगल—जुअर—जुआर—ज्वारा) कहाते हैं। भौंरे पर ज्वारे को हाँकनेवाला व्यक्ति **कीलिया** (= बर्त के नकुए में कीली लगानेवाला) कहाता है। लिलारे की दाईं-बाईं ओर ज्वारे के **न्यार** (=चारा) के लिए एक जगह बनी रहती है जिसे **लड़ामनी** (इग० में **हौंटारा** और हाथ० में **औंटारा**) कहते हैं। भौंरे का दूसरी ओर का निचला भाग, जहाँ पुर खींचनेवाला ज्वारा रुकता है, **नहँची** (सं० नाभिचक्र) कहाता है। भौंरे का वह भाग जो लिलारे से मिला हुआ होता है **टीक** (देश० टिक्क—दे० ना० मा० ४।३) कहाता है। कीलिया टीक पर ही ज्वारे को कीली द्वारा बर्त से सम्बन्धित कर देता है। इस क्रिया को **कीली लगाना या कीली देना** कहते हैं। टीक से मिला हुआ भाग **डीक या उठनि** कहाता है। यह टीक और नहँची के बीच में होता है। उठनि नाम के स्थान पर बैलों के आते ही बर्त तनती है और पुर कुएँ के पानी के धरातल से ऊपर उठ जाता है। कीली लगानेवाला और पारछे में पुर लेनेवाला व्यक्ति **पैरिहा** भी कहाता है।

§९—नहँची के तीन भाग होते हैं—(१) **कौंधनी**, (२) **ठेका**, (३) **नरकटा या अन्ता**।

नहँची और मुख्य भौंरे के बीच में पड़ी लकड़ी धरती में गाड़ दी जाती है। इस चिह्न से जो स्थान चिह्नित रहता है वह **कौंधनी** कहाता है। इससे आगे की ओर का स्थान **ठेका** बोला जाता है। ज्वारा जब ठेके पर आ जाता है तभी पुर पारछे में आता है। बैलों का ज्वारा जब पीछे को हटकर कौंधनी पर आ जाता है तभी कीलिया कीली निकाल लेता है। कीली निकालने को **'कीली लेना'** कहा जाता है। ठेके पर पहुँचकर बैल अपनी गर्दन को आगे कर देते हैं। उस समय उनके सिर नहँची की दीवाल के बिलकुल पास आ जाते हैं। उस दीवाल को **नरकटा या अन्ता** कहते हैं। क्योंकि उस स्थान पर बैलों की **नार** (=गर्दन) **मँचेड़े** (एक प्रकार का चौखटा जिसमें ज्वारे की गर्दनें रहती हैं) से **कटने** (=दुखना) लगती है। भौंरे की दाहिनी ओर बाईं ओर एक रास्ता बना रहता है, जिसमें होकर ज्वारा नहँची की ओर से लड़ामनी की ओर आता है। उस रास्ते को **पाढ़ि** (इग० में **पाइँड़** खैर में **पागढ़** और नोंह० में **गौनी**) कहते हैं। हेमचन्द्र ने पायड (दे० ना० मा० ६।४०) शब्द का उल्लेख किया है।

§१०—**मँचैड़े के अङ्ग**—मँचैड़े की ऊपरी लकड़ी **मँचैड़ा** और नीचे की **तरौंची** कहाती है। इन दोनों के बीच में दो लकड़ियाँ ठुकी रहती हैं जिन्हें **पचारी** कहते हैं। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

"जूआ संग पचारी बोली, बोले चारौं स्याल।
बिना दई माया न मिलैगी बिर्था बजावत गाल।"[१]

पचारियों को मँचैड़े और तरौंची से कसा हुआ रखने के लिए उन पर रस्सियाँ बाँध देते हैं जो **बन्देजा** या **बँधना** कहाती हैं। मँचैड़े के ठीक मध्य भाग में ऊपर को कुछ उभरा हुआ स्थान **सतिया** कहाता है, जिस पर बर्तड़े का बना हुआ **जोगा** (हाथ० में **नहला**=मोटे रस्से का एक फन्दा) पड़ा रहता है। बर्त के पूँछरे की नवकी को जोगे में पिरोते हैं और फिर उसमें **कीली** (खैर में **कीलरी** भी) लगा देते हैं। मँचैड़े के सिरे के दोनों छेदों में खूँटीदार दो लकड़ियाँ पड़ी रहती
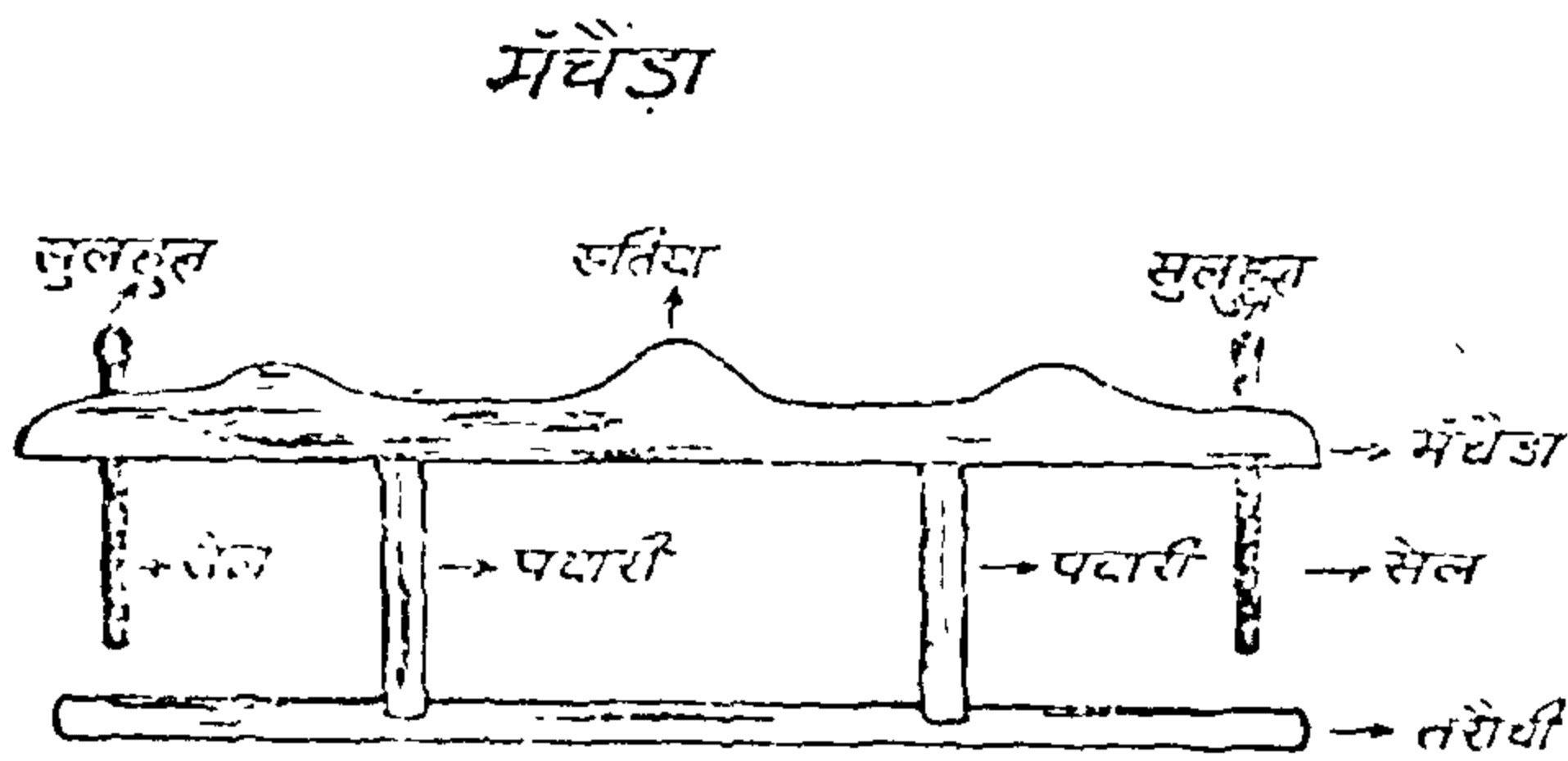
रेखा-चित्र २

[१] मँचैड़े की दोनों पचारियाँ चार सूराखों में फँसी रहती हैं। जूए के साथ पचारी और चारों सूराख कहने लगे कि बातें बनाना व्यर्थ है। बिना भाग्य के सम्पत्ति नहीं मिलती।

हैं जो सैल या सैला कहाती हैं। किसी-किसी मँचँड़े की बैलों के ऊपरी सिरे के छेद में एक पतली और छोटी लकड़ी फँसी रहती है ताकि बैल मँचँड़े के सूराख में से निकल न सके। उस छोटी लकड़ी को सुलहुल (खैर में सुँदैल और अनू० सुनैत) कहते हैं। बैलों में चमड़े की चौड़ी पटारें-सी भी पड़ी रहती हैं, जिन्हें बैलों की गर्दन में बाँधते हैं। ये पटारें जोता (सं० योक्त्र) कहाती हैं।

§११—पैर चलाना और बन्द होना—पैर चालू करने को पैर जोरना (दिग० पएर—दे० ना० मा० ६।६७ + सं० योजन युज् से) कहते हैं। पैर जब बन्द कर दी जाती है तब वह पैर मुकरना (सं० मुक्तकरण—मुकरना) कहाता है। पैर मुकराते हुए परछिया कहता है—

"पैर मुकरि गई भजिलेउ राम।
गऊ के जाये करौ आराम॥"[1]

चलती पैर के पुर-बर्त के संबन्ध में एक पहेली भी प्रचलित है—

"साँप सरकै बीछू लपकै, नाहरिया गुर्राय।
कहियौ राजा भोज ते, जिय कौन जिनावर जाय॥"[2]

पारछे की दाईं या बाईं ओर एक गड्ढे में सौ कंकड़ियाँ पड़ी रहती हैं जिन्हें गोट कहते हैं। गोटों से ही पुरों की गिन्ती की जाती है। भरे हुए पुर को बैल खींच रहे हों, लेकिन वह किसी कारण पारछे में न आ सके तो मँचँड़ा टूटकर बर्त के साथ भिन्नाता हुआ (बड़े प्रबल वेग से चलता हुआ) पारछे की ओर आता है और परछिए के सिर पर लगता है। इसे मँचँड़ी बोलना या मँचँड़ो बाजना कहते हैं। मँचँड़ी बोलने पर परछिया बच नहीं सकता। खुर्जे में इसी को बर्त टूटना भी बोलते हैं। कबीर ने एक स्थान पर इस ओर संकेत किया है।[3]

§१२—खेत में पानी लगानेवाला व्यक्ति पल्लगा (पानी + लगानेवाला) कहाता है। पैर का पानी जिस रास्ते से बहता है, उसे बरहा या बर्हा कहते हैं। खेत को जिन छोटे-छोटे हिस्सों में पानी भरने के लिए बाँट लिया जाता है, वे क्यारी (सं० केदारिका) कहाते हैं। खेत की चौड़ाई में जितनी क्यारियाँ बनी रहती हैं, वे सामूहिक रूप में किचारा कहाती हैं। बरहे में से खेत में पानी ले जाने के लिए जो रास्ता बनाया जाता है उसे मुहारा कहते हैं। जब पानी क्यारी में इतना भर जाय कि उसकी मेंड़ों पर से उफनने लगे तो भराई की उस दशा को गलकटा कहते हैं। फावड़े से मिट्टी खोदना पमरिहाई कहाता है। पल्लगा जब पानी रोकने के लिए फावड़े से मिट्टी रखता है, तब वह क्रिया थापी लगाना कहाती है। जब गीली मिट्टी को हाथ से उठाकर मेंड़ पर किसी जगह रक्खा जाता है तब उस क्रिया को चौंपी धरना या चौंपी लगाना कहते हैं। बरहे में पानी जब बहुत तेज धार में आता है, तब उसे रेला कहते हैं।

[चित्र २]

---

[1] पैर बन्द हुई; अब राम को भजो। हे बैलो! अब तुम आराम करो।

[2] बर्त रूपी साँप सरकता है, पुर रूपी बिच्छू लपकता है और नाहर की गुर्राहट की भाँति गर्रा आवाज़ करती है। राजा भोज से पूछिए कि इन रूपों का कौन-सा जानवर जा रहा है?

[3] "इहै बरत अजान सैं, कोई न सरकै सेन।"
—कबीर-ग्रंथावली; नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस; सूक्ष्म जन्म कौ अंग, दो० ३२।

[चित्र ३]

§१८—मिट्टी का एक बर्तन जो आकार में घड़े के बराबर होता है **कड़वारा** कहाता है। लेजू के सिरे पर एक विशेष प्रकार का फंदा लगा रहता है, जिसे **साँफा** या **फाँसा** (सं० पाशक) कहते हैं। उसी फाँसे में कड़वारे की गर्दन फाँस ली जाती है। ढेंकली की बल्ली के नीचे की ओर सिरे पर एक भारी कंकड़ या पत्थर बँधा रहता है जो **थूआ** कहाता है।

§१९—जब ढेंकिया **उलाइतौ** (जल्दी-जल्दी) कड़वारे से पानी ढालता है, तब उसे **गमागम ढार** कहते हैं। गमागम ढार से पानी की धार का तार नहीं टूटता। किसी-किसी बल्ली के सिरे पर बाँस की एक पतली छड़ बँधी रहती है; उसे **पलइया** या **पँचागली** कहते हैं।

—

अध्याय ५
रौंदा

§२०—सिंचाई के काम में आनेवाला नदी के किनारे पर खोदा हुआ वह कुआँ, जिस में पानी एक नाली द्वारा नदी से ही आता है, **रौंदा** कहाता है। रौंदे कुएँ लगभग १५-२० हाथ गहरे होते हैं। जो रौंदे बहुत कम गहरे होते हैं, उन पर पैर नहीं चलती, बल्कि परोहों से ही पानी डाला जाता है। जिस कुएँ का पानी सूख जाता है, उसे **अँधउआ** (सं० अंधकूपक—अंध उवअ—अँधउआ) कहते हैं। बरसाती या छोटी नदी के किनारे पर के रौंदे **भाइटों** (ग्रीष्म काल) में सूखकर अँधउए बन जाते हैं।

§२१—रौंदे का पारछा **डराय** कहाता है। वे दो मोटी लकड़ियाँ, जिन पर **मौंगर** या **डाँगर** सधी रहती हैं, **ठड़िये** कही जाती हैं अर्थात् पैरे कुएँ की जिस लकड़ी में **चूरिये** या **चूरे** गड़े रहते हैं, वही **मौंगर** कहाती है। मौंगर और डराय ठड़ियों पर ही जमाये जाते हैं। बन या अरहर की लकड़ियों से डराय बनाया जाता है।

§२२—नदी का पानी जिस नाली में बहकर रौंदे में आता है, उस नाली को **नहरा** या **नहला** कहते हैं। नहले में बहता हुआ पानी जिस छेद के द्वारा **अजार** (कुएँ में लगा हुआ बन की लौंदों—लकड़ियों—का बना हुआ घेरा) में पहुँचता है, वह छेद **अजरुआ** कहाता है। रौंदे की बालूदार मिट्टी को **बरुआ** कहते हैं। रौंदे के पानी का **बरहा** (पानी का रास्ता) **नलिया** कहाता है। रौंदे के अंदर की मिट्टी को गिरने से रोकने के लिए अजार बहुत काम देता है। वास्तव में रौंदे का जीवन अजार पर ही निर्भर है। रौंदे के पेंदे पर स्थान का जहाँ अजार जमाया जाता है, **थरी** (सं० स्थली) कहाता है।

—

विभाग २

जुताई, सुहगियाई और खुदाई सम्बन्धी साधन, यंत्र और उपकरण

अध्याय ६

हल

§२३—खेत जोतने का एक विशेष यंत्र **हर** (सं० हल) कहाता है। वैदिक संस्कृत में हल के लिए सीर, वृक और लांगल शब्द भी प्रचलित थे।[1]

हल के मुख्य भाग ये हैं—(१) **कुड़**, (२) **पनिहारी**, (३) **हर्स**, (४) **फारा या कुस**।

§२४—**कुड़ और उसके अंग**—कुड़ हल का प्रधान भाग है। यह ऊपर एक मोटे डंडे की तरह होता है। इसका निचला भाग बहुत मोटा और भारी होता है। कुड़ के ऊपर सिरे पर एक छोटा-सा छेद होता है जिसमें एक छोटी (८-१० अंगुल लम्बी) लकड़ी ठुकी रहती है जो **हतकरी** (हाथ० में), **हतटी, हतिया, मूँठ** या **मुठिया** कहाती है। हल चलाते समय किसान का हाथ मुठिया पर ही रहता है। एक लम्बी रस्सी, जो हल के भीतरे (=बाईं ओर का) बैल की **नाथ** (बैल की नाक में पड़ी हुई रस्सी) में बँधी रहती है, **हरपगहा, हरपघा** (सं० हलप्रग्रह—हरपगहा—हरपघा) या **हरबागा** (सं० हल-वल्गा) कहाती है। हरबागे का एक सिरा नाथ में बँधा रहता है और दूसरा हल की मुठिया में। मुठिया अर्थात् हतकरी के संबंध में लोकोक्ति प्रचलित है—

"सब भइयनु ते बोली हतकरी। मोते काहे करौ मसखरी।
सबते ऊँचौ मेरौ ठाट। मोपै रहै मर्द कौ हाथ॥"[2]

§२५—खेत बोते समय एक विशेष प्रकार के कुड़ में **नजारा** (=एक पोला बाँस जिसमें होकर अनाज का दाना कूँड़ में डालते जाते हैं) बाँध देते हैं। वह कुड़ **नाई** कहाता है। हल के फाले से बनी हुई रेखा को **कूँड़** (सं० कुण्ड—हि० श० सा०) कहते हैं। वैदिक साहित्य में कूँड़ के लिए 'सीता' शब्द का प्रयोग हुआ है।[3] नन्ददास ने भी 'अनेकार्थ'-मंजरी में सीता को कृषि की देवी बताया है।[4] बीज बोते समय किसान सगुन मनाते हुए ऐसा कहते हैं—

"भजि सीता सीता में डारौ। गऊ के जाये पूरौ पारौ॥"[5]

---

[1] "यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा।"—ऋक्० १।११७।२१
"वृको लांगलं भवति। विकर्तनात्। लांगलं लङ्गतेः। लांगूलवद्वा।"
—यास्क, निरुक्त, नैगम कांड, ६।२६
"लांगलं पवीरवत् सुशीमं सोमसत्सरु।"—अथर्व० ३।१७।३
अर्थात् हल कल्याणकारी, तेज और मुठिया सहित है।
"शुनं कृषतु लांगलम्।"—अथर्व० ३।१७।६

[2] हतकरी अपने सब भाइयों से कहने लगी कि तुम मुझसे दिल्लगी-मज़ाक क्यों करते हो? मेरा पद सबसे अधिक ऊँचा है और मेरे ऊपर सदैव मर्द (हल जोतनेवाले) का हाथ रहता है।

[3] "बीजानि या कृषा यो निक्षिप्यते यत् सीता यथात्
या अर्पानी रेतः सिञ्चेद्वै तदुपकृष्टे वपति।"—शत० ७।२।२।५

[4] "सीता कृषि की देवता जेहि जोतैं सब कोइ।"
—उमाशंकर शुक्ल (सं०) : नन्ददास भाग २, पृ० ४६८।

[5] सीता का नाम लेकर बीज कूँड़ में डालो। हे माँ के पूतो! हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अन्न उगाओ।

§२६—हल के कुड़ के निम्न भागवाले छेद में एक भारी और नुकीली-सी लकड़ी ठुकी रहती है जिसे **पनिहारी** कहते हैं। पनिहारी के ऊपर लोहे का एक नुकीला औजार होता है, जिसे **फारा** या **कुस** (खैर और इग० में) कहते हैं (सं० फाल[1]—फार—फारा)। छोटा और पतला फाला **फरिया** या **कुसी** कहाता है। फरिया के लिए ऋग्वेद (१०।३१।६) में 'स्तेग' शब्द आया है।[2] लोहे के हल के चौड़े फाले को **परिया** कहते हैं।

पनिहारी और फाले के सम्बन्ध में निम्नांकित कहावतें प्रचलित हैं :—

कुड़ ते यों बोली पनिहारी। धरती बीच करूँ निरवारी ॥[3]

* * *

"छाती टोकि कहै यों फारो। पनिहारी सुन काम करारो ॥
तू मेरी आसिरता नारी। कबहुँ न तैंने दूब उखारी ॥
मैं तो मूँड़ अगिन में देऊँ। समनक चोट घनन की लेऊँ ॥[4]

§२७—नाई की पनिहारी **जबुरिया** (कोल में), **गुड़िया** (इग० में), **बुड़िया** (हाथ० में), **खुड़िया** (खैर में) या **पड़ौंथा** (खुर्जे में) कहाती है। जबुरिया आकार में हल की पनिहारी से छोटी होती है। जबुरिया के ऊपर घाई (एक तरह की लम्बी झिर्री) में फरिया ही लगाई जाती है, फारा (फाला) नहीं।

§२८—**पनिहारी के अंग**—पनिहारी का ऊपरी भाग, जो कुड़ के नीचे वाले छेद में ठुका रहता है, **चूरा** या **पया** कहाता है। पये का सिरा कुड़ के छेद में पीछे की ओर कुछ-कुछ निकला हुआ दिखाई देता है। कुड़ के छेद में पीछे की ओर पये के ऊपर एक **फाना** (मोटी और छोटी एक लकड़ी) लगता है जिसे **पचमासा** कहते हैं। यह पये को कसा हुआ रखने के लिए छेद में ठोका जाता है। यदि पचमासा किसी तरह से ढीला हो जाता है या निकल जाता है तो पनिहारी भी कुड़ के छेद में से निकल जाती है। पनिहारी का टूटकर निकल जाना हर **उमिलना** कहाता है। खेत जुतते समय यदि हल उखिल जाता है तो पनिहारी आगे की ओर निकल जाती है और पचमासा पीछे की ओर कूँड़ में गिर जाता है। लोकोक्ति प्रचलित है :—

"बोल्यो भइयन् ते पचमासो। गटै तिलभर घटै न मासो ॥
जो पनिहारी संग बिछोवै। बन्दो सरकि कूँड़ में सोवै ॥"[5]

---

[1] "शुनं नः फाला विकृषन्तु भूमिम।"—ऋक् ४।५७।८
अर्थात हमारे फाले अच्छी तरह से धरती को जोतें।
"कृषन्नित फाल आशितं कृणोति।" —ऋक्० १०।११७।७
अर्थात खेत जोतता हुआ फाला ही अन्न पैदा करता है।

[2] "स्तेगो न क्षामत्येति पृथ्वीम्।" —ऋक्० १०।३१।९
अर्थात फरिया (छोटा फाला) भूमि में प्रविष्ट होकर उसे खोदती है।

[3] पनिहारी कुड़ से कहने लगी कि मैं धरती का विभाजन करती हूँ।

[4] फाला छाती ठोककर (साहस और विश्वासपूर्वक) पनिहारी से कहने लगा कि तू मेरे कठिन कार्यों को सुन। तू नारी है और मेरी आश्रिता है। तूने कभी धरती की दूब (एक प्रकार की घास) भी नहीं उखाड़ी। किन्तु मैं साहस के साथ लुहार की भट्टी की आग में अपना सिर देता हूँ और फिर निहाई पर घनों की चोट अपनी छाती पर झेलता हूँ।

[5] पचमासा अपने सब भाइयों (हल के अङ्ग) से कहने लगा कि मैं न रत्ती या तिल भर घटता हूँ और न मासे भर, अर्थात एक-सी स्थिति में रहता हूँ। यदि पनिहारी मेरा साथ त्याग देती है तो बन्दा भी तुरन्त कुड़ के छेद में से निकलकर कूँड़ में सो जाता है।

§२९—जूए के सिरे पर एक छोटा-सा छेद होता है। उसमें एक छोटी-सी पतली लकड़ी ठुकी रहती है जो छेद के आर-पार रहती है। वह **गोखरू, सुँदैल** या **पछेली** (खैर में) कहाती है।

§३०—**हर्स और उससे सम्बन्धित वस्तुएँ**—एक छोटी बल्ली-सी जो कुड़ के बीच के छेद में ठुकी रहती है **हर्स** या **हरस** (सं० हलीषा=हलि+ईषा=हल का दंड) कहाती है। खेत में हल जोतना आरम्भ करते समय कुछ किसान निम्नांकित पंक्तियाँ बोलते हैं—

"रामुई हरु और रामु हतरुरी राम नाम कौ फारौ।
जौ ठाकुर जी महरि करें ऊलै किसान कौ ज्वारौ॥"[1]

हर्स के ऊपरी सिरे की ओर चार-चार अंगुल लम्बी लोहे की तीन खुंटियाँ (कीलें) गड़ी रहती हैं, जिन्हें **गूल, खरए** या **डील** (सिकं० में) कहते हैं। बैलों के जूए के बीच में चमड़े की पटार का बना हुआ एक फन्दा-सा पड़ा रहता है जो **नरा, नारा** (खैर में), **नागौड़ा** (इग० में) या **नड़ा** (खुर्जे में) कहाता है। छोटे नरे को **नराउली** भी कहते हैं। हल के ज्वारे (बैलों की जोट=दो बैल) के जुए को साधने के लिए नराउली काम आती है। नरा या नराउली (सं० नद्ध्री) को हर्स के खरओं में हिलगा देते हैं। हर्स में प्रायः तीन खरए होते हैं। यदि नराउली पीछे के खरए में लगा दी जाती है तो हल **सेहा** (सं० सेध+क—सेहा=खड़ा) हो जाता है और यदि सबसे आगे के खरए में लगा दी जाती है तो हल **करार** (सं० कराल—करार=कड़ा) हो जाता है। करार हल को **करौ हर** भी कहते हैं। सेहे हल का फाला धरती में ऊपर ही ऊपर चलता है, गहरा नहीं। करार हल धरती में घुसकर कूँड़ बनाता है। मेरठ की कौरवी बोली में 'करार' के लिए '**कराल**' ही कहा जाता है। नराउली और खरओं के सम्बन्ध में कहा जाता है कि—

नराउली खरएनु ते बोली करि-करि लम्बी नारि।
तुम सँग बीरन ! हर कूँ करिदेउँ सेहौ और करार॥[2]

अगले खरए से भी आगे यदि नरे से जूआ बाँध दिया जाय तो हल बहुत गहरा और कड़ा चलता है जिसे **गरारा करना** कहते हैं।

§३१—जब किसान खेत से हल को जूए पर उलटा लटकाकर लाता है तब उसे **हरमोट** (सं० हलीष×वोढ़न) **लाना** कहते हैं। इस प्रकार की प्रक्रिया में हल की पनिहारी को जूए में हिलगा दिया जाता है और हर्स धरती पर घिसटती हुई लाई जाती है।

§३२—हर्स के नीचे के सिरे को कुड़ के मध्य भाग में ठोककर उसके सिरे के छेद में एक छोटी लकड़ी आर-पार ठोक देते हैं, जिसे **गोखरू** या **बड़ैर** कहते हैं। पथे के गोखरू की भाँति ही बड़ैर काम करती है। कुड़ के आगे की ओर हर्स के ऊपर के छेद में एक लकड़ी ठुकी रहती है, जिसे **गौंगरा** कहते हैं। हर्स के नीचे उसी छेद में एक और लकड़ी ठुकती है जो **पाता, करारी** (खैर में) या **कराई** (छाप० में) कहाती है। **गौंगरा** और **पाता** कुड़ के छेद में आगे की ओर होते हैं। इन दोनों के बीच में हर्स का नीचे का सिरा रहता है। यदि हर्स के नीचे से पाता निकाल लिया जाय और ऊपर का गौंगरा छेद के अन्दर और अधिक ठोक दिया जाय तो हल खेत में सेहा चलने लगता है। यदि पाता अन्दर की ओर अधिक ठोक दिया जाता है तो हल **अनिया करार** (कराल अनीवाला अर्थात् फाले की नोक को धरती में घुसाकर चलनेवाला) हो जाता है। पाता हल को कड़ा बना देता

---

[1] जब राम के नाम के साथ हल, फाला और कूँड़ को काम में लाया जाता है तब भगवान् की कृपा से किसान का ज्वारा उमड़ पड़ता है।

[2] लम्बी गर्दन करके नराउली खरओं से कहने लगी कि हे भाइयो! तुम्हारा साथ पाकर मैं हल को सेहा और करार कर देती हूँ।

है। करार अनी (= कड़ी नोंक) का हल गहरा कूँड़ बनाता है। कुड़ के पीछे हर्स के सिरे के नीचे जो लकड़ी लगाई जाती है, उसे **सेवटो** कहते हैं। करारी और गाँगरे को सामान्यतया **फाना** कह देते हैं। हर्स के ऊपर लगा हुआ गाँगरा यदि कुड़ के छेद में से निकल जाय तो हर्स भी कुड़ से अलग हो जायगी। गाँगरे की निम्नांकित गर्वोक्ति में सार है—

'नाक उठाइकें बोल्यौ गाँगरौ। सब भइयन में मैं हूँ चाँगरौ।
जौ मैं लैजाउँ नेंक मरोरा। देखिलेंउँ खैलन के जोरा॥'[1]

§३३—गाँगरा जब ढीला हो जाता है तब हर्स हिलने लगती है। उस तरह के हिलने के लिए **'करकना'** धातु प्रचलित है। कहा जाता है कि **हल-करकता** है। लोकोक्ति प्रचलित है—
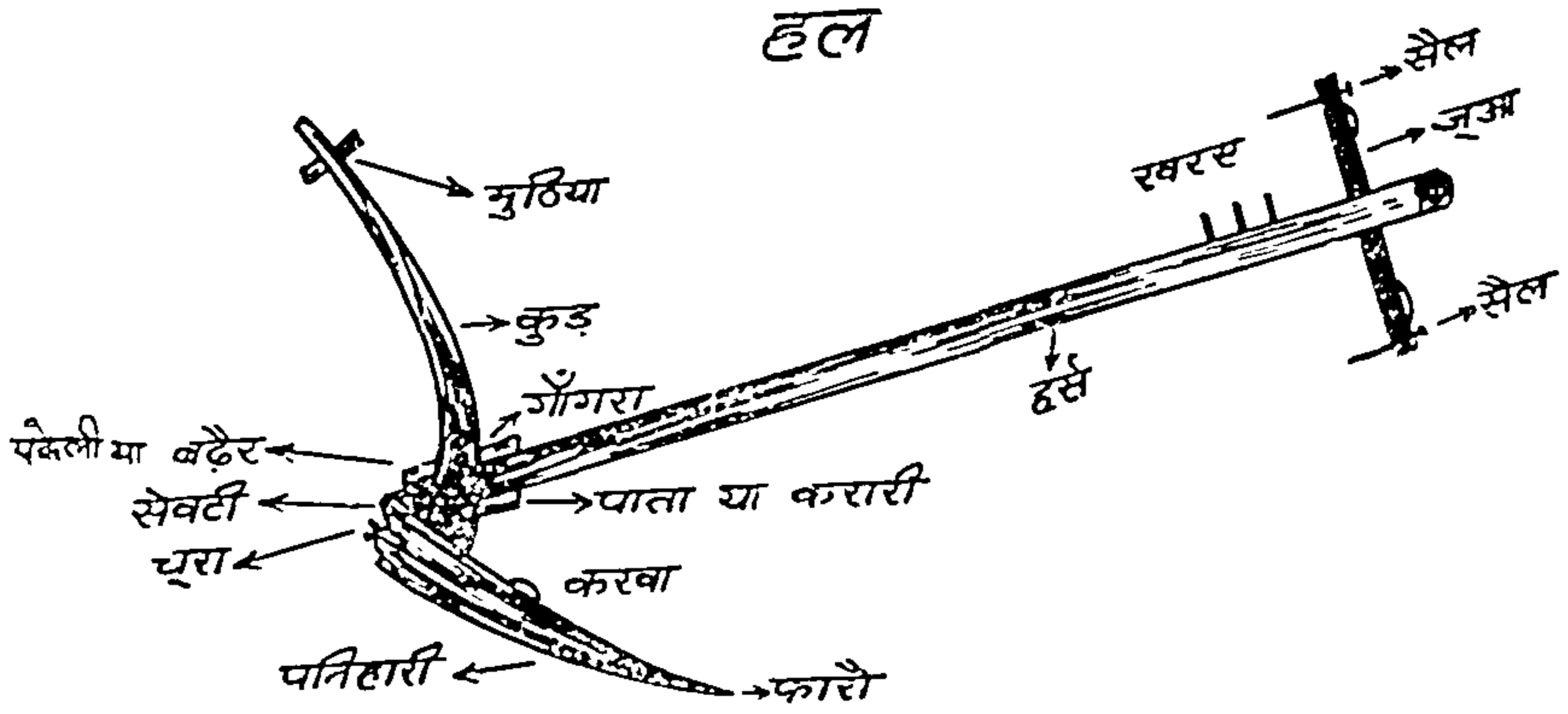
[रेखा-चित्र ४]

[चित्र ४]

"हर्स हँसीली जुआ न नीकौ, और राम कौ नाम पचारी।

ठाकुर जी की महरि होइ, तो बसुधा नाईं टरैगी टारी॥"[2]

§३४—हल के जूए में मुख्यतः चार छेद होते हैं। अन्दर के दो छेदों में लगभग १२-१६ अंगुल की दो लकड़ियाँ लगी रहती हैं जिन्हे **पचारी** कहते हैं। जुए के किनारे की लकड़ियाँ **सैलें** कहाती हैं। प्रत्येक बैल की गर्दन पचारी और सैल के बीच में रहती है। जूए (सं० युग) के सिरों पर सैलों से सम्बन्धित चमड़े की चौड़ी पट्टी की भाँति **जोते** (सं० योक्त्र) रहते हैं जो बैलों की गर्दन रोकते हैं।

---

[1] गाँगरा अभिमानपूर्वक कहने लगा कि मैं सब भाइयों में चंगा (हृष्ट-पुष्ट) हूँ। हल चलते समय यदि मैं तनिक करवट लेकर निकल जाऊँ तो फिर खैलों (सं० उक्षतर—उक्खयर—खयर—खइर—खैर—खैल = जवान बैल; उक्षतर-अष्टा० ५।३।९१) की शक्ति अच्छी तरह से देख लूँ।

[2] चाहे हर्स हँसीली हो अर्थात उसे देखकर लोग चाहे हँसें, जुआ अच्छा न हो और पचारी (जुए में सैलों से भीतर की ओर लगी हुई दो लकड़ियाँ) भी बहुत कमज़ोर हों, लेकिन तो भी भगवान् की कृपा हो तो धन-सम्पत्ति अवश्य मिलेगी; वह टालने से भी न टलेगी।

अध्याय ७

सुहागा

§३५—जुते हुए खेत को चौरस करने के लिए उसमें जो लकड़ी का एक चौड़ा और भारी तख्ता-सा फेरा जाता है, उसे **सुहागा** (सं० सौभाग्यक—सोहग्गअ—सोहागा—सुहागा = खेत की भूमि को सौभाग्य या सौंदर्य देनेवाला), **पटेला** (इग० में), **साहिल** (खैर और खुर्जे की सीमा-सन्धि पर) या **हासिर** (सादा० में) कहते हैं। छोटा सुहागा **सुहगिया** या **पटेलिया** कहाता है। सुहागे में प्रायः चार बैल और सुहगिया में दो बैल जोते जाते हैं। सुहागे के सम्बन्ध में पहेलियाँ प्रचलित हैं:—

"घस पाँय घस पाँय। तीन मूँड़ दस पाँय॥"[1]

... ...

"बारह नैना बीस पग, और छूयानवै दन्त।
ह्याँ हैकैं इतने गये, खोजु न पायौ कन्त॥"[2]

सुहागा या पटेला
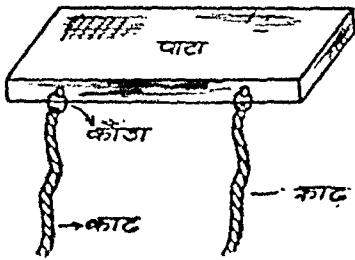
[रेखा-चित्र ५]

सुहागा फिरानेवाला व्यक्ति **सुहागिया** कहाता है।

§३६—**सुहागे के अंग**—सुहागे के आगे कुन्दों में जो लोहे के मोटे-मोटे कड़े पड़े रहते हैं, वे **कौंड़ा** कहाते हैं। उन कौंड़ों में बर्तेड़े (बर्त के टुकड़े) पड़े होते हैं, जो जूए को कौंड़ों से जोड़ते हैं। बर्तेड़ों से ही सुहागा खिचता है। उन बर्तेड़ों को **काढ़** कहते हैं। तहसील खैर के गाँवों के सुहागों में कुन्दों-कौड़ों की जगह लकड़ी की खुटियाँ ठुकी रहती हैं जो **मरुए** या **मड़ुए** कहाती हैं।

अध्याय ८

माँझा

§३७—लकड़ी का एक यंत्र, जिससे किसान खेत में मेंड़ तथा क्यारी-बरहा बनाता है, **माँझा** या **मौंजा** (सं० मध्यक—मज्झअ—माँझा—माँजा) कहाता है।

---

[1] चलने में पाँव घिसते हैं। उसके तीन सिर और दस पाँव हैं। सुहागे को फिरानेवाले व्यक्ति का एक सिर और दो बैलों के दो सिर मिलकर तीन सिर हुए। उनके पाँवों की संख्या दस हुई।

यह सुहगिया से सम्बन्धित पहेली है।

[2] सुहागे में चार बैल लगते हैं और दो आदमी सुहागे पर खड़े होकर उसे फिराते हैं। इसीलिए नयन बारह, पाँव बीस, दाँत छूयानवै (दोनों आदमियों के ६४ दाँत + चारों बैलों के ३२ दाँत) कहे गये हैं। ये इतनी संख्या में खेत में होकर जाते हैं, परन्तु किसान-पत्नी नहीं [illegible]।

§३८—माँझे में चार वस्तुएँ मुख्य होती हैं—(१) माँजा, (२) डाँड़ा या सौल, (सादा० में) (३) जाती, (४) चिरइया।

नीचे का चौड़ा तख्ता जो खेत की मिट्टी को बटोरता (इकट्ठा करता) है, माँजा कहाता है। इस तख्ते के दोनों कुंदों में सन की दो रस्सियाँ पड़ी रहती हैं जिन्हें जोतियाँ कहते हैं। दोनों जोतियों को आपस में मिलाकर फिर आगे की रस्सी में एक छोटी-सी लकड़ी बाँध देते हैं, जिसे चिरैया कहते हैं। माँजे के बीच में लाटी की भाँति का एक डंडा जड़ा रहता है जो सौल या डाँड़ा (सं० दण्डक) कहाता है। किसी-किसी माँजे के डाँड़े के ऊपरी सिरे के पास एक लकड़ी ठुकी रहती है जिसे हतिया कहते हैं। छोटा माँजा मँजिया कहाता है।

[रेखा-चित्र ६]

§३९—खेत में माँजे से जो काम किया जाता है वह माँजे करना कहाता है। माँजे करनेवाले व्यक्ति को माँजिआ कहते हैं। जोतियाँ पकड़कर खींचनेवाला खैंचा कहाता है। माँजिआ और खैंचा मिलकर ही बरहा, किरिया और किआरे बनाते हैं। बड़े आकार की किरियाँ (क्यारियाँ—सं० केदारिका) नख या पैल कहाती हैं। बम्बे की भराईवाले खेतों में प्रायः पैलें ही बनाई जाती हैं। खेत के बीच में बने हुए बरहे को मंझा या लड़ूरा (सादा० में) कहते हैं।
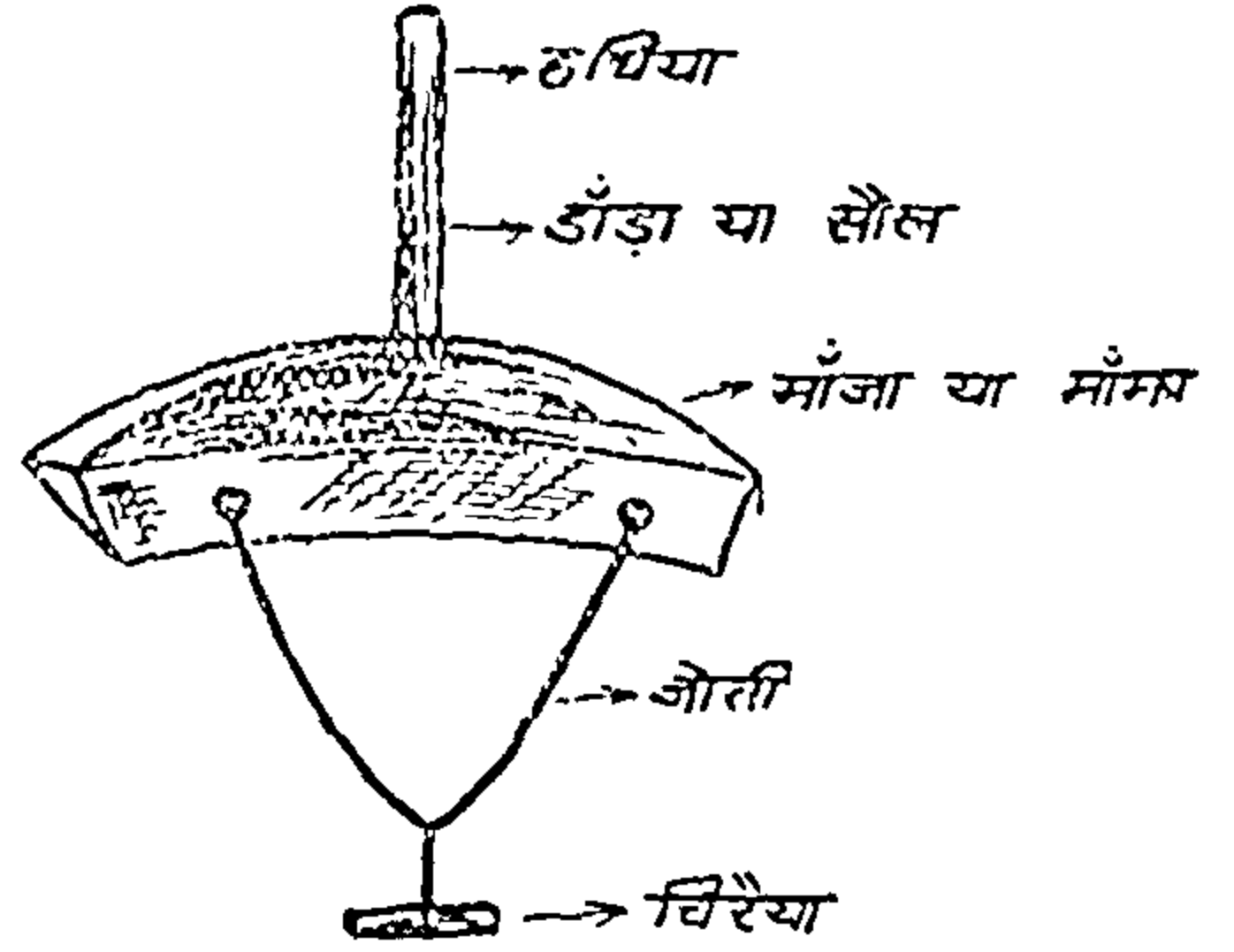
अध्याय ९

खुदाई के यंत्र

§४०—खुदाई में काम आनेवाला लोहे और लकड़ी से बना हुआ एक औज़ार पामरा,

खुदाई के दो औज़ार
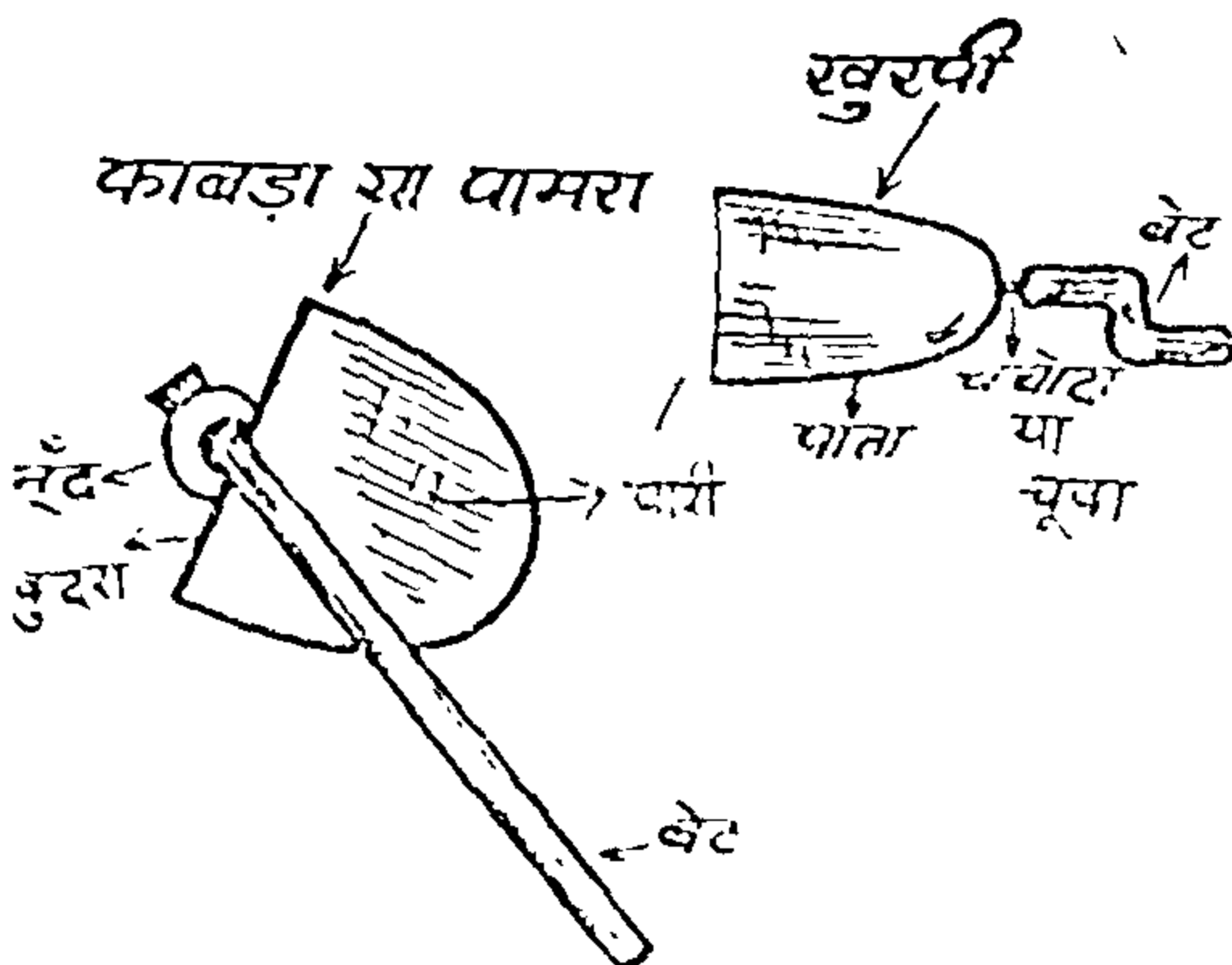
[रेखा-चित्र ७, ८]
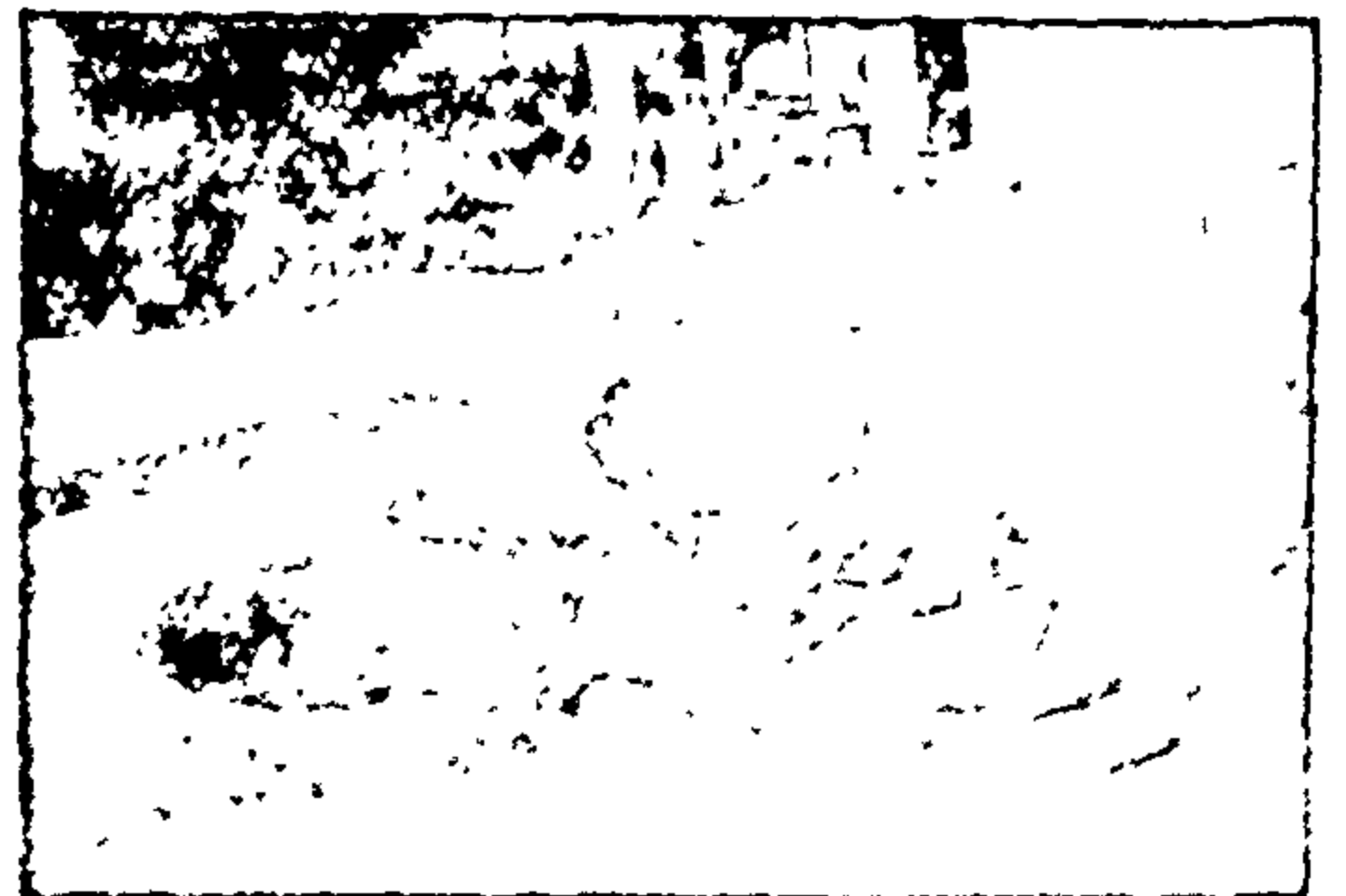
[चित्र ५]

पावरा (कौल और हाथ० में), फावड़ा (खुर्जे में), कस्सा, कसला (अनू० में) या कुदरा कहाता

है। छोटे फावड़े को **कसिया** या **कुदरिया** (सं० कुद्दालिका) कहते हैं। डेढ़-दो बालिश्त लम्बा एक औज़ार **खुरपा, खुरपी** या **खुरपिया** (सं० क्षुरप्रिका) कहाता है।

§४१—**फावड़े के अंग**—फावड़े का वह अंग जो लोहे का होता है और जिससे धरती खुदती है, **खुद्दा** या **कुरदा** कहाता है। खुद्दे के पीछे का ऊपरी भाग जो गोल होता है **मूँद** (सं० मुद्ग) कहाता है। एक मोटा और छोटा डंडा-सा, जो मूँद में ठुका रहता है, **बेंट** कहाता है। मूँद में एक पत्ती लगी रहती है; उस पत्ती के ऊपर खुद्दे को जमाकर लोहे की मजबूत कीलें विशेष ढंग से जड़ी जाती हैं। उस क्रिया के लिए **झंडना** धातु का प्रयोग होता है। यह अंग० 'रिवेटिंग' के अर्थ में है। इसी अर्थ में **ठरना** (कास० में) धातु भी प्रचलित है।

§४२—मूँद में ठुका हुआ बेंट यदि हिलता है तो उसे **ढिल्ला बेंट** कहते हैं (सं० शिथिल—प्रा० सिढिल—ढिल्ला)।

§४३—**खुरपी के अंग**—लोहे की चोड़ी और लम्बी पत्ती सी **पाता** कहाती है। पाते का अग्र भाग जिसकी पैनी धार से घास खुदती है **अगेल** कही जाती है। पाते का पतला और नोकीला भाग, जो बेंट के अन्दर घुसा रहता है, **चँचोदा, चचुआ** (खैर में) या **चूका** कहाता है। बेंट के चूकेवाले सिरे पर लोहे की एक गोल पत्ती चढ़ी रहती है जिसे **स्याम** या **स्यान** कहते हैं। खुरपी का चँचोदा इतना महत्त्वपूर्ण शब्द है कि इसके आधार पर एक मुहावरा भी प्रचलित है—कोई झंझट जब पीछे लग जाता है तब '**चँचोदा लग जाना**' मुहावरे का प्रयोग होता है।

विभाग ३

उगी हुई खेती की रक्षा के साधन और उपकरण

अध्याय १०

§४४—साग, तरकारी, तरबूज और काँकरी (ककड़ी) आदि की खेती **बारी** कहाती है। बारी की **रखाई** (रखवाली) रात के समय करना बड़ा आवश्यक है। बारियों में किसान आदमी का-सा एक पुतला बनाकर खड़ा कर देते हैं, ताकि रात को जानवर बारी **उजाड़ने** (बरबाद करने) न आ सकें। उस पुतले को **झोंझपा** (कोल में), **बिदूका** (इग० में) या **बिजूका** (हाथ० और सादा० में) कहते हैं। इसके लिए संस्कृत में 'चंचा' शब्द प्रयुक्त हुआ है।[1]

§४५—**झोंझपे के अंग**—झोंझपे के ऊपर मिट्टी का एक काला बर्तन **औंधा** (उलटा) करके रख दिया जाता है। वह दूर से सिर जैसा मालूम पड़ता है। उस सिर को **गुम्हौंड़ा** (सं० गोमुंड)[2]

---

[1] पाणिनि के सूत्र 'लुम्मनुष्ये' (अष्टा० ५।३।९८) का अर्थ करते हुए सिद्धान्तकौमुदीकार ने लिखा है—'चंचातृणमयः पुमान्। चंचेव मनुष्यश्चंचा।'—सिद्धांतकौमुदी, तत्त्वबोधिनी व्याख्या संवलिता, सूत्रांक, २०५२।

[2] 'सुबन्धु कृत वासवदत्ता (जीवानन्द विद्यासागर संस्करण, पृ० ९१) में मुझे गोमुण्ड-स्थाणु (बैल का सिर) का प्रसंग मिला। यह गोमुंड खेत के सीमासूचक चिह्न के रूप में स्थापित किया जाता था।'

—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल: ए यूनिक टेराकोटा प्लाक फ्रॉम राजघाट, बुलेटिन नं० ३, प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम बंबई, १९५३ पृ० ८२।

या **मुड़ेड़ा** कहते हैं। ओझके की गर्दन का भाग **कंधेर** और हाथ **हतिये** कहाते हैं। हतिये से नीचे का भाग **मँझेड़ा** या **मँझा** कहाता है। जो भाग धरती में गड़ा रहता है, उसे **पाँता** कहते हैं।

§४६—खेत में **पाँहे** (सं० पशु) न घुस सकें, इसलिए फसल की सुरक्षा के लिए खेत के चारों ओर बबूल और बेरिया आदि वृक्षों की कँटीली सूखी डालियाँ गाड़ दी जाती हैं, जिन्हें **झाँकर** या **ढाँकर** कहते हैं। किसी-किसी खेत की **चौहद्दी** (=चारों ओर की मेंड़े) डेढ़-ढाई हाथ ऊँची कर दी जाती है, जो **ढोड़ा** या **ढोरा** कहाती है। खेती को उजाड़ने वाले जंगली पशु किसान की बोली में **बरहेलुए जिनावर** (जंगली जानवर) कहाते हैं। उनको डराकर भगाना **बिड़ारना** कहाता है। सूरदास ने 'बिड़रना' धातु का प्रयोग इसी अर्थ में किया है।[1]

[रेखा चित्र ६]

§४७—खेत में उगा हुआ बहुत छोटा और कोमल नवांकुर **कुल्ला, किल्ला** या **कुल्हा** कहाता है। खेत में किल्ला उगना **किल्ला फूटना** कहाता है। किल्लों को फूटा हुआ देखकर कुछ जानवर (पशु और पक्षी) उन्हें खाने के लिए आ जाते हैं। किसान उन्हें भगाते हैं ताकि वे **पतचाँट** (=पत्तियों को खा लेना) न करने पावें। वास्तव में किल्ले और पत्तियों के आधार पर ही किसान का जीवन निर्भर है। लोकोक्ति प्रचलित है—

"ब्यौपारी है धनजीवा। पर किसान है पतजीवा।"[2]

§४८—किसान खेत रखाने के लिए किसी पेड़ पर अथवा तीन चार खम्भे गाड़कर उनके ऊपर [illegible] मचान-सा बनाता है। उस मचान को **महरा, रहैंगा** या **टाँड़** (मुल० में) कहते हैं। महरे पर [illegible] [illegible] खेत को अच्छी तरह देख सकता है।

§४९—[illegible] में [illegible] रस्सी (सं० रश्मि) से एक विशेष [illegible] बनाया जाता है जिसे **गोफन** या **गुफना** कहते हैं। उसमें रखकर जो **ढुगा** या **ढेल** [illegible] और [illegible] वह **गिल्ला** कहाता है। गोफन का वह [illegible] **फटका** [illegible] इसी अर्थ में 'फटिका' शब्द का [illegible] **जोतियाँ** [illegible]। दोनों [illegible] **फिकना** [illegible] **गुफनियाँ** [illegible] गोफन घुमाने के बाद [illegible] के अलग होते ही गोफन का गिल्ला निकलकर [illegible] **तुर्रा** [illegible]। तुर्रा [illegible] होता है। तुर्रे की [illegible] **गोफन की चटकन** [illegible]।

[1] [illegible] बिलंब अविलि दाह बिड़ुरे [illegible]।"
—सूरसागर, [illegible] प्रचारिणी सभा, प्रथम संस्करण, [illegible]

[2] व्यापारी का [illegible] किसान का जीवन खेत की पत्तियों पर निर्भर है।
[illegible] [illegible] से सुन्दर है।
—देवस्मिता : हरिबल्लभ, [illegible], [illegible] प्रयाग, [illegible]

§५०—बर्त के टुकड़े के एक सिरे पर किसान सन की रस्सी का एक तुर्रा बाँध लेते हैं। तुर्रा लगा हुआ बर्तौड़ा (बर्त का टुकड़ा) **पटकना** या **पटकौड़ा** कहाता है, क्योंकि वह जब घुमाने के उपरान्त झटका देकर चटकाया जाता है, तब पट-सी आवाज़ करता है। **पटकौड़े** के तुर्रे को **पटकनी** भी कहते हैं।

§५१—बहुत ज़ोर की आवाज़ करने के लिए किसान लोग महरे पर रखकर एक विशेष तरह
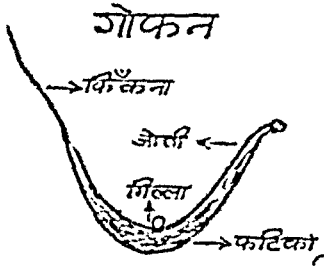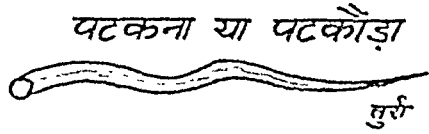
[रेखा-चित्र १०] [रेखा-चित्र ११]

का बाजा बजाते हैं जिसे **घुपंगड़ा** कहते हैं। घुपंगड़े में से शेर की दहाड़-सी आवाज़ निकलती है। घड़े से छोटा मिट्टी का एक बर्तन, जिसका मुँह गोल और बड़ा होता है, **चपटा** कहाता है। चपटे के मुँह पर चमड़ा मढ़कर घुपंगड़ा तैयार किया जाता है। मोर की पूँछ की लम्बी डंडी-सी **मोरपँच** या **डढ़ीर** कहाती है। डढ़ीर को घुपंगड़े के चमड़े और चपटे के मध्यवर्ती छेदों में डाल दिया जाता है। पानी से डढ़ीर को **भिजोकर** (भिगोकर=तर करके) छेदों में ऊपर-नीचे खींचते हैं। तब घुपंगड़ा बड़ी **घर्राहट** (घर्र-घर्र की आहट अर्थात् आवाज) करता है। छोटे आकार का घुपंगड़ा **घुपंग** कहाता है। लम्बी-चौड़ी इधर-उधर की बातें बनाने के अर्थ में **'घपंग मारना'** मुहावरा भी प्रचलित है।

विभाग ४

फसल काटने, ढोने और तैयार करने के साधन, औज़ार और वस्तुएँ

अध्याय १

§५२—किसान के फसल काटने के औज़ार ये हैं—(१) **दराँत** (२) **दाता** (३) **खुरपी** (४) **गड़ासा**।

§५३—दराँत को हँसिया, हँसिया, हसिया या हँसुआ भी कहते हैं। दराँत (सं० दात्र[1] > दातर > दरात > दराँत) का छोटा रूप **दराँती** या **हँसली** कहलाता है। हँसिया या दराँत के लिए हेमचंद्र ने 'असित्र' (हे० ना० मा० १।१४) शब्द का उल्लेख किया है।[2] मानव के ...

---

[1] "... दात्रं च ... ।"—ऋग्० ८।७८।१०

अर्थात् हे इन्द्र! मैं ऊपर आशा करके ही मैं यह दराँत अपने हाथ में ले रहा हूँ।

[2] "असित्रं दात्रे।"—देशीनाममाला, ... १।१४

(नैगम का० २।१।२) में बताया है कि उत्तर भारत के लोग 'दात्र' और पूरब के 'दाति' कहते हैं।[1] लोक-शब्द 'असिअ' वै० सं० 'असित' से विकसित है।[2]

§५४—दाँत को **दाहा, दाव** (कोल में), या **बाँक** (हाथ० में) भी कहते हैं। इससे पेड़ की **गुद्दियाँ** (शाखाएँ) काटी जाती हैं।

§५५—जब ज्वार-बाजरे के पौधों को काटकर छोटे-छोटे **गँडेलों** (=छोटे टुकड़े) के रूप में बदल दिया जाता है तब उसे **कुट्टी** या **कुटी** कहते हैं। कुटी काटने का औजार **गड़सा** या **गड़ासा** (सं० गंडासि) कहाता है।

§५६—गड़से की लकड़ी का हत्था **बेंट** कहाता है। बेंट के आगे का भाग, जिसके नीचे गड़से के दो चूके सूराखों में ठोक दिये जाते हैं, **जारा** या **जारी** कहाता है। छोटा गड़सा **गड़सी** या **गड़सिया** कहाता है। गड़से के दोनों चूकों को जारे के छेदों में ठोक दिया जाता है और उन छेदों में कभी कभी **थाँस** (एक डेढ़ अंगुल लंबी लकड़ी) भी लगाई जाती है ताकि चूके कसे रहें।
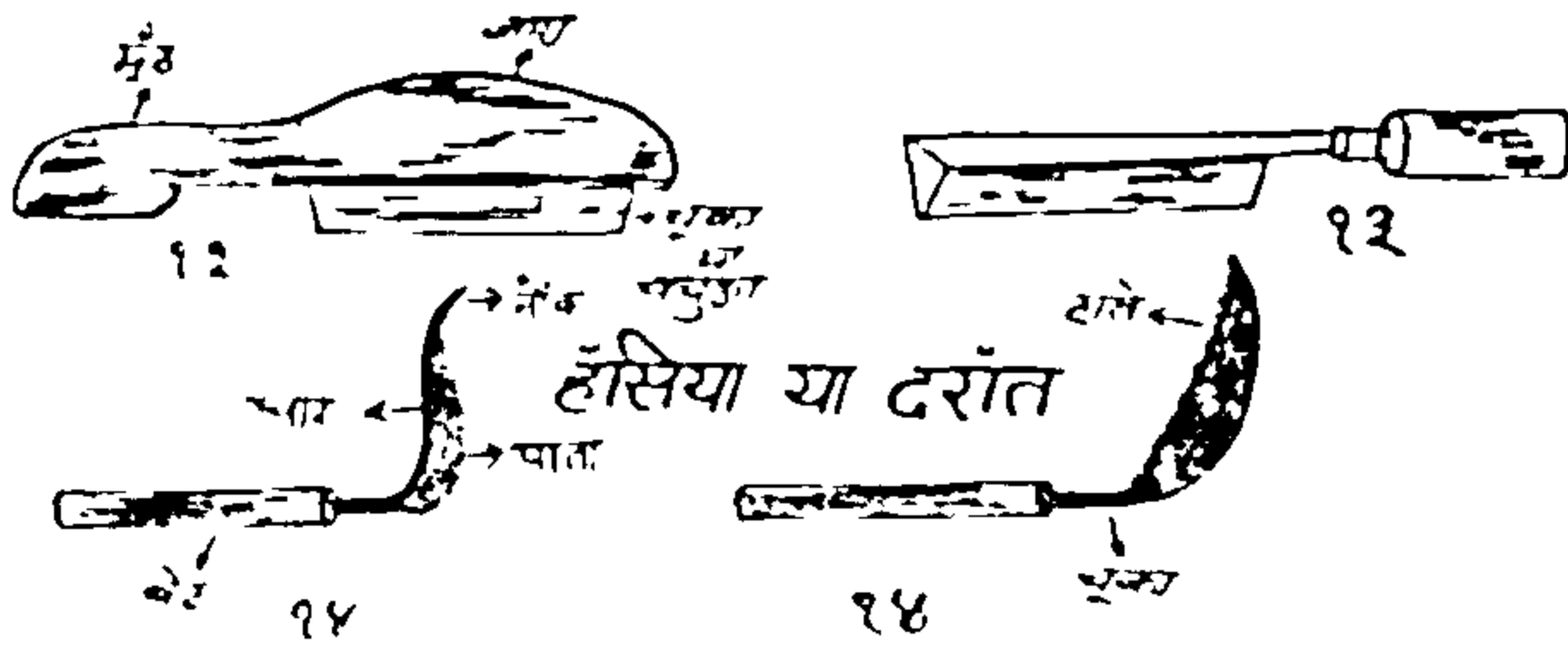
[देखो चित्र १२, १३, १४]

§५७—थोड़ी **करब** (ज्वार-बाजरे के काटे हुए पौधे) की कुट्टी करना **'मूँठा मारना'** कहाता है। छोटा मूँठा **मूँठी** कहाता है। चारों उँगलियों और अँगूठे के बीच में जितनी करब समा सकती है, उतनी मात्रा **मूँठा** या **मुट्ठा** कहाती है।

§५८—जब कई मुट्ठों को मिला दिया जाता है तब वह मात्रा **जेट** कहाती है। जेट भर करब दोनों बाँहों की घिराई (गोलाई) में समाती है। कई जेटों का सामूहिक रूप जो सिर पर रखकर ही ले जाया जा सकता है, **बोझ** कहाता है। **मक्का, जौंड़री** (ज्वार), **बाजरा** आदि को काटकर उनके बोझों को किसान खेत में खड़ी हालत में एकत्र करके रख देता है, जिन्हें **झूआ** कहते हैं। तिरछी अर्थात् आड़ी हालत में तले ऊपर धरती पर रक्खे हुए बोझ **सजा, जाँगी** (खैर में) या **गरी** (सादा० में) कहाते हैं। यदि सजा एक गोल घेरे के रूप में जमाया जाता है तो **चाँक** (सं० चक्र—चक्क—चाक—चाँक) कहाता है।

§५९—**फसल ढोने के साधन**—हरी करब के तने को **फटेरा** कहते हैं। फटेरे को ऐंठकर उससे किसान जब बोझ बाँधता है, तब उसका मुड़ाहुआ रूप **मोरा** कहाता है। जौ, गेहूँ, चना आदि की नालियों का कुचला रूप, जिसमें से दाँय द्वारा अन्न का दाना अलग कर दिया जाता है, **भुस** (सं० बुस, बुस) कहाता है। भुस को किसान प्रायः झोलियों और पालियों में भर कर ढोता है। रस्सियों से बनाया हुआ बड़ा-सा जाल-सा, जिसमें बड़े-बड़े गोल छेद-से होते हैं **झोंगे** (सं० [illegible]; देखो० [illegible]—[illegible] ३।४६) कहाता है। [illegible] से बुना हुआ [illegible]

[1] "दात्रिर्लवनार्थे प्राच्येषु दात्रमुदीच्येषु"—यास्क, निरुक्त, नैगम काण्ड २।१।२

[2] "वैदिक और सूत्र में हँसिया के लिए 'असित' शब्द प्रयुक्त हुआ है। उसी से लोक में 'हँसिया' शब्द बना है। किन्तु इसका साहित्यिक प्रयोग वैदिक काल के उपरान्त फिर देखने में नहीं आया।"

—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : पृथिवीपुत्र, प्रथम संस्क० १९४९, पृ० ५५।

जाल-सा **पासी** (सं० पाशिका > पासिआ > पासी) कहाता है। इस + धनात्मक रूप में जुड़ी हुई दो रस्सियाँ, जो घास, **रुजिका** (= पशुओं का एक हरा चारा) आदि के बाँधने में काम आती हैं, **चौंवरी** कहाती हैं। जिस स्थान पर किसान भुस तैयार करता है, वह **पैर** (सं० प्रकर > पयर > पइर > पैर) या **खलिहान** (सं० खलधान > हि० श० नि०) कहाता है। मोटे सूत की बनी हुई चादरें **खोर** और **पिछोरा** कहाती हैं। खोरों और पिछोरों में भी पैर से भुस **घेर** (वह स्थान या बाड़ा जहाँ किसान के पशु रहते हैं) में लाया जाता है।

§६०—**डलियां और उनकी बुनावट**—आकार और आकृति के विचार से डलियाँ कई तरह की होती हैं। अरहर, सन (झाड़ी) या अन्य किसी पौधे की पतली और नरम **लौंदों** (लकड़ियों) से बनी हुई वस्तु, जिसमें कुछ रख सकें **डलिया** (सं० डल्लक > डल्लअ > डला > स्त्री० डलिया) कहाती है। डलिया से बड़ा पात्र **झाल, झालि, झल्ला** (खुर्जे में) या **झाइन** कहाता है। डलिया और झाल प्रायः **बंगा** और **देसी** अरहर की लौंदों से बनती हैं। **साबित** (अखंड) लौंदें **साजी** और बीच से चिरी हुई **चिरैमा** कहाती हैं। जिन लौंदों के ऊपर का छिलका-सा उचेल लिया जाता है, वे **नुकी-लौंदें** कहाती हैं। छोटी डलिया जो साजी या चिरैमा लौंदों की बुनी जाती है, **छबड़ा** या **छबरा** कहाती है। छोटे छबड़े को **छबरिया** कहते हैं।

§६१—छोटा छबरा जिसका पेट गहरा हो **फतना** या **अधोड़ी** कहाता है। जिस छबरे से किसान पैर (खलियान) में अपनी **रास** (सं० राशि = अन्न और भूसे का मिला हुआ ढेर, अन्न का ढेर) बरसाता है, उसे **बरसौना** कहते हैं। बरसौने से छोटा छबरा **पलरा** या **पल्ला** कहाता है। पलरे के **फिनाठे** (किनारे) प्रायः एक-दो अंगुल ऊँचे होते हैं। बहुत छोटे गोल टोकरे, जो गेहूँ की नलियों, बाँस की खपच्चों और खजूर के **पलिगों** (= पत्तों) से बुने जाते हैं, **बोइये** कहाते हैं। आकार में बोइयों के समान छोटे-छोटे पात्र **कुन्ना, कुनिया, टुकरिया** आदि कहाते हैं।

§६२—एक गहरा छबरा **ओड़ा, ओड़ी** या **उड़ैना** (खुर्जे में) कहाता है। बाँस की खपच्चों से **बेगरी** (विरल) बुनी हुई गहरे पेट की डलिया **खाँचौ** या **झल्ली** कहाती है।

§६३—एक प्रकार की गहरी बड़ी डलिया, जिसमें एक मन अनाज आ जाता है, **मनौटा** कहाती है। थालीनुमा छोटे किनारों की छबरियाँ, जिनके पेंदे थालियों के पेंदों से मिलते-जुलते होते हैं, **छींवे** कहाती हैं। चिरी हुई लकड़ियों से बने हुए गहरे पेट और छोटे मुँह के टोकरे **पिट्ट** कहाते हैं। गहरी झालें-सी, जिनके नीचे किसान प्रायः बकरी के बच्चे दाब देते हैं, **टापरे** कहाती हैं।

§६४—कागज आदि गलाकर और कूटकर उसकी लुगदी से बननेवाले पात्र **ढला** या **डला** (दे० ना० मा० ४।७ डल्ल; पा० स० म० डल्ल, डल्लग-देशज०) कहाते हैं। बोइये से छोटी **बोअनी** होती है। कुन्ना या कुनियाँ लगभग बोअनी के आकार की ही होती हैं। कुन्ने के सम्बन्ध में लोकोक्ति प्रचलित है—

"सोवत सोवत सीखैगी। भरि-भरि कुन्ना पीवैगी ॥"[१]

§६५—**लुबरा** (देश० लुम्बय-पा० स० म०) जब टूट जाता है और उसकी पेंदी नाली सी होकर रह जाती है, तब उसे **छीतरी** कहते हैं। अरहर या सन (झाड़ी) की पतली और नरम लौंदें **झांकर** या **फैना** कहाती हैं। जो फैने छबरों की बुनाई में काम नहीं आते, वे बेकार हो जाते हैं, क्योंकि वे टुकड़ों के रूप में बहुत छोटे-छोटे होते हैं। उन्हें **खोंता** कहते हैं। घास का एक बण्डल-सा, जिसे किसान जाड़ों में तापते हैं, **अग्याना** (सं० अग्निस्थान > अग्गिठान > अग्गिठाना > अगयाना) कहाता है। खोंता प्रायः अग्याने में जला दिया जाता है।

---

[१] शनैः-शनैः अभ्यास करने से मनुष्य योग्य बन जाता है। बाजानार बहू के प्रति कहा गया है कि शनैः-शनैः काम करते-करते तू सब सीख जायगी। कुछ दिन बाद में कुन्ना भर-भरकर पीसने लगेगी।

§६६—कुछ लौदों को पानी में गलाकर उनपर से पर्त उतारा जाता है। उस पर्त को **खपटार, छुकुकल** या **छिकला** (सं० शल्क) कहते हैं। पतली और छोटी खपटार **छिलपिन** कहाती है। लौदों पर से छिलपिन उतारने के लिए खड़ा दराँत चलाया जाता है। इस क्रिया को **गोरना** कहते हैं।

§६७ - छबड़े की बुनाई में पेंदे पर चार-चार लौदें लगाई जाती हैं जो **चौकड़ी** कहाती हैं। चिरी हुई लौदों के छबड़े के पेंदे में **दुकड़ी** (दो लकड़ियों का जोड़ा) लगती है। जब चौकड़ी या दुकड़ी में होकर दूसरी लौदें डाली जाती हैं तब उस क्रिया को **कामनि फाड़ना** कहते हैं। छबड़े की किनारी पर **काँठरें** (=नरम लौदें) लगती हैं। अतः किनारी बुनना **'काँठर लेना'** कहाता है। छबड़े की बुनावट में जो लौदें खड़ी दशा में डाली जाती हैं, वे **ओर** कहाती हैं। किनारे पर जब लौदें मोड़ी जाती हैं, तब उसे **मुरकामन** कहते हैं।

§६८—रास का भुस और **लाँक** (=गेहूँ, जौ आदि के कटे हुए पौधों का ढेर) के ठीक करने में जो औजार काम आते हैं, वे किसान के पैर के प्रमुख साधन हैं। उनमें **साँकी** (खुर्जे में **जेली**) और **पँचागुरा** (सं० पंच + अंगुलक) अधिक काम आते हैं। पैर को जिस बुहारी[1] अर्थात् झाड़ू से साफ किया जाता है, उसे **गुनैन** या **सोहनी** (सं० शोधनी > सौहनी > सोहनी) कहते हैं। **सार** (बैलों या अन्य पशुओं की शाला) को साफ करने के लिए जो लौदों की झाड़ू काम आती है, वह **खरैरा** कहाती है।
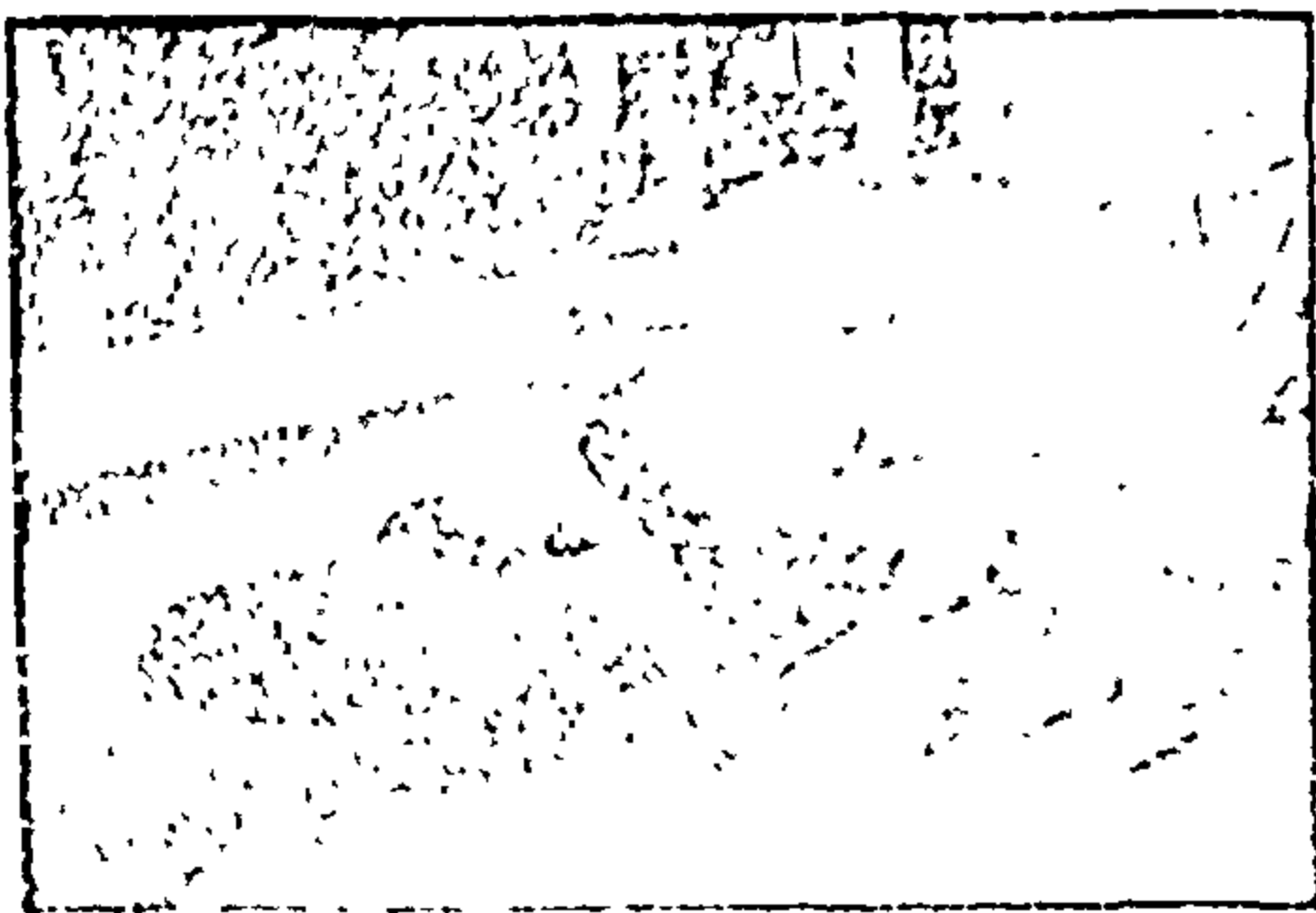
[चित्र ५]
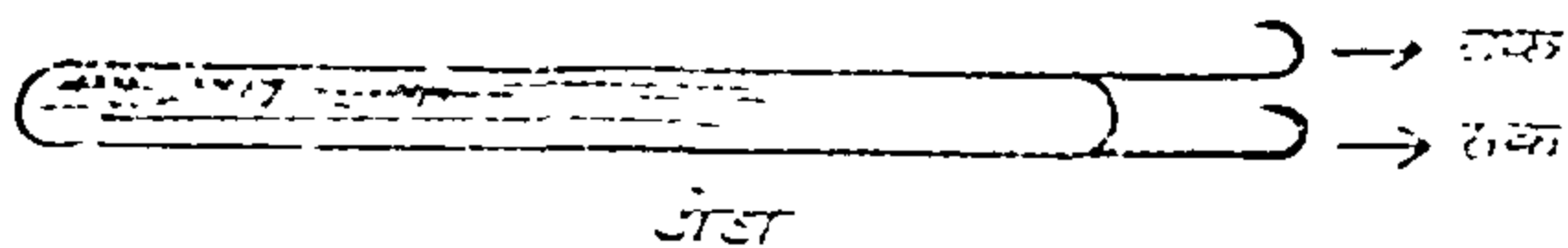
§६९—लकड़ी की एक चीज जिसकी आकृति फावड़े से मिलती है **लदपामगे, लदपावरी** (देश० लद्दी > लीद[2] + पावरी) या

[रेखा चित्र १५]

खुटपावरी (खुर० और खुर्जे में) कहाती है। लदपावरी से चोथ, गोबर आदि हटाया जाता है। हेमचन्द्र (दे० ना० मा० २।३६) ने **'गोबर'** शब्द को देशी लिखा है। गाय, बैल आदि चौपाये एक बार में जितना गोबर गुदा से बाहर निकालते हैं, उतनी मात्रा **चोथ** कहाती है।

---

[1] सं० बहुकरी > प्रा० बहुआरी > हिं० बुहारी। 'बहुकर'—पाणिनि, अष्टा० ३।२।२१; 'बहुकरी'—महाभारत, शान्ति पर्व, १४१।१०—देखिए, डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, महाभारत के कुछ शब्द, नागरी प्र० पत्रिका, सं० २०१४, अंक ४।

[2] देश० लद्दी = गोबर—पा० स० म०।

प्रकरण २

खेत और फसल की तैयारी

विभाग १

खाद, जुताई और बीज

अध्याय १

खाद

७०—खाद और जुताई किसान की खेती के प्राण हैं। खेत में जो उगता या पैदा होता है उसे हौन कहते हैं। अच्छी हौन करने के लिए खेत में जो गोबर, कूड़ा-करकट आदि डाला जाता है, उसे पहले एक गड्ढे में गाड़कर सड़ाया जाता है। उस सड़े हुए कूड़े-करकट को **खात** या **खाद** (सं० खात)[1] कहते हैं। खात में **राख** (सं० रक्षा)[2] भी मिली होती है। खेत, खाद और पानी के सम्बन्ध में निम्नांकित कहावतें प्रचलित हैं—

'असाढ़ में खात खेत में जाइ। खत्तिनु भरि-भरि रास उठाइ॥"[3]

"खातु पानी। आप दानी॥"[4]

"खातु कूड़ौ ना मिटै, करम लिखी मिटि जाइ॥"[5]

"खातु देउ तौ होइगी खेती। नहीं तौ रहै नदी की रेती॥"[6]

"जाके खेत पर्यौ नाइँ गोबर। ता किसान कूँ जानौं दोबर॥"[7]

§७१—खाद के काम में आनेवाला सूखा गोबर **पाँस** (सं० पांशु) कहाता है। किसान खाद को गाड़ी या गधों पर लादकर खेत में पटकता है। एक बार में ले जाने के लिए **खेप** (सं० क्षेप) शब्द का प्रयोग होता है। यदि पचास बार में खाद खेत में पहुँचा तो उसे **पचास खेप** कहेंगे। यह अँग० 'इन्स्टौलमेंट' के लिए लोक-भाषा का बहु प्रचलित शब्द है।

---

[1] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृथिवी-पुत्र, पृ० २३६।

[2] "भूनिलिखित पत्रलताकृत रक्षा-परिक्षेपम्।"
—बाण: कादम्बरी, श्री हरिदास सिद्धान्त वागीश प्रणीत, बँगला संस्क० पूर्व भाग, १८५३ शकाब्द, राज्ञीगर्भवार्तागम, पृ० २६६।

[3] यदि किसान आषाढ़ मास में खेत में खाद डालेगा तो उसकी रास से खत्तियाँ भर जाएँगी।

[4] खेत का भोजन वास्तव में खाद और पानी ही है।

[5] खेत में पड़ा हुआ खाद कभी व्यर्थ नहीं जाता। चाहे कर्म लिखी बात मिट जाए, किन्तु खाद का फल अवश्य मिलेगा।

[6] खाद से ही खेती है, अन्यथा खेत नदी की बालू की भाँति बेकार है।

[7] जिस किसान के खेत में गोबर (खाद) नहीं पड़ा, उसे दुर्बल (निर्धन) किसान समझिए।

अध्याय २

जुताई

§७२—हल चलानेवाले को **हरहारा** कहते हैं। खेत जोतते समय उसी को **जोता या जुतैया** भी कहते हैं। किसान को भी **जोता** कहते हैं।

§७३—**जुताई के प्रकार**—जुताई चार तरह की होती है—(१) न्हैंनी, (२) मोटी, (३) गहरी, (४) ऊथरी (उथली)।

यदि हल के कूँड़ खेत में कुछ दूरी पर बनें तो वह **मोटी जुताई** कहाती है। बहुत निकट और मिले हुए कूँड़ **न्हैंनी जोत** कहाते हैं। **अन्निया करार** (कराल अनी का) हल से कीगई जुताई गहरी होती है। खेह हल की जुताई **उथरी** (उथली) कहाती है।

जुताई और बीज के सम्बन्ध में लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—

"न्हैंनौ जोता घन बवा, कबहुँ न पावै हानि।"[1]

* * *

"न्हौंनौ जोतूँ घन बऊँ, लम्बी खैंचूँ आड़।
हानि खेत में ऐसी आड़ि जाइ, भैंसैं लै लेउँ चार॥"[2]
"जोत भई मोटी। बीज की का खोटी॥"[3]

* * *

"बीजु परौ फलु अच्छौ देतु। जितनौ गहरौ जोतौ खेतु॥"[4]

* * *

"उथरी जोत पुरानौ बीजौ। ताकी खेती कछू न हूजौ॥"[5]

* * *

"तिल ककरी बन बाजरा तीनों चाहैं खुर्र।"[6]

§७४—**जुताई की संख्या और समय**—जिन खेतों में असाढ़ से लेकर क्वार तक निरन्तर जोत लगती रहती है, वे **असाढ़ी** या **उनहारी** कहाते हैं। असाढ़ मास की प्रारम्भिक वर्षा

[1] जो किसान अपने खेत में न्हैंनी (बारीक) जुताई करता है और घनी बुवाई करता है, वह कभी हानि में नहीं रहता।

[2] मैं यदि खेत में न्हैंनी (बारीक) जोत करूँगा, घना बीज बोऊँगा और आड़ें (क्यारियों की मेड़ें) लम्बी बनाऊँगा तो खेत में इतनी बढ़िया और अधिक फसल होगी कि चार भैंसें खरीद लूँगा।

[3] यदि जुताई मोटी है तो फसल अच्छी तरह न उगेगी। इसमें बीज का कोई खोट (= दोष) नहीं है।

[4] खेत की जोत जितनी अधिक गहरी होगी, उसमें डाले हुए बीज से उतनी ही अधिक अच्छाई के साथ फसल पैदा होगी।

[5] यदि उथली जुताई के खेत में पुराना बीज बोया जायगा तो उस खेत में कुछ भी न उगेगा।

[6] तिल, ककरी, बन (नरमा कपास का पौधा), और बाजरे की फसलें खेत में खुर्रट (वर्षा से पहले की जुताई) चाहती हैं।

हो जाने पर किसान खेतों में साधारण-सी जुताई कर देते हैं, उस जुताई को **खुर्र** या **खुर्रट** कहते हैं। जोर की वर्षा को **यहयड्ड को मेह** कहते हैं। यहयड्ड का मेह पड़ जाने पर खेत की जो पहली जुताई होती है, वह **उपार** (सं० उत्पाट) कहाती है। पानी सूख जाने पर जब खेत जुतने योग्य मालूम पड़ता है, तब उसे **ओठ-आना** कहते हैं। ओट की अवधि या समय बीत जाने पर खेत **करा** (कड़ा) जुतता है। ओट आने से पहले समय का गीला तथा कुछ-कुछ पानी से भरा हुआ खेत **तीता** कहाता है। गीले खेत की तरी **तीत** कहाती है। खेत की दूसरी जोत **आँतरा** और तीसरी **उनावट, कुंद्दी** (हाथ० में), अथवा **कनौद्दी** (इग० में) कहाती है। तहसील अतरौली के गाँवों में तीसरी जोत को **तेखर** (सं० त्रिकर्ष) और चौथी को **चौखर** (सं० चतुःकर्ष) भी कहते हैं।

फसल		जोतों की संख्या
(१) ईख	···	१२ से २० तक खुदाई (=गुड़ाई)
(२) गेहूँ	···	कम से कम १६ जोत
(३) चनारी बेभर (चना मिली बेभर)	···	१२ जोत
(४) मटरारी बेभर (मटरा + जौ)—	···	८ जोत
(५) चना	···	४ जोत

§७५—मटर या चने जब जौ के साथ मिला दिये जाते हैं तब वह मिश्रण **बेभड़** या **बेभर** कहाता है। गेहूँ और जौ के दानों का मिश्रण **गोजई** और गेहूँ-चना का मिश्रण **गैंचनी** या **गुरचनी** कहाता है। उक्त दोनों फसलों के खेतों में १२ जोतें लगती हैं। चने के खेत में बहुत कम जोतें लगती हैं। लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है—

"राढ़ न मानै बीनती, चना न मानै जोत।"[1]

§७६—खेत जोतते समय **जुतइया** (=खेत जोतनेवाला) पहले खेत का कुछ भाग कूँड़ के बीच में घेर लेता है। उस कूँड़ की रेखा को और कूँड़ से घिरी जगह को **हरइया** कहते हैं। हरइया नाम की जगह कूँड़ों से धीरे-धीरे भर जाती है। हरइया में थोड़ी-सी जगह जो बिना जुती रह जाती है, वह **आँतरा** या **नेर** (अत० में) कहाती है। जब दूसरी हरइया पड़ जाने पर नेर में कूँड़ बनाया जाता है तब उस क्रिया को **आँतरा मारना** या **नेर करना** कहते हैं। हरैया की जुताई का अंतिम कूँड़ **ओंड़ेला** कहाता है। कूँड़ से कूँड़ मिली हुई जोत **भरअनी जुताई** कहाती है। जुताई के बाद खेत में सुहागा लगता है और फिर माँझे से मेंड़े, बरहा और क्यारियाँ बनाई जाती हैं। इस क्रिया को **माँझे करना, पाँखी करना** (सादा० में) या **डाँड़े तोड़ना** कहते हैं। सुहागा फेरने और माँझे करने के सम्बन्ध में निम्नांकित कहावतें भी प्रचलित हैं—

"दस जोत न, एकु पटेला। दस मुक्क न, एकु ढकेला॥"[2]

० ० ०

"जोत लगाइकें मेंड़ बाँधि लै। दस मन बीघा मोतें लैलै॥"[3]

---

[1] कठोर और हठी व्यक्ति विनती (सं० विज्ञप्ति>विण्णत्ति>विनत्ति>विनाति>बीनती>विनती) नहीं मानता है और चना जोतों (जुताई) को नहीं मानता है अर्थात् चने के लिए अधिक जुताई की आवश्यकता नहीं है।

[2] जिस प्रकार दस मुक्कों (घूसों) से बढ़कर एक धक्का होता है, उसी प्रकार एक बार जोतकर सुहागा लगाना अच्छा; बिना सुहागे की दस जोतें भी अच्छी नहीं।

[3] यदि किसान खेत जोतकर उसमें सुहागा लगाएगा और फिर माँझे से मेंड़ बाँधेगा तो उसके खेत में दस मन प्रति बीघे के हिसाब से अन्न होगा।

§७७—गेहूँ और ईख की जोतों और फसलों के सम्बन्ध में भी लोकोक्तियाँ प्रसिद्ध हैं—

"गेहूँ चौमन होत। असाढ़ की द्वै जोत॥"[१]

*　　　*　　　*

"गेहूँ ऊल्यौ चौं। सोलह जोतैं यौं।"[२]

"जौ कहूँ लगि जायँ तेरह गोड़। देखौ ईख होइ भुइँ तोड़॥"[३]

§७८—यदि खेत ओट न आया हो अर्थात् **तोता** (गीला) हो तो उसे जोतना नहीं चाहिए। गीले खेत में हल चलाना **कच्चा खेत जोतना** कहाता है। इस सम्बन्ध में कई लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—

"कच्चौ खेतु न जोतै कोई। परै बीजु नहिं अंकुर होई॥"[४]

*　　　*　　　*

जोतै खेत घास नहिं टूटै। ताकौ भाग साँझ ही फूटै॥"[५]

*　　　*　　　*

"असाढ़ न जोत्यौ एक बार। अब चौं जोतै बारम्बार॥"[६]

"असाढ़ मास जौ घूमी करै। सो खेती कूँ हीनौ करै॥"[७]

"सामन भादौं दये न लपेटा। अब का देखै भकुआ बेटा।"[८]

"असाढ़ जोतैं लरिका बारे। सामन-भादौं में हरहारे॥
क्वार में जोतैं घर कौ बेटा। तब ऊँचे हुंगे उनहारे॥"[९]

§७९—हरइया की जुताई के समय कभी-कभी खेत में ऊँची-सी जगह जुतने से रह जाती है, उसे **टेर** कहते हैं। टेर को जोतना **टेर मारना** कहाता है। कूँड़ को मोड़ते समय किसान प्रायः **भीतरे** (=बाईं ओर का) बैल को **तिकारता है,** अर्थात् आगे चलाने के लिए तिक्-तिक् करता है।

---

[१] यदि असाढ़ के महीने में दो जोतें लग जायँ तो उस खेत में गेहूँ चौमना (प्रति बीघा चार मन) होगा।

[२] गेहूँ की फसल ऊपर को उछलती हुई क्यों दिखाई दी? क्योंकि उस खेत में बीज बोने से पहले सोलह जोतें लगाई गई थीं।

[३] यदि ईख के खेत में तेरह बार गुड़ाई (खुदाई) कर दी जाय तो उसमें गन्ने के पौधे बहुत घने उगेंगे जो कि धरती पर बिछ जायेंगे।

[४] यदि कोई कच्चा खेत जोतकर उसमें बीज बो देगा तो उसमें किल्ला न उगेगा।

[५] यदि किसान ने ऐसा खेत जोता कि उसकी घास नहीं टूटी तो समझ लीजिए कि उसका भाग्य **सईं साँझ** का (प्रारम्भ में ही) फूट गया।

[६] यदि असाढ़ में एक बार भी नहीं जोता तो फिर आगे के महीनों में बार-बार जोतना व्यर्थ है।

[७] जो किसान असाढ़ मास में खेत को न जोतकर इधर-उधर घूमता रहता है, वह अपनी खेती को हीन बनाता है।

[८] अरे मूर्ख! यदि तूने सावन-भादों के महीनों में खेत में **लपेटा** (आड़ी-सीधी जोत) न लगाया तो फिर खेती व्यर्थ है।

[९] असाढ़ में तो छोटे-छोटे बालक भी खेतों को जोत लेते हैं, लेकिन सावन-भादों में अच्छे हरहारों (हलवाहों) को जोतना चाहिए। जब क्वार में घर का बेटा लगन से खेत जोतेगा तभी **उनहारी** (असाढ़ से क्वार तक जुतनेवाला खेत) गेहूँ, जौ आदि के लिए अच्छी बन सकेगी।

उस समय **दाहिने** (=दाईं ओर का) बैल को नँह-नँह करके चलाया जाता है, जिसे **नहँकारना** कहते हैं।

§८०—बैसाख की फसल के लिए असाढ़ी को अच्छी तरह से जोता जाता है। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

"सावन मास गयेंजे कीये, भादों पूआ खाये।
बिना जोत बैसाख में पूछै, कै मन दाने पाये" ॥[1]

§८१—मक्का की उगीहुई फसल में **भुटिया** (टप्पल में **अड़िया**, खुर्जे में **कूकड़ी**) जब तक न आवे, उससे पहले ही हल से बेगरी जुताई करनी चाहिए। उस जुताई को **गुर्राई** कहते हैं। मक्का की गुर्राई के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

"जौ मोहि जोतै तोरि-मरोरि।
तौ देउँ कुठिला-कुठिया फोरि ॥"[2]

§८२—प्रातः चार बजे के लगभग पूर्व दिशा में जो प्रकाश दिखाई देता है, उसे पौ (सं० प्रभा[3]>पव>पउ>पौ) कहते हैं। प्रकाश का दिखाई देना **पौ फटना** या **पीरी फटना** कहाता है। किसान क्वार में पौ फटते ही हल जोतने के लिए चल देता है। पीरी फटने के पश्चात् का समय **भूभरा**, **भुकभुका**, **भोर** या **तड़का** कहाता है। भुकभुके से कुछ बाद का समय **धौतायौ** या **सकारौ**[4] (सं० सकाल) कहाता है। धौताये से बाद का खन (सं० क्षण=समय) **फलेऊ कौ खन** कहा जाता है। दिन का पहला **पहर** (सं० प्रहर) लगभग ६ बजे समाप्त होता है। उसे **फलेऊ का खन** कहते हैं। ठीक दोपहर के समय को **धौरौ-धोपर** कहते हैं। तीसरे पहर की समाप्ति का समय जनपदीय बोली में **पैंठ कौ खन** कहाता है। उसके बाद का समय **साँझ** या **संजा** (सं० सन्ध्या) कहाता है। साँझ के बाद कुछ-कुछ अँधेरेवाले समय को **झुटपुटा** कहते हैं। साँझ होने पर किसान बैलों पर से हल का जुआ उतार लेता है और कहता है—

"खोल दयौ जूआ देखौ गाम। गऊ के जाये करौ आराम ॥"[5]

§८३—किसान प्रायः क्वार मास में आकाश के तारों को देखकर समय का अनुमान लगा लेते हैं और हल लेकर खेत जोतने चल देते हैं। एक सीधी पंक्ति में तीन तारे होते हैं जो **तीन गाँठ का पैना** कहाते हैं। उन्हीं को साहित्यिक भाषा में 'त्रिशंकु' कहते हैं, जिसकी **लार** (मुँह से बहनेवाला थूक) से कर्मनाशा नदी बन जाने का वर्णन मिलता है। शुक्र तारे का छिपना **सूकरा डूबना**, बृहस्पति

---

[1] सावन के महीने में तो गयेंजे करता (गाँवों में जाकर गप-शप मारता) फिरा और भादों में मेहमानी मारता रहा। खेत में एक भी जोत न लगाई। अब बैसाख में यह पूछता है कि खेत में कितने मन अन्न हुआ है? ऐसा पूछना मूर्खता है, क्योंकि उसके खेत में कुछ न होगा।

[2] मक्का किसान से कहती है कि यदि तू मेरी गुड़ाई करके मुझे तोड़-मरोड़ के साथ जोतेगा तो मैं तेरे कुठला-कुठिया अन्न से भर दूँगी।

[3] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हिन्दी के सौ शब्दों की निरुक्ति, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५४, अङ्क २-३, पृ० १०२।

[4] "अवधेस के द्वारे सकारे गई।"
(सं०) रामचंद्र शुक्ल : तुलसी-ग्रन्थावली, दूसरा खंड, काशी ना० प्र० सभा, सं० २००४, कवितावली, १।१।

[5] हे गौ के पुत्रो! अब गाँव देखो और आराम करो, क्योंकि मैंने तुम्हें जूए में से खोल दिया।

तारे का उदय होना **बिसपिति उकसना** कहाता है।[1] इसी प्रकार **सिरनी-सिरना** और अगस्ता कुआ नामों के भी तारे हैं। किसानों का कहना है कि **अगस्त** (सं० अगस्त्य) के उदय होने पर कुआ दिखाई देता है तथा ये जोहड़ों का जल साफ होने लगता है और **अगस्त** भी (सं० अगस्त्य, अगस्ति) के उदय हो जाने पर वर्षा बन्द हो जाती है।[2]

§८४—किसान के लिए खेत पर लगभग दिन के नौ बजे जो थोड़ा सा भोजन पहुँचाया जाता है, उसे **कलेऊ** कहते हैं। कलेऊ के पश्चात् लगभग बारह बजे जो भोजन जाता है वह छाक कहाता है। छाक किसान का पूर्ण भोजन है जिससे किसान दिन भर के लिए **पत्तृप्त** (पर्याप्त: तृप्त) हो जाता है और सांझ तक हल चलाता रहता है।

अध्याय ३

बीज

§८५—**बीज भण्डार**—किसान बीज को सुरक्षित रखने के लिए कई साधनों को काम में लाता है। जिन जगहों में बीज भरा जाता है, वे कई तरह की होती हैं। उनके नाम ये हैं- (१) खास, (२) खत्ती, (३) बुखारी, (४) कुठला, (५) कुठिया।

§८६—खास-खत्तियों में **मनौटों** (=वह बड़ी डलिया जिसमें एक मन अनाज आता है) और **अधनौटों** (=२० सेर अनाज से भर जानेवाला छबड़ा) से अनाज भरा जाता है। कुठलों में **कुन्नों** (=वह टोकरी जिसमें ढाई-तीन सेर अनाज आ जाता है) से ही अनाज भर देते हैं।

§८७—एक **कोठा**-सा (सं० कोष्ठक>कोट्ठग्र>कोठा) जिसमें दर्वाजा नहीं होता, वरन् दीवाल के ऊपरी भाग में एक **खिड़की** (सं० खटक्किका–मो० वि०, प्रा० खिटक्किका) होती है जिसमें होकर अनाज भर दिया जाता है। उस कोठे को **खास** कहते हैं। **खत्ती** धरती के अन्दर गोल कुएँ की भाँति या गहराई में आयताकार रूप में बनाई जाती है। एक छोटी-सी कोटरी जिसमें **नाज** (सं० अन्नाद्य>अनाज>नाज) भरा जाता है **बुखारी** कहाती है। यह प्रायः **भीने** (फा० ज़ीना) के नीचे बनाई जाती है। बुखारी से बड़े आकार का स्थान **बुखार** या **बुखारा** कहाता है। बुखार में से जब अनाज निकाला जाता है, तब उस क्रिया को **बुखार उखारना** कहते हैं। बुखार उखारते समय अनाज में से जो रेत उड़ता है, उसे **भस** कहते हैं। सेनापति ने 'कवित्तरत्नाकर' में 'बुखार उखारना' का प्रयोग किया है।[3]

§८८—मिट्टी की चार दीवालें-सी उठाकर बनाया हुआ चौकोर घेरा-सा, जिसके नीचे मिट्टी का पैंदा भी लगाया जाता है, **कुठिया** कहाता है। कुठिया लगभग दो हाथ लम्बी, दो हाथ चौड़ी और पाँच हाथ ऊँची होती है। इसमें लगभग २० मन अनाज आ जाता है। कुठला-कुठियों का अनाज से भरा होना **भागवानो** (मालदारी) की निशानी समझी जाती है। लोकोक्ति प्रचलित है—

---

[1] ब्याह-गौने आदि तभी होते हैं जब **सूकरा** (सं० शुक्र) तारा और **बिसपिति** (सं० बृहस्पति) तारई उद्धले हुए (उदित) होते हैं।

[2] "उदित अगस्ति पंथ जल सोषा।"

तुलसीदास : रामचरितमानस, गीता-प्रेस-संस्क०, ४।१६।२

[3] "सिसिर तुषार के बुखार से उखारत है।"

सेनापति : कवित्तरत्नाकर, हिन्दी-परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, ३।५१

"सोई नारि बड़ी ठकुरानी, जाकी कुठिया ज्वार।"[1]

कुठिया से आकार में बड़ा और आकृति में गोल बना हुआ घेरा **कुठला** (सं० कोष्ठ>प्रा० कोट्ठ+ला—हि० श० सा०), **पेवला** (सिकं० में) या **रमदा** (अत० में) कहाता है।

§८९—**कुठला के विभिन्न भाग**—कुठले के मध्य भाग में बने हुए मुँह पर जो मिट्टी का ढक्कन लगा रहता है, उसे **पिहान** (सं० अपिधान[2]) कहते हैं। पिहान से नीचे एक गोल छेद होता है, जो **आयनों** कहाता है। आयने के मुँह पर जो कपड़ा ठुँसा रहता है उसे **मँदना** कहते हैं। कुठले के अन्दर एक तिखाल-सी बनी रहती है, जिसे **मोखा** कहते हैं। मिट्टी के बने हुए एक-एक हाथ के चार थूमों पर कुठले की पेंदी जमाई जाती है। उन थूमों को **मटीलना** कहते हैं।

§९०—छोटे, गोल और पोले नल की भाँति अरहर की लकड़ियों से बुने हुए पेंदीदार घेरे, जिनमें आठ-दस सेर अनाज भर दिया जाता है, **नजारे** (सं० अन्नाद्यागार>अनाजार>नाजार>नजारा) कहाते हैं।

§९१—**बीज बिगाड़नेवाले कीड़े**—एक छोटा-सा उड़नेवाला कीड़ा चने में लग जाता है जिसे **ढोरा** कहते हैं। गेहूँ, जौ आदि को एक छोटी-सी गिड़ार थोथा बना देती है। उस गिड़ार को **पई** कहते हैं। **घुन** (सं० घुण) नाम का कीड़ा अनाज के दाने की मींग को खा जाता है। लम्बी नाक का रेंगनेवाला छोटा-सा कीड़ा **सुरहरी, सुरहुरी** या **सुरेरी** कहाता है। मक्का की मुठिया पर एक कीड़ा लग जाता है जो उस पर बूँदें-सी बना देता है। उस कीड़े को **झुंझुनी** कहते हैं। खाकी रंग का उड़नेवाला एक कीड़ा **तीतुरी** कहाता है। तीतुरी गेहूँ, जौ, चना आदि के बीज को बिगाड़ देती है। चावल के दाने को अन्दर से पोला कर देनेवाला एक कीड़ा **सूँड़ा** कहाता है। भूरे रंग का चींटी के अंडे के आकार का कए कीड़ा **खपरा** कहाता है।

§९२—हलका, पुराना और पतला बीज खेती को **पतली** (हलकी) बनाता है। पतली खेती के सम्बन्ध में लोकोक्ति प्रचलित है—

नसकट[3] पनहीं बतकट जोय। जौ पहलौटी बिटिया होय॥
पतरी खेती बौरो भाइ। घाघ कहैं दुख कहाँ समाइ॥[4]

---

[1] जिस स्त्री की कुठिया ज्वार से भरी हुई है, वही मालदार है।

[2] "गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं।" —ऋक् ५।२९।१२

[3] नसकट के स्थान पर हाथ० में 'कुचकट' भी बोलते हैं। कुचकट = पाँव के नाप से छोटी।

[4] यदि पाँवों में जूतियाँ नसकट (= नस को काटनेवाली) हों, स्त्री बात में ही बात काटनेवाली हो, पहली सन्तान पुत्री रूप में हो, खेती पतली हो और भाई बावरा हो, तो घाघ कहते हैं कि ऐसा दुःख कहाँ समा सकता है ?

विभाग २

बुवाई, नराई और भराई

अध्याय ४

बुवाई

§९३—बुवाई के लिए जनपदीय बोली में **बवाई** शब्द है। बबार में जब जौ, गेहूँ आदि बोये जाते हैं, तब वह बुवाई **बामनी** या **बौन** (सं० वपन > बअन > बौन) कहाती है। [illegible]-धान की बुवाई को **सामनी** कहते हैं।

§९४—खरीफ की फसल को **कातिकिया खेती** और रबी की फसल को **बैसखिया खेती** कहते हैं। **कातिकिया** खेती का बीज **छितरैमा या उछितरैमा** (हाथ से फेंककर) बोया जाता है, लेकिन बैसखिया खेती की बामनी नाई के **नजारे** (नाई के पीछे में एक पोला बाँस लगा रहता है, जिसे नजारा कहते हैं। इसमें होकर बीज ठीक कूँड़ में गिराया जाता है) द्वारा होती है।

§९५—काशीफल, खरबूज, तरबूज, ककड़ी आदि की खेती **बारी** कहाती है। साग-तरकारी की खेती को **पालेज** (फा० पालीज) कहते हैं। बारी और पालेज की खेती प्रायः काछी माली करते हैं। काछी के अर्थ में 'तरजुमा तुजक बाबरी' में 'पालीजकार' शब्द आया है।[1]

§९६—**बामनी करने की प्रक्रिया**—एक विशेष प्रकार का हल, जिससे बामनी की जाती है, **नाई** कहाता है। नाई के कूँड़ से घिरा हुआ खेत का भाग **फरा** कहाता है। फरे में बुवाई भीतर और बाहर होती है। कातिकिया खेती की बुवाई **हरइया** (हल के कूँड़ से घिरा हुआ खेत का कुछ भाग) डालकर की जाती है। हरइया में बुवाई भीतर ही भीतर होती है। बामनी में जौ, गेहूँ बोने के बाद सरसों के आड़े कूँड़ उसी खेत में दूर-दूर लगा दिये जाते हैं। उन कूँड़ों को **आड़** कहते हैं।

§९७—फरे के भीतर का प्रत्येक कूँड़ **अन्धी** और अन्तिम कूँड़ **हरा** कहाता है। इस 'हरा' नाम के कूँड़ को पूरा करने पर किसान सन्तोष और आशा-भरे शब्दों में बोल उठता है—

"हरौ, हरौ, हरौ। चिरई चिंगुलन के भाग ते हरौ॥"[2]

§९८—जब नाई से पूरा खेत बो दिया जाता है और केवल खेत की चारों मेंड़ो के **सहारे** (संनिकट) बुवाई रह जाती है, तब उस छूटी हुई जगह में की हुई बुवाईको **रोहा** या **चौघेरा**कहते हैं।

§९९—बामनी करने के लिए प्रथम दिन जब किसान खेत को जाता है, तब पहले अपने घर के द्वार पर पीली मिट्टी या गोबर की बनी हुई पाँच बड़ी-बड़ी चँदियाँ-सी रखकर उनके ऊपर बीज के कुछ दाने जमा देता है। उन चँदियों को **धौंधा** या **धौंदा**[3] कहते हैं। त० खैर में धौंदों के स्थान पर मिट्टी के बड़े-बड़े **भोलुए** (=कुल्हड़) रक्खे जाते हैं, जिन्हें **सधुआ** (खैर, इग० में) कहते हैं। सधुओं को पूजकर ही किसान बामनी के लिए खेत पर जाता है। सम्भवतः किसान की साध

---

[1] "पालीज़कार को खरबूजे बोने के लिए हुक्म दे दिया।"

—शाहजादा मिर्जा नासिरुद्दीन हैदर साहब, तरजुमा तुज़क बाबरी उर्दू, मु० प्रिंटिंग वर्क्स, सन् १९२४, पृ० ३६२।

[2] खेत का हरापन चिड़ियों और उनके बच्चों के भाग्य से आनन्ददायी हो।

[3] "सोवत-जागत जनमु गँवायौ तू पूरी माटी को धौंदा।
गढ़ि गई नारि लजाइ दयौ तैंने भूरी की लोनी कौ लौंदा॥"

—(त० हाथरस से प्राप्त एक लोकगीत से

(सं० श्रद्धा > सद्धा > साध = अभिलाषा) पूरी करनेवाले होने के कारण वे कुल्हड़ सधुए कहाते हैं। किसान का जीवन विशेषतः वैसखिया खेती पर ही निर्भर है। इसलिए सधुओं का पूजन बड़ी श्रद्धा से किया जाता है।

§१००—जहाँ धौंदे पुजते हैं, वहाँ किसान पहले उन धौंदों में लम्बी-लम्बी **सींकें** (सं० इषीका > सींक) लगाते हैं। किसानों का विश्वास है कि जितनी लम्बी सींकें धौंदों में लगेंगी, उतनी ही लम्बी वैसाख की फसल बढ़ेगी। ये धौंदे किसान के घर में पूरे वर्ष भर ज्यों के त्यों रक्खे रहते हैं। कुछ न करनेवाले के लिए **'मिट्टी के धौंदे-सा धरा रहनेवाला'** एक मुहावरा भी प्रचलित हो गया है।

§१०१—बीज की बुवाई के सम्बन्ध में सामान्य नियम यह है कि बामनी की बुवाई सदा **गँगाई-जमुनाई** (गंगा-यमुना की दिशा अर्थात् उत्तर-दक्षिण) हुआ करती है और सरसों आदि की आड़ें (कूँड़) **पुमाई पछाईं** (पूरब-पच्छिम) लगती हैं। उत्तर-दक्षिण दिशा की बुवाई की फसल **पुरवाई** (पुरस् + वा = पूरब दिशा से चलनेवाली हवा) और **पछैयाँ** (पश्चिम + वात = पश्चिम दिशा की हवा) से गिर नहीं सकती, क्योंकि कूँड़ की इधर-उधर की मिट्टी उसे सहारा देती रहती है।

§१०२—बामनी के लिए जब किसान खेत पर पहुँचता है तब बीज की गठरी को सिर से धरती पर उतारकर तुरन्त उस गठरी में, 'हे धरती मैया' कहते हुए, उसी खेत का एक ढेला रख देता है, जिसे **स्यावड़** कहते हैं।

§१०३—कातिकिया और वैसखिया खेती के सम्बन्ध में निम्नांकित कहावतें प्रचलित हैं—

"कुहिया मावस मूल बिन, बिन रोहिनि अखतीज।
सावन में सरवन नहीं, कन्ता! काहे बोओ बीज॥"[1]

"सन घनो बन बेगरो, मेंढक—फन्दी ज्वार।
पैंड़ पैंड़ पै बाजरा, करै दलिद्दर पार॥"[2]

* * *

"घनी घनी जौ सनई बोवै। तौ सूतरी न संग विछोवै॥"[3]

* * *

"बेगरी-बेगरी जौ चना, बेगरी भली कपास।
जिनकी बेगरी ईख है, तिनकी छोड़ौ आस॥"[4]

* * *

---

[1] जब पौष मास की अमावस्या को मूल नक्षत्र नहीं, अक्षय तृतीया को रोहिणी नक्षत्र नहीं, सावन में श्रवण नक्षत्र नहीं पड़ा, तब फिर हे कान्त! व्यर्थ क्यों बीज बोते हो, क्योंकि वर्षा न होने से फसल मारी जायगी।

[2] यदि सन घना, बन (कपास) दूर-दूर, ज्वार मेंढक फन्दी (सं० मण्डूकफन्दीनि = मेंढक की कूद या उछाल जो कुछ दूरी की होती है) और बाजरा पैंड़ (= छोटा कदम) भर की दूरी पर बोना चाहिए। इस तरह की बुवाई दारिद्र्य नष्ट कर देगी।

[3] यदि सन घना बोया गया तो सुतली की कमी न होगी।

[4] जौ, चना और बन को घना न बोना चाहिए। जिनके खेत में ईख बेगरी (जो घनी न हो) है, उसे कुछ न मिलेगा।

"उनहारी में उनहारी और बनी में करे बनी।
ईख काटिकें धान जो बोइ देइ, फूँको वाकी डाढ़ी ॥"[1]

पालेज की बुवाई के सम्बन्ध में भी लोकोक्तियां प्रचलित हैं

"गाजर, लहसन, प्याज ऊ मूरी। इनकूं बइऐ न्यारी न्यारी ॥"[2]

§१०४—मक्का, ज्वार आदि की बुवाई से तीसरे-चौथे दिन मेह पर जाए तो बीज उगता नहीं। उसे **परें मारना** कहते हैं। परें की हानि से बचने के लिए किसान उस खेत में कई फालों का एक विशेष प्रकार का चोंचटेनुमा हल चलाता है, जिसे **हेरू** कहते हैं। हेरू से मेह द्वारा पड़ी हुई धरती की पपड़ी फट जाती है और किल्ले को उगने के लिए जगह मिल जाती है।

§१०५—जौंडरी (ज्वार) की बुवाई कातिकिया खेती में पहले करनी चाहिए। लोकोक्ति है—

"जौंडरी कहै किसान ते, पहले मोए नार।
नैंनी करिकैं गुर्रिदे, भुट्टा रहें लटकार ॥"[3]

§१०६—ज्वार में पीली बर्र (भिड़) से मिलता-जुलता एक कीड़ा उड़ा करता है। उसे अधिक संख्या में उड़ता हुआ देखकर किसान बामनी करना आरम्भ कर देते हैं। उस कीड़े को **बामनी बर्र** कहते हैं। इसके सम्बन्ध में लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है—

'जब बर्र बामनीं आई। उनहारिन करी बवाई ॥'[4]

§१०७—बुवाई संबंधी कुछ विशिष्ट लोकोक्तियाँ—

"बयौ बाजरा आयें पुख्य।
फिर मन कैसें मानैं सुक्ख ॥"१।

अर्थ—यदि पुष्य नक्षत्र आने पर (पुष्य नक्षत्र असाढ़ या जुलाई में आता है। उन्हीं दिनों में सूर्य पुष्य नक्षत्र में प्रवेश करता है। एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र पर आने में सूर्य को १४ दिन लगते हैं) बाजरा बोया है तो मन कैसे सुखी रह सकता है।१।

"खेत की बवाई। अगाई सो सवाई ॥"२।

अर्थ—यदि खेत में अगाई (पहले से) फसल बोई जायगी तो सवाई होगी।२।

"रोहिन मगसिर बोवै मका। उर्दऽरु महुआ, न पावै टका ॥"३।

अर्थ—जो मक्का, उर्द और महुआ रोहिणी और मार्गशीर्ष नक्षत्रों (बैसाख-जेठ) में बोता है, उसे टका भी नहीं मिलता।३।

"पुख्य पुनर्बस बोइदेउ धान। असलेखा जुँड़री परमान ॥"४।

अर्थ—चावल पुष्य और पुनर्वसु नक्षत्र (आषाढ़) में और ज्वार आश्लेषा नक्षत्र (श्रावण) में बोनी चाहिए, ऐसा प्रमाण मिलता है।४।

"मघा मसीनो बरसै झारि। भरिदीजै कोठेनु में डारि ॥"५।

---

[1] जो असाढ़ी में फिर असाढ़ी करता है, अर्थात् गेहूँ के खेत में फिर गेहूँ बोता है, बन के खेत में फिर बन बोता है और जो ईख कटने पर उसी खेत में धान बोता है, उस मूर्ख की डाढ़ी में आग लगा दो।

[2] गाजर, लहसन, प्याज और मूली थोड़ी-थोड़ी दूर बोनी चाहिए।

[3] ज्वार किसान से कहती है कि कातिक की फसलों में पहले मुझे बो दे। उग आने पर मेरे खेत को नरा दे। तब तू देखेगा कि मेरे ऊपर बहुत-से भुट्टे लटके हुए हैं।

[4] जब बामनी बर्रें आने लगीं तभी किसान ने असाढ़ियों में बुवाई आरम्भ कर दी।

अर्थ—मघा नक्षत्र (श्रावण) में मसीना (सं० माषीण = उर्द-मूँग) बोना चाहिए, जबकि वर्षा खूब हो रही हो। फिर फसल ऐसी बढ़िया और अधिक होगी कि कोठे भर जायँगे।५।

"इत-उत उनहारी बीच में खरीफ। नोन-मिर्च डारिकें खाइ गयौ हरीफ॥"६।

अर्थ—जो खरीफ की फसल को बीच में देकर बैसाख की फसल करता है, वह बड़े आनन्द में रहता है।६।

"कातिक बोवै अगहन भरै। ताको हाकिम फिर का करै॥"७।

अर्थ—जो बैसाख की फसल को कातिक में बोता है, और अगहन में भरता है, अर्थात् पानी देता है, उसका हाकिम क्या कर सकता है। वह तो समय पर मालगुजारी, लगान, भराई आदि दे देगा।७।

"चित्रा गेहूँ अद्रा धान। उनके गेहूँ न इनके धान॥"८।

अर्थ—जो चित्रा नक्षत्र (क्वार) में गेहूँ और आर्द्रा नक्षत्र (जेठ) में धान बोता है, उसके गेहूँ और धान मारे जाते हैं।८।

"अगहन की बवाई। कहूँ मन कहूँ सवाई॥"९।

अर्थ—अगहन (सं० अग्रहायण) मास में यदि जौ-गेहूँ आदि बोये जाते हैं तो अच्छी फसल नहीं होती। उसमें मन या सवा मन का बीघा ही अन्न होता है।९।

"कुठला बैठी बोली जई। आधे अगहन क्यौं न बई॥"१०।

अर्थ—कुठला में भरी हुई जई (एक अन्न जो जौ के समान होता है) कहने लगी कि मुझे आधे अगहन क्यों न बोया था।१०।

"पूस न करै बवाई। चाहे पीसि खाई॥"११।

अर्थ—पूस में बैसाखिया खेती का बीज न बोना चाहिए। ऐसी खेती की अपेक्षा तो पिसाई करके पेट भरना अच्छा॥११॥

"अगहन बोवै जौआ। होइँ तो होइँ, नहीं तो खावैं कौआ।"१२।

अर्थ—जो अगहन में जौ बोता है, उसके खेत में फसल ठीक नहीं होती। प्रायः उसे कौए ही खाते हैं।१२।

"आगे गेहूँ पीछे धान। ताहि जानियो चतुर किसान॥"१३।

अर्थ—जो किसान गेहूँ पहले और धान बाद में बोता है, वह चतुर है।"१३॥

"बुद्ध बावनी। सुक्कुर लावनी।"१४।

अर्थ—बावनी (बैसाख की खेती की बुवाई) बुधवार को और लावनी (सं० लू धातु से लावन = कटाई) शुक्र के दिन लाभप्रद होती है, अर्थात्, लहनी-फावनी मानी जाती है।१४।

"चना चितरा चौगुना, स्वाती गेहूँ होइ।
करौ बवाई खेत की, मिलि भइयन सब कोइ॥" १५।

अर्थ—यदि चित्रा नक्षत्र (क्वार) में चना और स्वाति नक्षत्र (क्वार के उत्तरार्द्ध) में गेहूँ बोया जाय तो दोनों ही चौगुने होंगे। खेत की बुवाई सब भाइयों को साथ लेकर करनी चाहिए।१५।

१०८—प्रति बीघा बीज का परिमाण

"जौ-गेहूँ बोइये पाँच सेर। मटर को बीघा तीसा सेर॥
बोइये चना पसेरी तीन। सेर तीन की जुन्हरी कीन॥

सेथी मटरहू दुसेरी जाय । तिन सेरी लै लेर कपास ॥
सवाँ सवा सेरी तू जान । तिल सरसों संग लाहा मान ॥
डिढ़ सेर बजरा, बजरी सवा । कोदों कामुन सवइया बवा ॥
पँचसेरी बीघा के धान । सात सेरी जड़हन कूँ मान ॥" १६ ।

अर्थ—जौ, गेहूँ पाँच सेर प्रति बीघे, मटर तीन सेर प्रति बीघे, चना पाँच सेर प्रति बीघे और ज्वार तीन सेर प्रति बीघे के हिसाब से बोनी चाहिए। दो सेर बीघा सेथी और मटरहू बोना ठीक है। कपास एक बीघे में डेढ़ सेर बोनी चाहिए। **सवाँ** (सं० श्यामाक=एक प्रकार का छोटा चावल) सवा सेर का बीघा ठीक है और उसी तोल में तिल, सरसों और लहा बोये जाने चाहिएँ। बाजरे को डेढ़ सेर बीघा और बजरी (छोटा बाजरा) को सवा सेर बीघा बोना चाहिए। **कोद्रों** (सं० कोद्रव, कुद्रव=छोटे चावल विशेष) और कामुनी भी बीघे में सवा सेर ही बोनी चाहिए। धान एक बीघे में पाँच सेर और जड़हन (जाड़े के धान) एक बीघे में सात सेर बोये जाने चाहिए। १६।

§१०९—**पालेज की बुवाई—आलू, सकलगन्द** (सं० शर्करा+सं० कन्द), **प्याज, लहसन** (सं० लशुन, लशुन) आदि को बोते समय खेत में छोटी-छोटी मेंड़ें लगाकर अनेक पतली नालियाँ-सी बनाई जाती हैं, जिनमें होकर सिंचाई के समय पानी बहता है। उन छोटी और पतली नालियों को **गूल** (सं० कुल्या[1]—निघण्टु, १।१३), **मेंला** (सादा० में) या **पनारी** (इग० में) कहते हैं। आलू, प्याज आदि गूलों की मेंड़ों पर ही लगाये जाते हैं। जड़ सहित प्याज के **किल्ले** (अंकुर) **कुना** कहाते हैं। **कुनों** को गाड़ना **चुभोना** कहाता है। **तोमरा** (लौका), **तोरई, भिंडी** आदि के बीज गाड़ने के लिए भी **चुभोना** धातु का प्रयोग किया जाता है।

§११०—**ईख की बुवाई**—कटने के बाद कुछ ईख खेत में बीज के लिए खड़ी रहती है। बीज की ईख को काटकर किसान एक गहरे गड्ढे में भी गाड़ देते हैं। उस गड्ढे को **बिझैरा** कहते हैं। फिर माह-पूस में बुवाई के समय **ईख के गाँड़े** (सं० इक्षु-काण्ड) निकाल लिये जाते हैं। वह क्रिया **बिझैरा खोलना** कहाती है। एक तरह का मोटा **गाँड़ा** (सं० काण्ड>गाण्डअ>गाँड़ा) **पौंड़ा** (सं० पौण्ड्रक) कहाता है।

§१११—गन्ने के तने पर जो पत्ते-से लिपटे रहते हैं वे **पताई** कहाते हैं। गन्नों से पताई अलग करने की क्रिया **'छोलना'** (सं० तक्षण, प्रा० छोल्लण-पा० स० म०) कहाती है। जो लोग छोलते हैं, वे **छोला** कहाते हैं। गन्ने के अग्रभाग को **अँगोला** (सं०अग्र-पोतलक>प्रा०अग्गओलअ>अग्गोला>अँगोला—हिं० श० नि०) कहते हैं। छोले अँगोले काटकर गन्नों को एक जगह रखते जाते हैं। गन्नों का छोटा-सा ढेर जिसे एक आदमी दोनों हाथों से आसानी से उठा सकता है, **जेट** कहाता है। लगभग २५-३० जेटों का समूह **फाँदी** कहाता है। खेत के कूँड़ों में बोने से पहले प्रत्येक **गाँड़े** (सं० काण्डक को छोलकर कई हिस्सों में काटा जाता है, लेकिन गाँठ पर से नहीं काटते। गाँड़े (गन्ने) का प्रत्येक टुकड़ा **पैंड़ा** कहाता है। हेमचन्द्र ने खण्ड के अर्थ में **पेंड** (दे० ना० मा० ६।८१) को देशी बताया है। एक पैंड़े में कम से कम दो गाँठें अवश्य

---

[1] "सिन्धवः । कुल्याः । वर्यः ।.........इति सप्तत्रिंशन्नदीनामानि ।"
—डा० लक्ष्मण स्वरूप (सं०) : निघण्टु समन्वितं निरुक्तम्, पंजाब विश्वविद्यालय, सन् १९२७, पृ० ५ ।
"जलधिगा कुल्या च जंवालिनी-कोलति जलैः संस्त्यागति कुल्या ।"
—हेमचन्द्र, अभिधान चिन्तामणि, काण्ड ४। श्लोक १४६ ।

होती हैं। दो गाँठों के बीच का भाग **पँगोली** या **पोई** (सं० पोतिका > पोइआ > पोई) कहाता है। पँगोली के अर्थ में हेमचन्द्र ने (दे० ना० मा० १।७६) 'इंगाली' शब्द लिखा है। खैर और कुर्जे में पोई को **पोरी** (सं० पर्वन् > पोर > स्त्री० पोरी) कहते हैं। सेनापति ने पोरियों के लिए 'परवन' शब्द का उल्लेख किया है।[1]

§११२—एक पोई में से जब छोटे-छोटे कई टुकड़े कर दिये जाते हैं, तब प्रत्येक टुकड़ा **गँड़ेली** (सं० गण्डेरिका > गण्डेरिआ > गंडेली > गड़ेली) कहा जाता है। लोकोक्ति प्रचलित है—

"गाँड़े ते गड़ेली प्यारी, गुड़ ते प्यारी गाँड़ो।
भइया ते भतीजो प्यारी, सब ते प्यारी सारो॥"[2]

§११३—नई बोई हुई ईख **पौदा** (सं० प्रवृद्ध), **नौदा** (सं० नववृद्ध) या **पोया** (बुलं० में) कहाती है। **नौदा** काट ली जाती है। फिर उसके जड़ सहित टूँठों में से नये किल्ले निकलते हैं जो **किलसियाँ** (सं० किसलय) कहाते हैं।

§११४—नौदा ईख में **टूँठों** (देश० टूँठ—पा० स० म०) में से किलसियाँ निकलकर जब बढ़ जाती हैं, तब उसे **किलसियों का उलहना** कहते हैं। उलही हुई किलसियोंवाली ईख **पेड़ी** कहाती है। ईख बसन्त ऋतु में पक जाती है। लोकोक्ति है—

"लगी बसन्त। ईख पकन्त॥"[3]

एक बार बोई हुई ईख सामान्यतया तीन वर्ष तक अवश्य रक्खी जाती है। अन्तिम दो वर्षों में वह **पेड़ी** ही कहाती है।

अध्याय ५

नराई और खुदाई

§११५—खुरपी से खेत की घास छीलना और खोद कर खेत की मिट्टी को पोली तथा फोक (नरम और उठी हुई) बनाना **नराना** (नलाना) कहाता है। नराने की क्रिया, **नराई** कहाती है। भूमि को माता[4] और मेघ को पिता माननेवाला किसान रोहिणी[5]-भूमि (वनस्पतिउत्पन्न भूमि) की सेवा नराई द्वारा भी करता है।

---

[1] "तजत न गाँठि जे अनेक परवन भरे।"
—सेनापति : कवित्तरत्नाकर, हिंदी परिषद्, प्रयाग विश्वविद्यालय, १।९३

[2] गन्ने से अधिक प्यारी गड़ेली, गुड़ से अधिक प्यारा गन्ना, भाई से अधिक प्यारा भतीजा और सबसे अधिक प्यारा साला समझा जाता है।

[3] बसन्त ऋतु आरम्भ होते ही ईख पकने लगती है।

[4] "माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः। पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु।" अथर्व० १२।१।१२

[5] "रोहिणीं विश्वरूपां ध्रुवां भूमिं।"—अथर्व० १२।१।११

§११६—घुन या पई जिस प्रकार गेहूँ की **कनिक** (आन्तरिक मींग) को नष्ट कर देती है, उसी प्रकार **पोला, हिरनखुरी** और **गोभी** आदि घासें खेत की फसल को बरबाद कर देती हैं। लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—

"गयौ राज जहाँ राजा लोभी। गयौ खेत जहाँ जामी गोभी ॥"[1]

§११७—नराई करनेवाले व्यक्ति **नरावा** कहाते हैं। नरावे के हाथ में जितनी मात्रा में घास समाती है, वह मात्रा मूँठी (सं०मुष्टिका) कहाती है। मूँठी के अर्थ में सं० का 'मुष्टि' शब्द कालिदास ने 'शकुन्तला-नाटक' में प्रयुक्त किया है। कण्व की पालिता पुत्री अपने प्रिय हिरन को सवाँ (सं० श्यामाक) की मूँठियाँ ही खिलाया करती थी।[2]

§११८—ईख के खेत में फावड़ों से जो खुदाई की जाती है, उसे **गोड़** या **गुड़ाई** कहते हैं। कई बार गुड़ाई करना **ईख कमाना** कहा जाता है। लोकोक्ति प्रचलित है—

"मक्का नराई ते। ईख कमाई ते ॥"[3]

§११९—जितनी अधिक कमाई होगी उतनी ही अधिक ईख की **फुलक** (ऊपरी भाग) की **कोर** (सं० कोटि = नोंक) बढ़ेगी। प्रसिद्ध है—

"करौ कमाई तेरह गोड़। तब ही बढ़ै ईख की कोर ॥"[4]

*　　*　　*

"ईख खुदाई ते। बालक मिठाई ते ॥"[5]

*　　*　　*

"काटै घास नरावै खेत। ताहि पूरौ किसान कह देत ॥"[6]

"ऐंड़-मेंड़ की नराई। लम्बी जोत सवाई ॥"[7]

§१२०—खेती तथा नराई से सम्बन्धित कुछ कहावतें—

"धीरें बंजु उलाद्दती खेती।"१।

अर्थ—व्यापार धीरे-धीरे और खेती जल्दी से करनी चाहिए; तभी लाभ होता है। १।

"हर ते करीं पैर, पैर ते कठिन नराई।
जानें खोदी घास, मौत ताई की आई ॥" २।

---

[1] लोभी राजा का राज्य और गोभी घासवाला खेत नष्ट हो जाते हैं।

[2] "श्यामाक-मुष्टि-परिवर्धितको जहाति।"—कालिदास : अ०शाकुं०, ४।९६

[3] मक्का अधिक नराने से और ईख अधिक कमाने से फूलती-फलती है।

[4] जब ईख के खेत में तेरह गोड़ें देकर कमाई की जायगी तभी उसकी पत्तियों की नोंकें बढ़ेंगी।

[5] बालक मिठाई से और ईख खुदाई से हरी-भरी दिखाई देती है।

[6] जो सदा अपने खेत की घास काटता रहता है और नराई करता है, उसे ही पूरा किसान कहना चाहिए।

[7] खेत में पहली बार पूरब से पच्छिम की ओर नराई कर दी गई हो; फिर दूसरी बार उत्तर से दक्षिण की ओर नराई की गई हो। तीसरी बार में पच्छिम से पूरब की ओर, और चौथी बार में दक्षिण से उत्तर की ओर नराई की गई हो तो वह ऐंड़-मेंड़ या तोर-मोर की नराई कहाती है। इस नराई से और प्रारम्भ में लम्बी (गहरी) जुताई से खेती सवाई होती है।

अर्थ—हल चलाने से कठिन काम पैर (पुर-बर्त) चलाना है। पैर चलाने से भी कठिन खेत की नराई है। जिसे खेत की घास बार-बार खोदनी पड़ती है, उसकी तो मौत समझिए। २।

"मक्का बन औ ईख न गोड़ी।
ताके हाथ न लागै कौड़ी ॥" ३।

अर्थ—जो किसान मक्का, बन और ईख में गुड़ाई नहीं करेगा, उसे कौड़ी भी नहीं मिलेगी।३।

"जौ बन बीनन कूँ आई।
तौ दुपती चौं न नराई ॥" ४।

अर्थ—धरती में से जब बन का कुल्हा (अंकुर) निकल आता है, तब उस पर आमने-सामने मिले हुए दो पत्ते लगे होते हैं जो **दुपती** कहाते हैं। उस समय वह बन **दुपतिया** कहाता है। यदि **पैहारी** (बन बीननेवाली) बन बीनने के लिए आई है तो उसने पहले दुपतिया बन को नराने का प्रबन्ध क्यों नहीं किया था? उस समय ठीक नराई हो जाती तो आज कपास अच्छी तरह उतरती।४।

अध्याय ६

भराई

§१२१—खेत की फसल में पानी लगाना **भराई** कहाता है। **पल्लगा** (पानी लगानेवाला) पानी लगाते समय **बरहा**, मेंड़ और क्यारी में भागता-सा फिरता है। **बरहे** (पानी बहने का रास्ता) में से खेत में पानी ले जाने के लिए बरहे की मेंड़ में एक छोटा-सा रास्ता बनाया जाता है, जिसे **मुहारा** कहते हैं। पानी लगाने के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

"पानी कौ लगाइवौ। है साँप कौ खिलाइवौ ॥" [1]

§१२२—बुवाई से पहले खेत कई बार जुतता है। जुताई से पहले खेत में जो पानी दिया जाता है, उसे **परेवट** कहते हैं। उस पानी के लगाने के लिए **'परेहना'** धातु प्रचलित है। भराई खेती की जान है—

"जमैगी तब जर। जब भुम्मि होइ तर ॥[2]

§१२३—पानी चाहनेवाली खेती के लिए समय पर हुई वर्षा अमृत के समान मानी जाती है। अथर्ववेद का ऋषि समयानुकूल होने वाली वर्षा को जल न कहकर घी बतलाता है।[3]
आज भी समय पर हुई वर्षा को देखकर किसान कह उठता है—"**सोनौ बरसि रह्यौ है।**"

[1] पानी लगाना साँप के खिलाने के समान कठिन काम है।
[2] जब धरती पानी से तर कर दी जायगी, तभी फसल की जड़ें नीचे गहरी होती जाएँगी।
[3] 'आपदिन्द्रस्मै घृतमिव क्षरन्ति।' —अथर्व० ७।१८-१।२
अर्थात् इन पृथिवी के लिए जल घृत जैसा बरस रहा है।

§१२४—**भराई के नाम**—बैसाख की फसल जौ, गेहूँ आदि—कई बार भरी जाती है। बुवाई के उपरान्त उगी हुई खेती में पहली बार पानी लगाना **भूड़ भरना या भूड़ बुझाना** (अत० में) कहाता है। दूसरी भराई **पखारा या दुमानी** (सादा० और इग० में) कहाती है। तीसरी भराई को **तिखारा या तिमानी** (सादा०, सिकं० और इग० में) कहते हैं। गेहूँ के खेत में चौथा पानी भी लगता है, जिसे **चौखारा, जलकटा या बलिकटा**(हाथ०में) कहते हैं। चौथी बार भराई करके फिर पानी देने का झंझट काट दिया जाता है, संभवतः इसीलिए चौथी भराई को **जलकटा** कहते हैं। चौथे पानी के समय गेहूँ की बाल कुछ-कुछ पक जाती है, और गेहूँ **कटाई** (कटने पर) आ जाता है। इसलिए चौथी भराई **बलिकटा** भी कहाती है।

§१२५—चनों में एक, मटरे में दो, जौ में तीन और गेहुँओं में चार पानी लगते हैं। मेथी, पालक आदि पालेज में तरी के लिए जब थोड़ा-थोड़ा पानी दिया जाता है, तब उसके लिए **रौंकना** धातु का प्रयोग होता है, जैसे—"**मेथी में पानी रौंकि देउ**।" लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है—

"आलू बओ अँधेरे पाख। खेत में डारौ कूड़ौ राख।
देखि औसरौ रौंकौ पानी। तब अराइ आल मनमानी॥"[१]

फसल की भराई के सम्बन्ध में अन्य कहावतें भी प्रचलित हैं—

"तरकारी जिअ है तरकारी। जाते पानी की भरमारी॥[२]
"साठी होइगी साठए दिन। जौ पानी मिल जाइ आठए दिन॥"[३]

* * *

"चैना चैना चैना।
सोलह पानी देना॥
ज्यों ही ब्यार चले ना।
फिर लेना और न देना॥"[४]

* * *

"अगहन में सरवा भर। फेर न भलौ करवा भर॥"[५]

* * *

"पूस किसनई हेठी। अगहनियाँ पानी जेठी॥"[६]

---

[१] खेत में कूड़े-राख का खाद डालकर आलू (सं० आलु) अँधेरे पाख (कृष्णपक्ष) में बोना चाहिए। जब पानी देने का औंसरा (बारी) हो तब थोड़ा-थोड़ा पानी दे देना चाहिए। ऐसा करने पर आल (आलू का पौधा) अच्छी तरह बढ़वार (वृद्धि) पकड़ेगी।

[२] इसका नाम तरकारी है। इसीलिए तो इसके खेत में पानी की भरमार रहनी चाहिए।

[३] यदि हर अठे में पानी मिलता रहे तो साठी चावल की फसल साठवें दिन पक जाती है।

[४] चेने के खेत में सोलह बार पानी देना चाहिए। यदि हवा ज़ोर की चलने लगी तो फिर कुछ हाथ न लगेगा।

[५] वैसाख की फसल को यदि अगहन के महीने में सरवा (सं० शराव = मिट्टी का एक छोटा ढक्कन जो घड़े के मुँह पर रक्खा जाता है) भर के ही पानी मिल जाय तो बहुत लाभदायक है। इसके बाद पूस माह के महीने में क़रवा (सं० करक = टोंटीदार मिट्टी का एक लोटा-सा) भरा पानी भी व्यर्थ है। सारांश यह है कि अगहन का थोड़ा-सा पानी ही खेती में बढ़वार ले आता है। उसके बाद पानी देना बेकार है।

[६] अगहन में पानी देने से फसल जेठी (सं० ज्येष्ठ—जेठ-स्त्री० जेठी = उत्तम) रहती है; और पूस के पानी से तो हेठी (सं० अधःस्थ अथवा अधस्तान्—हेठ-स्त्री० हेठी = बज्जी) हो जाती है।

§१२६—**विभिन्न क्यारियों के नाम**—जिन खेतों में बम्बे या नहर से पानी लगता है, उनमें बड़ी-बड़ी क्यारियाँ बनाई जाती हैं, जिन्हें **पहल, पैल, बैला** या **बैल** कहते हैं। जिन खेतों में कुएँ से पानी लगता है, उनकी क्यारियाँ अपेक्षाकृत छोटी होती हैं। उन्हें **नख** कहते हैं। कुएँ की भराई का खेत पहले चार-पाँच बड़े भागों में मेंड़ लगाकर बाँट लिया जाता है। वे बड़े-बड़े विभाग **किवारे** कहाते हैं। जब एक किवारे में मेंड़ें लगाकर कई विभाजन किये जाते हैं, तब वे छोटे भाग **नख** या **क्यारी** (सं० केदारिका) कहाते हैं। भराई के समय जब नख में पानी इतना भर जाय कि मेंड़ों पर से उतरने लगे तो उसे **नख लौटना** कहते हैं। बड़ी-बड़ी पहलें **सेला** (अनू० में), **डाँड़ा** (खैर में), **मेला** (खुर्जे में) या **डाँगर** (राज० में) कहाती हैं। खेत की पहलों में पानी आसानी से पहुँच जाय, इसलिए खेत के बीच में एक बरहा भी बनाया जाता है, जिसे **लहूरा** (सादा० में) कहते हैं। नख, पहल या लहूरा बनाने की क्रिया **माँझ करना** या **सौल करना** (सादा० में) कहाती है।

§१२७—**खेत में पानी लगाना**—खेत की पहलों में बिना क्यारियाँ बनाये हुए जब बम्बे का पानी इकसार हालत में लग जाता है, तब उसे **कटऊ पानी** कहते हैं। बम्बे के खेतों में पानी लगाने के लिए दिन और समय निश्चित होता है। उसे **ओसरा** (सं० अवसरक) कहते हैं। गेहूँ के खेत में बाल आ जाने पर भराई अच्छी तरह करनी चाहिए। लोकोक्ति है—

"गेहूँ पै जब बाल। खेत बनाओ ताल॥"[1]

§१२८—कातिकिया फसल के खेत में मेंड़ें ऊँची बनानी चाहिए, क्योंकि वर्षा का पानी अधिक मात्रा में होता है। क्यारियों में से पानी निकल गया तो खेत की ताक़त कम हो जायगी। लोकोक्ति है—

"टूट गई जो क्यारी। खेतु भयौ उजारी॥"[2]

धान, पान और ईख बहुत पानी चाहते हैं—

"धान पान ऊखेरा। तीनों पानी के चेरा॥"[3]

§१२९—कातिक की फसल में पानी आकाश के बादलों से ही मिलता है। मक्का, ज्वार और बन आदि को **आगासी खेती** (आकाश की खेती) भी कहते हैं। फावड़े से मिट्टी उठाकर किसी जगह रखना **थापी लगाना** कहाता है। हाथ से मिट्टी जमाने को **चौंपी रखना** कहते हैं। चौमासे की वर्षा हो रही है, किसान और किसानी अपने खेत की क्यारियों में पानी रोकने के लिए काम में लगे हुए हैं। किसान फावड़े से थापी लगा रहा है और किसानी लहँगे का कछोटा मारे हुए मेंड़ों पर चौंपी रख रही है। किसानी के पाँवों के बीछिये और खडुए (सं० खड्ड—मो० वि०) मिट्टी के काँदे (सं० कर्दम=कीच) में सन गये हैं। उसके इस कर्मठ रूप पर कवि शूद्रक की अनेक वसन्त सेनाएँ इस पद्य को निछावर कर सकती हैं।[4]

---

[1] जब गेहूँ पर बाल आ रही हो तब खेत को पानी से भरकर ताल-सा बना दो।

[2] यदि पानी से क्यारी टूट गई तो खेत ऊजड़ हो जायगा।

[3] धान, पान और ईख पानी के आश्रित हैं।

[4] 'विद्युद् वारिदगर्जितैः सचकिता,
त्वद्दर्शनाकांक्षिणी।
पादौ नूपुर लग्न कर्दमधरौ,
प्रक्षालयन्ती स्थिता॥"
—शूद्रक, मृच्छकटिक, ५।३५

विभाग ३

उगी हुई फसलों का क्रमशः बढ़ना और उनकी विभिन्न दशाएँ

अध्याय ७

कातिक की फसल

§१३०—बन (कपास), मक्का, ज्वार, बाजरा, उर्द, मूँग, सन, ईख तिल और धान आदि की खेती **कातिकिया खेती** या **सामनी** कहाती है। गेहूँ, जौ, चना, मटर, सरसों और मसूर आदि को **बैसखिया खेती** या **बामनी** कहते हैं। जो खेती जिस महीने में पक जाती है, वह उसी महीने के नाम से पुकारी जाती है। **आलू, गाजर, मूली, प्याज़, पालक, मेथी, गोभी, करेला** और **बैंगन** आदि साग-तरकारियों की खेती को **पालेज** (फ़ा० पालीज़) कहते हैं। **लौका, तोरई, कासीफल, काँकरी** (ककड़ी), **खरबूजे** और **तरबूजे** आदि की खेती **बारी** (सं० वाटिका > वारिया > बारी) कहाती है। बारी की बेलों पर लगनेवाले नये और कच्चे फल, जिनके सिरे पर फूल भी लगा रहता है, **जई** या **बतिया** कहाते हैं। लौके की जई की तरकारी अधिक स्वादिष्ट और गुणकारी होती है।

§१३१—किसान स्वयं अपने हाथों से जिस खेती को करता है, उसे **हरगही** (सं० हल-गृहीता) खेती कहते हैं। जिस खेती में किसान हल नहीं पकड़ता लेकिन देख-रेख की दृष्टि से **हरहारे** (=हलवाहा) के साथ रहता है, उसे **सँगरही खेती** कहते हैं। जब खेत का मालिक किसान अपने हलवाहे को आज्ञा तथा निर्देश देकर खेत में काम करने के लिए भेज देता है और स्वयं घर पर पड़ा रहता है, वह खेती **पुछरही** या **सँदेसी** कहाती है। किसानों का कहना है कि सँदेसी खेती सबसे अधिक निखिद्द (सं० निषिद्ध) मानी गई है। कहावतें भी प्रचलित हैं—

"उत्तिम खेती जौ हरु गह्यौ। मद्धिम खेती जौ सँग रह्यौ॥
जौ पूछैं हरहारो कहाँ। बीज नाठि गये तिनके तहाँ॥"[1]

* * *

"बाढ़ै पूत पिता के धर्मा। खेती उपजै अपने कर्मा॥"[2]

* * *

"दस हर राउ आठ हर राना। चार हरनु कौ बड़ौ किसाना॥
द्वै हर खेती इक हर बारी। एक बैल ते भली कुदारी॥"[3]

---

[1] यदि किसान स्वयं अपने हाथ से हल चलाता है तो खेती उत्तम होगी। यदि केवल हलवाहे के साथ ही रहता है तो उसकी खेती मध्यम श्रेणी की ही रह जायगी। जो किसान खेत तक न जायेंगे और दूर से ही हलवाहे से खेती के विषय में पूछते रहेंगे, उनका बीज भी वहाँ का वहीं नष्ट हो जायगा।

[2] पुत्र पिता के धर्म से फूलता-फलता है और खेती अपने हाथों से ही ठीक तरह उगती है।

[3] जिस किसान के पास दस हलों (५० कच्चा बीघा = १ हल; १० हल = ५०० कच्चे बीघों की खेती) की खेती है, वह राव के समान है। आठ हलवाला राणा है और चार हलों की खेतीवाले को बड़ा किसान कहते हैं। खेती कम से कम दो हलों (१०० कच्चे बीघों) की अवश्य होनी चाहिए और बारी एक हल की। जिसके पास एक ही बैल है अर्थात् कुल पच्चीस ही बीघे खेत हैं, उस किसान के लिए तो उचित है कि वह कुदाली हाथ में लेकर मजदूरी कर ले।

§१३२—कातिकिया खेती (सामनी) में होनेवाले उर्दों और मूँगों को सामूहिक रूप में **मसीना** (सं० माषीण) कहते हैं। कपास का पौधा **बन** या **बाड़ी** कहाता है। बन के बीज को **बनौरा** (सं० वन[1] + पोत-लक—बन + ओलअ—बनौला—बनौरा) कहते हैं। बीज के बिनौले को बोने से पहले गुबरौटी (गोबर + मिट्टी) में पानी डालकर मिला लिया जाता है। इस प्रक्रिया के लिए जनपदीय धातु **ओलना** (सं० आर्द्रयण > प्रा० ओल्लण > गीला करना > पा० स० म०) प्रचलित है। भीगा हुआ बिनौला **आला** (सं० आर्द्र > प्रा० अद्द > अल्ल > आला) **बनौरा** कहाता है।

§१३३—बिनौला अंकुर रूप में जब धरती से निकलता है, तब उसे **कुल्हा** (कोल और हाथ० में) या **किल्ला** (खैर और खुर्जे में) कहते हैं (सं० कीलक > कीलअ > कीला—किल्ला)। कुल्हा जब कुछ बढ़ता है तब उसके सिरे पर जुड़े हुए दो दल अर्थात् दो पत्ते निकल आते हैं। उन दोनों पत्तों को सामूहिक रूप में **दौला** (सं० द्विदलक) या **दुपता** (सं० द्विपत्रक) कहते हैं। दुपती बन को नराने से पौधे की **बढ़वार** (वृद्धि) बड़ी **मातबर** (अ० मौतबिर = विश्वास के योग्य) होती है। लोकोक्ति है—

"जौ बन बीनन कूँ आई। तौ दुपती चौं न नराई॥"[2]

दुपते के बाद में बन **चौपता** (चार पत्तोंवाला) भी होता है। इसके उपरान्त उसमें छोटी-छोटी कोंपलें क्रमशः निकलती रहती हैं, जिन्हें **किलसियाँ** (सं० किसलय) कहते हैं।

§१३४—बन के पौधे पर प्रारम्भ में बन्द मुँह का लम्बा-सा फूल आता है। जो **पुरी** कहाता है। जब **पुरी** का मुँह खुल जाता है तब उसे **फूल** (सं० फुल्ल) कहते हैं। बन का फूल कुछ-कुछ पीला, लाल और बैंजनी (बैंगनी) रंग का होता है। बाण ने कादम्बरी में इसका उल्लेख किया है कि "—सौभाग्यवती बूढ़ी स्त्रियाँ बन के लाल-पीले फूलों से गोबर के चौक सजा रही थीं।"[3]

§१३५—फूल के पश्चात् बन पर सख्त और नोंकदार गोल फल आता है, जिसे **गूलर** या **गूला** (सं० गोलक > गुल्लअ > गूला) कहते हैं। धूप और हवा के प्रभाव से गूला पककर फूट जाता है, और उसके अन्दर की सफेद कपास चमकने लगती है; उस दशा को **बन का तिरना** कहते हैं। तिरे हुए बन की छटा श्वेत निर्मल तारकित आकाश के समान दिखाई देती है। तिरा हुआ गूला **टैंट** कहाता है। पूर्णतया तिरा हुआ गूला **तिरैंमा टैंट** और बहुत कम तिरा हुआ गूला **मुँहमुदा** (सं० मुखमुद्रित[4]) **टैंट** कहाता है।

§१३६—जब टैंट में से कपास निकाल ली जाती है तब वह खाली टैंट **फाँक** कहाता है। कपास निकालने के लिए '**फाँक नुकाना**' भी कहा जाता है। टैंट तोड़ना और फाँक नुकाना मिलकर '**बन बीनना**' कहाते हैं। टैंट की कपास प्रायः तीन भागों में होती है, प्रत्येक भाग **पखिया** कहाता है।

§१३७—बन के पौधे प्रायः तीन प्रकार के होते हैं—(१) **देसी**, (२) **बाकन्दी**, (३) **नरमा**। देसी और बाकन्दी की कपास सेत (सफेद) और नरमा बन की **ललौंही** (लाली सहित)

---

[1] प्रा० वण (सं० वन) = वनस्पति—पा० स० म०, पृ० ९२२।

[2] यदि तू कपास-प्राप्ति की आशा से बन बीनने के लिए आयी है तो पहले दुपती बन को नराया क्यों नहीं था?

[3] "राग रुचिर कार्पास कुसुमलेशशर्ताङ्किताभिः।"
—बाण : कादम्बरी, भूमिकायुक्त पत्रिका, सिद्धान्तविद्यासागर कलकत्ता, १८४० शकाब्द, पृ० २७६।

[4] "मुद्रिताम्बुजनसंक्रमनः मकरन्द पतत्त्विषः ममपादीत।"
—श्रीहर्ष : नैषधीयचरित, निर्णयसागर, सप्तम संस्क०, ५।१२।

होती है। देसी या बाकन्दी बन की कपास जो सफेद, फूली हुई और बड़े बिनौले की होती है, उसे **फोला** कहते हैं। पिचकी हुई तथा खराबी के कारण लाल रंग की कपास **कानी** कहाती है।

§१३८—एक बार में तिरे हुए टेंटों में से जितनी कपास एक बार निकलती है, वह **कपास उतरना** कहाता है। जब बन का तिरना बन्द हो जाता है और उसमें से शेष गूले भी सूँत लिये जाते हैं, तब उसे **उजड़ा हुआ बन** कहते हैं। बन के उजड़ जाने पर उसकी **लौद** (लकड़ियाँ) काट ली जाती हैं। बन की लकड़ियाँ **लौद, लगौद, बनकटी** या **बनौट** कहाती हैं। बन की लौदों को किसान आग में जलाकर तापते हैं। बन के पौधे का तना **बनकटी** और उसके तने की छोटी और पतली टहनियाँ **बकौनी** कहाती हैं।

§१३९—बन के खेत में बीच-बीच में सन की कई पाँतें लगाई जाती हैं, जो **आड़** कहाती हैं। **जौंड़री** (ज्वार) और **बाजरा** (अ० बज्र=बीज) नाम के खेतों में सनबीजा की आड़ें लगती हैं। सन के पौधे पर गोल तथा काँटेदार फल आता है, जिसे **ढैमना** (इग० में) या **भुंभुनू** (हाथ० में) कहते हैं। सन के पौधे को काटकर एक पोखर में गाड़ देते हैं। ऊपर की पटारें गल जाने पर सन को डंडियों पर से उचेल लेते हैं। उस उचले हुए सन की पटार को **पौना** (इग० में), **पेउँआ** या **पूँजा** कहते हैं। सन की वे सूखी डंडियाँ, जिन पर से सन अलग कर लिया जाता है, **सेंटी** (सं० शण+यष्टिका) कहाती हैं। यदि सेंटी के सिरे पर आग जला दी जाती है तो वह जलती हुई सेंटी **लूकटी** कहाती है। सन की उतरी हुई पटारों को **पटसन** या **असाढ़ा फुलसन** कहते हैं। सन-बीजे की पटारें **लकड़ा सन** कहाती हैं, क्योंकि यह सन लकड़ी के समान कड़ा होता है।

§१४०—धरती से अंकुर निकलना **'कुल्हा फूटना'** या **'कुल्ला फूटना'** कहाता है। जब **मक्का, जौंड़री** (ज्वार) या **लहरे** (बाजरे) के नुकीले अंकुर खेत में कुछ-कुछ निकल आते हैं, तब वे **सुई** कहाते हैं। मक्का, जौंड़री और लहरे के तने **फटेरा** कहाते हैं।

§१४१—लहरे की बाल जिस स्थान से निकलती है, उसे **कोथ** कहते हैं। बाल के नीचे का **डाँठुरा** (डंठल) जब बड़ा हो जाता है, तब उसका कुछ हिस्सा एक लम्बी नली-सी में रहता है; उस नली को **नरुका** (नलका) कहते हैं।

§१४२—मक्के के बड़े पौधे में से गाँठें फूटती हैं और लाल-पीले रंग के रेशे से निकलते हैं; उन रेशों को **सूत** कहते हैं। सूत के नीचे के भाग में हरे **पगुला** (हरे पर्त जिसके अन्दर मक्का की भुटिया रहती है) में पहले सफेद **गड़ेली** (सं० गण्डेरिका—गण्डेरिआ—गंडेरी—गड़ेली) बनती है। गड़ेली बन जाना मक्का में **छपकिया पड़ना** कहाता है। जब दूध जैसे श्वेत रस से भरे हुए दाने गड़ेली पर लग जाते हैं, तब उसे **दुद्धर मुठिया** (दूध से युक्त भुटिया) कहते हैं। पकी हुई **मुठिया** (खैर-खुर्जे में **कूकरो**, सादा० में **अड़िया**) पर से दाने हटाना **मक्का नुकाना** कहाता है। **मुठिया** (भुटिया) पर से पगुला अलग करने की क्रिया **मक्का सोंटना** कहाती है। भुटिया के सम्बन्ध में एक पहेली भी प्रचलित है—

"एकु अनोंखौ फलु तू जान। पहलैं बूढ़ौ पीछैं ज्वान॥
ता फल कौ तुम देखौ हाल। बाहिर खाल तौ भीतर बाल॥"[1]

§१४३—भुटियों को सोंटने का काम **सोंट** या **सुँटाई** कहाता है। सुँटाई के पश्चात् किसानों की स्त्रियाँ **सोंटे** (मोटा डंडा) से पकी और सूखी भुटियों को पीटती हैं। पिटाई से मक्का के दाने अलग हो जाते हैं। दानों रहित नंगी बड़ी गड़ेली **छूँछ** (सं० तुच्छ>प्रा० छुच्छ>छूँछ)

---

[1] एक अद्भुत फल है, जो पहले बुड्ढा और फिर जवान बनता है। यदि तुम उस फल को देखोगे तो पता लगेगा कि उसके ऊपर खाल (चमड़ा) है और खाल के अन्दर बाल हैं।

कहाती है। छूँछ का टुकड़ा **भुड्डी** या **भुल्ली** कहाता है। मक्का में एक नोंक-सी निकली रहती है, जिसे **नाक** या **फूल** कहते हैं। मक्का के दाने का फूल जब बिदाई के समय टूटता है, तब उसमें से एक छिलका-सा निकलता है, जिसे **फूआँ** कहते हैं। मक्का के सूखे और कटे हुए पौधों को **करब** कहते हैं। सूखी करब का **फटेरा** (तना) कड़ा हो जाता है। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

"नंगी चाँद करब ढोवै। लगै फटेरौ तब रोवै॥"[1]

§१४४—हरी **जौंड़री** (ज्वार) को पौहे (पशु) खाते हैं; अतः उसे **चरी** (सं० चारि—प्रा० चारि=चारा—पा० स० म०) नाम से भी पुकारते हैं। जब तक मेह नहीं पड़ता तब तक ज्वार के छोटे पौधे के कोथ में एक छोटा-सा कीड़ा होता है, जिसे **भौंरी** कहते हैं। उस समय उस चरी को **भौंरिया चरी** कहते हैं। उस चरी को खानेवाला पशु मर जाता है। ज्वार के ऊपर जो चौड़ी तथा मोटी बाल आती है, उसे **भुट्टा** या **भुट्टिया** कहते हैं।

§१४५—जब भुट्टे पक जाते हैं, तब किसान उन्हें दराँतों से काट लेते हैं। यह क्रिया **कतर** या **चोंट** (खैर में) कहाती है। कतर हो जाने पर ज्वार का पौधा **चोढ़ा** कहाता है। जब भुट्टों को मोटे डंडों से पीट लिया जाता है, तब उनमें से ज्वार के दाने निकल आते हैं। भुट्टे में लगे हुए दानों के खोखले घर **बबूला, बूबला** (सादा० में) या **भोड़ा** (खैर—इग० में) कहाते हैं।

§१४६—जौंढ़री (ज्वार) के भुट्टों का भुस **भोड़री** कहाता है। कोई-कोई किसान जाड़ों में पशुओं को करब खिलाने की इच्छा से ज्वार को रखा लेते हैं। उस ज्वार को वे निरन्तर कातिक और अगहन तक रखते हैं, खेत में से काटते नहीं। खेत में उगी हुई वह ज्वार **गँधेल** कहाती है।

§१४७—**लहरें** (बाजरा) की बालें भी पीटी जाती हैं। बाजरे की बाल में से जो लम्बी और पतली डंडी-सी निकलती है, उसे **ठुंठो, डूँड़री** या **छूँछरी** कहते हैं। दाने रहित बबूले को **मुँहमुदा** (सं० मुखमुद्रित) कहते हैं। ज्वार के पौधे में पहले बाल निकलती है, और वही बाल निकलकर भुट्टा बन जाती है। पहेली प्रचलित है—

"आगें आगें बहना आई, पाछें पाछें भइया।
भइया बढ़ि गयौ बाबा बनि गयौ, दाढ़ी कौ लटकइया॥"[2]

§१४८—मक्का के साथ जैसे **काँगुनी** (एक पौधा) बो दी जाती है, उसी प्रकार बन के साथ प्रायः **उर्द, मूँग, मोंठ** और **रमास** भी बो दिये जाते हैं। इनकी खेती **मसीना** (सं० माषान्न) कहाती है। मसीने (उर्द, मूँग, मोंठ आदि) के तने को **जाखिन** कहते हैं। जाखिन की फूली हुई गाँठ **करयौ** कहाती है। करयौ धीरे-धीरे बढ़कर पहले फूल में और फिर फली के रूप में बदल जाता है।

§१४९—**उर्द** (देश० उडिद—दे० ना० मा० १।९८), **मूँग** (सं० मुद्ग) और **मोंठ** (सं० मकुष्ठ—अमर० २।९।१७) आदि की फलियाँ जब पक जाती हैं, तब उनके पौधे फलियों सहित ही काटकर **पैर** (सं० प्रकर>प्रा० पयर>पइर>पैर=खलिहान) में डाल दिये जाते हैं। कहीं सामूहिक रूप में मसीने या **लाँक** (देश० लंका, लंख) कहते हैं।

§१५०—खेत में से मसीने की बेलें उखाड़ना **उखार** कहाता है। मौंठ को पैर में एक स्थान पर इकट्ठा करके फिर उसे काढ़कर गोलाकार रूप में फैला दिया जाता है। उस रूप को **पैरौ**

---

[1] यदि किसान नंगे सिर पर करब ढोता है तो जब उसका फटेरा सिर में लगता है तब वह रोता है।

[2] आगे बहिन (बाल) आई और पीछे भाई (भुट्टा)। भाई बढ़ा होकर बाबा बन गया और दाढ़ी लटकाने लगा। ज्वार का भुट्टा पककर दाढ़ी सा [illegible] लगता है।

जाता है। खूँद के नरम पत्ते **लपस** कहाते हैं। गेहूँ के **कोथ** (त० हाथ० में **कोत** भी) से जब बाल निकलने को होती है, तब कोथ कुछ फूल जाता है। उस फूले हुए कोथ को **फूला** कहते हैं। गेहूँ, जौ, जई आदि की बालों में दाना पड़ना **अंडा पड़ना** कहाता है। गेहूँ की बालें प्रायः दो प्रकार की होती हैं—

(१) **तीकुरिया बाल**—इसमें सख्त बड़े बालों की भाँति **तीकुर** (शूक) निकले रहते हैं।

(२) **मुड़िया बाल**—इसमें तीकुर नहीं होते। ऐसा मालूम पड़ता है कि गेहूँ की बाल के सिर के बाल मूँड़ दिये गये हों।

§१६२—जब बाल दानों से पूरी तरह भर जाती है, तब उसका रंग सुनहरी हो जाता है। उस समय वह बाल **सुनैरा** कहाती है। बाल के जिस खोल में गेहूँ का दाना रहता है, वह खोल **अकौआ** कहाता है। अकौए सहित गेहूँ के दाने को **दोरई** कहते हैं। गेहूँ और जौ के खेतों में प्रायः **सरसों** (सं० सर्षप) और लहा की **आड़ें** (सं० आलि > आरि > आड़ = कूँड़, रेखा) लगाई जाती हैं। दो आड़ों के मध्य का भाग **माँग, क्यारी** या **जइया** (सादा० में) कहाता है। लावा जब लाई करते समय गेहूँ, जौ आदि के मूठों की पाँतियाँ लगाता जाता है, तब उन पाँतियों को **सतरियाँ, लकुरियाँ** या **कोरियाँ** (हाथ०, सादा० में) कहते हैं। मटर को उखाड़ने के लिए **'खोंसना'** क्रिया का प्रयोग किया जाता है। मटर खोंसने के समय किसान उसकी छोटी-छोटी गड्डियाँ बनाता चलता है। मटर का खोंसा हुआ पौधा **अलहौआ** या **लहौआ** कहाता है। बैसाख की फसल काटनेवाला लावा और कातिक की फसल काटनेवाला **कपटा** (सं० क्लृप्ता) कहाता है। पहले बोई हुई फसल **अगमनी** और बाद में बोई हुई **पिछमनी** कहाती है। अगमनी बुवाई सदा अच्छी रहती है। लोकोक्ति है—

"नीचें डारौ, पूतनु पारौ। सदा अगायौ, होइ सवायौ॥"[१]

§१६३—जब लाँक को **पैर** (खलिहान) में एक जगह ऊँचा-ऊँचा इकट्ठा कर दिया जाता है, तब उस बड़े ढेर को **बाँहीं** (कोल, हाथ० में), **जाँगी** (अ० में) या **कुरीं** (इग० में) कहते हैं। बाँहीं हवा से धरती पर न गिर सके, इसलिए उसे **जूने** (वै० सं० यून)[२] से लपेट दिया जाता है। जूना एक प्रकार का मोटा रस्सा-सा होता है, जो नलई को ऐंठकर बनाया जाता है।

§१६४—लाँक पर दाँय चल जाने पर गही हुई पैरी की बरसाई होती है। जब हवा बहुत मन्द होती है, तब दो किसान लम्बा-सा चादरा लेकर हवा करते हैं और एक किसान छबड़े में पैरी भरकर बरसाता है। उस क्रिया को **पत्तवाई** (सं० पटवात > पतवाइ > पत्तवाई) **मारना** कहते हैं। लोकोक्ति प्रचलित है—

"लाँकु लाइ बाँहीं धरी, दियौ सुखाइ बिछाइ।
दाँय चलाइ गहाइ कैं, मार दई पत्तवाइ॥"[३]

§१६५—गेहूँ या जौ का खेत जब कट जाता है तब उसमें कुछ बालें पड़ी रह जाती हैं; उसे **सिला** (सं० शिल) कहते हैं। उस सिले को बीनने के लिए (इकट्ठा करने के लिए) जो स्त्रियाँ जाती

---

[१] यदि बोते समय बीज गहरे कूँड़ में डालोगे तो खेती अच्छी होगी और पुत्रों को पाल लोगे। आगे बोई जानेवाली फसल सवाई होती है।

[२] "ईंडुरी के लिए 'इण्डु' और जूने के लिए 'यून' वैदिक शब्द हैं। ये श्रौत-सूत्रों में प्रयुक्त हैं।" डा० वासुदेवशरण अग्रवाल,: पृथिवीपुत्र, पृ० १२२।

[३] लाँक (देश० लंक = ढेर) को खेत से लाकर पैर में किसान ने बाँहीं लगाई उसे सुखाया और बिछाया। फिर दाँय चलाकर गहाया और पत्तवाई मारकर बरसा लिया।

हैं, वे **सिलहारी** कहाती हैं। मटर के खेत में छोटी-छोटी माँगें नहीं होतीं, बल्कि बड़ी-बड़ी **पैलें** (=बड़ी क्यारियाँ) होती हैं। गेरठ की कोरवी में पैल को **'मेला'** कहते हैं।

§१६६—लाई पड़ते समय लावाओं को **धीमरी** (कहारी) गागर में पानी पिलाने ले जाती है। उस समय वह पानी **प्याऊ** (सं० प्रपा) कहाता है। प्याऊ पिलाने के बदले में जो लाँक धीमरी को मिलता है, वह भी **प्याऊ** कहाता है। अन्य टहलुओं और पंडित-पुरोहितों को भी लाँक मिलता है। चमार आदि छोटी जातियों के लोगों को दिया जानेवाला लाँक **'चकटी'** और पुरोहित-पंडित को दिया जानेवाला **'असीस'** (सं० आशिस्) कहाता है। दस मूठों की एक **कौरिया** (सतरिया), दस कौरियों की एक **जेट** और दस जेटों का एक **बोझ** कहाता है।

§१६७—सरसों, लहा और दूआँ का बीज **वाख्वर** और उर्द-मूँग का **चाकस** (देश० चक्कस=अन्न विशेष—पा० स० म०) कहाता है। सरसों का अंकुर जब एक अंगुल मोटा और
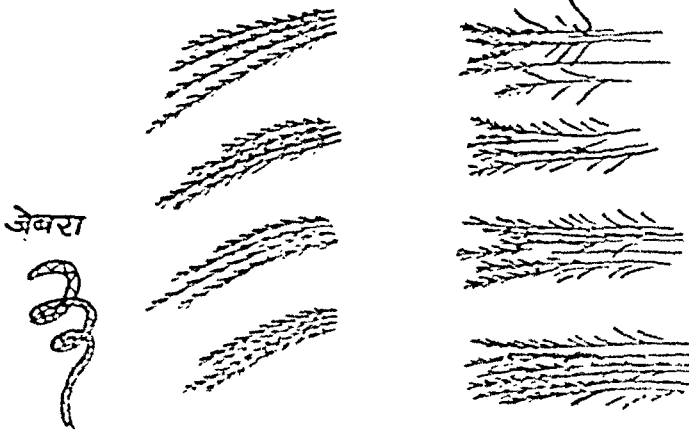
[रेखा-चित्र १६]

लगभग एक हाथ ऊँचा हो जाता है, तब उसे **गाँड़र** कहते हैं। **गाँड़र** की भुजिया बड़ी स्वादिष्ट होती है। किसान लोग प्रायः मक्का की रोटियाँ उर्द की दाल और गाँड़र की भुजिया से खाया करते हैं। गाँड़र के पत्ते **पाते** कहाते हैं। **अगहन** (सं० अग्रहायण) मास में प्रायः किसानों की स्त्रियाँ **बथुआ** (सं० वास्तुक) और **पाते** (सर्षप-पत्र) का साग **रँधेंड़ी** (सं० रंधन + भाण्डिका > रंधन + हंडिया > रँधेंड़ी) में राँधा करती हैं। अगहन के दिनों की लघुता के सम्बन्ध में साग की हँड़िया (हाँडी) के माध्यम से कहा जाता है—

"आयौ अगहन। हँड़िया रँधे न ॥"[1]

इसी प्रकार कातिक, पूस, माह और फागुन के सम्बन्ध में भी लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—

"कातिक। बातिक ॥ आयौ पूस। घर में घूस ॥
माह ठिला ठिल जाइ। फागुन में रंगीला जाइ ॥"[2]

---

[1] अगहन का दिन इतना छोटा होता है कि साग की हँड़िया जो चूल्हे पर रखी जाती है, उसका साग रँध भी नहीं पाता अर्थात् पक भी नहीं पाता।

[2] कातिक के दिन बातों में ही बीत जाते हैं। लोमकारक पूस का महीना आ गया, अतः घर में घुस जाओ। माह में खिल्ला जाड़े पड़ते हैं और फागुन में रसिक जन फाग मस्त होकर बसन्त ऋतु का आनन्द लेते हैं।

"धन के पंद्रह मकर पचीस । चिल्ला जाड़े दिन चालीस ॥"[१]

§१६८—सरसों के पौधे जब तीन-चार हाथ ऊँचे हो जाते हैं, तब वे बसन्ती फूलों से **लद-बदा** जाते हैं। उस समय बसन्त ऋतु उन्हीं खेतों में अपनी अल्हड़ **ज्वानी** (जवानी) के **रमठल्ले** (रमण-क्रीड़ा) मारा करती है। ऐसा मालूम पड़ने लगता है कि सरसों ने सुआपंखी **तीहर मटका-कर** (पत्तियों का हरा लहँगा और फूलों की बसन्ती ओढ़नी ओढ़कर) नाचना आरम्भ कर दिया हो। कोई वस्त्र या भूषण पहनकर इतराने के अर्थ में **'मटकाना'** क्रिया प्रचलित है। सरसों के फूलों की **पंखुरियों** (पंखड़ियों) के ठीक नीचे जीरे के आकार की हरे रंग की गोलियों सहित **झुंगियाँ** भी लटकी रहती हैं। अतः सरसों के वे फूल **झुगझुगिया** फूल कहाते हैं। सरसों उनके फूलों की **तिलौंही खसबोई** (तिलवाली खुशबू = तैलाक्त[२] गन्ध) सूँघकर न मालूम कितने जनपदीय पृथिवी-पुत्रों का मन हिलोरें लेता होगा।

सरसों को काटकर और सुखा.. जब उस पर दाँय चलाई जाती है, तब उसकी फलियों में से दाने बाहर निकल जाते हैं और खा..ी फलियाँ भी कुचली-सी हो जाती हैं। उन कुचली और फटी हुई फलियों के छिकलों को **फरमास** या **फराँस** कहते हैं। बैलों के खुरों से कुचला हुआ फरमास जो सख्त तिनके के रूप में होता है, **तूरी** कहाता है। तूरी मिला हुआ भुस अच्छा नहीं होता, क्योंकि उससे पशु के **गलपटे** (सं० गल्लपटक[३] = गालों का भीतरी भाग) छिल जाते हैं। **बाखर** (सरसों के दाने) जब कोल्हू में पेली जाती है, तब तेल के अलग हो जाने पर जो छूँछा-सा रह जाता है उसे **खर** (सं० खलि>खरि>खर) कहते हैं। बेचारी बाखर स्वयं तो कोल्हू में पिलती है, किन्तु दूसरों को स्नेह (तेल) प्रदान करती है।

§१६९—मटर का बीज छोटा और मटरे का बड़ा होता है। इसके पौधे की मामूली-सी **बेल** (सं० वल्ली) चलती है जो क्षुप के रूप में वहाँ की वहीं एकत्र हो जाती है। मटर का तना जब बेल की भाँति आगे बढ़ता है, तब उसके सिरे पर एक सूत-सा निकल आता है; उसे **तुर्रा** (सं० तृणक>तृड़अ>तूड़ा>तुर्रा) कहते हैं। मटर के पौधे का पूरा ऊपरी भाग **छत्ता** (सं० छत्रक > छत्तअ > छत्ता) कहाता है। पहले बैंजनी (बैंगन के-से रंग का) फूल आता है, तत्पश्चात् फली। मटर की वह नई फली जिसमें दाने नहीं पड़ते **पेंपना** कहाती है। हरी तथा कच्ची फलियों को नुकाकर जो दाने साग-तरकारी आदि के लिए निकाले जाते हैं, वे **मकौना** कहाते हैं। पकी हुई मटर के दाने जब पानी में पकाये जाते हैं, तब वह क्रिया **उसेना** कहाती है। उसेये हुए दाने **कौमरी** कहे जाते हैं। कनछेदन आदि लोकाचारों पर **गीत गवइयनों** (गीत गानेवाली स्त्रियाँ) को कौमरियाँ ही दी जाती हैं। लोकोक्ति प्रचलित है—

"जैसी तेरी कौमरी, वैसे मेरे गीत।
तू ना बाँटै कौमरी, मैं ना गाऊँ गीत ॥"[४]

---

[१] चिल्ला जाड़े ४० दिन के होते हैं, जिनमें धन की संक्रान्ति के १५ दिन और मकर की संक्रान्ति के २५ दिन सम्मिलित हैं।

[२] "उड़ती भीनी तैलाक्त गन्ध फूली सरसों पीली-पीली ॥"
—सुमित्रानन्दन पन्त : ग्राम-श्री शीर्षक कविता।

[३] 'गल्ल' शब्द को हेमचन्द्र (दे० ना० मा० २।८१) ने देशी माना है। पाइअसद्दमहण्णवो में इसे संस्कृत शब्द भी लिखा है।

[४] तेरी कौमरियों की तरह ही मेरे गीत होंगे। यदि तू कौमरी न बाँटेगी तो मैं भी गीत न गाऊँगी।

मटर के पौधे को उखाड़कर एक जगह इकट्ठा करना लहौआ बनाना या लकुरी बनाना कहाता है।

§१७०—रबी की फसल में उगाई जानेवाली एक मुख्य उपज चना[1] (सं० चणक> चनअ> चना) भी है। चने के दाने के ऊपर का छिलका चोकला कहाता है। चोकले के अन्दर आपस में जुड़े हुए जो गोल दो भाग होते हैं; उनमें से प्रत्येक को दुबौल कहते हैं। चकले में दला हुआ चने का दाना दाल कहाता है। पिसे हुए दुबौलों का आटा बेसन कहाता है। चने का मोटा आटा जो घोड़े को खाने के लिए दिया जाता है रातिब कहाता है। चने और सिरके के सम्बन्ध में कहावत है—

"चना चक्की में। सिरका धरती में॥"[2]

चने के सम्बन्ध में एक पहेली भी है—

"मिल्यौ रहै तौ पुरिख है, अलग रहै तौ नारि।
सोने कौ-सौ रंग है, चातुर लेउ विचारि॥"[3]

जिस खेत में डले (ढेले) अधिक होते हैं, उसे ढिलिआ खेत कहते हैं। चने ढिलिआ खेत में ही अच्छी तरह उगते और बढ़ते हैं। गाढ़ धरती में ढेले उखड़ आते हैं। तब हल के जुए की बैलें बजती चलती हैं। लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—

"जब बैल खटाखट बाजै। तब चना लकाछड़ गाजै॥"[4]

* * *

"चुनिआ गेहूँ ढिलिआ चना॥"[5]

§१७१—चने का पौधा (सं० प्रवृद्ध) जब पाँच-छः आँगुर (सं० अंगुल) ऊँचा हो जाता है, तब किसानों की बहुयरवानियाँ (स्त्रियाँ) उसकी ऊपरी फुलक (सिरा) नाखूनों से तोड़ती हैं और उसका साग बनाती हैं। इस प्रकार फुलक तोड़ने के लिए 'चौंटना' क्रिया प्रचलित है। अधिक बार चौंटा जाने पर चने का पौधा और अधिक उलहता है (बढ़ता है)। जब चने का कच्चा साग चुना लिया जाता है, तब उसे सुकसुका कहते हैं। सुकसुके का पानी लू से पीड़ित रोगी को बहुत लाभ पहुँचाता है। चने का पौधा जब एक हाथ का हो जाता है, तब उस पर जो कच्चा हरा फल आता है, उसे होरा (सं० होलक> होलअ> होला> होरा) कहते हैं। होरे का दाना जिस छिलकेदार खोल में बन्द रहता है, उसे घेगरा या घेघरा कहते हैं। होरों से लवरलैस (परिपूर्ण) चने के झलेदार पौधे ऐसे प्रतीत होते हैं, मानो प्रकृति अनेक मणिजुग्मान्वित छत्रों द्वारा पृथिवी को छाया कर रही हो।

---

[1] निघण्टुकार ने अपने कोष (निघण्टु ४।३) में अन्न विशेष के अर्थ में 'चनः' शब्द भी लिया है।

[2] चना चक्की में पिसकर और सिरका धरती में गड़कर ही सुंदर और उपयोगी बनते हैं।

[3] जब चने के दोनों दुबौल मिले हुए रहते हैं तब वह पुरुष ('चना' शब्द पुंल्लिंग है) कहाता है। अलग-अलग हो जाने पर स्त्री ('दाल' स्त्रीलिंग है) बन जाता है। उसका रंग सोने के समान है। हे चतुर लोगो! उसे बताओ।

[4] यदि चने ऐसी ढेलेदार गाढ़ धरती में बोये जाएँगे कि हल के जुए में जुते बैलों के सिरों पर लगी हुई दस-बारह अंगुल की दो लकड़ियाँ खटाखट बजें तो उनके बड़े-बड़े दाने ठेठर (चने के दाने का घर) में खूब गड़गड़ाहट आवाज करेंगे।

[5] गेहूँ बारीक मिट्टी में और चना ढेलेदार मिट्टी में अच्छा उगता है।

चने की बुवाई के लिए चित्रा नक्षत्र उपयुक्त है—
"चना चित्तरा चौगुना, स्वाँती गेहूँ होइ ॥"[1]

चने की फसल को पूरी तरह पकने से पहले ही काट लिया जाता है। होले जब कुछ-कुछ कच्चे और कुछ-कुछ पके होते हैं, तब वे **भदार** या **भदाहर** कहाते हैं।

"चना भदारौ जौ हरिया। गेहूँ काटौ ढेंकुरिया ॥"[2]

* * *

"आई मेख। हरी न देख ॥"[3]

§१७२—**अरहर** (कोल, हाथ० में **अरहैर** भी) की गिनती भी दालों में ही है। असाढ़ के **चिरइया** (पुष्य) नक्षत्र में अरहर बोई जाती है। प्रायः बन के खेत में अरहर की **आड़ें** (माँग, कूँड़) लगाई जाती हैं। अतः बन बोने के लिए '**बन बाँधना**' और अरहर बोने के लिए '**अरहर आड़ना**' कहा जाता है। जब पूरे एक खेत में अरहर ही बोई जाती है, तब उसके लिए '**रोपना**' धातु का प्रयोग किया जाता है। हरी अरहर का जो तना बोझ बाँधने में काम आता है, वह **मोरा** या **जनेउआ** कहाता है। अरहर की आयु सबसे अधिक है। यह असाढ़ (जौलाई) में बोई जाती है और जेठ (जून) में काट ली जाती है। इस प्रकार पूरे बारह महीने रहती है। इसकी अवधि, रूप-रंग और उपज के सम्बन्ध में निम्नांकित लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—

"पीरी-पीरी तीहरी, केसर कौ-सौ रंग।
ग्यारह देवर फिरि गये, गई जेठ के संग ॥"[4]

* * *

"बड़ी जिठानी सबनु की, झबर-झाबरौ अंग।
पीरी फरिया छींट की, लखि द्यौरानी दंग ॥"[5]

अरहर का पौधा ऊँचाई में आदमी से भी अधिक बड़ा होता है। पत्तियाँ और शाखाएँ अधिक होती हैं, इसीलिए उस पौधे को **झबरा, झाबरा** या **झालरा** शब्द से विशेषण रूप में व्यक्त किया जाता है—जैसे, **अरहर तौ झाबरी उगी है**। कटी हुई अरहर की लम्बी और सूखी

---

[1] चित्रा नक्षत्र कार्तिक (१० अक्टूबर के आस-पास) में आता है। ज्योतिष-शास्त्र के अनुसार सूर्य एक नक्षत्र से दूसरे में १४ दिन में पहुँचता है। लगभग १२ अप्रैल को सूर्य अश्विनी नक्षत्र में होता है। इस गणना के अनुसार स्वाति नक्षत्र २४ अक्तूबर के आस-पास ठहरता है। अतः यदि चना अक्तूबर मास के प्रारम्भ में और गेहूँ अक्तूबर के अंत में बोये जाएँ तो उनकी फसल बहुत अच्छी होगी।

[2] चना भदार (अधपका) और जौ हरा काट लेना चाहिए; नहीं तो दाने खेत में ही रह जाएँगे। ढेंकली की रस्सी की भाँति बाल लटक जाने पर गेहूँ काट लेने चाहिएँ।

[3] मेष राशि चैत्र मास में पड़ती है। उस समय सूर्य इसी राशि पर होता है। यदि जौ-गेहूँ आदि की फसल हरी भी हो तो भी मेष राशि के आने पर उसे अवश्य काट लेना चाहिए।

[4] जो केसर के-से रंग की पीली तीहल पहनती है (अरहर के फूल पीले होते हैं)। जो ग्यारह देवरों (११ महीने—असाढ़ से वैसाख तक) के साथ नहीं गई, किन्तु जब गई तब एक जेठ (जेठ महीना) के साथ गई अर्थात् समाप्त हो गई।

[5] लम्बे-चौड़े शरीरवाली अरहर सबकी जिठानी लगती है। उसकी **फरिया** (ओढ़नी) का पीला रंग देखकर अर्थात् पीले फूलों को देखकर उसकी द्यौरानियाँ (अन्य फसलें) आश्चर्य में पड़ जाती हैं।

लकड़ी **झामा** कहाती है। माताएँ प्रायः असाढ़ मास में अपनी **ब्याँहता धीयों** (सं० विवाहिता दुहिता) के लिए **झामों** पर ही आटे की बनी सेंवई सुखाया करती हैं। अरहर के **पैर** (सं० प्रकर = खलिहान) में मिट्टी और भुस में मिले हुए अरहर के दाने रह जाते हैं। उन दानों और मिट्टी से युक्त भुस को **सीमरी, काँइठ या ठुर्री** (कोल में) कहते हैं। अरहर की पतली और छोटी लकड़ियाँ **खोरा** कहाती हैं। झाड़ू के काम में आनेवाली अरहर की लकड़ियों को **खरैरा** कहते हैं।

मालदार किसान गरीब किसानों को क्वार-कातिक में जौ-गेहूँ बोने के लिए दे देते हैं और बैसाख-जेठ में उनसे उसका सवा गुना ले लेते हैं। क्वार-कातिक में दिया हुआ वह नाज **सवाई** कहाता है और वह क्रिया **सवाई उठाना** कहाती है। इसे भोजपुरी बोली में **बैंगे देना** कहते हैं।

अध्याय ६

पालेज और बारी

§१७३—आलू (सं० आलु) के खेत में जो बहुत-सी मेंड़ें बनाई जाती हैं, उन्हें **झोरा** कहते हैं। दो **झोरों** के बीच में एक छोटी-सी नाली होती है, जिसे **गूल** कहते हैं। आलू कूँड़ में और झोरों पर बोये जाते हैं। हल द्वारा कूँड़ में बोये जानेवाले आलू **फागुआ** और झोरों पर बोये जानेवाले **झोरिआ** कहाते हैं।

आलू के पौधे को **आल** कहते हैं। आल पर जो हरा और गोल फल आता है, वह **टैमना** कहाता है। आल की जड़ में छोटे-छोटे रेशे लगे रहते हैं, उन्हें **जरौंदे** या **जराखूर** कहते हैं। जरौंदों में लगे हुए आलुओं के गुच्छे **भुर्रे** कहाते हैं। रतालू भी शकरकन्द या आलू की भाँति एक कन्द ही है। **जिमीकन्द, सलजम, अदरख** आदि की जड़ें ही काम आती हैं। **मेथी, पालक, पोदीना, धनियाँ, करमकल्ला,** (बन्द गोभी) **गाँठ गोभी, फूल गोभी, कुलफा** और **तरातेज** की पत्तियाँ साग तरकारी में काम आती हैं।

§१७४—गाजर में से पीछे का भाग जब काट लिया जाता है तब उसे **पैंदी** या **पैंदुआ** कहते हैं। पैंदी ही धरती में गाड़ी जाती है। उगी हुई गाजर की पत्तियाँ और डंठल मिलकर **गजरा** कहा जाता है। किसी-किसी गाजर के अन्दर एक मोटा और सख्त सूत-सा रहता है, जिसे **नर्रा** कहते हैं।

§१७५—मूलियाँ भी गाजर की भाँति ही बोई जाती हैं। मूली पर जो लम्बी-लम्बी हरी फलियाँ आती हैं, उन्हें **सैंगरी** या **मूरा की फरी** कहते हैं। सैंगरी के पौधे का जो लम्बा डंठल पड़ जाता है, वह **डाँड़ी** कहाता है। गाजर और गजरे के सम्बन्ध में एक पहेली प्रचलित है—

> "कामिनि एक धरा के ऊपर उलटे मुख से जात धरी।
> जटाजूट लहरात सीस पै, दसौं दिसनु में भुर्री परी॥"[१]

§१७६—अरबी को **अरुई** या **घुइयाँ** भी कहते हैं। बड़ी और गोलदार **घुइयाँ** की एक किस्म **बडोरा** कहाती है। घुइयों के तने की पैंदी को **नाल** कहते हैं।

---

[१] पृथ्वी पर एक स्त्री नीचे को मुख करके गड़ रही है। उसके सिर पर जटाजूट लहराता है और यह दसों दिशाओं में भुर्री पड़ती है।

§१७७—शकरकन्द को जनपदीय बोली में **सकलगन्द** कहते हैं। इसकी बेल भौरों पर लगाई जाती है। शकरकन्द की बेल को **लत्ती** (सं० लतिका) कहते हैं। **सिंगाड़े** (सं० शृंगाटक) की बेल भी लत्ती कहाती है। जब सिंगाड़े की बेल किसी **पोखर** (सं० पुष्कर > पुक्खर > पोखर = तालाब की भाँति का एक जलाशय) में डाल दी जाती है, तब वह बहुत बीच में फैल जाती है। उस क्रिया को **लत्ती रोपना** कहते हैं। लत्ती पर जब सिंगाड़े आ जाते हैं, तब सिंगाड़ेवाला दो डंडियों के बीच में सिरों के पास उल्टे दो घड़े बाँध लेता है, और उनके बीच में बैठकर पोखर के सिंगाड़े तोड़ लेता है। उस साधन को **घन्नई** (सं० घट-नौका) कहते हैं।

§१७८—प्याज के लिए पहले बीज बोकर उसकी पौद तैयार करते हैं। वह पौद **कुना** कहाती है। प्याज का एक-एक कुना अलग-अलग मेंड़ पर गाड़ा जाता है। कुने गाड़ने के लिए **कुनियाना** या **कुना चुभोना** क्रिया का प्रयोग होता है। **लहसन** (सं० लशुन) की गाँठ कई भागों में विभक्त होती है। लहसन का प्रत्येक छोटा भाग **पुती** कहाता है। पुती **चुभोकर** (गाड़कर) लहसन उगाया जाता है। **करेला, चचींड़ा, कुँदरू, सैंद, कचरा, फूँट, काँकरी** (ककड़ी), **खरबूजा, तरबूजा, कासीफल, लौका** और **तोरई** की बेलें ही चलती हैं। इन पर आये हुए नये और कच्चे फल **जई** या **चोइये** कहाते हैं। लौके को **तौमरा, गंगाफल, कदुआ** या **कद्दू** (सं० कद्रू) नाम से भी पुकारते हैं। कमल की जड़ को **भसींड़ा** कहते हैं। **टमाटर, बैंगन** और **बाकले** के पौधों पर आनेवाली फलियाँ साग तरकारी में ही काम आती हैं। **सेम** की फलियाँ भी बेल पर ही लगती हैं।
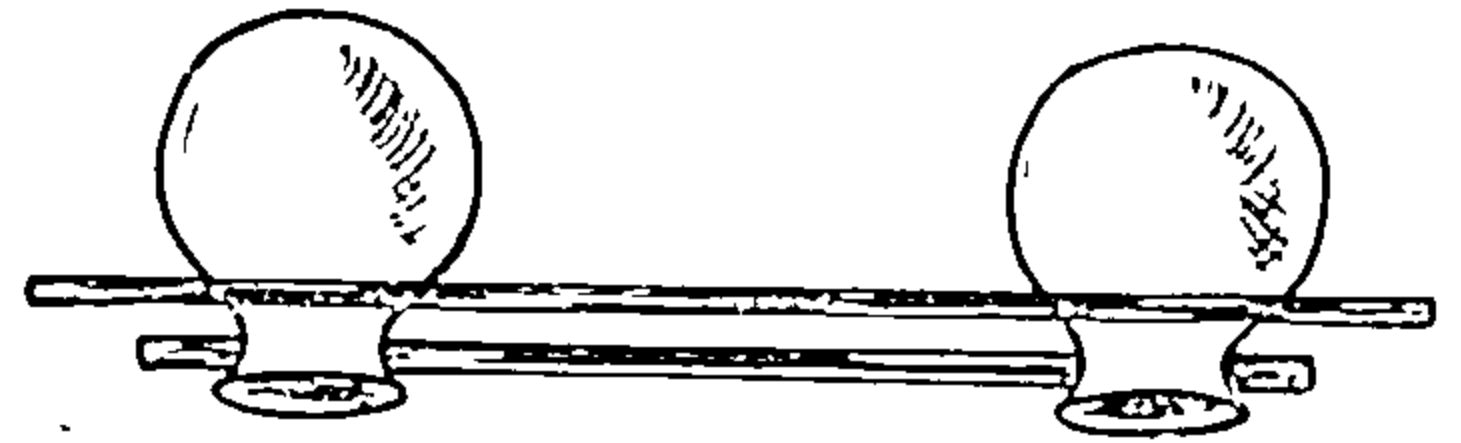
घन्नई

[रेखा-चित्र १७]

§१७९—**तमाखू** (स्पेनिश टोबैको, अँग० टोबैक्को > तम्बाकू > तमाखू) यद्यपि बैसाख की फसल है, परन्तु यह पालेज या बारी नहीं है। इसकी पत्तियाँ और **डाँठुरा** (डंठल) **हुक्का** (अ० हुक्क़ा) पीने में काम आते हैं। पहले तम्बाकू की पत्तियाँ सुखाकर कूटी-पीटी जाती हैं। रेत की भाँति बारीक कुटा हुआ तम्बाकू **नसका** कहाता है। नसके में से जो मोटा अंश रोर लिया जाता है उसे फिर कूटते हैं। उसका कुटा हुआ रूप **फार** कहाता है। तम्बाकू का तना जिससे पत्ती अलग कर ली जाती है, **नरुका** कहाता है। नरुके की कूटन भी **फार** कहाती है। कुटे हुए नरुके का मोटा अंश **ठुड्डी** कहाता है। तम्बाकू कूटते समय जो उसमें से धूल के-से कण उठते हैं, उन्हें **तमेख** या **भस** कहते हैं। तमेख से नाक और गला परेशान हो जाता है। उसके **हुलास (नास** या **सुँघनी)** से छींकें भी आ जाती हैं।

§१८०—कुछ हरे चारे किसान लोग अपने पशुओं को खिलाने के लिए बो देते हैं जो बारह महीने रहते हैं। उनमें से एक **रजका** भी है। इसका पौधा लगभग हाथ-डेढ़ हाथ बढ़ता है। रजका कट जाने पर फिर बढ़ जाता है। लगभग सात दिन बाद रजका बढ़कर फिर हाथ भर का हो जाता है। कटने के बाद उसकी **बढ़वार** (वृद्धि) का **ओसरा** (सं० अवसर = बारी) ही **लान** कहाता है। यदि किसी कारण बढ़वार नहीं होती तो उसे **लान मारा जाना** कहते हैं। किसान जब भुस में रजका आदि हरा चारा मिलाता है, तब वह **हरियाई मिलाना** कहाता है। हरे चारे को **मिलवन** या **मिलमन** भी कहते हैं, क्योंकि वह भुस आदि रूखे चारे में मिलाया जाता है।

———

विभाग ४

खलिहान और रास

अध्याय १०

पैर के काम

§१८१—कातिक की फसल के लिए **पैर** (खलिहान) डालना आवश्यक नहीं है। मक्का, ज्वार, बाजरा और बन आदि सुगमता से ही हाथ आ जाते हैं। मक्का के खड़े पौधों को तिरछी हालत में धरती पर ढेर के रूप में जब जमा दिया जाता है, तब उस रूप को **सँजा** कहते हैं। खड़े **बोझों** (देश० बोज्झग्र—दे० ना० ना० ७।८०) का जमघट **झुआ** कहलाता है। मक्का में से जब भुटिया **सोंटी जाती** हैं, तब उसे सँजे के रूप में ही इकट्ठा किया जाता है।

§१८२—बैसाख की फसल बड़े परिश्रम से तैयार होती है। किसान जिस मैदान में लाँक से अन्न और भुस प्राप्त करता है, वह मैदान **पैर** या **खलिहान** कहलाता है। पैर कई तरह के होते हैं। उनमें **चटीकरी, परेहुआ, रेतुआ** और **कँकरेला** अधिक प्रसिद्ध हैं। जिस पैर की धरती स्वतः कड़ी और चौरस होती है, वह **चटीकरी** या **पटपरी** (कोल में) कहलाता है। खेत में पानी देना **'परेहना'** (परिहालो-देशी नाम माला ६।२९) कहलाता है। किसान जिस खेत में पैर बनाना चाहता है, उसे पानी से परेहकर जोतता है और फिर **सुहागा** (पटेला) फेरकर उस जगह को चौरस कर देता है। इसके उपरान्त खूँदकर तथा ठोक-पीटकर उस खेत को चौरस और सख्त बना लेता है। इस ढंग से तैयार किया हुआ पैर **परेहुआ** पैर कहलाता है। रेतीली मिट्टीवाले पैर **रेतुआ** कहाते हैं। ये पैर किसान के लिए अच्छे नहीं होते। रेतुआ पैरवाला किसान काम करते हुए झींकता रहता है। जिस खेत की मिट्टी में कंकड़ और **खपीचे** (खपरे) अधिक हों, उसमें यदि पैर बना लिया जाए तो वह **कँकरेला पैर** कहलाता है।

§१८३—**पैर के लाँक के अवान्तर भाग और विभिन्न रूप**—खेत में इकट्ठा हुआ **लाँक** (जौ-गेहूँ के पौधों का ढेर) **सँजा** या **चक्का** कहलाता है। जब उसे पैर में लाकर दस-पंद्रह हाथ ऊँचे एक ढेर के रूप में एकत्र कर दिया जाता है, तब वह ढेर **जाँगी** या **चाँही** कहलाता है। लाँक पर तीन-चार बैलों का घूमना (नकर लगाना) **दाँय चलना** कहलाता है (चित्र ७)। किसान जब दाँय के लिए लाँक गोलाई में पैर में फैलाता है, तब उस क्रिया को **लांक भरना** कहते हैं। पहली बार जब कुछ समय दाँय चल लेती है, तब उसमें से कुछ लेन्हा निकाला जाता है। उस क्रिया को **लदाई निकालना** बोलते हैं। दाँय चलाकर लाँक को [illegible] करना **गाहना** कहलाता है। लदाई निकल जाने के उपरान्त जब लाँक को [illegible] कर लिया जाता है, तब उसे **पैरी** कहते हैं। [illegible] लाँक पैरी का रूप धारण करता है। [illegible]

[चित्र ७]

[illegible] बार गाहना **पैरी बैठाना** भी कहलाता है। गाही हुई पैरी, जिसमें कुछ भीना है और बालों में कुछ अनाज भी भरा रह जाता है, **चूँकना** कहलाता है। जब **चूँकने** को उसारा उसमें **बरसाया** जाता है,

तब भुस उड़ जाता है और अनाज तथा अनाज से भरी हुई कुछ टूटी हुई बालें एक जगह इकट्ठी हो जाती हैं। उड़ा हुआ भुस जहाँ एकत्र होता रहता है, वहाँ वह ढेर **भिसौरी** कहाता है। उस अनाजवाले भाग को **खुरदाँय** कहते हैं। खुरदाँय को फिर गाहा जाता है। खुरदाँय पर जब बैलों की दाँय चलती है, तब बालों में से अनाज पूरी तरह से बाहर निकल जाता है। इस अनाज में कुछ रेत भी मिला रहता है। अनाज के इस ढेर को **सिली** कहते हैं। गाहे हुए लाँक को जहाँ बरसाते हैं, वहाँ अनाज की एक रेखा-सी बन जाती है। उस रेखा को **काँधा** कहते हैं (चित्र ६) अनाज के ढेर को **रास** (सं० राशि) कहते हैं। रास सुधारने तथा साफ करने की सोंहनी (झाड़ू) को **सुनैत** कहते हैं। जिस रास को किसान सँवारता है, उसके ऊपर से तिनके और बालों में भरा हुआ अनाज सुनैत से अलग कर देता है। उस अलग किये हुए थोड़े-से अनाज को **थाया** कहते हैं। जो लाँक खटाई निकालने के लिए गाहा जाता है, वह **फाँपड़ा** कहाता है। राशि पर से निकाला हुआ बालों में भरा अनाज और मोटा गाँठदार भुस **गाँठा** कहाता है। गाँठे पर जब दाँय चल जाती है और गाही हुई सामग्री बरसा ली जाती है, तब उसमें से निकली हुई दानों सहित बालें और मोटे तिनके **साँठा** कहाते हैं। साँठे को किसान प्रायः अपने किसी **कमेरे** (काम करनेवाला नौकर) को दे देता है।
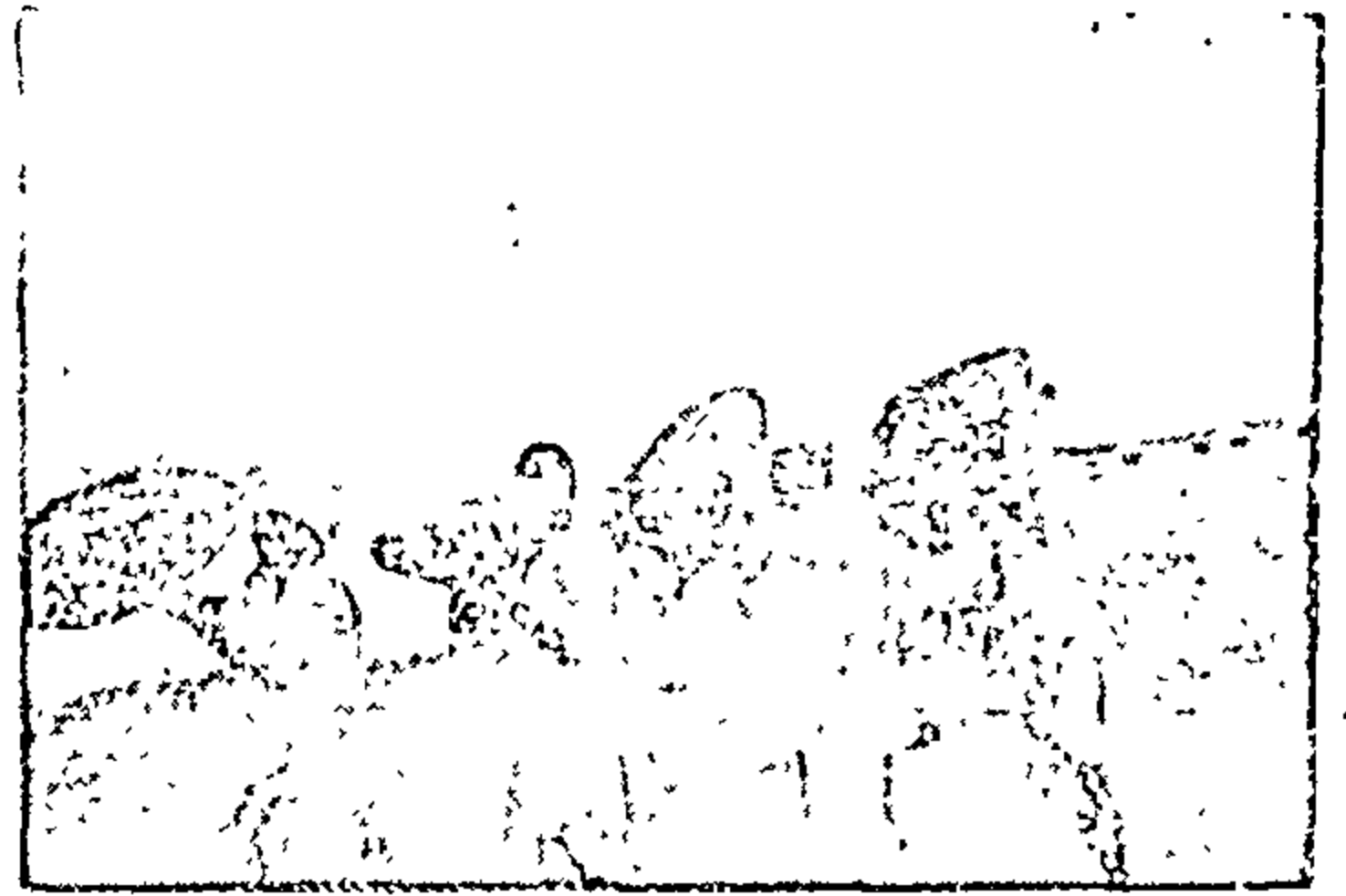
[चित्र ६]

§१८४—**पैर में काम आनेवाली वस्तुएँ**—(१) साँकी, (२) पँचागुरा, (३) गैना, (४) दाँवरी, (५) सुनैत या सरैती, (६) बरसौना, (७) तखरी, (८) डलियाँ, (९) आन्ना कंडा (सं० आरण्य>आरण्ण>आन्ना), (१०) आक (सं० अर्क), (११) स्याबड़ा (सं० सीता-वट्टक)।

पैर में लाँक भरने के लिए एक औज़ार काम में आता है, जिसे **साँकी** कहते हैं। बाँस की लम्बी लाठी में खमदार दो कीलें जड़ी रहती हैं। उन कीलों को **संक** (सं० शंकु) और लाठी को **डाँड़ा** (सं० दण्डक>डण्डअ>डंडा>डाँड़ा) कहते हैं।

साँकी
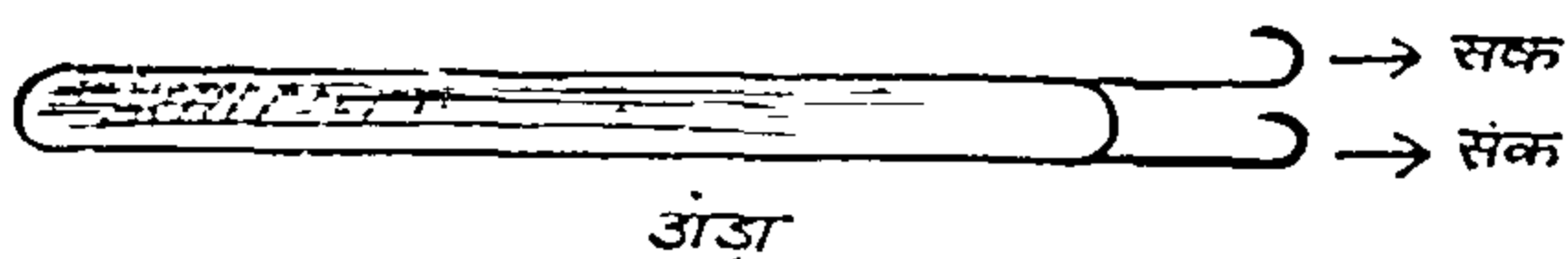
[रेखा-चित्र १५]

बाँहों में से लाँक खींचने के लिए लकड़ी का एक औज़ार काम में आता है, जिसे **पँचागुरा** (सं० पंचाङ्गुलक>पंचाङ्गुलअ>पचागुरअ>पँचागुरा) कहते हैं। यह काठ का होता है। इसके हत्थे को **नार** या **बेंट** कहते हैं। नीचे लगा हुआ लकड़ी का एक तख्ता-सा, जिसमें लगभग एक हाथ लम्बी ५ या ४ लकड़ियाँ ठुकी रहती हैं, **फरई** कहाता है। हाथ भर लम्बी उन लकड़ियों को **अँगुरियाँ** या **पखुरियाँ** कहते हैं। वह लकड़ी, जो फरई में होकर प्रत्येक पखुरिया में ठुकी रहती है, **फूल** कहाती है।

दाँय में लाँक के ऊपर दो या दो से अधिक बैल चकई की भाँति घूमते हैं। उनकी गर्दनों में एक-एक रस्सी बँधी रहती है, जिसके ऊपर कपड़ा लिपटा हुआ होता है। वह रस्सी बैल की गर्दन से

बिलकुल चिपटी हुई नहीं होती, बल्कि काफी ढीली होती है। उस रस्सी को **गैना** (सं० ग्रहणक से व्युत्पन्न प्रतीत होता है) कहते हैं। दाँय में चलनेवाले प्रत्येक बैल की **नार** (गर्दन) में गैना पड़ा रहता
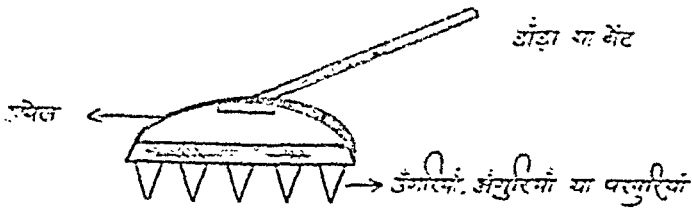
[रेखा-चित्र १८]

है। बैलों की गर्दनों के गैनों में होकर एक लम्बी रस्सी कैंचीनुमा हालत में डाली जाती है, जिसे **दामरी** (कोल-दग० में) या **दाँवरी** (सादा० में) कहते हैं (सं० दामन्)। सूरदास ने भी रस्सी के अर्थ में 'दाँवरी' शब्द का प्रयोग किया है।[१]

रास तैयार करने के लिए कम से कम तीन आदमी लगते हैं। एक गाहटे की बरसाई करता है, दूसरा रास के ऊपर से तिनका-मिट्टी **सोहनी** (सं० शोधनी) से साफ करता है और तीसरा **पूजा-मंसी** (पूजन के बाद दान के रूप में कुछ अन्न अलग निकाल लेना) की सामग्री जुटाता है। रास के पूजन में आक के पौधे के फूल आते हैं। जंगल का छोटा-सा कंडा लाया जाता है, जिसे **आग्ना** (सं० आरण्य) कहते हैं। जिस खेत के लाँक से रास तैयार की जाती है, उसका एक ढेला लाकर किसान रास के ऊपर **अंटोक** (छिपाकर ताकि कोई न देख सके और न उसके विषय में पूछ सके) रख देता है। उस मिट्टी के ढेले को **स्यावड़ा** (सं० सीता + वट्टक = कूँड़ का ढेला) कहते हैं।

रास तोलनेवाला व्यक्ति **तोला** कहाता है। रास तोलने के लिए जो तराजू काम आती है, उसे **तखरी** कहते हैं। पाँच सेर का बाट **पंसेरा** या **धरी** कहाता है। जिन छबड़ों से गाहटा बरसाया जाता है, उन्हें **बरसौना** या **फतना** कहते हैं। फतना छबड़े से कुछ छोटा होता है और उसकी लकड़ियाँ गिरी हुई नहीं होतीं। टलिया छबड़े से काफी बड़ी होती है, जिसमें ५ सेर भुस या १५ सेर अनाज आ सकता है।

§१८४—**दाँय और बरसाई**—लाँक पर प्रतिदिन लगभग दो पहर (६ घंटे) दाँय चलती है। इस तरह तीन दिन में **पैरी** (सं० प्रकरिका) गह जाती है। गही हुई पैरी को **गाहटा** भी कह देते हैं। गेहूँ का गाहटा तीन दिन में तैयार होता है। पहले दिन जब दो पहर (६ घंटे) दाँय चल लेती है, तब दूसरे दिन **भुकभुके** (प्रातः) में किसान पैरी के लाँक को उलट देता है, अर्थात् ऊपर का लाँक नीचे और नीचे का ऊपर कर देता है। लाँक उलटने की इस प्रक्रिया को **पैरी उखारना** (सादा०) में या **तरपैरी लेना** कहते हैं। गाँधी द्वारा लाँक को उलटने-पलटने कुछ तरपैरी ली जाती है। तरपैरी लेने के उपरान्त दूसरे दिन फिर दाँय चलती है। दाँय चलते समय लाँक का कुछ भाग बैलों के खुरों से इधर-उधर बाहर की ओर **तितर-बितर** हो जाता है। उस समय एक किसान गाँधी से उस लाँक को बैलों के पाँवों के नीचे फेंकता जाता है। यह क्रिया **पागड़ मारना** कहाती है। **पागड़** (पैरी की सोभाई का निकास) मारनेवाला व्यक्ति **पागड़िया** कहाता है। पागड़िये के हाथ में गाँधी रहती है, और वह बैलों के आगे चलकर लाँक देता है। (देखिए चित्र ७)

---

[१] 'मोह मगन हैं अंद की दाँवरी दैघारि।' —सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, ११४

दाँय के बैलों में सबसे **भीतरा बैल** जो केन्द्रस्थान पर अपनी ही जगह घूमता रहता है, **मेंड़िया** या **मेंढ़िया** (सं० मेथिक या मेढिक) कहाता है। पैरी के किनारे पर घूमनेवाले **बाहिरे बैल** को **पागड़ा** या **पगड़िहा** कहते हैं, क्योंकि वह पागड़ पर ही चलता रहता है।

§१८६—दाँय चलाना जब बन्द किया जाता है, तब उसे **दाँय ढीलना** कहा जाता है। दो पहर के **खन** (सं० क्षण=समय) में दाँय को ढील देना ठीक है, क्योंकि दाँय में गौ के जाये (बैल) **नफसेल** (परेशान और थके हुए) हो जाते हैं। कहावत भी है—[देखिये चित्र ७]

"मर्द नराई बरधनु दाँय। दाँवरि बँधें और घमियायँ॥"[1]

अलीगढ़-क्षेत्र की जनपदीय बोली में **घमियाना** एक नाम धातु है, जिसका अर्थ है 'धूप से पीड़ित होना' या 'धूप लेना।'

पहली बार का गाहटा **बूँकना** कहाता है। बूँकने की **उसाई** (बरसाई) में जो बारीक भुस निकलता है, उसे **पामि** या **पम्बी** (हाथ० में) कहते हैं। देशज बुक्क (=तुप या छिलका) शब्द से 'बूँकना' सम्बन्धित है। खुरदाँय को गाहकर और उसाकर जो अनाज का ढेर लगता है, उसे **सिली** कहते हैं। दो-तीन किसान मिलकर सिली को सँवारते और सुधारते हैं।
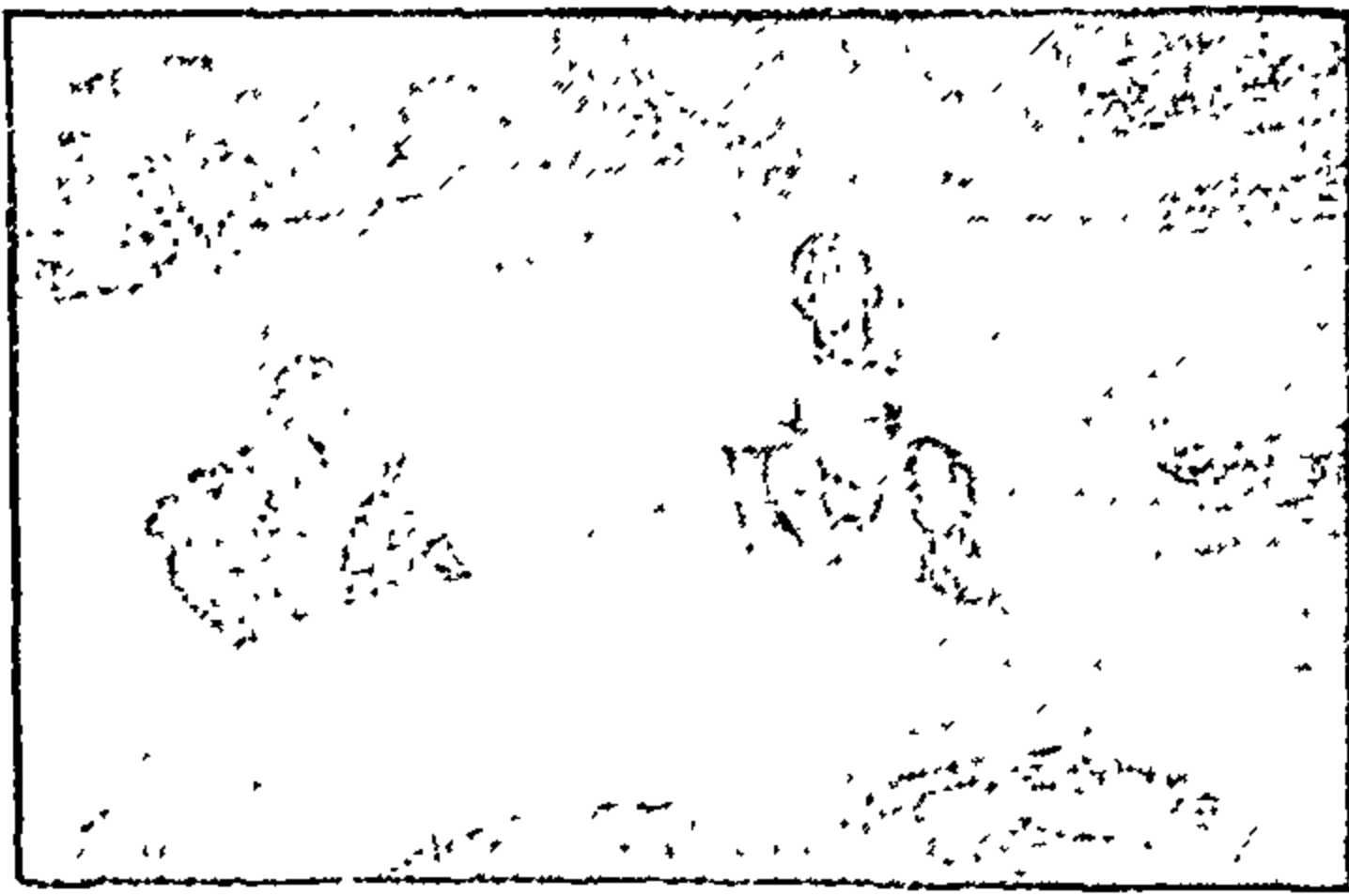
[चित्र ८]

बरसाई के बाद जो वस्तु किसान के पास रहती है, उसके प्रधानतया तीन रूप हैं—(१) खुरदाँय, (२) गाँठा, (३) साँठा। खुरदाँय को बरसाकर बची हुई सामग्री **गाँठा** और गाँठे से बची हुई सामग्री **साँठा** कहाती है। गाहटे की **उसाई** (बरसाई) प्रायः **पछइयाँ ब्यार** (पश्चिम की हवा) में ही हुआ करती है। लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—

"चल्यौ पछैयाँ करौ उसाई। घुन कबहूँ न नाज कूँ खाई॥"[2]

* * *

"दाँय चलाइ गहाइकें, पैरी करी तयार।
देखि पछइयाँ ओसकरि, सीली लई निकार॥"[3]

दाँय में कम से कम दो बैल अवश्य होते हैं। तीसरा एक **हँकवइया** होता है। तीनों के पाँवों के नीचे लाँक घिसता और कुचलता है। पहली प्रसिद्ध है—

"घस पाँय घस पाँय। तीन मूँड़ दस पाँय॥"[4]

जब हवा बहुत मन्द होती है, तब किसान गाहटे को बहुत थोड़ा-थोड़ा करके धीरे-धीरे

---

[1] मनुष्य को जैसे नराई परेशान करती है, वैसे ही बैलों को दाँय। बैल दाँय के समय एक तो दाँवरी (एक रस्सी) में बँधे रहते हैं, दूसरे उन्हें घाम (सं० घर्म=धूप) भी सताती है।

[2] पछवा हवा चल गई, अतः बरसाई करो। यदि इस हवा में बरसाई की जायगी तो अनाज को घुन नहीं लगेगा।

[3] किसान ने दाँय चलाकर और लाँक को अच्छी तरह गाहकर पैरी तैयार की और फिर पछवा हवा में उसमें से सिली (नई राशि) निकाल ली।

[4] वह क्या है जिसके तीन सिर हैं, और दस पाँव हैं? उसमें पाँव घिसते भी हैं।

बरसाता है। उसे **निवत्ती** (सं० निवात>निवत्त>स्त्री० निवत्ती) बरसाई कहते हैं। निवत्ती बरसाई से अनाज का कौंधा बहुत छोटा और पतला बनता है। जब हवा तेज चलती है, तब एक साथ तीन-चार **बरसइये** (बरसाई करनेवाले) मिलकर और एक पंक्ति में खड़े होकर बरसौनों से गाहटे की बरसाई करते हैं। [देखिये चित्र ६]

§१८७—**नरई के पूले बनाना**—पैर में एक स्थान पर दाँय चलती है और दूसरे स्थान पर एक किसान **इकौंसियाहा** (अकेला या एकान्त में बैठा हुआ) बैठकर लाँक के मूठों की बालों को एक डंडी से झूरता है। डंडी की चोट से मूठे की १०-१५ बालों को एक साथ झाड़ देने के लिए '**झूरना**' क्रिया का प्रयोग होता है। लाँक झूरने का काम इकौंसे बैठकर ही किया जाता है, ताकि बरसाई का भुस ऊपर न आने पावे। सेनापति ने भी 'इकौंसे' शब्द का प्रयोग अलग होने या एक पक्षीय बन जाने के अर्थ में ही किया है।[1]

लाँक के मूठे से जब बालें झूर दी जाती हैं, तब गेहूँ-जौ आदि का तना **नरई** कहाता है। नरई के लगभग २०-२५ मूठे मिलकर **जेट** और कई जेटें मिलकर **पूरा** (सं० पूलक>पूलअ>पूला>पूरा) कहाती हैं। एक पूला लगभग ५ सेर का होता है। **तराऊपर** (एक के ऊपर एक) चिने हुए पूलों का ढेर **कुर्री, गंजी** या **गरी** कहाता है। प्रायः गेहूँ के तनों के पूले ही **नरई के पूरे** कहाते हैं।

अध्याय ११

पैर की रास

§१८८—**सिली** (सं० शिलिका>सिलिआ>सिली) के अनाज से **रास** (एक प्रकार का अनाज का ढेर जो खलियान में एकत्र किया जाता है) तैयार की जाती है। रास के ढेर में से कंकड़, मिट्टी, तिनका और खरा आदि निकालकर रास को सँवारना **रास लगाना** कहाता है। रास लगाने में तीन काम प्रमुख रूप से किये जाते हैं—(१) **बटोरना** (इकट्ठा करना), (२) **सकेरना** (सोहनी अर्थात् झाड़ू से झाड़ते हुए एक स्थान पर लाना), (३) **रोरना** (रोलना=रास पर दोनों हाथ फेरते हुए उसके कंकड़, पत्थर और ढेले आदि निकालकर फेंकना)।

सिली रास को जब रोला जाता है, तब किसान का हाथ उस रास के ऊपर लहर की भाँति पोला-पोला फिरता है। हाथ की यह क्रिया ही **रोलना** कहाती है। 'रलना' धातु का प्रयोग सूरदास ने भी किया है।[2]

लगी हुई रास को और अधिक साफ-सुथरी बनाने के लिए उस पर किसान **सोहनी** (सं० शोधनी) फिराते हैं। यह क्रिया **सकेनी फेरना** या **सुनैत मारना** कहाती है। इसके लिए

[1] "ह्वै रहे इकौंसे, हौं न जानौं कौन हेत है।"
—सेनापति : कवित्तरत्नाकर, प्रयाग वि० वि० हिन्दी-परिषद्, ४।२६।

[2] "गोरस रास परिहा फटि धरि देरी पीठि रवनि झकझोरी।"
—सूरदास : सूरसागर, काशी नागरी प्रचारिणी-सभा, १०।३६७२।

सरेतना नाम धातु भी प्रचलित है। सरेतने से रास के कंकड़, ढेले, खपरे और तिनके दूर हो जाते हैं। रेत, कंकड़ और मिट्टी जिस अनाज में मिले रहते हैं उसे **असैला** कहते हैं। असैले अनाज की रास **असैली** कहाती है। असैली रास में कुछ अन्न मिश्रित कूड़ा-करकट निकालकर एक स्थान पर इकट्ठा कर दिया जाता है। उस छोटी-सी ढेरी को **थापा** कहते हैं। रास को ऊँचे ढेर के रूप में छबड़ों से दाब-दाबकर सुन्दर बनाया जाता है। इस क्रिया को **छबड़ा लगाना** कहते हैं। रास बड़ी **सैंतकर** (सँभालकर) बनाई जाती है। रास की सुरक्षा करने और सँभालकर इकट्ठी करने के अर्थ में **सैंतना**[1] धातु का प्रयोग किया जाता है। (देखिए चित्र ८)।

§१८६—**रास की चाँक**—पैर की रास को नजर न लग जाय, इसलिए किसान उसे कपड़े से ढक देता है। यदि तुलने से पहले कोई व्यक्ति रास को **कूते** (नाप-तोल या अनुमान लगावे) तो किसान उसे बुरा मानता है। इसलिए भी रास ढक दी जाती है। रास को **दोवरा, जाजिम** और **पिछौरा** आदि से ढक देते हैं। इस तरह रास का ढकना **रास दबाना** कहाता है। रास-पुजाई से पहले रास की **चाँक** (गोल ढेर) बनाई जाती है (सं० चक्र > चक्क > चाँक)। चाँक लगाने की विधि इस प्रकार है :—

रास का तुलना जब तक आरम्भ नहीं होता, उससे पहले किसान किसी व्यक्ति को रास की उत्तर दिशा में आगे से निकलने नहीं देता। यदि कोई निकल जाता है तो उसकी रास **कटी हुई** मानी जाती है। किसानों का विश्वास है कि कटी रास तुलने में कम बैठती है और उसका अन्न भी शुभ नहीं माना जाता। रास का कट जाना एक बड़ा **असगुन** (अशकुन = अपशकुन) माना जाता है। **रास-कटाई** के अनिष्ट से बचने के लिए ही **चाँक** लगाई जाती है। पहले **गुबरेसी** (पानी में मिला हुआ गोबर) लाई जाती है और उससे रास के चारों ओर एक **घिरोला** (गोल घेरा अर्थात् वृत्त) बनाया जाता है। गुबरेसी के घिरोले को भी **चाँक** कहते हैं। चाँक बनाने की क्रिया को **चाँक लगाना** या **चाँक देना** कहते हैं। रास के ऊपर जब चौरस गोल चिह्न बनाया जाता है, तब उसे **धार धरना** कहा जाता है।

चाँक बनाना आरम्भ करते समय किसान इस प्रकार खड़ा होता है कि उसके आगे रास

[रेखा-चित्र १९]
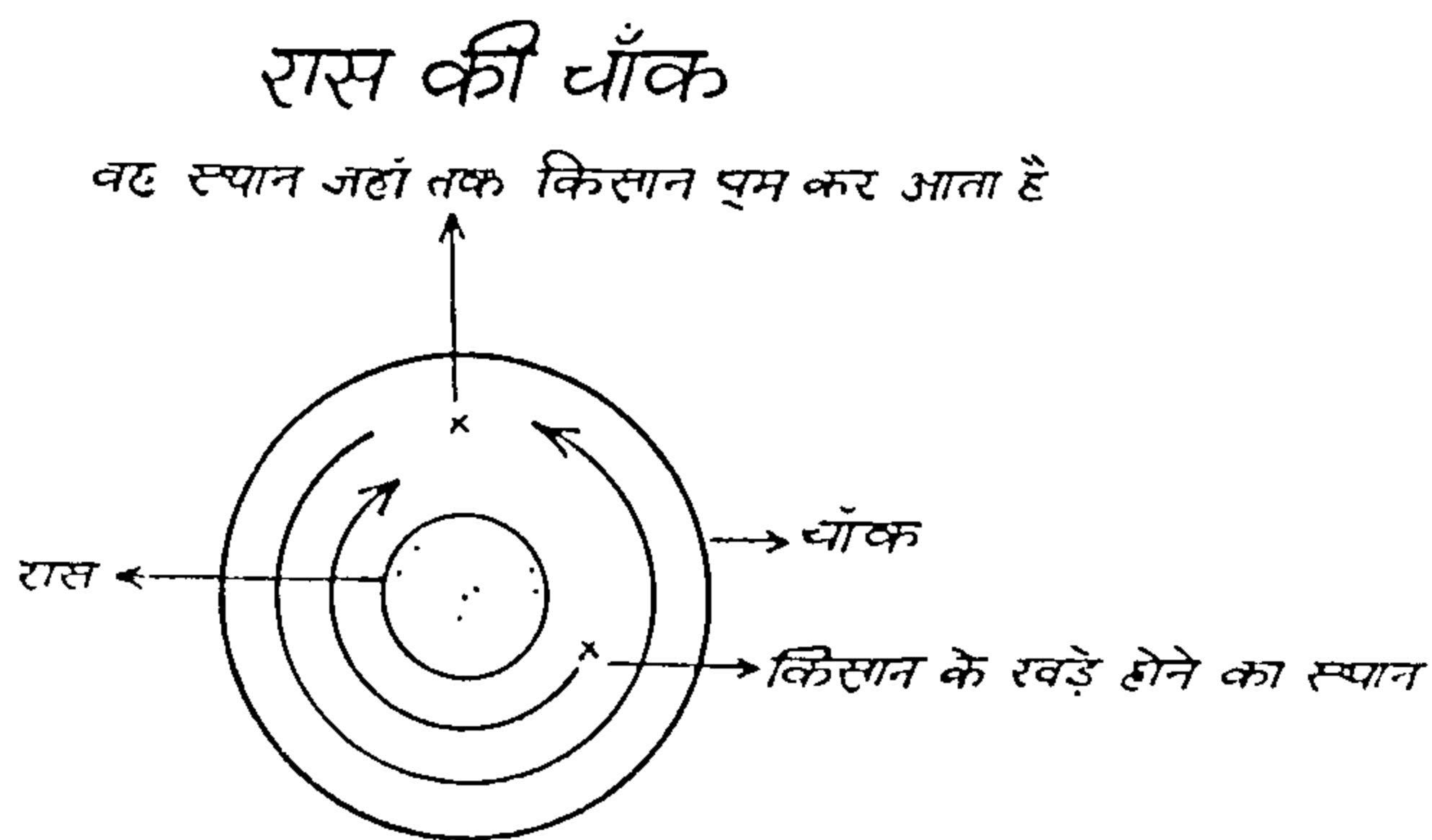
रहे और उसका मुँह **गंगासमनक** (गंगा—समक्ष) रहे। फिर रास के चारों ओर वह इस प्रकार घूमता है कि रास उसकी दाहिनी ओर रहे। इस तरह घूमने को **परिकम्मा** (सं० परिक्रमा) लगाना कहते हैं। यह परिक्रमा पूरी नहीं लगाई जाती। परिक्रमा लगानेवाला उत्तर दिशा में जाकर आधी दूरी से

[1] "कंचन मनि तजि काँचहि सैंतत या माया के लीन्हें।"
—सूरदास : सूरसागर, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, १।१७७।

ही लौट आता है और फिर रास को अपनी बाईं ओर लेकर उसी स्थान पर पहुँच जाता है, जहाँ से कि पहले लौटा था। उस समय हाथ की गुदरेली को वह थोड़ा-थोड़ा धरती पर डालता चलता है। इस प्रकार गुदरेली का एक घिरोला बन जाता है।

विशेष—रेखा-चित्र १६ में चाँक लगाना दिखाया गया है। काला चिह्न रास का और गोलाईवाले तीर परिक्रमा के द्योतक हैं। बाहरी वृत्त चाँक को प्रकट करता है।

§१६०—**रास का पूजन**—रास के पूजन में जो वस्तुएँ काम आती हैं, उन्हें **पुजापा** कहते हैं। गुदनौटा, अकौनी, आन्ना और स्यावड़—ये चार वस्तुएँ पुजापे में सम्मिलित हैं।

गोबर में पानी डालकर और धरती पर हाथ से पाथकर जो उपला बनाया जाता है, उसे **कंडा** (कौरवी में **गोसा** भी) कहते हैं। गोधन (कार्तिक की शुक्ला प्रतिपदा को गोबर का एक आदमी-सा धरती पर बनाया जाता है) के गोबर से बनाया हुआ कंडा **गुदनाटा** (सं० गोधन-पट्टक)[1] कहाता है।

जंगल में पशु (गाय, भैंस और बैल) प्रायः **चोथ** (गाय-भैंस आदि एक बार में जितना गोबर करते हैं, वह चोथ कहाता है) कर देते हैं। वे जब सूख जाते हैं तब जनपदीय निर्धन स्त्रियाँ उन्हें इकट्ठा कर लाती हैं। जंगल के ये सूखे चोथ **आन्ने कंडे** या **आन्ने** (सं० आरण्यक) कहाते हैं। जंगल के कंडे इकट्ठे करना **'कंडा बीनना'** कहाता है। रास के पूजन के समय पुजापे की वस्तुओं में जब गुदनौटा नहीं मिलता तो किसान उसके अभाव में **आन्ना** ही रखता है। उसके साथ में **अकौनी** (आक के फूल) भी रक्खी जाती है। अकौनी के साथ-साथ **बौंड़ी** (आक की मोटी फली जिसमें सफेद रुई-सी भरी रहती है) भी रख देते हैं। बौंड़ी के भीतरी रेशों के टुकड़े **हुआ**, **बूबड़ा** या **बाबू** कहाते हैं।

जिस खेत के लाँक की रास तैयार की जाती है, उसी खेत की मिट्टी का एक ढेला रास पर रखने के लिए लाया जाता है, जिसे **स्यावड़** (सं० सीतावट्ट>सीयावड़>स्यावड़) कहते हैं। हल के फाले से बनी हुई रेखा के लिए 'सीता' वैदिक संस्कृत-साहित्य में प्रयुक्त बहुत पुराना शब्द है।[2]

रास-पूजन के उपरान्त किसान रास में से कुछ अनाज दान के लिए निकालकर रख देता है, उसे **स्यावड़ी** कहते हैं। **स्यावड़ी** का अनाज प्रायः पुरोहित और सेवकनि को ही दिया जाता है।

§१६१—**रास का तोलना और उठाना**—रास तोलनेवाला **तोला** (सं० तोलक> तोलअ>तोला) कहाता है। रास तुलने से पहले किसान एक खाली कूँड़ा लेकर और रास के अनाज को उसमें भरकर उसी रास पर **कुरै देता है** (डाल देता है)। इस प्रकार की क्रिया किसान द्वारा पाँच बार की जाती है। पाँचों बार वह निम्नांकित शब्दावली का उच्चारण करता जाता है—

"पाथौ पाथौ पाथौ। स्यावड़ को दयौ अघाथौ ॥"[3]

उपर्युक्त लोकोक्ति में आये हुए 'पाथौ' शब्द में बड़ी भारी और गम्भीर रहस्य के दर्शन होते

---

[1] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : पृथिवी पुत्र; पृ० २६३।

[2] "सीताए पाऽऽप्या यो निकित्ने सत्सीता यथा ३।
घाऽऽरयोनी सेतः स्निवेदी नदुनद्युम्ने वनि ॥"—मन० ७।६।२४

[3] 'पाथा, पाथा, पाथा' इन शब्दों निकलते हुए किसान मन से अनुभव करता है कि स्यावड़ माता का जो दिया हुआ फल है, उससे हम तृप्त हैं।

हैं। पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी (३।१।१२६) में 'पाय्य' शब्द का उल्लेख किया है। यह तत्कालीन नाप विशेष थी, जिससे तराजू के बिना ही अन्नादि की नाप-तौल कर ली जाती थी।[1]

रास तोलते समय तोला गिन्तियाँ जिस तरह बोलता है, वह ढङ्ग भी निराला ही होता है। 'एक' के लिए वह **'बरकाता'** (अ० बरकत) कहता है। जब अनाज की दूसरी **धरी** (पंसेरी) डालता है तब **दोवा** और फिर तीसरी को डालते हुए **'बहुते'** कहता है। रास का तुला हुआ अनाज जिन कपड़ों में बाँधा जाता है, वे **गठरियाँ** कहाते हैं। गठरियों को सिर पर रखकर ले जानेवाले व्यक्ति **गठरिहा या गठरिआ** कहाते हैं। टाट का बड़ा कपड़ा **पल्ली** कहाता है।

खुले हुए दोनों हाथों की किनारी मिलाकर जो जगह बनती है, उसे **पस** (सं० प्रसृति) कहते हैं। उसमें जितना अनाज आ सकता है, उतना परिमाण **पस भर** कहाता है। अंजलि के रूप तथा आकार को देखकर **पस** की आकृति को समझा जा सकता है। एक गठरिआ जितनी गठरियाँ ढोता है, उतनी पसें अनाज की उसे मज़दूरी में मिलती है। प्रायः प्रत्येक गठरिआ अपनी गठरी में एक मन अनाज ढोता है। गठरियों के ढोने की मजदूरी **गठरियाई** कहाती है।

यदि एक खेत में दो **साजो** (साझेदार) होते हैं तो आधी रास और आधा भुस एक ले लेता है और शेष आधा दूसरा प्राप्त करता है। यह बाँट **आधबटाई** कहाता है। इसे खुर्जे में **साझासीर** (सं० सार्द्धक सीर > सज्झअ सीर > साझासीर) भी कहते हैं। जनपदीय बोली में **'सीर'** शब्द का प्रयोग निजी खेती की भूमि के लिए होता है। पाणिनि ने भी 'हल' और 'सीर' शब्दों का उल्लेख साथ-साथ किया है।[2]

यदि कोई गठरिआ अपनी गठरी को ठीक तरह नहीं बाँध पाता, तो गठरी की गाँठ के पास से अनाज निकलने लगता है। उस स्थान को **ओक** (देश० ओक्किअ = अवस्थान— पा० स० म०) कहते हैं। ओक में से निरन्तर गिरनेवाले अनाज की एक रेखा धरती पर बन जाती है, उसे **कूँड़** या **लार** कहते हैं। किसान जब अपनी पूरी रास तुलवाकर घर भिजवा देता है, तब उसे **रास चढ़ना** बोलते हैं। [देखिए चित्र ८]

---

[1] 'पाय्य सान्नाय्य निकाय्य धाय्या मान हविर्निवास सामिधेनीषु'। —अष्टा० ३।१।१२९
'मीयतेऽनेन पाय्यं मानम्।' —सि० कौ० सू० २८९०।

[2] 'हल सीराट्ठक्'—
—अष्टा० ४।३।१२४

प्रकरण ३

खेत और उनके नाम

अध्याय १

§१.६२—किसान जिस धरती में हल चलाता और खेती करता है, उसे खेत (सं० क्षेत्र) कहते हैं। चार-छः बीघे के छोटे खेत को चौंहड़ा (खैर, खुर्जे में) कहते हैं। कबीर ने इस शब्द का प्रयोग किया है।[१] अप० भुंहडि, भुँइड़ा से 'चौंहड़ा' शब्द विकसित है (सं० भूमि>भुम्मि+ड>भुँइड़ा)।

खेत के चारों ओर सीमा बतानेवाली चार मेंड़ें बनाई जाती हैं, उन्हें चौहद्दी मेंड़ें (चार हद बतानेवाली मेंड़े) कहते हैं। खेत में आदमियों के आने-जाने से हाथ-दो हाथ चौड़ा एक रास्ता-सा बन जाता है, वह गैल, पगडंडी, बटिया या बाट (सं० वर्त्मन्) कहाता है। हेमचन्द्र ने 'बट्ट' शब्द (दे० ना० मा० ७।३१) को देशी माना है।

जो खेत जुतता नहीं है, उसे पड़ती, परती या गैरमजरुआ बोलते हैं। बंजर और ऊसर (सं० ऊषर) पड़ती धरती के अन्तर्गत ही माने जाते हैं। बंजर में घास तो उग आती है लेकिन अनाज नहीं उग सकता। ऊसर में रेहीली (रेह से मिश्रित) मिट्टी होने के कारण घास भी नहीं उगती। गड्ढे में जो खेत होता है, उसे डहर (सं० हृद>दहर>डहर) कहते हैं। डहर खेत की मिट्टी गाढ़ और चिकनी होती है। गाय, भैंस और बछड़ा आदि का समूह जब जंगल में चरने के लिए जाता है, तब उसे हेर या चरिहाई कहते हैं। हेर को चरानेवाला व्यक्ति ग्वारिया (सं० गोपालक) कहाता है। ग्वारिये का काम घिराई कहाता है, क्योंकि वह पशुओं को घेरता है। इस काम के बदले में जो मजदूरी ग्वारिये को मिलती है, वह भी घिराई कहाती है। ग्वारिये अपनी हेर को प्रायः बंजर और डहर में ही चराया करते हैं। पाणिनि की पारिभाषिक शब्दावली (अष्टा० ६।१।१४५) के अनुसार बंजर को 'गोष्पद'[२] कह सकते हैं, क्योंकि बंजर भूमि में जाकर किसानों की गायें चरती हैं। गोचर भूमि के लिए ऋग्वेद (१।२५।१६) में 'गव्यूति' शब्द भी आया है।[३]

§१.६३—मिट्टी के विचार से खेतों के नाम—जिस खेत की मिट्टी में रेत अधिक मिला रहता है, उसे रेतुआ या रेतीली कहते हैं। रेतुआ मिट्टीवाला खेत भूड़,[४] भूड़ा, भूड़रा, या भूड़-लोग्गटा कहाता है। भूड़ा खेत की मिट्टी रंग में पीरेमन (पीलाई लिये हुए) होती है। भूड़ा खेत पनसोखा (पानी सोखनेवाला) होता है। लोकोक्ति प्रचलित है—

"जो रहिबौ चहै सुखारी। तौ करि भूड़ा में चारी॥"[५]

---

[१] "राम नाम करि बौंहड़ा बाही बीज अघाइ।"

—कबीर-ग्रन्थावली, काशी ना० प्र० सभा, बेसास कौ अंग, दो० ४

[२] "गोष्पदं सेविता सेवित प्रमाणेषु"—पाणिनि, अष्टा० ६।१।१४५;

गावः पद्यन्तेऽस्मिन्देशे स गोभिः सेवितो गोष्पदः

—सि० कौ० सू० १०६२।

[३] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, : पृथिवी पुत्र, पृ० ५१३।

गोचर भूमि लगभग दो कोस की दूरी पर होती होगी। संभवतः इसीलिए फिर 'गव्यूति' का अर्थ दो कोस (अमर० २।२।१८) हो गया।

[४] "कित पटपर गोता मारत हौ, चाप भूड़ के खेत।"

—सूरदास : सूरसागर, काशी० ना० प्र० सभा, स्कंध १०, पद ३५९१।

[५] यदि तू सुख से रहना चाहता है तो भूड़ खेत में चारा (ग्वार, [illegible], [illegible] आदि) बो दे।

पीली, चिकनी और भुरभुरी मिट्टी का मिश्रण **कसेट** कहाता है। जिस खेत में कसेट मिट्टी होती है, उसे **कसेटा** या **कसहेटा** कहते हैं। सख्त मिट्टी का खेत **कठार** कहाता है। बारीक और कुछ-कुछ बालूदार मिट्टी को **रैनी** कहते हैं। रैनीवाला खेत **रैना, रैनुआँ** या **रैनियाँ** कहाता है। सख्त मिट्टी का ढेलेदार खेत **मकसीला** कहाता है। कुछ गाढ़ तथा कड़ी मिट्टी **कल्लर** कहाती है। कल्लर मिट्टीवाले खेत को **कल्लरा** कहते हैं। काली और कुछ भुरभुरी मिट्टी का मिश्रण **मटियार** कहाता है। मटियार मिट्टी के खेत को **मटियरा** या **मटैरा** कहते हैं। जब भूड़ धरती में काली मिट्टी मिल जाती है, तब वह मिश्रण **दुमट** कहाता है। दुमट मिट्टी के खेत को **दुमटिआ** कहते हैं। दुमटिआ नाम के खेत में फसल बढ़िया और अधिक मात्रा में होती है; इसलिए इस खेत को **हौनियायौ खेत** भी कहते हैं।

पीली मिट्टी का खेत **पीरौंदा** या **पीरिया** (सादा० में) कहाता है। चिकनी मिट्टी के खेत को **चिकनौटा** और **मुटार** (काली और चिकनी मिट्टियों का मिश्रण) वाले को **मुटैरा** कहते हैं। काली और पीली मिट्टी का मिश्रण **कबिसा** (सं० कपिश)[1] कहाता है। कालिदास ने शकुन्तला नाटक (३।२४) में राक्षसों की छाया को कपिश रंग के (काले-पीले) बादलों के समान बताया है।[2] कबिसा मिट्टी न गाढ़ की भाँति कड़ी और न भूड़ की भाँति रेतीली होती है। इसका खेत **कबिसरा** कहाता है।

एक प्रकार की चिकनी-सी सफेद मिट्टी **पोता** कहाती है। किसानों की स्त्रियाँ प्रायः पोता मिट्टी से ही चूल्हे पर **पोता** (लेप) फेरती हैं। जिस खेत में पोता मिट्टी अधिक होती है, उस खेत को **पुतउआ** या **पुतारा** कहते हैं।

चिकनी मिट्टी का खेत **गाढ़** (सं० गर्त > प्रा० गड्ड > गाड़ > गाढ़) कहाता है। गर्मियों के दिनों में गाढ़ खेत में से जो बड़े-बड़े ढेले उखाड़े जाते हैं, वे **कीलें** कहाते हैं। गाढ़ खेत को **निमान** खेत भी कह देते हैं। लोकोक्ति प्रचलित है—

"जाकौ ऊँचौ बैठनौ, जाकौ खेत निमान।
ताकौ बैरी का करै, जाकौ मीत दिवान॥"[3]

गाढ़ खेत में जौ की खेती बड़े ज़ोर की होती है। फसल का बहुत अधिक मात्रा में होना **'हौन बबरना'** कहाता है। किसान जौ की किसी अच्छी फसल को देखकर कह उठता है कि—**'जौ की हौन ग्वा खेत में बबरि गई है।'** अर्थात् जौ की पैदावार उस खेत में बहुत ज़ोर की हुई है। निम्नांकित लोकगीत में जौ और गाढ़ खेत का सम्बन्ध बताया गया है—

"भूड़ बवाइदे लहरा, और गाढ़ बवाइदे जौ।
गोधन बाबा तू बड़ौ, तोते बड़ौ है को॥"[4]

§१६४—**गाँव के निकट और दूर के खेतों के नाम**—गाँव से चिपटे हुए खेत **बारे** कहाते हैं। बारे में बहुत अच्छी **हौन** (पैदावार, फसल) होती है। कारण यह है कि गाँव के

---

[1] "श्यावः स्यात् कपिशः"—अमर० १।५।१६

[2] "सन्ध्यापयोदकपिशाः पिशिताशनानाम्।"
—कालिदास, अभिज्ञान शाकुन्तलम् ३।२४

[3] जो उच्च मनुष्यों में बैठता है, जिसके खेत नीचे (निमान = निम्न) हैं अर्थात् अन्य खेतों से जिन खेतों का धरातल नीचा है और दीवान जिसका मित्र है, उसके लिए बैरी क्या अनिष्ट कर सकते हैं? खेत की ऊँची सतह **डांगर** और नीची सतह **निमान** कहाती है।

[4] लहरा (बाजरा) भूड़ खेत में और जौ गाढ़ खेत में बुवा दो। हे गोधन बाबा! तुम सर्वशिरोमणि हो, तुमसे बड़ा अन्य कोई नहीं है।

स्त्री-पुरुष प्रायः बारों में ही जंगल (पाखाना) फिरते हैं। इसीलिए कुछ बारे **गुहानी, गुहटा,** या **गुहेरिया** नाम से पुकारे जाते हैं (सं० गृथ > गृह = विष्ठा)। त० सादाबाद में 'गुहटा' खेत को **घुरेता** नाम से भी पुकारते हैं। कूड़ा-करकट और गोबर आदि जहाँ डाला जाता है, वह जगह **घूरा** कहाती है। घूरों के निकट होने के कारण संभवतः वे खेत **घुरेता** कहाते हैं। पुरुष जब खेतों में शौच के लिए जाते हैं, तब वह **जंगल-झाड़े जाना, जंगल फिरना, जंगल जाना, फराग्त फिरना, निबटना, हगना, टट्टी फिरना** या **दिशा मैदान जाना** कहाता है। स्त्रियों का टट्टी जाना **बाहर फिरना** या **बाहर बैठना** कहाता है। **बैयरबानियाँ** (स्त्रियाँ) प्रायः गाँव की **गुहेरियों** (गुहेरिया नाम के खेत) में ही बाहर फिरा करती हैं।

बारों से मिले हुए खेत **किरा** या **गौंड़ा** (सादा० में) कहाते हैं। 'गौंड़ा' शब्द ही सूर के सागर (१०।१४३५; १०।१४९९) में **'ग्वेंड़ा'** लिखा गया है और बिहारी ने भी इस शब्द का प्रयोग किया है।[1]

'ग्वैंड़ा' या 'ग्वेंड़' शब्द की व्युत्पत्ति सं० गोकुण्ड से प्रतीत होती है। मोनियर विलियम्स ने अपने संस्कृत अँगरेजी कोश में लिखा है कि—खेत की रक्षा या नाप में काम आनेवाली वस्तु को 'गोकुण्ड' कहते हैं। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने सुबन्धुकृत वासवदत्ता (जीवानन्द विद्यासागर-संस्करण, पृ० ९१) का प्रसंग-निर्देश करते हुए 'गोकुण्ड'[2] के सम्बन्ध में अपना मत दिया है कि इसका (गोकुण्ड का) उपयोग **झोंपे** (स्केयर क्रो) के लिए अथवा बोये हुए खेत की नजर की रोक के लिए हुआ करता था। गुप्तकाल का सुबन्धु इस प्रथा से परिचित था।[3]

विलियम क्रुक ने अपनी पुस्तक (ए रूरल एण्ड ऐग्री कल्चरल ग्लौसरी फौर दी नौर्थ वेस्ट प्रौविंसेज़ एण्ड अवध, कलकत्ता संस्करण १८८८, पृ० ११२) में **गोएँड़, गोएँड़ा, गोण्ड़ा** तथा **गोण्रा** शब्दों का अर्थ 'गाँव के निकट के खेत' ही लिखा है। क्रुक महोदय ने एक कहावत भी लिखी है और उसका अर्थ भी दिया है। वह इस प्रकार है—

'गोण्रे की खेती छाती का जन।' अर्थात् गाँव के निकट खेती करना छाती पर सवार यम के सदृश बुरा है।

पैट्रिक कारनेगी की पुस्तक (कचहरी टैक्नीकलिटीज़ और ए ग्लौसरी आफ टर्म्स, रूरल, आफीशल एण्ड जनरल इन डेली यूज़ इन दी कोर्ट्स ऑफ लॉ, इलाहाबाद मिशन प्रेस, द्वितीय संस्करण, पृ० १२२ व १२३) में भी **'गोइँड'** या **'गौहानी'** शब्द का अर्थ लिखा है—'गाँव के निकट के खादवाले खेत।' कारनेगी महोदय का कथन है कि जो खेत गाँव के निकट होते हैं, उपजाऊ होते हैं और जिनपर लगान अधिक लगता है, वे **'गोइँड'** कहाते हैं। गाँव के बहुत दूर अंतिम सीमा के खेतों को **'पालो'** कहते हैं। 'गोइँड' और 'पालो' नाम के खेतों के बीच में जो खेत होते हैं, वे **मझार** कहाते हैं।

---

[1] "गोकुल के ग्वैंड़ें एक साँवरो-सो ढोटा माई,
अँखिन के पैंडे पैठि जी के पैंडे पर्यौ है।"

—सूरदास : सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, स्कंध १०, पद १४३५।

"निकसि ब्रज के गईं ग्वैंड़ें हरष भई सुकुमारि।" —वही, स्कंध १०, पद १४९९।

"तो पर वौं ग्वेंड़ौ भयौ पैंड़ौ कोस हजार।" —बिहारी-रत्नाकर दो० १२५

[2] "भ्रमदुष्टहृतपुराण गोकुण्डमण्डल इव तारकान्वेन गोकुल-शालिनः नभः हेरम्बः।"

—सुबन्धु : वासवदत्ता, जीवानन्द विद्यासागर संस्क०, पृ० ९१।

[3] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, ए कल्चरल हैरिटेज आफ़ ग्राम्य बारामाह सोसाइटी, बुलेटिन नं० २, प्रकाशक प्रिंस आफ वेल्स म्यूज़ियम बौम्बे, सन् १९५३, पृ० ८४।

गाँव से अधिक दूरी पर जो खेत होते हैं, उनके नाम स्थिति के अनुसार कई तरह के हैं। **बरहथौ, हार, सिमाना, धुरका** और **मूढ़ा** नामों के खेत बहुत प्रसिद्ध हैं। ये खेत जंगल में गाँव से काफ़ी दूर होते हैं। इनके और गौंड़ों के बीच में जो खेत होते हैं, वे **मंझा** (सं० मध्यक > पञ्झअ > मज्झा > मंझा) कहाते हैं। कहावत है—'सहैं घर अनसहैं बरहौ।' [1]

बरहे (सं० बहिर्) के खेत बहुत दूर होते हैं। **'हार'** शब्द वास्तव में खेतों के एकचक के लिए प्रयुक्त होता है। प्रायः गाँव के खेत मुख्य चार हारों में बँटे रहते हैं, जो दिशाओं पर आधारित होते हैं—

(१) **पुवायाँ हार** = पूरब की ओर का चक।

(२) **पछायाँ हार** = पश्चिम दिशा का चक।

(३) **गँगायाँ हार** = गंगा नदी की ओर का अर्थात् उत्तर का चक।

(४) **जमुनायाँ हार** = यमुना नदी की ओर का अर्थात् दक्षिण दिशा का चक।

गाय के हार में चरने के विषय में एक लोकोक्ति भी प्रचलित है—

"आवत में भई साँझ अबार। चरिबे गई दूरि के हार॥"[2]

तुलसीदास जी ने भी कवितावली में 'हार' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है।[3]

जहाँ दो गाँवों के खेतों की सीमाएँ मिलती हैं, वहाँ एक पत्थर गड़ा रहता है। उस पत्थर को **सिमाना** (सं० सीमानः) कहते हैं। सिमाने के पास के खेत **सिमानिया** भी कहाते हैं। **बरहे के खेत, सिमाने के खेत, धुरके** और **मूढ़े** (सं० मूर्धक > मुंढअ > मूढ़ा) नाम के खेत सिमाने के आस-पास ही होते हैं। बरहे के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति भी प्रचलित है—

"घर की खुंस और जुर की भूख। ल्हौर जमाई बरहे ऊख॥
पतरी खेती बौरौ भइया। घाघ कहैं दुख कहाँ समइया॥"[4]

§१.६५—**आकार के विचार से खेतों के नाम**—कुछ खेतों के नाम बीघों और आकृति के आधार पर होते हैं। सोलह बीघे का खेत **सोलहइयाँ** और बाईस बीघे का **बाईसा** कहाता है। इसी प्रकार के **चौबीसा, छब्बीसा** और **चालीसा** नाम के खेत भी पाये जाते हैं।

[रेखा-चित्र २१, २२, २३, २४]

जिस खेत में केवल तीन ही कोने होते हैं, उसे **तिकौनिहा** या **तिकौनिहाँ** कहते हैं। दो-तीन बीघे तक के छोटे छोटे खेत **कौनियाँ** या चौहड़ो (खुर्जे में) कहे जाते हैं। गोलाईदार सी मेंड़ोवाला खेत जो क्षेत्रफल में एक दो वर्ग बीघे का होता है, **घेल्ला** कहाता है। तीन-चार बीघे के खेत **कौंधी** कहाते हैं। जिस खेत

---
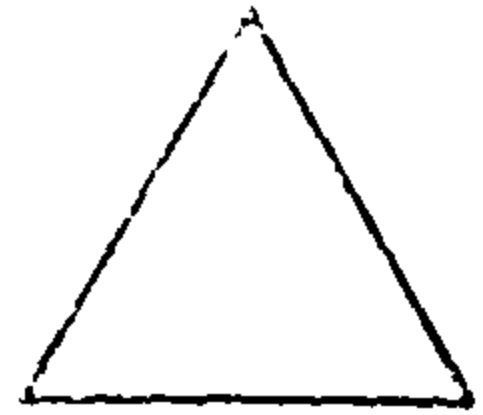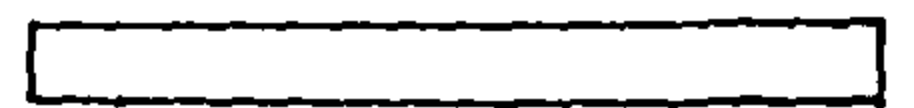
[1] क्रोध या विषम परिस्थिति में दूसरों की कड़ी बात सह लोगे तो घर बना रहेगा और खेत की हानि देख न सकोगे तो बरहे की रक्षा होती रहेगी।

[2] गाय के आने में सन्ध्या समय देर हो गई, क्योंकि वह दूर के हार (जंगल के खेतों) में चरने चली गई थी।

[3] "बानर बिचारो बाँधि आन्यो हठि हार सों।"
—तुलसी ग्रन्थावली, दूसरा खंड, काशी ना० प्र० सभा, कवितावली, काण्ड ५, छं० ११।

[4] घर के मनुष्यों में पारस्परिक वैमनस्य हो, ज्वर उतर जाने पर पीड़ित करनेवाली भूख कड़ाके की लग रही हो, जमाई (जमाता) छोटी आयुवाला हो, दूर बरहे में बो दी गई हो, खेती बहुत कमजोर तथा मामूली हो और भाई बावला हो। ये छः बातें जिसके भाग्य में लिख गई हों, उसका दुःख कहाँ समा सकता है? ऐसा घाघ कहते हैं।

की लम्बाई अधिक और चौड़ाई कम हो लेकिन एक पट्टी की भाँति काफी दूर तक फैला हुआ हो, तो उसे **पटिया** (सं० पट्टिका) कहते हैं। यदि किसी खेत की चौड़ाई पटिया की चौड़ाई से कम हो लेकिन लम्बाई पटिया के बराबर हो तो वह **फाँस** कहाता है। इसे ही खैर में **लार** और तुर्रू में **धार** बोलते हैं। यदि फाँस नाम का खेत लम्बाई में एक-दो जगह टेढ़ा हो जाता है, तो वह **सिपोरिया** या **सपोरिया** कहाता है। जिस खेत की मेंड़ें छोटी हों और उनमें से एक-दो टेढ़ी भी हो गई हों, उसे **टेढ़रा** कहते हैं। जो खेत आकार में कौनियों से कुछ बड़ा होता है, वह **कयार** (सं० केदार) कहाता है। जिस खेत की सभी मेंड़ें टेढ़ी-मेढ़ी हों, वह **बकौंदा** कहाता है। वह खेत जिसका एक भाग दिशा बदलकर पतले रूप में बन जाता है, **नारि** कहाता है। वह छः मेंड़ों और छः कोनों का होता है। उपर्युक्त खेतों को रेखा-चित्रों द्वारा स्पष्ट किया गया है—
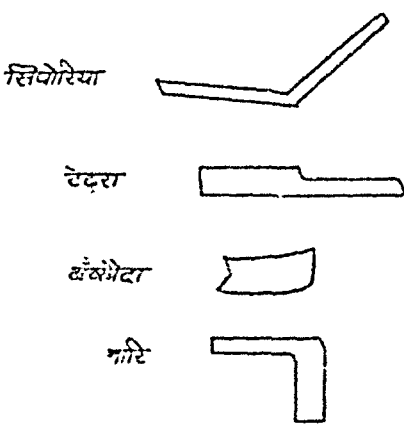
[रेखा-चित्र २५, २६, २७, २८]

(१) तिकौनिहा खेत (रेखा-चित्र २१)
(२) चेल्ला खेत (रेखा-चित्र २२)
(३) पटिया खेत (रेखा-चित्र २३)
(४) फाँस खेत (रेखा-चित्र २४)
(५) सिपोरिया खेत (रेखा-चित्र २५)
(६) टेढ़रा खेत (रेखा-चित्र २६)
(७) बकौंदा खेत (रेखा-चित्र २७)
(८) नारि खेत (रेखा-चित्र २८)

यदि एक किसान के एक जगह कई खेत हों, उनकी मेंड़ें भी एक दूसरे से मिली हुई हों और उन खेतों के बीच में किसी दूसरे किसान का कोई खेत न हो तो उन खेतों के समूह को **चकता** या **चक** कहते हैं। चकते का प्रत्येक खेत भी **चकता** कहाता है।

चकता खेत

१	२	३	४
५	६	७	८
९	१०	११	१२

[रेखा-चित्र २९]

जब एक बहुत बड़े खेत में से कई छोटे-छोटे खेत बना दिये जाते हैं, तब वे छोटे-छोटे खेत **डाँड़ा** कहाते हैं। (रेखा-चित्र ३०) में त्र ब स द से एक बड़ा खेत व्यक्त किया गया है। उसमें संख्या १, २, ३ और ४ के विभाजन के साथ छोटे-छोटे खेत दिखाये गये हैं। इन चारों में से प्रत्येक खेत का नाम **डाँड़ा** है। डाँडों को आपस में मिलानेवाली मेंड़ें **डाँड़** कहाती हैं।

[रेखा-चित्र ३०]

खेत को बीचोबीच में मेंड़ लगाकर '[illegible]' कहाता है। [illegible] ऐसा [illegible] कहते हैं, [illegible] '[illegible]' भी कहते हैं (फाँट = [illegible])।

§१६६—मिट्टी से अन्य वस्तुओं की मिला-वट के आधार पर खेतों के नाम—[illegible]

मिट्टी में छोटी-छोटी कंकड़ियाँ और खपरे मिले रहते हैं, उसे **किरका, खाँकर** (खैर में), या **ककरेठा** कहते हैं। ककरेठे में अनाज कम पैदा होता है। जिस खेत की मिट्टी में **रेह** अधिक होता है, वह **रेहा, उसरारा** या **पटपर** कहाता है। छोटे आकार के उसरारे खेत को **ऊसरी** कहते हैं। उसरारे खेत की मिट्टी **निसोखिया** (पानी न सोखनेवाली) होती है और **नुनखरी** (लवणक्षारिका = नमक और खार की) भी। उसरारे में घास तक भी नहीं जमती।

जिस खेत की मिट्टी में खाद अधिक मिला रहता है, उसे **खतैला** या **खिरावर** कहते हैं। खिरावर खेत प्रायः बारों के निकट ही होते हैं। जो खेत मरैठों (मरघट = श्मशान भूमि) के पास होते हैं, वे **हड़हेड़** या **हड़हेड़ा** कहाते हैं।

§१९७—**धरातल और पानी के विचार से खेतों के नाम**—जिन खेतों का धरातल ऊँचा-नीचा और गड्ढेदार होता है, वे **गढ़ा** या **गढ़ेलिया** कहाते हैं। ईंटों के भट्टे से बनी हुई ऊँची धरती **पजाया** कहाती है। जो खेत पजाये, टीले या अन्य किसी ऊँची जगह पर होते हैं, उन्हें **पजइया, टीलिआ, ढूहिआ** (ढूह = ऊँचा रेतीला टीला), **डुंगा** (देश० डुंगा—दे० ना० मा०) या **पूठा** (सं० पृष्ठक>पुट्ठअ>पूठा) कहते हैं। ऊँची धरती के अर्थ में सूरदास ने 'डोंगर' शब्द का उल्लेख किया है।[1]

अधिक वर्षा के कारण जब फसल गल जाती है, तो उस क्षति को **गरकी** कहते हैं। पूठे की फसल अधिक वर्षा में गलती नहीं है। लोकोक्ति प्रचलित है—

"जौ कहूँ ब्यार चलै ईसान। ऊँचे पूठा बऔ किसान ॥[2]

जिस खेत का धरातल नीचा होता है और जिसमें पानी भी अधिक समय तक भरा रहता है, उस खेत को **तराई** या **डहर** (सं० ह्रद>दहर>डहर) कहते हैं। डहर नाम के खेतों में **गाँड़र** (खस का पौधा; गाँडर की जड़ को **खस** कहते हैं, जिसकी बनी हुई टट्टियाँ गर्मियों में शीतलता प्रदान करती हैं) खूब उगती है। जिस खेत का धरातल ढलवाँ (ढालू) होता है, उसे **लहुड़कइयाँ** नाम से पुकारते हैं। किसी खेत में यदि एक ओर को ही धरातल लगातार नीचा होता गया हो, तो वह खेत **ढरका** या **ढरकना** कहाता है। पानी की धार का प्रबल वेग **रेला** कहाता है। पानी के रेले ने यदि किसी खेत की मिट्टी को काटकर गड्ढेदार बना दिया हो तो उसे **बँधा** या **खारुआ** कहते हैं। जिस खेत में बैसाख की फसल के लिए पानी आसानी से पहुँचाया जा सके, उसे **भर्तू** खेत कहते हैं।
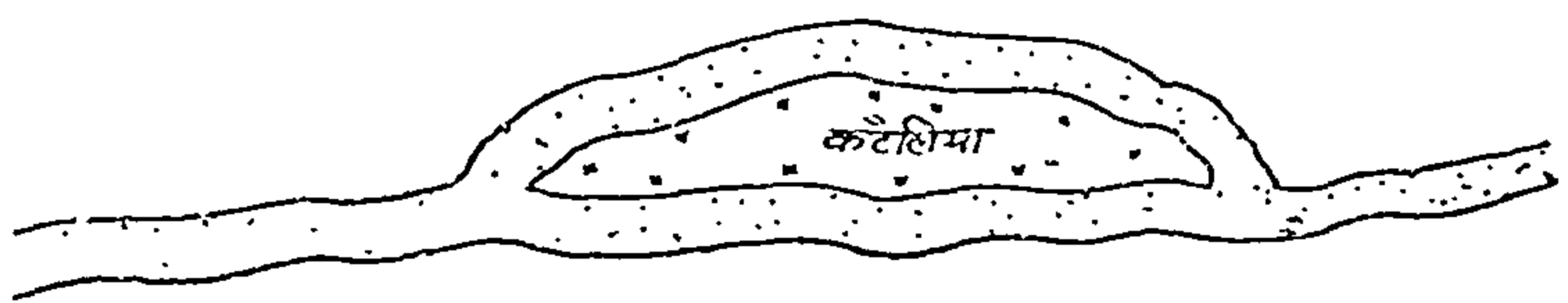
[रेखा-चित्र २१]

जो खेत वर्षा पर ही निर्भर रहते हैं, अर्थात् जिनमें कुएँ या बम्बे का पानी नहीं पहुँच सकता, वे **पड़ुआ** कहाते हैं। पड़ुए खेतों में केवल कातिक की फसल (खरीफ की फसल) ही होती है। पड़ुआ खेत अच्छा नहीं माना जाता। लोकोक्ति है—

---

[1] "बन डोंगर ढूँढ़त फिरौं, घर मारग तजि गाउँ।"
—सूरदास : सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।१११

[2] यदि ईशान हवा (उत्तर-पूर्व दिशा से चलनेवाली हवा) चल रही हो तो किसान को अपनी खेती ऊँचे पूठों पर बोनी चाहिए, ताकि वर्षा के कारण गरकी न हो सके।

"भदुआ नातौ पदुआ खेत।"[1]

नदी की मुख्य धारा में से एक नई धार निकल जाने पर बीच भूमि में जो खेत बन जाता है, उसे **फटैलिया** कहते हैं। रेखा-चित्र ३१ में इस + धनात्मक चिह्न से अभिव्यक्त स्थान **फटैलिया** खेत है। बिन्दीदार दुहरी रेखाएँ नदी की धाराओं की द्योतक हैं।

जिस खेत का धरातल मध्य में ऊँचा उठा हुआ होता है, उसमें अधिक चौड़े बरहे (पानी के रास्ते) बनाये जाते हैं, जो **डाँगर** कहाते हैं। उन **डाँगरों** द्वारा ही खेत सींचा जाता है। डाँगरवाले खेत को **डँगरिआ** कहते हैं। (रेखा-चित्र ३२) में बिन्दुओंवाला स्थान डाँगरों को प्रकट करता है।

§१६८—**जलाशय की निकटता और दूरी के विचार से खेतों के नाम**—पानी के बड़े-बड़े गड्ढे **पोखर** (सं० पुष्कर) या **छोड़या** कहाते हैं। छोटे तालाब की भाँति पानी के एक बड़े-से गड्ढे को, जिसमें पानी नीचे से चू भी आता है **चोखरा** कहते हैं। उस चोखरे से जो नाला बहता है, वह **छोड़या** कहाता है। जिस खेत या पोखर में गाँव के छोटे-छोटे मृत बालक गाड़ दिये जाते हैं, वह पोखर **नटेरा** कहाती है, क्योंकि मरे हुए बालकों को गाड़ने के लिए **'नटेरना'** क्रिया का प्रयोग होता है।

डाँगरोंसे बहता हुआ पानी बिन्दुओं द्वारा दिखाया गया है।
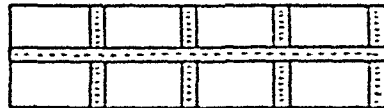
[रेखा-चित्र ३२]

च्वान पोखर (वह पोखर जिसमें पानी चू आता है) में से निकलकर जो बरसाती नाला बहता है, उसे भी **छोड़या** कहते हैं। पोखर के पास का खेत **पुखरिआ** या **पोखरवारो** कहाता है। नटेरे के पास का खेत भी **नटेरा** ही कहाता है। नाले के किनारे के खेतों को **नरेता** कहते हैं। नदी, नाले या छोड़ये की चौड़ाई **फाँट** कहाती है। जब बरसात के दिनों में छोड़ये का फाँट बढ़ जाता है, तब उसके किनारेवाले खेत गल जाते हैं। अतः छोड़ये के किनारे पर के खेत **रामआसरे** के नाम से पुकारे जाते हैं। नदी-किनारे के खेत **खुदरौयाँ** (खुर्जे में) कहाते हैं।

यदि कोई खेत किसी नदी के किनारे उच्च धरातल पर स्थित होता है तो वर्षा के दिनों में उसकी मिट्टी बहकर नदी में ही आ जाती है। वर्षा द्वारा मिट्टी का बह जाना **धोव** कहाता है। अतः वह खेत **धुवकटा**, **धौंकटा** या **पारि** (कोल और अत० में) कहाता है।

§१६९—**जुताई और फसल के आधार पर खेतों के नाम**—जिस खेत की जुताई असाढ़ से लेकर क्वार तक होती रहती है और जिसमें जौ-गेहूँ आदि बोये जाते हैं, वह **उन्हारी**, **उन-हारी** या **असाड़ी** कहाता है। पैदावार के लिए अलीगढ़ क्षेत्र में **'हौन'** शब्द प्रचलित है। जिस खेत के अन्दर एक वर्ष में दो फसलें कटते हैं, वह खेत **दुम्आई** कहाता है। इसी प्रकार तीन फसलोंवाले को **तिसाई** भी कहते हैं। जिस खेत में से कातिक की फसल काट ली जाती है और तुरन्त बैसाख की फसल बो दी जाती है, उस खेत को **नव्यौं** कहते हैं। यदि किसी खेत में से कातिक की फसल काट ली गई हो और वह फिर खाली (बिना बोया हुआ) पड़ा रहा हो, तो उसे **कुरहला** या **कुरैला** कहते हैं। जिस खेत में दो बार जुताई (सोड़) करने पर ही अच्छी फसल उग सके, वह खेत **दुबोड़ा** कहाता है। जौ या गेहूँ काटने के बाद जिसकी तीन बार जुताई हो गई हो उस खेत को **उमगा** कहते हैं।

उर्द, मूँग और मोठ आदि की फसल को **मसीना** (सं० मासीन) कहते हैं। जिन खेतों में लगातार कई वर्ष मसीना किया जाता है, वे **मसीनियाँ** खेत कहाते हैं।

[1] भादों का नाती और पदुए खेत की रीस कोई नहीं करता। पदुए खेत की पैदावार वर्षा पर ही निर्भर है। वर्षा समय पर हो जाती है, तो खेती बन जाती है, अन्यथा बीज भी मेंढ़ का चला जाता है।

काछी एक जाति है। इस जाति के मनुष्य ही प्रायः साग, तरकारी और बारी आदि की खेती करते हैं। जिन खेतों में साग, तरकारी और बारी की फसलें की जाती हैं, वे खेत **कछियाने** कहाते हैं। जिस खेत में से कातिक की फसल काट ली गई हो और तुरन्त पानी देकर जिसे जोत-बो दिया हो, उसे **परेहुआ-दुसाई** नाम से पुकारते हैं। खेत में पानी लगाने के अर्थ में '**परेहना**' क्रिया प्रचलित है। उसके लिए 'देशीनाममाला' (६।२६) में 'परिहालो' शब्द है।

जिन खेतों में से मक्का, ज्वार, बाजरा आदि कातिक की फसल काट ली गई हो और जिनमें उनके ठूँठ खड़े हों, उन खेतों को **सरहेत** कहते हैं। सरहेत खेत कातिक के अन्त तक ठूँठों सहित खाली पड़े रहते हैं।

जो खेत बंजर धरती में से तोड़कर बनाया गया हो, वह **नौतोड़ा** कहाता है। जिस खेत की फसलें आँधी और मेह से नहीं गिरतीं, वह **ठड़ेल** कहाता है।

§२००—रोग और बुवाई के आधार पर खेतों के नाम—कुछ खेतों की फसलों में एक ऐसा रोग लग जाता है, जिसके कारण पत्तियाँ नुची-सी हो जाती हैं। ऐसे खेतों को **खुटैना** (खोट युक्त = दोष सहित) कहते हैं। कुछ खेत ऐसे होते हैं कि उनमें बोई हुई फसल उगकर बड़ी तो हो जाती है, लेकिन बाद में रोग-विशेष के कारण सूख जाती है। उन खेतों को **चटका, भड़का** और **पटका** नामों से पुकारते हैं। ऐसे खेत प्रायः **बरहे** (गाँव के बाहर के खेत) में होते हैं, **बार** (गाँव से चिपटे हुए खेत) में नहीं।

यदि किसी खेत में प्रथम बार ईख बोई गई हो तो दुबारा भिन्न फसल के बोने के समय वह **मुड्ढा** कहाता है। जिस खेत के अन्दर या जिसकी मेड़ों पर **बाँसी** (बाँस के पेड़ों का समूह) खड़ी हो, वह **बँसारी** कहाता है।

§२०१—विशेष घटना, वस्तु और व्यक्ति के विचार से खेतों के नाम—कुछ खेतों में स्वतः ही **झरबेरियाँ** (बेरों की छोटी-छोटी झाड़ियाँ) बहुत उग आती हैं। उन्हें किसान जला देते हैं, फिर जोतकर उनमें बीज बोते हैं। उन खेतों को **जरैलिया** या **जरैला** कहते हैं।

कुछ खेत जो पहले मुसलमानों की ज़मींदारी में थे, **मिलिक** (अ० मिल्क) कहाते हैं। जिन खेतों में मुसलमानों की कब्रें मिलती हैं, उन्हें **गोरिहा** (फ़ा० गोर = कब्र) कहते हैं।

पथवारी और चामड़ नाम की ग्राम-देवियाँ बहुत प्रसिद्ध हैं। इनके थान जिन खेतों में पाये जाते हैं, वे **पथवरिया** (पथवारीवाला) और **चामड़िया** (चामड़वाला) कहाते हैं। यदि किसी खेत में केवल एक ही बड़ा पेड़ खड़ा होता है, तो उसे **इक्कावारौ** कहते हैं। इसी प्रकार भट्टा जिसमें लगा हो, उस खेत को **भटौआ** और पीपल का पेड़ जिसमें हो, उसे **पीपरिया** अथवा **पीपरावारौ** कहते हैं।

कंछिया, झण्डावारौ, मोहनिआ (मोहनवाला) आदि खेतों के नाम व्यक्तियों पर ही आधृत हैं। जिन खेतों के पास आम के बाग हैं और जिनकी धरती पर आम के पेड़ों की डालियाँ लोटती हैं, उन खेतों को **लोटना** नाम से पुकारते हैं। किसान अपनी खेती की भूमि का मालिक कई रूप में होता था। **कानूनी पट्टेदार, जैली, दरजैली, नम्बरदार, पट्टीदार, मुहालदार, मौरूसीदार, सीरदार, जिमीदार, माफीदार** और **कुजदखलिया** आदि नाम किसानों के ही हैं, जो धरती के अधिकारी के रूप में हैं। उनके आधार पर ही **जैलिया, जिमीदारा, नंबरदारा, कानूनिया, मुहाला** और **टुहला** नाम के खेत भी पाये जाते हैं।

६१. नालीवारौ
६२. निधौलिहा
६३. नीवरिया
६४. नौतोड़
६५. नौ बीघा
६६. पथवरिया
६७ पपरैला
६८ पीपरा
६९. पीरखनानौ
७०. पुलियावारौ
७१. बंजर
७२ बघरौलिया
७३. बमन्हियाँ
७४. बहराई
७५. बादल्ली
७६. बारहियाँ या **बारइयाँ**
७७. बारा
७८. बिबखंदा
७९. बुरझिया
८० भगीरता
८१. भरुआ
८२ भुसभुसिया
८३ भूड़रा
८४. भूतैला
८५. मांढ़हा
८६. मिलिक
८७. मुड़कटी
८८. मुरकनियाँ
८९. मेंमड़ीवारौ
९०. म्हौंमुदिया
९१. रपड़ा
९२. रमकसा
९३. रहवार
९४ रैनियाँ
९५. रैनीभौना
९६. रूँदैरा
९७. सतीवारौ
९८. सौंदैला
९९. हिन्नमूता
१००. हींसिया

मेंमड़ीवारी
म्हौंमुदिया
रपड़ा
रमकला
रहवार
रैनियाँ
रैतीभौना
रूँदैरा
सतीवारी
सौंदैला
हिन्नमूता
हींसिया

प्रकरण ४

खेती और पशुओं को हानि पहुँचानेवाले जंगली पशु, जीव-जन्तु, कीड़े-मकोड़े तथा रोग

अध्याय १

जंगली पशु और जीवजंतु

§२०३—**सूखट** (वर्षा न होने से खेती का सूख जाना) और **गरकी** (अति वृष्टि से खेती का गल जाना) किसान की खेती का **पटपरा** (पूर्णतः विनाश) कर देती हैं। इनके अतिरिक्त कुछ जंगली पशु और जीवजन्तु हैं, जिनसे खेत बचाने के लिए किसान को दिन-रात 'हो-हो', 'लागै-लागै' और **'मारियो-मारियो'** कहनी पड़ती है। किसान का **महन्तिया** (नौकर) जो खेत रखाता है, वह **हेहरिया** या **खेत-रखइया** कहाता है। कातिकिया खेती को रखाने के लिए लकड़ियों का एक मचान-सा बनाना पड़ता है, जिसे **महरा, म्हैरा** (कोल में) या **डाँड़** (इग० में) कहते हैं। तहसील खुरजे में **'म्हैरा'** शब्द पटेले के अर्थ में बोला जाता है। पटेले से जुती हुई धरती एकसार की जाती है। इसे मेरठ और सहारनपुर में **मैंड़ा** कहते हैं।

§२०४—जंगली पशुओं में साधारणतया कभी-कभी **भिड़िआ** (भेड़िया), **भोंकड़ा, बघर्रा** (सं० व्याघ्र), **लकड़भग्गा, लीलगाय, चरख, पहाड़ी** और **हिरन** खेती को काफी बरबाद कर देते हैं। ईख और मक्का के पौधों को तोड़कर बरबाद करनेवाला एक जंगली जानवर **गिदरा** (गीदड़) है। इसे **सिरकटा, घोंडुआ, लोखटा** या **स्यार** (सं० शृगाल>प्रा० सिआल>सिआर>स्यार) भी कहते हैं। गीदड़ के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति प्रचलित है —

"गिदरा की जब मौति आवन्दै तो गाम माऊँ भाजवै।[1]"

लोमड़ी को जनपदीय बोली में **लुखटिया** या **फयाउरी** भी कहते हैं। यह मक्का की भुट्टियों, खरबूजों और तरबूजों को खा जाती है। गीदड़ और लोमड़ियाँ जंगल में अपनी **भाटों** (सं० भ्राष्ट्र) में रहते हैं। बड़े-बड़े सुरंगनुमा गड्ढे धरती के अन्दर किये जाते हैं, जिनमें गीदड़, लोमड़ी आदि जानवर रहते हैं। उन गड्ढों को **भाट** कहते हैं। प्रत्येक भाट के अन्दर इतनी जगह होती है कि उसके अन्दर रहनेवाला जानवर सो सकता है। **बिज्जू** और **मुसक बिलाव** नाम के जानवर भी भाटों में ही रहते हैं। बिल्ली के आकार से मिलते-जुलते एक जानवर को **बिज्जू** कहते हैं। इसकी आँखें **मशाल** या **बिजली** की भाँति चमकती हैं। यह विद्यु अर्थात् विद्युत् (= बिजली) की भाँति आँखों में चमक रखनेवाला जानवर है; संभवतः इसीलिए इसका अन्वर्थ नाम **बिज्जू** या **बीजू** पड़ गया है। भेड़िये से मिलता-जुलता एक जंगली पशु **लिखिया** कहाता है। खेती को बरबाद करनेवाला एक भयंकर पशु जंगली सूअर है जिसे **बरहेलू, सूअर** (सं० बहिर् + सं० शूकर) कहते हैं। यदि मक्का के खेत में वह घुस जाय तो उसका **चौहद्द** (पूर्णतः विनाश) कर डालता है।

जंगली पशु और जीवजन्तु तीन प्रकार की जगहों में रहते हैं—(१) **खोह**—वह जगह जिसमें चीता, भेड़िया आदि रहते हैं। (२) **भाट**—वह जगह जिसमें गीदड़, लोमड़ी जैसे जानवर रहते हैं। (३) **बिल्ल** (सं० बिल)[2] वह सुराख जिसमें **स्याँप** (साँप) और **मूसे** (सं० मूषक) आदि रहते हैं।

---

[1] गीदड़ की जब मौत आती है, तब वह गाँव की ओर भागता है, ताकि वह गाँव के आदमियों और कुत्तों द्वारा मार डाला जाय।

[2] "[illegible]"

—श्री हर्ष, नैषध २।११५

जंगली पशु और जीव-जन्तुओं से जो खेती का विनाश होता है, उसे **उजाड़** (सं० उज्जट) कहते हैं। यदि पूरा खेत नष्ट हो जाय तो वह क्षति **चौरा** (सं० चचर > चउर > चौर > चौरा) कहाती है। सूरदास ने 'चौर' शब्द का प्रयोग उजाड़ के अर्थ में किया है।[1]

§२०५—सरकनेवाले जीव-जन्तुओं में **चूहे** और **गिलहरियाँ** खेती के लिए इतनी हानिप्रद हैं, कि बेचारे किसान की जान **भाभई** (पूरी आफत या परेशानी) में आ जाती है। वे **आखरी-सी** उठा लेते हैं, अर्थात् बड़ा उपद्रव तथा ऊधम मचाते हैं।

बीजू के लगभग बराबर ही **सेह (सेहो या साही)** होती है। इसकी देह पर काँटों का जाल-सा बिछा रहता है। लोगों का विश्वास है कि सेह का काँटा जिस घर में डाल दिया जायगा, उसमें **बदिकैं** (अवश्य ही) लड़ाई हो जायगी। **खरहा** (खरगोश) खेत की नई फसल के **कुल्लों** (अंकुरों) को खा जाता है। **न्योरा** (सं० नकुल = नेवला) की जाति का एक जन्तु **भौर** कहाता है। **भौर** मक्का की हरी फसल को दाँतों से काट डालती है।

अध्याय २

कीड़े-मकोड़े और रोग

§२०६—**ओरा**—(सं० उपलक = ओला) और **पारा** (पाला) किसान की **खेती** का **सत्यानास** (सं० सत्तानाश) कर डालते हैं। **चैंटी** (चींटी) की तरह का एक छोटा-सा कीड़ा जिसका मुँह कुछ-कुछ घुंडीदार होता है, **दीम या दीमक** कहाता है। यह जिस खेत में लग जाती है, उसके पौधे बरबाद हो जाते हैं। **अकफुट्टे** की भाँति का एक **उड़ना** (उड़नेवाला) कीड़ा जो **आनन-फानन** (क्षण मात्र) में पेड़-पौधों की पत्तियों का **सोंहड़** (सर्वनाश) कर डालता है, **टीड़ी या टिड्डी** कहाता है। यह करोड़ों की संख्या में दल बाँधकर उड़ती है। **'टीड़ी-दल'** एक मुहावरा भी है, जो बहुत बड़ी संख्या के अर्थ में प्रयुक्त होता है। वैदिक साहित्य में 'मटची' (छान्दोग्य १।१०।१) शब्द टिड्डी के लिए प्रयुक्त हुआ है। एक बार समग्र कुरु जनपद की फसल को टिड्डियों ने खा डाला था।[2]

§२०७—**कातिकिया फसल में लगनेवाले कीड़े और रोग**—मक्का की जब गाँठ फूटती है, तभी कभी-कभी **पुरवाई** (सं० पुरोवात) चलने पर उसमें **जीमनी गिड़ार** (रेंगनेवाला एक लम्बा कीड़ा) पड़ जाती है और मक्का के पौधे की पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं। मक्का की गड़ेली (भुट्टा) में **बधिया** नाम का एक रोग लग जाता है, जिसके कारण भुट्टे में दाने नहीं पड़ते। **परकना** नाम के रोग से मक्का की फसल सूख जाती है। **गुड़ा** रोग ज्वार-बाजरे के **कोथ** गेहूँ,

[1] "कीन्हों मधुबन चौर चहूँदिशि माली जाइ पुकार्यौ।"
—सूरसागर, काशी ना०प्र० सभा, ९।१०३

[2] "मटचीहतेषु कुरुषु"—छान्दोग्य, १।१०।१
'मटची' शब्द का अर्थ टिड्डी ही अधिक संभव है (देखिए, बलदेव उपाध्याय : वैदिक आर्यों का आर्थिक जीवन शीर्षक लेख, ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५८, अंक ३, पृ० २१८

जो आदि के पौधे की वह नली जिसमें से बाल निकलती है) को बहुत हानि पहुँचाता है। टिड्डी की-सी आकृति का एक उड़नेवाला कीड़ा जो प्रायः आक (सं० अर्क=एक पौधा) की पत्तियों पर रहता है, **अकफुट्टा** या **अक्कफुट्टा** कहाता है। इसकी उछलन या उछटी को **फुद्दी** कहते हैं। अकफुट्टे की उछलन (सं० उच्छलन)[1] टिड्डी की **हाँई** (तरह, समान) होती है।

§२०८—कुछ-कुछ लाल और सफेद रंग की गिड़ार, जो मक्का और ज्वार के तने में लग जाती है, **गिड़रा** कहाती है। जिस फसल में गिड़रा नाम का कीड़ा लग जाता है, उस फसल को **गिड़रियाई** कहते हैं। जब बन अर्थात् बाड़ी का अंकुर **दुपता** (=दो पत्तोंवाला) होता है, तब कभी-कभी उसके पत्तों को एक उड़नेवाला कीड़ा खा जाता है, जिसे **दुरकी** कहते हैं। एक गुलाबी रंग की गिड़ार, जो कपास को **कानी** (खराब) कर देती है, **पुरवा** कहाती है। एक कीड़ा लाल और काले रंग का होता है, जो बन का गूला और पत्तियाँ खा जाता है; उस कीड़े को **तेली** कहते हैं। यदि वर्षा न हुई हो तो **जोंडरी** (ज्वार) के नये भुट्टों को **गभरा** नाम की गिड़ार खा जाती है। एक छोटी-सी गिड़ार को **सरइया** कहते हैं। यह ज्वार के **फटेरे** (तना) और गन्ने की **पँगोली** (पोई) को कानी कर देती है। **कट्ठा** या **कट्टा** नाम का फुदकना कीड़ा (उछलनेवाला कीड़ा) बन और **चरी** (हरी ज्वार) की पत्तियों को चाट जाता है। **सफेदा** नाम का एक कीड़ा ईख की **किलसियों** (सं० किसलय=नई कोमल पत्तियाँ) में छेद करके उन्हें छलनी बना देता है। **लहरें** (बाजरा) की बाल में जब **कंडुआ** नाम का रोग लग जाता है, तब बाल मारी जाती है और उसमें से एक भिन्न प्रकार की छितरी हुई बाल निकलती है, जिसे **बर्रू** कहते हैं। बर्रू में बाजरे के दाने का नाम-निशान भी नहीं होता। मक्का की पत्तियों में कभी-कभी **झुलसा** नाम का रोग लग जाता है, जिसके कारण सारी पत्तियों पर पीले-पीले धब्बे पड़ जाते हैं।

§२०९—**बैसखिया फसल में लगनेवाले कीड़े और रोग**—किसी ऋतु तथा मौसम की **ब्यार** (हवा), **घाम** (सं० घर्म>प्रा० घम्म>घाम=धूप) और **तीन** (नमी) आदि ही फसलों में बहुत से रोगों को पैदा कर देती है। काँकरी (ककड़ी) के फल में एक गिड़ार पड़ जाती है, जो बीजों को खाकर अन्दर से फल को पोला कर देती है; उसे **कीरा** कहते हैं। पोला करने के लिए **'पुलारना'** क्रिया प्रचलित है। **काँकरी और कीरा** के संबंध में एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

> कर्क बवावै काँकरी, सिंह अबोई जाय।
> घाघ कहै सुनि घाघिनी, कीरा बढ़िकै खाय॥"[2]

अरहर दो तरह की होती है—(१) कतिकिया—यह कातिक में काटी जाती है। (२) बैसखिया—यह बैसाख में काटी जाती है। **पुरवाई** (पूरब की हवा) चलने से कभी-कभी कतिकिया अरहर में एक प्रकार का कीड़ा लग जाता है, जिसे **फलरिया** कहते हैं। चनों में **गंधेला** और सरसों में **माऊँ** नाम का रोग लगता है। प्रसिद्ध है—

> "तीन चना में आइ समाइ। ताकूँ जान गंधेला खाइ॥"[3]
>
> ० ० ०
>
> "नौ माह में जो पुरवाई। तौ सरसोंहि माऊँ खाई॥"[4]

---

[1] "निरस्तैद् प्रोत्कुल्लद्गोत्तिङ्गोत्थितैः।"—माघः शिशुपालवध, २। ६६

[2] जौलाई के महीने में कर्क राशि के समय जो ककड़ी बोता है और सिंह राशि अर्थात् अगस्त का महीना बिना पुरवाई के ही रहता है, तो ककड़ी में कीड़ा अवश्य लगता है। ऐसा घाघ भड्डरी भी ये कहते हैं।

[3] चनों के खेत (नम खेत) में यदि पाला पड़ा रहे तो उसमें गंधेला रोग लग जाता है।

[4] माह में पुरवा हवा के चलने से सरसों में माऊँ रोग लग जाता है।

११

मटर, चना, सरसों, जौ और गेहूँ में **चमका, गिड़ारी** और **उमसी** नाम के रोग लग जाते हैं। **चमका** रोग से फसल का फूल मारा जाता है। **गिड़ारी** रोग के कारण पत्तियाँ छेददार हो जाती हैं। चने पर जब तक **घेघरा** (चने की गोल फली) नहीं आता, तब कभी-कभी उसमें **उमसी** रोग लग जाता है। माह-पूस का पाला भी बैसखिया खेती को हानि पहुँचाता है। लोकोक्ति है—

"सावन-भादों कौल जो आवै। माह-पूस में पारौ लावै ॥"[1]

मसूड़ के खेत में यदि पानी न लगे और **माहौंट** (सं० माघवृष्टि >माहौर = जाड़ों की वर्षा) भी न हो तो **मसूड़** (सं० मसूर) की पत्तियों को **खुडी** नाम की गिड़ार खा जाती है। गेहूँ के पौधों की पत्तियों और बालों में **गिरुई, रतुआ** और **लाखा** नाम के रोग लग जाते हैं। **चरका** रोग धान की खेती को बरबाद कर देता है। लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—

"गेहूँ रतुआ चरका धान। बिना अन्न के मर्‌यौ किसान ॥"[2]

* * *

"फागुन मास चलै पुरवाई। तौ गेहुँन में गिरुई धाई ॥"[3]

क्वार मासे (क्वार मास में बोये हुए) गेहुँओं में प्रायः गिरुई रोग लग जाने का **डबका** (सन्देह या डर) बना रहता है।

§२१०—गन्ने के मुख्य भेद ये हैं—(१) **चिन** (२) **ऊभा** (३) **पौंड़ा** (४) **सरेथा** (५) **मंचुआ** (६) **कन्हिया** (७) **कोमबटुरिया** (८) **पुड़िया**।

गन्नों में कई तरह के रोग लग जाते हैं। उनके कारण गन्ने का तना पतला पड़ जाता है, या काना हो जाता है। कभी-कभी पोई के अन्दर सफेद-सफेद कपास-सी हो जाती है। गन्ने के रोगों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) **कंसुआ**—इस रोग के कारण गन्ने का पौधा छोटा और पतला पड़ जाता है। (२) **कपसा,** (३) **गन्धी,** (४) **चित्ती,** (५) **चेंपा**—यह काला-सा कीड़ा होता है। इससे जो रोग होता है, उसे **चेंपा** ही कहते हैं। (६) **परिल्ला,** (७) **पैका**—इस रोग के कुप्रभाव से गन्ने के ऊपरी भाग का गूदा सड़ जाता है। (८) **फटा,** (९) **फूला,** (१०) **भौंरी,** (११) **रौंथा,** (१२) **लखा,** (१३) **सराई**।

§२११—मूँगफलियों में एक विशेष प्रकार का रोग लग जाता है, जिससे उसकी पत्तियों पर अनेक काले धब्बे पड़ जाते हैं और धब्बों के चारों ओर पीलाई छा जाती है। उस रोग को **चितवा** या **हलदई** कहते हैं। जाड़ों को गला देनेवाले एक रोग का नाम **जरगला** भी है। धानों में एक **उफरा** नाम का रोग लग जाता है, जिसके कारण धानों की पत्तियाँ पीली पड़ जाती हैं।

§२१२—**कुछ सामान्य रोगों के नाम**—लौकी, तोरई, कासीफल और खीरा आदि की बारियों में **लटकी, बुकनी** और **बिरसा** नाम के रोग लग जाते हैं। इनके कारण पत्ते पहले पीले

---

[1] यदि सावन-भादों के महीने में कौल (कुहरा) अधिक पड़े तो माह-पूस के महीने में पाला अधिक पड़ता है।

[2] गेहुँओं में रतुआ और धान में चरका रोग लग जाने पर किसान बिना अन्न के मरा हुआ हो जाता है।

[3] फागुन के महीने में यदि लगातार पुरवाई (सं० पुरोवात = पूरब की हवा) चले तो गेहुँओं में गिरुई नाम का रोग दौड़कर लगता है।

पड़ते हैं, फिर सूख जाते हैं। **रेज की बरसा** (बहुत वर्षा) के बाद यदि **हालैहाल** (तुरन्त) **घमसा** (सं० घर्मोष्मा—घर्म + उष्मा या घर्म + ऊष्मा = धूप की गर्मी) पड़ने लगे, तो गाजरों में एक रोग लग जाता है, जिसे **गराब** कहते हैं। इसके कारण गाजरों में गाँठें पड़ जाती हैं और वे अन्दर से पोली हो जाती हैं। जौ, गेहूँ आदि की खेती में **ऐंठा, बँधा** और **सकोरा** नाम के रोग पत्तियों को ऐंठ-कर उन्हें बत्ती के रूप में परिणत कर देते हैं। **ऐंटा** और **फँफूदी** नाम के रोग जौ-गेहुँओं के लिए बड़े हानिप्रद हैं। जौ-गेहुँओं की बालों में दाना पड़ते समय यदि **पछुइयाँ** (पछुवा हवा) **फिस्कारने** लगे अर्थात् ज़ोर से चलने लगे तो बाल में **बैहरा** रोग हो जाता है। जब हवा झोंकों के साथ चलती है, तब उसके लिए **'फिस्कारना'** क्रिया का प्रयोग किया जाता है। गेहूँ में जब **सेहूँ** नाम का रोग लग जाता है, तब उसके दाने काले से पड़ जाते हैं।

नखट पड़ने पर चन में **चटका** रोग लग जाता है, जिससे चन की **पुरी** (फूल) झड़ जाती है। जब **उखटा** रोग पौधों और पेड़ों के तनों में लग जाता है, तब उनके तने और पत्ते सूखने लगते हैं। उखटे का मारा हुआ पेड़ **उखटिआ** कहाता है। जायसी ने 'उकठी' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में किया है।[१]

लखा रोग से पीला पड़ा हुआ गेहूँ **पीरोंदा** कहाता है। बाजरे पर जब भुट्टा आया ही हो, तभी यदि **मुसकधार** (मुशक की धार के समान) पानी बरसने लगे तो फूल मारा जाता है। उस समय उसके भुट्टों में एक रोग हो जाता है, जिसे **फुलधोवा** कहते हैं। पुरवाई चलने से कभी-कभी धान में **तडा रोग** भी लग जाता है। एक रोग **कोढ़** (सं० कुष्ट) कहाता है, जिसके कारण मका, चन, जौ, गेहूँ और चना आदि का पत्ता पीला पड़ जाता है।

§२१२—कुछ अन्य कीड़े-मकोड़ों के नाम—(१) रेंगनेवाले कीड़े, (२) उड़ने-वाले कीड़े।

रेंगनेवाले कीड़ों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) **कलीली**—यह लाली लिये हुए काले रङ्ग का कीड़ा है जो गाय, भैंस और बैलों की देह से चिपटा रहता है और उनका खून पीता है। यह आकार में खटमल से छोटा होता है।

(२) **फाँनर**—लगभग एक बालिश्त लम्बा पीले रङ्ग का कीड़ा होता है, जिसके पेट के नीचे सैकड़ों टाँगें होती हैं। कहा जाता है कि फाँनर जब देह में चिपट जाती है, तो फिर मुश्किल से छूटती है।

(३) **कानसलाई**—यह भी तरह का लाल-से रङ्ग का एक कीड़ा होता है, जिसकी लम्बाई लगभग दो-तीन अंगुल होती है। यह पशु या आदमी के कान में घुसकर बड़ा कष्ट पहुँचाता है।

(४) **कुकर कलीला**—यह कीड़ा आकार में कलीली से बड़ा होता है। प्रायः कुत्तों की गर्दनों से चिपटा रहता है।

(५) **गिजाई**—यह लाल रंग का लगभग डेढ़-दो अंगुल लम्बा बरसाती कीड़ा है। गिजा-इयाँ हजारों की संख्या में घर और जंगल में सावन-भादों के महीनों में दिखाई पड़ती हैं। यह पेड़ों में भी रहती हैं। प्रायः एक गिजाई दूसरी पर सवार रहती है।

(६) **गिड़ोया**—इसे [illegible] नाम से भी पुकारते हैं। प्रायः बरसात के दिनों में ये दिखाई

---

[१] "फूले भरे सूखी फुलवारी। दिस्टि परी उकठी सब बारी॥"
—डा० माताप्रसाद गुप्त (संपादक): जायसी ग्रन्थावली, पद्मावत, दोहा संख्या १०.१४

के अन्दर सैकड़ों की संख्या में पाये जाते हैं। यह कीड़ा मटमैले रंग का एक बालिश्त लम्बा होता है, जो मिट्टी खाता है।

(७) **गिरगिट या करकेंटा**—इसकी देह का रंग जल्दी-जल्दी बदलता है। यह आकृति में छिपकली से मिलता है। इसका मुँह कुछ लाल-सा होता है। मुसलमान इसे अनिष्टकारी या अशुभ मानते हैं, ऐसा सुना जाता है। जिस प्रकार अल्प प्रयत्न के सम्बन्ध में 'मुल्ला की दौड़ मसजिद तक' लोकोक्ति प्रचलित है, ठीक उसी प्रकार करकेंटे से सम्बन्धित भी लोकोक्ति है कि **"करकेंटा की दौड़ बिटौरा पै।"**

(८) **गिलहरी**—यह पेड़ों पर जल्दी से सरकती हुई देखी जा सकती है। यह एक बालिश्त लम्बी होती है। पीठ पर धारियाँ होती हैं। जिसके लिए साधारण वस्तु ही बहुत प्रिय और मूल्यवान् हो, तब उसके लिए यह लोकोक्ति कही जाती है कि—"गिलहरिया कूँ गूलर ही मेवा हैं।"

(९) **गुबरीला**—यह काले-से रंग का कीड़ा है जो गोबर में रहता है। कहावत प्रचलित है कि "गुबरीला तौ गोबर में ही राजी रहत्वै" अर्थात् गोबर का कीड़ा गोबर में ही प्रसन्न रहता है।

(१०) **गोह**—(सं० गोध)—यह आकृति में नेवला या बिसखपरिया से मिलती-जुलती होती है। इसकी एक किस्म **चन्दन गोह** कहलाती है, जिसे प्रायः चोर रखते हैं; क्योंकि इसकी और रस्सी की सहायता से चोर आसानी से मकान की छतों पर चढ़ जाते हैं।

(११) **चैंटा** और **चैंटी** (चींटा और चींटी)—ये कीड़े घरों और जंगलों में बहुत पाये जाते हैं। इनकी नाक की शक्ति बड़ी तेज होती है।

(१२) **छुपकिया**—यह विषैला जन्तु है। इसे **छिपकली** या **छुपकली** भी कहते हैं।

(१३) **झिल्ली**—एक विशेष कीड़ा जो चौमासों की रातों में बहुत बोलता है। इसके बोलने को **झनकारना** कहते हैं।

(१४) **झींगुर**—अँधेरे स्थान में जहाँ नमी-सी रहती है, वहाँ यह कीड़ा अधिक रहता है। यह उछट्टी मारकर चलता है।

(१५) **तेलिया कीरा**—यह कीड़ा लगभग तीन अंगुल लम्बा और एक अंगुल चौड़ा होता है। रंग में काला, पीला और सफेद देखा गया है।

(१६) **बामनी**—एक बालिश्त लम्बी होती है; देह पर पीली-सी धारियाँ होती हैं। आकृति में पतले **सँपोले** (सं० सर्प + पोतलक = साँप का बच्चा) की भाँति होती है।

(१७) **बिच्छू या बीछू**—(सं० वृश्चिक)—इसका डंक बड़ा तेज होता है। प्रसिद्ध है—

"स्याँप कौ काटौ सोवै। बीछू कौ काटौ रोवै ॥[1]

(१८) **बिसखपरिया**—यह आकृति में छिपकली से मिलती है, परन्तु बड़ी **बिसियर** (विषैली) होती है। इसके सम्बन्ध में लोगों का कहना है कि बिसखपरिया काटने के बाद तुरन्त अपने पेशाब में नहा लेती है। बिसखपरिया का काटा हुआ मनुष्य यदि उससे पहले नहा ले तो वह बच जाता है।

(१९) **मजीरा**—यह बरसात के दिनों में सन्ध्या समय से बोलना आरम्भ कर देता है। इसकी आकृति टिड्डी या अकफुट्टे से मिलती है। यह रंग में कुछ काला या मटमैला-सा होता है।

---

[1] जिस मनुष्य को साँप काट लेता है वह तो उसके विष के कारण सोता है लेकिन बिच्छू का काटा हुआ दर्द से दिन भर रोता रहता है।

(२०) राम की गुड़िया—इसका एक नाम **'बीरबहूटी'**[1] (सं० वीरवधूटी) भी है। यह गोल-सा मखमली देह का कीड़ा है, जो बरसात में दिखाई देता है।

(२१) साँप और नाग—नाग काला और **फनिहाँ** (फनवाला) होता है। इसमें बड़ा विष होता है। लेकिन साँप बिना फन का कीड़ा है। साँप के बच्चे को **सँपोरा** (सं० सर्प + पोतलक) कहते हैं। अँग० 'कोबरा' के लिए जनपदीय शब्द **'नाग'** प्रचलित है और अँग० 'स्नेक' के लिए **'साँप'** या स्याँप।

उड़नेवाले कीड़ों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) घिरोली या घिरगुली—यह मिट्टी का घर बनाकर रहती है। रंग में काली और देह में बर्र से छोटी होती है।

(२) डाँस—(सं० दंश प्रा० डंस > डाँस) यह काटने में मच्छर से बढ़कर है। आकार में **मच्छर** से बड़ा होता है, लेकिन आकृति बहुत कुछ मच्छर से मिलती-जुलती होती है।

(३) ततइया—लाल रंग की बर्र को ततइया कहते हैं। इसका डंक बड़ा तेज होता है।

(४) तीतुरी—सफेद या मटमैले रंग का एक पतंगा जो जुतते हुए खेत में अधिक पाया जाता है। चिन्तित और निराश हो जाने के अर्थ में **'तीतुरी उड़ जाना'** एक मुहावरा भी प्रचलित है।

(५) पतंगा—यह बरसात के दिनों में प्रायः दीपक पर आकर जल जाता है। इसका एक साहित्यिक नाम 'शलभ' भी है।

(६) बर्र बरइया या बरइया—रंग सोने का-सा होता है और इसकी कमर बड़ी पतली होती है।

(७) भिनुगा—यह मच्छर से भी बहुत छोटा कीड़ा है, जो प्रायः गूलर के फलों के अन्दर अधिक संख्या में पाया जाता है।

(८) भौंरा—यह रंग का काला होता है और छः टाँगें होती हैं। इसलिए इसे संस्कृत में षट्पद भी कहते हैं।

(९) भौंरुआ या जल-भौंरा—यह प्रायः पानी के ऊपर रहता है। पानी के धरातल पर सरपट मारते हुए इसे देखा जा सकता है। यह आकार में चींटे के शरीर का चौथाई होता है।

§२१४—साँपों के नाम, आकार और रूप-रङ्ग—साँपों की कुछ नस्लें **कुलियाँ** कहाती हैं। **बरुओं** (साँपों का खेल करने वाले) का कहना है कि साँपों की आठ कुलियाँ और अठारह जातियाँ हैं। साँप का खाल में घुसना **बरना** कहाता है। साँप का विष उतारनेवाला व्यक्ति **बाढ़गी** कहाता है। लोकोक्ति है—"कुठौर काटो ससुर बाढ़गी"[2] अर्थात् बड़ी दुविधा में पड़ जाना। साँपों के नाम यहाँ अकारादि क्रम से लिखे जाते हैं।

(१) अजगर—(सं० अजगर) इसे **अजदहा** भी कहते हैं। इसकी देह का रंग कलानी (काला + लाल) होता है। पीठ पर तांबे के रंग की **धूनियाँ** (गोल रेखाएँ, जो धुन की तरह बनी हुई

---

[1] "रँगि चलीं जस बीरबहूटी।"

—रामचन्द्र शुक्ल (संपादक): जायसी ग्रंथावली, पदमावत, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, ३०।५।३

[2] ससुर को साँप ने गुप्तांग में काट लिया लेकिन बाढ़गी मजबूर ही है। ऐसी दशा में विष उतरवाने का सारा झगड़ा वे ससुर कैसे हों? बड़ी दुविधा में जान है।

होती हैं) होती हैं। अजगर के माथे पर सफेद खड़ी रेखा भी होती है, जिसे **टीका** कहते हैं। अजगर के फन नहीं होता। यह बकरी को निगल जाता है।

(२) **अफई**—अफई (अ० अफ़ई = नाग जाति का एक साँप) का रंग सफ़ेद होता है। यह बहुत **बिसियर** (विषधारी) और फुर्तीला होता है। इसकी पीठ पर अण्डाकार सफ़ेद चित्ते भी होते हैं, जो **मक्खी** कहाते हैं।

(३) **अलगर्रा**—यह **पनिहाँ साँपों** (पानी में रहनेवाले साँप) की एक जाति में से है।

(४) **ऐल्हाद**—इसका सारा शरीर काला होता है। इसका फन आदमी के पंजे से भी अधिक चौड़ा होता है। बरुओं का कहना है कि ऐल्हाद की फुसकार से **दूब** (एक घास) भी जल जाती है। यह बड़ा ज़हरीला होता है। इसे **भुजंग** भी कहते हैं। इसके शरीर की लम्बाई आदमी के बराबर अर्थात् साढ़े तीन हाथ होती है। यह अपनी पूँछ का **सहारा** (आश्रय) लेकर सीधा खड़ा हो जाता है।

(५) **कदउआ**—(सं० काद्रवेय)—यह बहुत मोटा और भारी साँप होता है, जो फन उठाकर हाथ-डेढ़ हाथ ऊँचा खड़ा भी हो जाता है।

(६) **कागावंसी**—यह मुँह की ओर आधा **धौरा** (सं० धवल = सफ़ेद) और पूँछ की ओर आधा काला होता है। इसके शरीर की लम्बाई लगभग ढाई हाथ होती है।

(७) **कालगण्डेस**—इस साँप की देह काली होती है, लेकिन पीठ पर **गण्डे** (डोरी से बँधे हुए निशानों की तरह की रेखाएँ) होते हैं। कालगण्डेस के फन नहीं होता।

(८) **कालगनेस**—**सुन्नकाला** (बिलकुल काला) और **फनिहाँ** (फनवाला) होता है। फन अधिक लम्बा और कुछ नीचे को झुका हुआ होता है। इसका फन लगते ही आदमी मर जाता है।

(९) **कउआ डोम**—यह काले और हरे रंग का फनिहाँ साँप है। सिर पर खड़ाऊँ का-सा निशान बना होता है; लम्बाई लगभग दो हाथ होती है। इसके समान लम्बे निम्नांकित साँप और बताये जाते हैं—**करकतान, चीपटकाँचली, थोलक, निगिदगिट्टी, पाँगड़, भूँगमोरी, मुस्क, सुनैरी, सुम, हरियल** इत्यादि।

(१०) **गिल्हनफोर**—इसका रंग हरा और पूँछ पतली होती है। लम्बाई लगभग ३ हाथ होती है और फन नहीं होता।

(११) **गिहुआँना**—इस साँप की देह का रंग गेहूँ से मिलता-जुलता होता है। लम्बाई लगभग दो हाथ होती है। यह बहुत ज़हरी होता है। इसे **गोहाना** या **गोहवन** भी कहते हैं।

(१२) **गुनकी**—इस साँप का फन चौड़ा होता है और कुछ-कुछ गाय के मुँह से मिलता-जुलता रहता है।

(१३) **गुहेनियाँ**—नेवले की शक्ल का एक कीड़ा जो छिपकली से भी मिलता-जुलता है, **गोह** कहाता है। गुहेनियाँ साँप का रूप रंग बहुत कुछ गोह से मिलता है।

(१४) **घोड़ापछाड़**—यह साँप दौड़ने में घोड़े को भी मात दे देता है। रङ्ग में हरा और देह का पतला तथा **छरेरा** (फुर्तीला) होता है। पूँछ पर मक्खियाँ होती हैं। घोड़ापछाड़ का मुँह बिना फन का ही होता है लेकिन गर्दन पतली होती है। इसे **गर्रा** भी कहते हैं।

(१५) **घूँगला**—रंग में गेरुआ और लम्बाई में सवा हाथ का होता है। इसके नीचे का हिस्सा ऊँचा-नीचा होता है; इसलिए इसका पूरा पेट धरती से नहीं लगता।

(१६) **चीती या चित्ती**—यह मोटा, भारी और लगभग आठ हाथ लम्बा कीड़ा होता है। चीती का रंग हरा और पीठ पर **गुल** (सफेद चित्ते) होते हैं। मोटाई आदमी की पिंडलियों के बराबर होती है।

(१७) **जलेबिया नाग**—यह हर समय गुड़मुड़ी मारे हुए जलेबी की तरह पड़ा रहता है। काटते समय भी देह का तीन चौथाई भाग गुड़मुड़ी (कुंडली) की हालत में ही रहता है। यह रंग में **मटिआ** (मिट्टी जैसा) होता है और लम्बाई ढाई हाथ होती है।

(१८) **ढूँढ़ाड़ी**—इसे **लटाधारी** भी कहते हैं। इसकी पीठ पर छोटे-छोटे बाल और मुँह पर दाढ़ी-मूँछें होती हैं।

(१९) **डेंडू**—(सं० डुण्डुभ) इसे **पनिहाँ** (पानी में रहनेवाला) भी कहते हैं, क्योंकि इस जाति के साँप प्रायः पोखर, नदी, तालाब आदि जलाशयों में पाये जाते हैं। डेंड़ूँ की लम्बाई लगभग डेढ़-दो हाथ होती है।

(२०) **ललसा** (सं० तिलित्स)—यह मोटे और चौड़े फन का एक बड़ा साँप है, जो लम्बाई में लगभग ढाई-तीन हाथ के फन नहीं होता।

(२१) **ताकला**—यह देह का पतला और रंग का गुलाबी होता है। लगभग सवा हाथ लम्बा होता है, लेकिन फन नहीं होता।

(२२) **तागासर**—यह बिना फन का साँप है। इसका रंग सोने के समान होता है। **कनी** (सं० कनिष्ठिका) उँगली की मोटाई के बराबर तागासर की देह मोटी होती है। इसका मुँह बहुत छोटा और बिना फन का होता है।

(२३) **तामेसुरी**—इसकी देह ताँबे के रंग के समान होती है। फन लम्बा और देह पर काली मक्खियाँ बनी होती हैं। **'तामड़ा'** नाम का साँप भी तामेसुरी से मिलता जुलता होता है, लेकिन रंग में तामेसुरी अधिक लाल होता है।

(२४) **दुमहीं या फचलैंड़**—यह सुस्त और सीधा कीड़ा है। लोगों का कहना है कि दुमहीं ६-६ महीने दोनों ओर चलती है। अतः दोनों ओर मुँह होने के कारण इसे **दुमुँही** या **दुमहीं** कहते हैं।

(२५) **धामन**—धामन बड़ी जहरीली नागिन होती है। प्रायः रंग काला और सिर चपटा होता है। पीठ पर काले दाग होते हैं। किसी-किसी धामन की मोटाई आदमी के पहुँचे के बराबर होती है।

(२६) **धारसा**—यह बिना फन का सफेद साँप है। लम्बाई लगभग सवा हाथ होती है; देह का पतला और रंग में बिलकुल सफेद होता है।

(२७) **पदमनाग** (सं० पद्मनाग)—इसका फन छोटा और देह भारी होती है; यह लगभग एक हाथ लम्बा होता है। इसके फन पर नाग के खुर का सा सफेद निशान बना रहता है। यह बड़ी उत्तम जाति का साँप माना जाता है। यह काटते समय फन मारता है।

(२८) **पीरिया या पीरौंदा**—यह जहरी नहीं होता। सारी देह पीले रंग की होती है; यदि चौड़ाई में कुछ लाल रंग भी रहता है, तो इसे रक्त **पीरिया** कहते हैं। काले मुँह और पीले रंग के साँप को **फनमुहा-पीरिया** कहा जाता है।

(२९) **पीनिया**—पीनिया साधारण [illegible] नहीं माना जाता है [illegible] जैसा होता है। इसकी देह का रंग [illegible] और लम्बाई लगभग डेढ़ हाथ

प्रकरण ५

बादल, हवाएँ और मौसम

अध्याय १

बादल और वर्षा

§२१५—जब आकाश में समुद्र का पानी भाप बनकर छा जाता है, तब उसे **बादर** (सं० वार्दल>बादल>बादर) कहते हैं। यदि आकाश के थोड़े से घेरे में छोटा-सा बादल उठता हुआ हो, तो वह **बदुरिया** या **बदरी** (बदली) कहाता है। आकाश के थोड़े-से बीच में किसी एक दिशा से उठता हुआ बादल **घरवा** कहाता है। काले रंग का **घरवा** उठकर यदि सारे आकाश में छा जाय, तो उस रूप को **घटा** या **कारी घटा** कहते हैं। घटा के सम्बन्ध में लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

"कारी घटा डरपावनी, सेत भरैगी खेत॥"[1]

यदि काली घटा अधिक समय तक आकाश में छाई रहे, तो उसे **जमन** या **जमनि** कहते हैं। यदि दो काले घरवों के बीच में एक सफेद बदरिया आ जाय तो वह **थेगरी** कहाती है। उठे हुए सफेद घरवे को **रूगालौ** बोलते हैं। यदि बादल घिरा हुआ हो, पानी बरसता न हो और हवा भी बन्द-सी हो; तो उस वातावरण को **घुमड़न** या **घुटन** कहते हैं। आकाश के तारों के समूह को **तारई** (सं० तारागण>तारा‌इन>तारई) कहते हैं। यदि आकाश में बादलों के साथ तारई भी छिटक रही हो तो वह बादल **खौलिया** या **तारइयाँ** कहाता है।

अलीगढ़-क्षेत्र की जनपदीय बोली में बादल प्रायः चार तरह के प्रसिद्ध हैं—(१) **भदकैला**—जिसमें पानी कम हो। कहीं काला और कहीं कुछ-कुछ सफेद हो। (२) **जमैला**—जिसमें पानी अधिक हो और रंग में सारा काला हो। (३) **उनइयाँ**—जिसमें भाप घनीभूत होकर सम्मिलित हो और काफी नीचे भी आ गया हो। (४) **बरसौंहा**—ये बादल काले, घने और बरसाऊ होते हैं। इन्हें देखकर किसान को ध्रुव विश्वास हो जाता है कि **घहघड्ड का मेह** (बड़े ज़ोर की वर्षा) पड़ेगा। बरसौंहा बादल एक बड़े **चिचकल्ला** (क्षेत्र या मैदान) में पानी ही पानी कर देता है।

§२१६—कुछ बीच में काले बादल हों और कुछ बीच में सफेद; लेकिन दोनों प्रकार के बादल एक दूसरे से मिले हुए हों तो उस वातावरण को **धुपछाहीं** कहते हैं। यदि आकाश में थोड़ी-थोड़ी देर में बादल छा जावें और धूप भी निकल आवे तो वह **घमछाहीं** कहाती है। लोकोक्ति है—

"रात-दिना घमछाहीं। तब बरखा कछु नाहीं॥"[2]

जिन बादलों का रंग तीतर के पंखों के रंग से मिलता हो, अर्थात् जो बहुत काले न हों, वे **तीतरबन्ने** (सं० तित्तिरवर्णक) कहाते हैं। तीतरबन्नी बदरिया अवश्य मेह बरसाती है—

"तीतरबर्नी बादरी, विधवा काजर-रेख।
वह बरसै वह घर करै, यामें मीन न मेख॥"[3]

---

[1] काली घटा बरसती नहीं, बल्कि डराती है और सफेद मेघ भरती है।

[2] आकाश में दिन-रात घमछाहीं रहे तो वर्षा नहीं होगी।

[3] जिन बादलों का रंग तीतर के पंखों का सा होता, वह अवश्य मेह बरसावेंगे। जो विधवा स्त्री आँखों में काजल लगावेगी, वह अवश्य ही किसी पुरुष के साथ भाग जावेगी। इन दोनों बातों के होने में कोई सन्देह नहीं है।

कबीर ने 'तीतरवानी बादरी' का उल्लेख किया है और उससे मेह का बरसना बताया है।[1]

जब पूरे दिन आकाश में बादल छाये हुए रहें, नाम को भी धूप के दर्शन न हों, मौसम कुछ ठंड का हो; लेकिन वर्षा न हुई हो, तो उस वातावरण को **उनमनि** कहते हैं। यदि **मौहासों** (जाड़ों के दिन) में ऐसी उनमनि एक **अठवारे** (सं० अष्टवारक = आठ दिन की अवधि) तक रहे तो खेती पीली पड़ जाती है, और उस समय बेचारे किसान के **गोड़ टूट जाते हैं**। निराश एवं हतोत्साह के अर्थ में **'गोड़-टूटना'** मुहावरा प्रचलित है। यदि निरंतर एक दिन और एक रात (२४ घण्टे तक) आकाश में बादल छाये हुए रहें और **रिमझिम-रिमझिम मेह भी बरसता रहे** अर्थात् थोड़ी-थोड़ी बूँदें भी इस तरह पड़ती रहें कि **गिरारों** (गलिहारों) में **कीच-काँद** (सं० कर्दम > काँद) भी हो जाय, तो वह वातावरण **गोहच** कहाता है। कीचड़ की बहुत बुरी बदबू **बुक्काइँद** और सड़ने की बदबू **सड़ाइँद** कहाती है। आकाश में बादल चलता हो तो उसे **बदरचल** (खुर्जे में) कहते हैं। छोटे-छोटे ओलों को **कंकरी** कहते हैं। छोटे ओले कुछ ही समय पड़कर फिर तुरन्त बन्द हो जायँ तो उस तरह ओलों का बरसना **छाल** कहाता है। बड़े-बड़े ओलों का गिरना **'खिसलना'** कहाता है।

§२१७—बादल की आवाजों के लिए जनपदीय बोली में **गड़गड़, ढूँकन, तड़कन, गरजन** और **लरजन** शब्द खूब चलते हैं। बिजली चमकने के अर्थ में **लहकना, चमकना** और **कौंधना** धातुएँ प्रचलित हैं। यदि बिजली बहुत पतली रेखा के रूप में चमकती है तो उसे **'लहकना'** कहते हैं और यदि अधिक प्रकाश और बहुत बड़े रूप के साथ चमकती है, तो उस समय **'कौंधना'** धातु का प्रयोग होता है, जैसे—**बीजुरी कौंध रही है या कौंधा मार रही है।** अचानक कहीं पर बिजली का गिर जाना **'गिटई पड़ना'** कहाता है। पुरवाई (सं० पुरोवात) चल रही हो और बादल चमकता हुआ पश्चिम दिशा से उठे, तो उसे **उलटा धरवा** कहते हैं। पुरवा हवा चलते समय यदि पूरब दिशा से ही बादल उठे तो उसे **सीधा धरवा** कहते हैं। उलटे धरवे पर एक लोकोक्ति भी प्रचलित है—

> "उलटौ धरवा जौ चढ़ै, राँड़ मूँड़ ते न्हाइ।
> घाघ कहै सुन घाघिनी, वह बरसै यह जाइ॥"[2]
>
> * * *
>
> पतर पवन्ती ल्होल पइ, बदर पछाँहे जायँ।
> उतते आइके बरसिहैं, जल-जंगल करिजायँ॥[3]

पश्चिम दिशा से चलनेवाली हवा **पछइयाँ, पछहियाँ** या **पछादिया** (अत० में) कहाती है। पश्चिम दिशा को **'पछाँह'** कहते हैं। यदि पछैयाँ चल रहा हो और पछाँह से ही बादल उठें तो उन्हें **पछाँये बादर** कहते हैं। इनसे वर्षा की आशा बहुत कम होती है। प्रसिद्ध है—

---

[1] 'कबीर गुण की बादरी, तीतरबानी छाँहिं।
बाहिर रहे ते ऊबरे, भीगे मंदिर माँहि॥'—क० ग्रं०, माया कौ अंग, दो० १२

[2] यदि उलटा धरवा चढ़े अर्थात् पुरवा हवा चलते समय बादल पश्चिम से पूरब को जायँ तो वर्षा अवश्य होगी। यदि राँड़ (सं० रण्डा = विधवा) स्त्री सिर खोलकर न्हावे तो यह निश्चय है कि वह किसी के साथ अवश्य भाग जायगी। ऐसा घाघ अपनी स्त्री से कहते हैं।

[3] कोई किसान अपनी पत्नी से कहता है—हे पतली रोटी बनानेवाली! अब तू ल्होल (मोटा रोट) बना क्योंकि बादल पश्चिम दिशा को जा रहे हैं। उधर से आकर बरसेंगे और सारे जंगल में जल ही जल कर देंगे, और अन्न खूब होगा।

यदि इतनी घनघोर वर्षा हो कि खेती पानी से गलने लगे तो उसे **गरकिया मेह** कहते हैं। **गैल** (रास्ता) और **गिरारौ** (गलिहारा = गली का रास्ता) में जब वर्षा का पानी भर जाता है, तब मनुष्य और पशु आदि के चलने से जो ध्वनि होती है, पानी की उस ध्वनि को **छपर-छपर** कहते हैं।

आकाश में बादल निरन्तर दो-तीन दिन तक ऐसे छाये रहें कि सूर्य के दर्शन तक न हों और वर्षा भी होती रहे; फिर एक दिन आकाश स्वच्छ हो जाय और सूर्य का प्रकाश भी दिखाई देने लगे, तब उस वातावरण को **ऊभनौ** या **उघार** कहते हैं। 'उघार' से नाम धातु **'उघरना'** प्रचलित है। उघार देखकर किसान कह उठता है कि—**'अब तौ बादरु उघरि गयौ'** अथवा **'अब तौ ऊभनौ है गयौ'**। तेज़ हवा **झाय** कहाती है। यदि झाय के साथ-साथ वर्षा भी होने लगे तो उसे **झाऔट** (हिं० झाय + सं० वृष्टि) कहते हैं। झाऔट से फसल खेत में कभी-कभी बिछ-सी जाती है।

अध्याय २

हवाएँ

§२२०—रेत के बवंडर के साथ चलनेवाली तेज हवा **आँधी** कहाती है। हवा तेज न हो लेकिन आकाश में धूल पूरी तरह छा गई हो तो उसे **अन्ध** कहते हैं। यदि आँधी के साथ-साथ
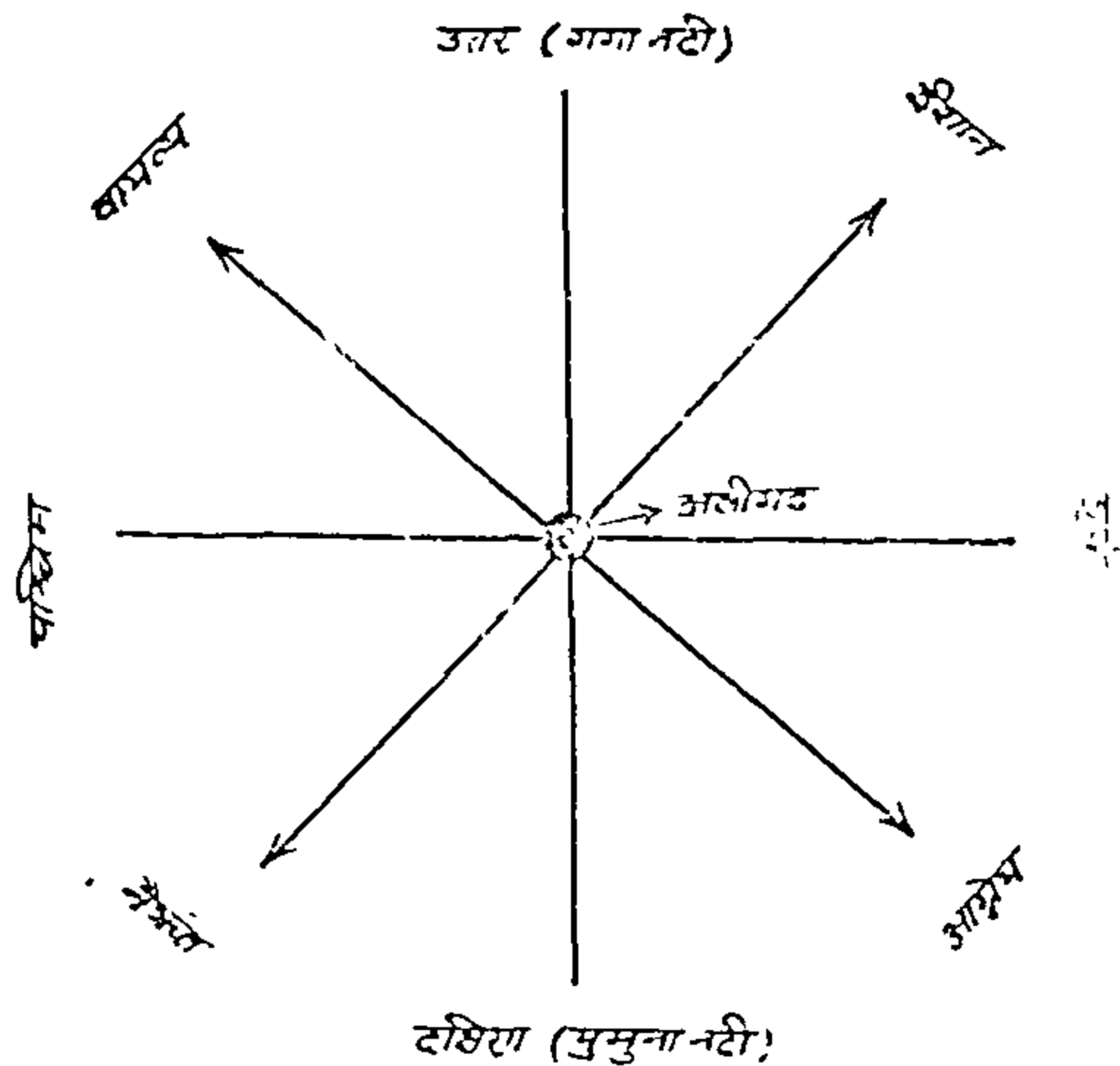
[रेखा-चित्र ३३]

मेह भी पड़ने लगे तो वह **अरंबाउ** कहाता है। वर्ष भर में जितनी हवाएँ चलती हैं, उनके नाम अलीगढ़-क्षेत्र की बोली में अलग-अलग इस अध्याय में लिखे जायँगे।

जेठ के महीने में जो तेज झोंकेदार गर्म हवा चलती है, वह **झोंका** या **झाय** कहाती है। झोंके लू (आग की लपट) के साथ चला करती हैं। अथर्ववेद (१२।१।५१) में मातरिश्वा[1] वायु

[1] "यस्यां वातो मातरिश्वेयते रजांसि कृण्वंश्च्यावयंश्च वृक्षान्। वातस्य प्रवामुप वामनुवात्यर्चि ॥" अथर्व० १२। १। ५१

अर्थात् जिस पृथ्वी पर धूल के बँधने (बवंडर) उड़ाता हुआ और बड़े-बड़े वृक्षों को गिराता हुआ मातरिश्वा पवन बड़े वेग से बहता है और जिसके साथ आग की लपटें अर्थात् लूएँ भी चला करती हैं।

नेरती) या **टेढ़रिया** (सादा० में) कहते हैं। हड़होड़ा कुछ रुक-रुककर तो चलती है, लेकिन उसके झोंके **जौंहर** (फा० ज़ोर) के होते हैं। लोकोक्ति है—

"पुरब पछइयाँ पूरी-पूरी। हड़होड़ा की बान अधूरी ॥"[1]

§२२२—फागुन के दिनों में एक शीतकारक, तेज, झोंकेदार तथा झड़कंपी हवा चलती है, जिसे **फगुन ब्यार** कहते हैं। जोनपुर के जिले में यही **फगुनहटा** के नाम से पुकारी जाती है। संभवतः इसके लिए ही जायसी ने 'झकोरा पवन' लिखा है।[2]

§२२३—उत्तर-पश्चिम (वायव्य) दिशा से एक हवा चलती है, जिसे **सूअरा, सूअरी** या सूरा (माँट में) कहते हैं। यही **चंडौसा**[3] (संभवतः सं० चण्डवर्षक > चंडौसा। खैर, खुर्जे में), **उत्तराखंडी** (हाथ० में) या **हरद्वारी** (अत० में) कहाती है। सूअरी ब्यार (शूकरी वायु) के सम्बन्ध में कई लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—

"ब्यार चलैगी सूअरा। नाजु न खाँगे कूकुरा ॥"[4]

*　　*　　*

"सावन में सुअरा चलै, भादों में पुरवाइ।
क्वार पछइयाँ जौ चलै, कातिक साख सवाइ ॥"[5]

*　　*　　*

"चली सूअरा ब्यार खुड़ी में पानी प्यावै।"[6]

इस लोकोक्ति की व्याख्या के सम्बन्ध में एक लघु लोक-कथा प्रसिद्ध है, जो इस प्रकार है—

"एक पोत[7] असाढ़ लगतई एक सूअरिया नैं आठ बच्चा डारे और अपनी खुड़ी (=सूअरों के रहने का स्थान जो छोटी-सी कोठरी की भाँति होता है) में परी रही। ब्याइबे के बाद ग्वाइ[8] बड़े जौंहर (=ज़ोर) की प्यास लगी और सूअर ते बोली—'नैंक मेरेलें पानी ले आओ, प्यास के मारें मेरी जान निकर रही ऐ।' सूअर नैं जा घड़ी सूअरिया की बात सुनी, ताई घड़ी गु गँगाईं लँग[9]

---

[1] पुरवा हवा और पछुआ हवा तो एक गति से पूरे समय तक चलती है, किन्तु हड़होड़ा आधी चाल के साथ चलती है। उसकी बान (आदत) ही अधूरी गति से चलने की है।

[2] "फागुन पवन झकोरा वहा। चौगुन सीउ जाइ नहिं सहा ॥"

—रामचन्द्र शुक्ल (संपादक): जायसी ग्रंथावली, पद्मावत, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, ३०। १२। १

[3] 'चण्डौस' नाम का एक गाँव भी है जो खैर से उत्तर-पश्चिम दिशा में है। (सं० चंटवास > चंडौस)।

[4] यदि सूअरा हवा चलेगी तो घोर वर्षा के कारण इतना अनाज पैदा होगा कि रोटियाँ खाते-खाते कुत्ते भी ऊब जाएँगे। भाव यह है कि संवत् बहुत अच्छा होगा।

[5] यदि श्रावण मास में सूअरा हवा, भाद्रपद में पुरवाई और आश्विन में पछुवा हवा चले तो कातिक की फसल सवाई होती है।

[6] हे सूअरिया! अब सूअरा हवा चलने लगी है, अतः वह स्वयं आकर तेरी खुड़ी में ही तुझे पानी पिलायेगी।

[7] = बार।

[8] = उसे।

[9] = ओर, तरफ।

(गंगा नदी की ओर अर्थात् उत्तर दिशा में) आगासहे[1] देखन लग्यौ । गंवार लोग की धीरी-धीरी नूअरा (नूअरिया) ब्यार चलति भई देखिकैं नूअरु नूअरिया में कहन लगी—"मैं त देर की आस पै धीरजु धरैं; अब नूअरा ब्यार चलन लगीहै; सो तू निसाखातर रहि (निश्चिन्त रह) । ईसुर ने चाही तौ एक लहमा (लमहा = क्षण मात्र) में ही ऐसौ मेहु नारैगौ कै तेरी कुदी पानी ते तलातल[2] भर जाइगी । तब तू चूब छिक्कैं (तृप्ति के साथ) पानी पी लइयौ (पी लेना) ।"

—(अलीगढ़ क्षेत्र की तहसील कोल में सुनी हुई)

"जौ चरडौला चमकैगौ । तौ रेलमपेला बरसैगौ ॥"

—(त० खैर से प्राप्त)[3]

° ° °

"जौ चरडौला रमकैगौ । दिन राति दनादन बरसैगौ ॥"[4]

—(त० खुर्जे से प्राप्त)

§२२४—पूर्व दिशा से चलनेवाली हवा **पुरवाई** (सं० पुरोवात) कहाती है । प्रभाव और गुण के विचार से यह चार प्रकार की होती है—(१) राँड़ पुरवाई, (२) सुहागिल पुरवाई, (३) झकोरा, (४) आमझूरनी ।

राँड़ पुरवाई में गर्मी की लटक तो होती है लेकिन मेह नहीं बरसाती । **सुहागिल पुरवाई** में ठण्डक (शीतलता) होती है, और निरन्तर चलने पर तीसरे दिन मेह बरसा देती है । लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—

"जौ जेठ चलै पुरवाई । तौ सावन सूखौ जाई ॥"[5]

° ° °

"पुरवाई धीरी चलै, विधवा पान चबाइ ।
वह लै आवै मेह कूँ, वह काहू कहिंजाइ ॥"[6]

° ° °

"सावन मास चलै पुरवइया । बरद बेचिकै लेउ गइया ॥"[7]

जो पुरवाई धकाधक झोंकों के साथ चलती है, उसे झकझोरा कहते हैं । जेठ मास में झकझोरा पुरवाई यदि अधिक दिनों तक चलती रहे तो सूखा पड़ता है, अर्थात् मौसम बिगड़ जाता है । प्रसिद्ध है—

---

[1] = आकाश को ।

[2] = पूर्णतया, लबालब ।

[3] इसका अर्थ आगे लोकोक्तियों (अनु० २३५।२१) में दिया है ।

[4] यदि चरडौला हवा धीरे-धीरे चलेगी, तो दिन-रात दनादन (बड़े ज़ोर का) पानी बरसेगा ।

[5] यदि जेठ मास में पुरवाई चलेगी तो सावन में सूखा पड़ेगा ।

[6] यदि पुरवा हवा धीरे-धीरे चले तो मेह अवश्य पड़ेगा और यदि राँड़ स्त्री पान खाती चले, तो समझ लेना चाहिए कि वह अवश्य किसी पुरुष के साथ भाग जायगी ।

विशेष—विधवा स्त्री जब किसी के साथ भाग जाती है, तब 'कढ़ना' क्रिया का प्रयोग होता है ।

[7] यदि सावन में पुरवाई चलेगी तो बैलों को बेचकर गाय ले लो, क्योंकि वर्षा न होने से खेती मारी जायगी; अतः अन्न और भूसा नहीं होगा ।

"दिन में बद्दर रात निबद्दर। पुरवाई चलै झव्वर-झव्वर ॥
घाघ कहै कछु होनी होई। खेती जरामूड़ ते खोई ॥"[1]

बौर आ जाने के उपरान्त आम के पेड़ पर जब छोटी-छोटी गोलियों की भाँति अमियाँ लगती हैं, तब उस दशा को आम के पेड़ का **अमिया जाना** कहते हैं। जब आम का लस (एक द्रव) पत्तियों पर बह जाता है, और पत्तियाँ चमकने लगती हैं, तब उसे आम का **लसिया जाना** कहते हैं। लसिया जाने पर आम गर्भ धारण नहीं करता। झव्वरा से भी तेज चलनेवाली एक पुरवाई **आमझूरनी** कहाती है। इसके कुप्रभाव से आम अमियाना बन्द कर देते हैं। आमों के सैकड़ों पेड़ों की पत्तियाँ झड़ जाती हैं और वे नंगे-से दिखाई देने लगते हैं। लेकिन वर्षा के सम्बन्ध में आमझूरनी पुरवाई बड़ी अच्छी है। प्रसिद्ध है—

"आमझूरनी। साध पूरनी।"[2]

सावनी पुरवाई (सं० श्रावणीय पुरोवात) और **भदइयाँ पछइयाँ** (भादों की पछवा हवा) किसान की खेती के लिए आधि-व्याधि हैं। लोकोक्ति है—

"सावन पुरवाई चलै, भादों में पछियाइ।
कन्थ! डंगरनु बेचिकैं, लरिका लेउ जिवाइ ॥"[3]

भादों में मेह बरसना खेती के लिए सर्वाधिक लाभकारी है। यदि पुरवाई भादों में चलकर मेह न बरसाये तो खेती में जान नहीं आती। वह पतली और हलकी ही रहती है। प्रसिद्ध है—

"बिन भादों के बरसे। बिना माइ के परसे ॥"[4]

भादों के पछइयाँ के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

"जै दिन भादों पछिया व्यार। तै दिन माह में परै तुखार ॥"[5]

इसी प्रकार जेठ की पुरवाई का प्रभाव पड़ता है—

"जै दिन जेठ चलै पुरवाई। तै दिन सावन सूखौ जाई ॥"[6]

§२२५—सावन-भादों में बड़े जोर से चलनेवाली एक हवा का नाम **बैहरा** है। **बैहरा** ढंग और प्रभाव में **फगुन ब्यार** का ही सगा भाई है। यह **इकलत्त** (लगातार) एक अठवारे तक (आठ दिन तक) चलता रहता है। बैहरे की **रेल-पेल** (दरेरे के साथ लगाया हुआ धक्का) ज्वार, बाजरा, मक्का और बन के पौधों को केवल झुकाती ही नहीं है, बल्कि हरी खेती का बिछौना-सा बिछा देती है, जिसे देखकर किसान के दिल में घूँसा-सा बैठ जाता है। प्रारम्भ में चलते समय बैहरा कुछ गर्म

---

[1] यदि दिन में बादल रहें, रात को आकाश साफ़ रहे और झव्वरा पुरवाई झव्वर-झव्वर चलने लगे तो घाघ कहते हैं कि कुछ होनी (भवतव्यता) होगी। इन लक्षणों से ऐसा प्रतीत होता है कि खेती जड़मूड़ से (पूरी तरह) मारी जायगी।

[2] आमझूरनी पुरवाई सबके लिए साधपूरनी (सं० श्रद्धापूरणी = इच्छा पूर्ण करनेवाली) है।

[3] सावन में यदि पुरवा हवा चले और भादों में पछवा, तो हे कान्त! पशुओं को बेचकर जैसे-तैसे अपने बाल-बच्चों को जीवित रक्खो, क्योंकि सूखा के कारण अकाल पड़ेगा।

[4] भादों की वर्षा के बिना किसान का और माता द्वारा दिये भोजन के बिना पुत्र का पेट नहीं भरता है।

[5] भादों में जितने दिन पछवा हवा चलती है, माह में उतने ही दिन पाला पड़ता है।

[6] जेठ में जितने दिन पुरवाई चलती है, सावन के उतने ही दिन सूखे रह जाते हैं, अर्थात् वर्षा नहीं होती।

होता है और फिर प्रबल शीत-कारक हो जाता है। बैहरे को चलता हुआ देखकर चिन्तित किसान बैठे हुए दिल से कहने लगता है कि—

"औंहर पै है बैहरा। नरका बचै न बाजरा ॥"[1]

पूस और माह के महीनों में चारों ओर से लपेटा-सा मारती हुई एक बहुत ठंडी हवा चलती है, जिसे **चौवाई** (सं० चतुर्वात>चउवाय>चउवाई>चौवाई) कहते हैं। यह तेज होती है और थोड़ी-थोड़ी देर बाद अपनी दिशा बदल देती है। चौवाई से गेहूं-जौ आदि की बाल का दाना पिच्ची हो जाता है। अवध के गाँवों में ऐसी ही एक हवा 'झोला' नाम की प्रचलित है, जिसका उल्लेख जायसी ने नागमती की वियोग-गाथा के वर्णन में किया है।[2]

चौवाई के कुप्रभाव से जब खेत में बालों के दाने पिचककर पतले पड़ जाते हैं, तब उस दशा को खेत की **ब्यार निकलना** कहते हैं। चौवाई खैर और इगलास में **'चमरबावरी'** के नाम से भी पुकारी जाती है।

§२२६—जब रेत उड़ाती हुई गोले रूप में हवा चलती है, तो उसे **बगोला** (सं० वातगोल) कहते हैं। इसमें हवा का गोला-सा उठता है। बैसाख-जेठ की काली-पीली तेज आँधियाँ **अंधड़** भी कहाती हैं। कभी-कभी हवा के तेज झोंके प्रायः जेठ में उठते हैं। उनके भँवरों में पड़ी हुई धूल चक्कर काटती है और ऊपर काफी ऊँचाई तक उठ जाती है। उसे **भूतरा, भभूड़ा** या **भभूका** कहते हैं।

§२२७—पश्चिम दिशा से चलनेवाली हवा **पछुइयाँ** कहाती है। यह खुश्क होती है। इसके दो-एक दिन चलने से पानी से खुश्क-तर दिखाई देनेवाले खेत **फरेरे** (मामूली-सी नमी जिनमें हो) हो जाते हैं। यदि निरन्तर १०-१२ दिन पछुइयाँ चलता रहे तो खेती सूखी-सी दृष्टिगोचर होने लगती है, किन्तु **मौहासों** (जाड़ों) में कभी-कभी पछुइयाँ से ही **घहघड्ड** की (बड़ी घनघोर) वर्षा होती है। माह-पूस में पछुइयाँ को **रमकता हुआ** (मन्द-मन्द चलता हुआ) देखकर किसान हृदय में फूलता हुआ यह कहता है—

"पुरवाई लावै थोर-थोर। पछुइयाँ बरसै पोर-पोर ॥"[3]

सामान्यतः पछुवा हवा खेती को सुखाती ही है, क्योंकि यह खुश्क होती है। पछुइयाँ ब्यार जनपद में **पतसोखा** (सं० पत्रशोषक) है। इसके प्रभाव से खेती की बालें सूखी और **ढेंनियाई** (जिनकी गर्दन नीचे को लटक गई हो) हो जाती हैं। कालिदास ने 'रूक्षागमिव शोषणेन मरुता' (अभि० ३।७) लिखकर संभवतः पतसोखा पछुइयाँ हवा की ओर ही संकेत किया है।[4] निम्नांकित लोकोक्ति पछुइयाँ हवा के प्रभाव को ठीक तरह से व्यक्त करती है—

"जब बहिआइ पछुइयाँ बैरी। होवै नहीं मेह की ढैरी ॥"[5]

० ० ०

---

[1] बैहरा हवा जब जोरों से चलने लगी है, अतः अब न नरका बचेगा और न बाजरा।

[2] "बिरह पवन होइ मारै झोला"

—रामचन्द्र शुक्ल (संपा०): जायसी-ग्रन्थावली, पद्मावत, का० ना० प्र० सभा, ३०।१।१

[3] पुरवाई थोड़ा-थोड़ा पानी बरसाती है; किन्तु पछुइयाँ हवा घनघोर वर्षा करती है।

[4] "रूक्षागमिव शोषणेन मरुता स्पृष्टा लता माधवी।"

— कालिदास: अभि० शाकुन्तल, अंक ३, श्लोक ७

[5] जब पछुवा हवा निरन्तर कुछ दिन तक चलती है, तब उसके प्रभाव से मेह की आशा नहीं रहती।

"पुरवाई बादरु करै, पछिया करै उघार ॥"[1]

चौमासे की अति वर्षा से **आँती** (तंग, परेशान) किसान पछैयाँ की **रमक** (मन्दगति) देखकर मन में हुलसता है और कह उठता है—

"चल्यौ पछैयाँ । मन-हरखैयाँ ॥"[2]

* * *

"चलि गई ब्यार पछैयाँ। पंछी लेत बलैयाँ ॥"[3]

§२२८—अलीगढ़ क्षेत्र के उत्तर में गंगा नदी और दक्षिण में यमुना नदी है। अतः उत्तर दिशा से चलनेवाली हवा **गँगतीरा** या **गँगार** (अनू० में) कहाती है। दक्षिण दिशा से चलनेवाली हवा को **जमुनाई** कहते हैं। **दखिनपुवाई** (दक्खिन-पूरब दिशा से चलनेवाली) हवा का नाम **जमराजी**[4] (=यमराज से सम्बन्धित) है। किसानों का विश्वास है कि जमराजी के चलने से सूखा पड़ती है—

"जमराजी जब चलै समीरा। पड़ै काल दुख सहै सरीरा ॥"[5]

दक्षिण दिशा से चलनेवाली हवा **दक्खिन ब्यार** भी कहाती है। लोकोक्ति है—

"जौ हरि हुंगे बरसनहार। कहा करैगी दक्खिन ब्यार ॥"[6]

यदि यही दक्खिन ब्यार माह के महीने में चलती है, तो खूब वर्षा करती है—

"माह मास में दक्खिन चलै। भर भादों के लच्छिन करै ॥"[7]

* * *

"दक्खिनी कुलक्खिनी। माह-पूस सुलक्खिनी ॥"[8]

उत्तर दिशा से चलनेवाली एक हवा **उत्तरा** कहाती है। **गँगतीरा** (गंगा नदी की ओर से चलनेवाली हवा) और उत्तरा के सम्बन्ध में लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—

---

[1] पुरवा हवा से आकाश में बादल छा जाते हैं और पछइयाँ हवा से आकाश में छाये हुए बादल हट जाते हैं, अर्थात् उघार हो जाता है।

उघार—देखिए, अनुच्छेद, २१९।

[2] मन को हर्ष प्रदान करनेवाला पछइयाँ चलने लगा।

[3] पछइयाँ हवा चलने लगी; अतः पक्षिगण आनंद से अपने बच्चों को बलैयाँ लेने लगे।

[4] श्री हर्ष ने दक्षिण वायु के लिए 'कालककुब्दिग्भवः पवनः' (नैषध २।५७) लिखा है। बाण ने भी मृत पुण्डरीक के लिए विलाप करनेवाले कपिंजल के मुख से कहलाया है—"दक्षिणानिल हतक! पूर्णास्ते मनोरथाः।" कादम्बरी पूर्व भाग, महाश्वेतायाः अभिसार, सिद्धान्तविद्यालय, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण, पृ० ६१९।

[5] जब जमराजी हवा चलने लगती है, तब अकाल पड़ता है और शरीर दुःख उठाता है।

[6] यदि ईश्वर को मेह बरसाना स्वीकार होगा तो दक्खिन ब्यार चलकर क्या कर लेगी।

[7] यदि दक्षिण की हवा माह के महीने में चलती है, तो भादों की वर्षा की भाँति ही पानी बरसाती है।

[8] दक्षिण की हवा वैसे तो कुलक्षणा है, लेकिन माह-पूस में चले तो सुलक्षणा बन जाती है; क्योंकि वर्षा करती है।

"जो क्वार बहै गँगनीरा। तौ निरमल होइ सरीरा॥"[1]

*　　*　　*

"क्वार चलैगी उत्तरा। माँड़ न पीवैं कुत्तरा॥"[2]

§२२९—उत्तर-पूरब (ईशान) के कोने से चलनेवाली हवा **ईसान** कहाती है। जेठ में जब यह हवा चलती है, तो किसान समझ लेता है कि असाढ़-सावन में खूब वर्षा होगी। इसके सम्बन्ध में लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—

"जो कहुँ क्वार चलै ईसान। ऊँचे पूठा बयौ किसान॥"[3]

*　　*　　*

"सावन पछिया भादों पुरवा, क्वार चलै ईसान।
कातिक कन्था! कुठला भरिगये, ऊले फिरैं किसान॥"[4]

क्वार में चलनेवाली एक तेज़ हवा **हिरनवाइ** कहाती है, जो मनुष्य बहुत शीघ्रता से उधर-इधर घूमता है, तो उसके लिए कहा जाता है कि—**वह तो हिरनवाइ हो रहा है।**

अध्याय ३

मौसम

§२३०—चैत से लेकर फागुन तक के महीने तीन **मौसमों** (अ० मौसिम) में बँटे हुए हैं—(१) **जेठ मास** अर्थात् गर्मी, (२) **चौमासा** (सं० चतुर्मासक) अर्थात् बरसात, (३) **मौहासे** अर्थात् जाड़ों के दिन। गर्मी के दिन, जिनमें गर्मी खूब पड़ती है और लू भी चलती है, **मावटे** या **माइटे** कहाते हैं। जाड़ों के दिनों में होनेवाली वर्षा **माहौट** (सं० माघवृष्टि) कहाती है। 'माहौट' के

---

[1] यदि गँगनीरा नाम की ठंडी हवा चलती है, तो शरीर निर्मल और स्वस्थ हो जाता है।

[2] यदि उत्तरा हवा चलने लगेगी तो वर्षा के कारण इतना धान होगा कि माँड़ को कुत्ते भी न पीयेंगे; अर्थात् इतनी अधिक मात्रा में माँड़ होगा कि फिरा-फिरा फिरेगा।

[3] यदि ईसान हवा चले तो हे किसानो! ऊँचे पूठों (=टीलों की भाँति ऊँचे धरातल के खेत, सं० पृष्ठक>पुट्ठअ>पूठा) पर बीज बोओ क्योंकि नीचे धरातलवाले खेत वर्षा के कारण भर जावेंगे।

[4] यदि सावन में पछुआ, भादों में पुरवाई और क्वार में ईसान चलेगी तो हे कन्त! कातिक में किसान अनाज से अपने कुठले (मिट्टी से बनाया हुआ एक ऊँचा कुठीला) भर लेंगे और प्रसन्न हुए घूमेंगे।

लिए ही जायसी ने **'महवट'** शब्द लिखा है।[1] अगहन की वर्षा जौ, गेहूँ, चना आदि के लिए अच्छी नहीं होती। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

"अगहन बरसे बूढ़ी ब्याइ। ऐसौ देस रसातल जाय ॥"[2]

§२३१—जेठ की कड़ी धूप में वायु के चलने से जो कुछ काँपता हुआ-सा दिखाई पड़ता है, उसे **बिलइया-लोटन, बिलइया-नाच** या **झाइँन** कहते हैं। चिलचिलाती कड़ी धूप में सफेद पटपरी का रेत दूर से जब पानी-सा दिखाई देता है, तो उसे **औचक** या **पंडवारी** कहते हैं। ये दोनों शब्द सं० 'मृगमरीचिका' के लिए प्रयुक्त होते हैं। जेठ में यदि जाड़ा पड़े तो खेती की हानि होगी, यह किसान का विश्वास है। इसके विषय में लोकोक्ति भी प्रसिद्ध है—

"माह में गर्मी जेठ में जाड़। घाघ कहैं अब होइ उजाड़ ॥"[3]

गर्मियों के दिनों में यदि आकाश में बादल छाये हुए हों, लेकिन धूप भी हो, तो उस धूप को **बदरौटी घाम** (बादलोंवाली धूप) कहते हैं। यह धूप दो-एक घण्टे में ही किसान को परेशान कर देती है। उसके पौहौं (पशु) को भी बड़ी **औकली** (आकुलता) हो जाती है। कहावत है—

"काँटौ बुरौ करील कौ, औ बदरौटी घाम।
सौत बुरी है चून की, अरु साझे कौ काम ॥"[4]

बदरौटी घाम निकल रही हो लेकिन हवा बन्द हो, तो उस वातावरण को **उमस** (सं० उष्मा ऊष्मा) कहते हैं। उमस के बाद मेह पड़ता है—

"उमस और बादर कौ घमसा। कहै भड्डरी पानी बरसा ॥"[5]

जेठ की कड़ाके की धूप में दोपहर का समय **टीकाटीक घौपरी** या **चील-अंडिया दुपहरी** कहाता है। कड़ाके की धूप की तेज़ी बताने के लिए कहा जाता है कि—इतनी तेज धूप है कि चील अंडा छोड़ रही है।

§२३२—यदि कड़ाके की धूप चटक रही हो, लेकिन हवा बिलकुल बन्द हो, तो उस गर्मी के वातावरण को **घमसा** या **घमका** (अनू० में) कहते हैं। धूप के समय बादलों की यदि साया कुछ समय के लिए हो जाय, तो उसको **छाँह** और पेड़ों की साया को **सीरक** कहते हैं। भाइटों (गर्मी) और चौमासों के सम्बन्ध में लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—

"भाइटनु में तीन दुखारी। मोरपपइया उपासवारी ॥"[6]

* * *

---

[1] 'नैन चुवहिं जस महवट नीरू।' [सं० माघवृष्टि > माहवट्टि > महवट]
—रामचन्द्र शुक्ल (सम्पादक) : जायसी-ग्रन्थावली, पद्मावत, काशी ना० प्र० सभा, ३०।१।५

[2] यदि अगहन में वर्षा हो और बुड्ढी स्त्री के सन्तान होती हो, तो वह देश रसातल को चला जायगा।

[3] यदि माह में गर्मी पड़े और जेठ में जाड़ा पड़े तो उजाड़ होगा, अर्थात् वर्षा न होगी; ऐसा घाघ कहते हैं।

[4] बदरौटी घाम (बादलवाली धूप) और करील (टेंटी नाम की झाड़ी) का काँटा बहुत बुरे होते हैं। साझे का काम भी अच्छा नहीं होता और सौत (सपत्नी) आटे की भी दुःखदायिनी होती है।

[5] यदि बादल की घमस के साथ-साथ उमस (गर्मी) भी खूब हो, तो मेह अवश्य बरसता है; ऐसा भड्डरी कहते हैं।

[6] मोर, पपीहा और उपवास (व्रत) रखनेवाली स्त्रियाँ गर्मियों के दिनों में दुःखी रहती हैं।

अध्याय ४

लोकोक्तियाँ

§२३३—गर्मी और जाड़े से सम्बन्धित लोकोक्तियाँ :—

(अ)

अगैन माहौट राम की, जौ मिलि जाय पहले पाख ॥१॥

अर्थ—यदि अगहन के कृष्ण-पक्ष में माहौट (जाड़े की वर्षा) हो जाय तो खेती पूरी तरह से फूलती-फलती है ॥१॥

(क)

काँटौ बुरौ करील कौ, और बदरौटी घाम ।
सौति बुरी है चून की, औ साझे कौ काम ॥२॥

अर्थ—करील (टेंटी का पेड़) का काँटा और बादलवाली धूप बड़ी कष्टप्रद होती है । सौत (सपत्नी) आटे की भी बुरी है और उसी प्रकार साझेदारी का काम भी बुरा है ॥२॥

(ध)

धन के पन्द्रह मकर पचीस । चिल्ला जाड़े दिन चालीस ॥३॥

अर्थ—धनराशि के पन्द्रह दिन और मकर के पच्चीस दिन मिलाकर जो चालीस दिन होते हैं, उतने दिन चिल्ला जाड़े पड़ते हैं ॥३॥

(म)

माह चिलाचिल जाड़े । फागुन में रसिया ठाड़े ॥४॥

अर्थ—माह के महीने में बड़े जोर का जाड़ा पड़ता है और फागुन में आनन्द का गुलाबी जाड़ा पड़ता है । उन दिनों रसिया गानेवाले रसिया गाते हैं ॥४॥

माह, दाह ॥५॥

अर्थ—माघ मास में आग जलाकर के ही शरीर की रक्षा की जाती है ॥५॥

माह मास जौ परै न सीत । मँहगौ नाजु जानियौ मीत ॥६॥

अर्थ—यदि माघ मास में शीत नहीं पड़ा, तो हे मित्र ! समझ लो कि अनाज बहुत तेज़ बिकेगा, अर्थात् जौ, गेहूँ, चना आदि कम होंगे ॥६॥

§२३४—हवा सम्बन्धी लोकोक्तियाँ :—

(अ)

असाढ़ में पूनौ की साँझ । ब्यारि देखियौ अंबर माँझ ॥
उत्तर तें जल बूँदनि परै । मूसे स्यॉपन कूँ औतरै[1] ॥७॥

अर्थ—असाढ़ की पूर्णिमा के सन्ध्या समय आकाश में हवा की पहचान करनी चाहिए । उस समय यदि उत्तर की ओर से हवा चल रही होगी, तो वर्षा बूँदा-बाँदी के रूप में बहुत मामूली-सी होगी । इसके अतिरिक्त चूहे और साँप भी खेतों में अधिक पैदा हो जायँगे ॥७॥

---

[1] किसान आषाढ़ शुक्ला १४ के दिन एक ध्वजा गाड़कर हवा की जाँच करते हैं, और उससे संवत् के अच्छे-बुरे का अनुमान लगाते हैं । असाढ़ सुदी १४ को धजारोपनी या ब्यारपरखनी चौदस कहते हैं । वह ध्वजा एक सप्ताह तक गड़ी रहती है ।

(क)

कुइया मावस मूल को, और चलै चौवाइ।
औंद बाँधियो छानि के, बरखा होइ सवाइ॥८॥

अर्थ—पौष मास की अमावस्या को मूल नक्षत्र हो और चौवाई (चतुर् + वात = चारों ओर की हवा) चले तो अपनी छान के छप्परों के औंद (मुंडेल के छेद में होकर छप्पर में पड़नेवाली मोटी रस्सी) बाँध लो, क्योंकि वर्षा अन्य वर्षों से सवाई होगी॥८॥

(म)

माह उजेरी पंचिमी, चलै उत्तरा बाय।
घाघ कहैं सुनि घाघिनी, भादौं कोरी जाय॥९॥

अर्थ—माघ शुक्ला पंचमी को यदि उत्तर की हवा चले, तो भादों में वर्षा नहीं होगी। ऐसा घाघ अपनी स्त्री से कहते हैं॥९॥

§२३५—वर्षा सम्बन्धी लोकोक्तियाँ :—

(अ)

आठें लगत अगैन कूँ, बादर बिजुरी जोय।
सावन में बरखा घनी, साख सवाई होय॥१०॥

अर्थ—अगहन बदी अष्टमी को यदि बादलों में बिजली चमके तो सावन में खूब वर्षा होती है, और फसल सवाई (पिछली सालों से सवा गुनी बढ़कर) होती है॥१०॥

(उ)

उत्तर घन गरजै नहीं, गरजैं तो मेह परै।
सत पुरिख बोलैं नहीं, बोलैं तो फूल झरैं॥११॥

अर्थ—उत्तर दिशा से उठनेवाले बादल गरजते हैं। नहीं यदि गरजते हैं, तो अवश्य जल बरसाते हैं। सत पुरुष बहुत कम बोलते हैं; लेकिन जब बोलते हैं, तो मुख से फूल झड़ते हैं॥११॥

विशेष—उक्त लोकोक्ति निम्नांकित शब्दावली में भी प्रचलित है—

उत्तर घन गरजै नहीं, गरजैं तो भरियों।
धीर पुरुष बोलैं नहीं, बोलैं तो करियों॥१२॥

अर्थ—उत्तर दिशा के बादल गरजते हैं, तो खेतों को भर देते हैं। धीर पुरुष जो कहते हैं, उसे करते भी हैं॥१२॥

उजल कातिक द्वादसी, जो मेघा दरसाहिं।
सोई फाढ़ असाढ़ में, गरजैं औ बरसाहिं॥१३॥

अर्थ—कार्तिक शुक्ला द्वादशी को जो बादल दिखाई दे जाते हैं, वे ही आगामी असाढ़ में आकर गरजते हैं और बरसते हैं। अर्थात् यदि कार्तिक में शुक्ल पक्ष की द्वादशी को आकाश में बादल घिर आवें तो असाढ़ में अच्छी वर्षा का लक्षण माना जाता है॥१३॥

उलटी गिरगिट और गवरिनौं चढ़ै बिरछ की ओर।
बरखा होय समन्द लौं, होवै दादुर सोर॥१४॥

अर्थ—यदि गिरगिट (गिरगिटा) और गौरैया पेड़ पर उलटी चढ़ती हुई दिखाई दे जावें, तो वर्षा अच्छी होगी, चारों ओर पानी और मेंढक नाच और आनन्द से बोलेंगे॥१४॥

(क)

कलसा में पानी भरौ, न्हाइ चिरइया डूबि।
चींटी लै अंडा चलै, बरखा होइ भरपूर ॥१५॥

अर्थ—कलसे के पानी में यदि चिड़िया डूबकर नहावे और चींटियाँ मुँह में अंडे लेकर चलती हुई दिखाई दें, तो वर्षा खूब होगी ॥१५॥

कातिक उजरि इकास्सी, बादर बिजुरी जोय।
सगुनी कहें असाढ़ में, बरखा चोखी होय ॥१६॥

अर्थ—कार्तिक शुक्ला एकादशी को यदि बादल हों और बिजली चमके तो आगामी आसाढ़ में खूब वर्षा होगी, ऐसा सगुन विचारनेवाले कहते हैं ॥१६॥

(च)

चंदा पै बैठी जलहली। मेहा बरसै, खेती फली ॥१७॥

अर्थ—यदि चंद्रमा के चारों ओर जलहली (सफेद घेरा) हो, तो असाढ़ मास में वर्षा होती है, और खेती फलती है ॥१७॥

चढ़ि ढेला पै चील जौ बोलै।
गली-गलीनु में पानी डोलै ॥१८॥

अर्थ—ढेले पर बैठकर यदि चील बोलती हुई दिखाई दे, तो इतनी वर्षा होगी कि गलियों में पानी भर जायगा ॥१८॥

(ज)

जेठ उतरते बोलें दादुर। कहें भड्डुरी बरसै बादर ॥१९॥

अर्थ—ज्येष्ठ के शुक्ल पक्ष के अन्तिम दिनों में यदि मेंढक बोलने लगें, तो आगे के महीने में वर्षा अच्छी होगी ॥१९॥

जेठ मास जौ तपै निरासा। तौ जानौं बरसा की आसा ॥२०॥

अर्थ—जेठ के महीने में यदि गर्मी और धूप पूरी तरह से पड़ती रहे तो असाढ़ में वर्षा अवश्य होती है ॥२०॥

जौ चंडौसा चमकैगौ। तौ रेलमपेला बरसैगौ ॥२१॥

—(त० खैर की लोकोक्ति)

अर्थ—यदि चंडौस की दिशा (चंडौस खैर से वायव्य दिशा में है) में बादल चमकें तो वर्षा बड़े जोर की होगी ॥२१॥

जौ बरसैंगी स्वाँति। चरखा चलै न ताँति ॥२२॥

अर्थ—यदि स्वाति नक्षत्र (क्वार मास) के दिनों में बरसा हो जाय, तो कपास को हानि पहुँचती है; क्योंकि उन दिनों बन के पौधे पर पुरी (फूल) आती है। वह वर्षा से गिर जाती है और कपास नहीं आती। अतः घरों में न चरखे चलते हैं और न धुने की ताँति चलती है ॥२२॥

जौ बरसैगौ पूस। आधौ गेहूँ आधौ भूस ॥२३॥

अर्थ—पूस की वर्षा से गेहूँ और भुस में कमी पड़ जाती है ॥२३॥

(प)

परिवा तरै दौज गर्राइ। बासी रोटी न कुत्ता खाइ ॥२४॥

अर्थ—ज्येष्ठ पूरा तप ले तथा असाढ़ की कृष्णपक्षीय प्रतिपदा भी तपे और दूसरे दिन द्वितीया को बादल गरजें, तो संवत् अच्छा होगा। कुत्ते तक ताजी रोटी खायेंगे, बासी को छूवेंगे तक नहीं ॥२४॥

पुरवा पूनों गाजै। तौ दिना बहत्तर बाजै ॥२५॥

अर्थ—पूर्णमासी के दिन यदि पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र हो और बादल गरजें, तो बहत्तर दिन पर्यंत वर्षा होगी ॥२५॥

पूरब बादर पछाँह भान। घाघ कहैं बरसा नियरान ॥२६॥

अर्थ—पूर्व दिशा में बादल हों, लेकिन पश्चिम में सूर्य भी चमक रहा हो, तो वर्षा जल्दी होगी, ऐसा घाघ कहते हैं ॥२६॥

पूस उजेरी सत्तमी, आठैं-नौमी गाज।
सम्मत साल भली बनैं, बनि जायँ बिगरे काज ॥२७॥

अर्थ—यदि पौष मास की शुक्लपक्षीया सप्तमी, अष्टमी और नवमी के दिन बादल गरजें, तो वर्षा अच्छी होगी और बिगड़े हुए कार्य भी बन जायेंगे ॥२७॥

(ब)

बरखै मघा। भूमि अघा ॥२८॥

अर्थ—भादों में मघा नक्षत्र के दिनों में मेह पड़ जाता है, तो पृथ्वी जल से तृप्त हो जाती है ॥२८॥

बानक बिगरी जान दे, बिगरी न चाहिये मूल।
दसो तवा जो तपि लहैं, तौ उपजैं सब तूर ॥२९॥

अर्थ—किसी काम का बानक (शैली) बिगड़ता है, तो कोई बात नहीं; लेकिन मूल नक्षत्र नहीं बिगड़ना चाहिए। जेठ में यदि दस तवाएँ (जेठ में आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, अश्लेषा, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा और स्वाति नाम के दस नक्षत्रों के दिन) तप लें, तो सब फसलें ठीक तरह से उपजेंगी ॥२९॥

बादर बगुली आवैं छेत। बरसा-जल से भरि जावें खेत ॥३०॥

अर्थ—आकाश में बादल हों और सफेद बगुलियाँ उड़ती हुई दिखाई दें तो वर्षा के पानी से खेत भर जायेंगे ॥३०॥

बिन भादों के बरखे। बिना माइ के परसे ॥३१॥

अर्थ—भादों मास की वर्षा के बिना किसान का, और माता के परोसे बिना पुत्र का, पेट नहीं भरता ॥३१॥

(म)

मेहा तो बरसे भले, राम करै सो होय ॥३२॥

अर्थ—बादलों का तो बरसना ही अच्छा होता है। जो भगवान् चाहते हैं, वही होता है ॥३२॥

(र)

रोहिनि बरसै मृग तपै, कछु अद्रा हू जाय।
घाघ कहैं सुन घाघिनी, कुक्कुर भात न खाय ॥३३॥

अर्थ—रोहिणी नक्षत्र बरसे, मृगशिरा नक्षत्र तपे और आर्द्रा नक्षत्र भी कुछ-कुछ बरस जाय तो ऐसी अच्छी पैदावार होगी कि कुत्ते भी भात खाते-खाते ऊब जायेंगे ऐसा कथन घाघ का घाघिनी के प्रति है ॥३३॥

(स)

सब बादर है गये लाल। अब मेह परिंगे हाल ॥३४॥

अर्थ—आकाश में सारे बादल लाल हो गये हैं। इस लक्षण से स्पष्ट है कि मेह जल्दी बरसेगा ॥३४॥

सवेरे कौ मेहु, साँझ तक परै।
साँझ कौ महमानु, टारें ते न टरै ॥३५॥

अर्थ—प्रातःकाल में बादलों से यदि मेह पड़ना आरम्भ हो जाय, तो सन्ध्या तक पड़ता रहेगा। इसी प्रकार संध्या समय का मेहमान घर पर ही रात को रुका रहता है ॥३५॥

सर्व तपै जौ रोहिनी, सर्व तपै जौ मूर।
परिवा तपै जौ जेठ की, उपजैं सातों तूर ॥३६॥

अर्थ—रोहिणी नक्षत्र पूरा तपै, मूल भी पूरा तपै और जेठ की शुक्लपक्षीय प्रतिपदा भी पूरी तपै तो सातों अनाज (गेहूँ, जौ, चना, मटर, अरहर, धान और मसीना) पैदा होते हैं ॥३६॥

साँझ कौ धनुस, सवेरे के मोरा।
जे हैं जर-जंगल के बोरा ॥३७॥

अर्थ—यदि संध्या समय आकाश में धनुष पड़े और प्रातः में मोर बोलने लगें, तो समझ लो कि इतनी वर्षा होगी कि पानी से जंगल डूब जायगा ॥३७॥

सातैं लगते माह की, घन बिजुरी दमकन्त।
चार मास पानी परै, सोच करौ मति कंथ ॥३८॥

अर्थ—माघ कृष्णा सप्तमी को यदि बिजली चमके तो चार महीने खूब पानी बरसेगा। हे कान्त! चिन्ता मत करो ॥३८॥

सावन उतरत पंचिमी, जौ ढकि ऊवै भान।
बरसा तब तक होयगी, जब तक देव-उठान ॥३९॥

अर्थ—यदि श्रावण शुक्ला पंचमी के दिन सूर्य बादलों में ढका हुआ उदय हो, तो कातिक के देवठान तक वर्षा होगी ॥३९॥

सावन परिवा अँधरी, उवत न दीखै भानु।
चारि मास पानी परै, जाकौ है परमानु ॥४०॥

अर्थ—श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को यदि सूर्य बादलों के कारण उदित होता हुआ दिखाई न दे, तो यह प्रमाण है कि चार महीने वर्षा होगी ॥४०॥

सावन पहली चौथि कूँ, जौ मेघा बरसाहिं।
कंथ जानियौ सौ लिखि, सोनो भरि-भरि लाहिं ॥४१॥

अर्थ—यदि सावन बदी चतुर्थी को मेह पड़ जाय, तो फसल इतनी अधिक और बढ़िया होगी कि हे कान्त! किसान खेतों में से सोना अवश्य ही भर-भरकर लायेंगे ॥४१॥

प्रकरण ६

कृषि तथा कृषक से सम्बन्धित पशु

(१०) हटुआ—जाँघ (टाँग के ऊपरी भाग में पीछे की ओर) में पीछे की ओर निकली हुई हड्डी हटुआ कहाती है। यह बगुला और सारस आदि पक्षियों की जाँघों में भी होती है। श्रीहर्ष ने 'हटुआ' के लिए 'ऊर्ध्वंग जंघ' शब्द लिखा है।[1]

(११) बजनखुरी—ये बैल के प्रत्येक पाँव में दो दो होती हैं।

(१२) पौंचिया—मोनिये की भाँति का वह गद्देदार भाग जो अगले दोनों पाँवों में होता है, पौंचिया कहाता है।

(१३) खुर (सं० क्षुर)—खुर के आगे के भाग का ऊपरी खण्ड जो पौंचिये के आगे की ओर होता है, गावची कहाता है। यह खुर का एक अंग ही है।

(१४) परिया—टाँग का मध्य भाग जो कुछ ऊपर उठा हुआ-सा रहता है, परिया (घुँटना) कहाता है।

(१५) पसुरियाँ—बैल के पेट पर धनुष के आकार की हड्डियाँ होती हैं, जिन्हें पसुरियाँ कहते हैं (सं० पर्शुका, सं० पार्शुका = पसुली)।

(१६) टँटुआ—मुँह के नीचे गले के ऊपरी भाग को टँटुआ कहते हैं।

(१७) पंखा—पसुरियों से आगे का भाग पंखा कहाता है।

(१८) ललरी—गले के नीचे लटकनेवाली खाल को गलथनी या ललरी कहते हैं। यह अनू० में 'झालर' भी कहाती है।

खुरों के निशान, जो धरती पर बन जाते हैं, खोज (सं० खोज>खोज्ज>खोज) कहाते हैं। बैल को जब कोई चुरा ले जाता है, तब किसान या खोजा (खोजनेवाला) बैल के खोज देखकर ही उसकी टोह (=पता) मिलाता है। बिजार और बैल के सम्बन्ध में प्रचलित है—"दद्द् बने क्यों ? बिजार हैं। गोबर क्यों कर रहे ? गऊ के जाये हैं।"[2]

§२३६—स्थान और जाति (नस्ल) के विचार से बैलों के नाम—कोल जनपद में जाति और स्थान के विचार से जितनी तरह के बैल पाये जाते हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) मैरीगढ़िया, (२) फिनवारिया, (३) पुष्करिया, (४) थापरी, (५) नगौड़िया, (६) चक्खला, (७) फोसिया, (८) हरियानी, (९) जमुनियाँ, (१०) पाकड़ा, (११) मेरठिया, (१२) बटेसुरिया, (१३) पछइयाँ, (१४) पुरबिया, (१५) करौलिया, (१६) नटिया, (१७) हिसारी और (१८) देसी।

(१) मैरीगढ़ परगना उत्तर प्रदेश के किसी जिले में है। मैरीगढ़िये (मैरीगढ़ का बैल) की नस्ल वहीं अधिक पायी जाती है। ये बैल छोटे और सँकरे (सं० संकीर्ण) मुँह के होते हैं। इनके सींग (सं० शृंग) ऊँचाई में २४ अंगुल से ३६ अंगुल तक होते हैं। इस जाति का बैल चलने में अच्छा नहीं होता, क्योंकि उसके कान लम्बे और मतान (सं० मूत्रस्थान) ढीला होता है; अतः उसे ढिल्लमुतान (सं० शिथिल-मूत्रस्थान) भी कहते हैं। प्रसिद्ध है—

'ढिल्ल मुतान, बड़े-बड़े कान। चलैं तौ चलैं, नहिं तौ देइ प्रान।'[3]

मैरीगढ़ियों में भी वैसे ही लच्छिन (सं० लक्षण) मिलते हैं—

---

[1] "पश्चोत्थितोर्ध्वंगजङ्घ पश्चाद् ग्रन्थ"—श्रीहर्ष : नैषध, ३१३.

[2] दद्द् बने क्यों हो ? मोंड़ होने के कारण। गोबर क्यों करते हो ? गो-पुत्र हैं अर्थात् भोले-भाले बैल हैं। जो व्यक्ति पहली दशा में हेकड़ (अभिमानी, घमण्डी) बनता है और फिर दूसरी दशा में दुर्बल या विनम्र बन जाता है, तो उसके लिए यह उक्ति कही जाती है।

[3] ढीले मुतान और बड़े कानोंवाला बैल हिरनी में चल जाए तो चल जाए, नहीं तो मरा हुआ-सा होकर धरती पर लेट जाता है।

"जाके लम्बे-लम्बे, कान। जाकौ ढीलौ है मुतान।
हर के देखें भाजें प्रान। ताकूँ खैरीगढ़िया जान॥"[1]

(२) **किनवारिया** (केन = एक नदी) बैल की नसल बुंदेलखण्ड के बाँदा जिले में केन नदी के आस-पास पायी जाती है। यह बैल ऊँचाई में १२-१४ मुट्ठियों का होता है।

(३) अजमेर के पास पुष्कर एक स्थान है। वहाँ **पुस्करिया या पुस्करी** (सं० पुष्करिन्) बैल अधिक होते हैं। ये बहुत ऊँचे और देह में **जबर** (फ़ा० ज़बर = बलवान्) होते हैं। ऊँचाई १८ मुट्ठियों से कम नहीं होती। पुस्करिया वास्तव में 'धुरंधर' (धौरेय धुरीणाः स धुरंधराः—अमर० २।६।६५) है। इस कसीले और पानीदार बैल को देखकर मृच्छकटिककार के शब्दों में यह कहना पड़ता है कि बैल का कार्य उसकी आकृति के ही अनुसार होता है।[2]

(४) **थापरी** (थापरकर स्थान का) बैल की नस्ल कच्छ, जोधपुर और जैसलमेर में पायी जाती है। इस नस्ल की गायें दुधार होती हैं, और बैल भी **मातवर** (अ० मौतबिर = भरोसा करने योग्य) और **नामी** (नामवाला, बढ़िया) होता है।

(५) नागौड़ का बैल **नगौड़िया** कहाता है। इसे **पर्वतसरी** भी कहते हैं। पर्वतसर में इनकी **पैंट** (सं० पण्यस्थ) लगती है। इसका **माथा** (सं० मस्तक>मत्थअ>माथा) चपटा; खाल पतली; और **गलथनी** (गले के नीचे लटकती हुई खाल) कम चौड़ी होती है। ललरी को ही संस्कृत में 'सास्ना' और 'गलकम्बल' (अमर० २।६।६३) कहते हैं। नागौड़िया बड़ा **सोंहता** (शोभित) और नामी होता है और चाल में **तत्ता** (सं० तप्त = तेज़) देखा गया है।

(६) चम्बल नदी के खादर में **चम्बला बैल** पाया जाता है। इसे **खदरिया** भी कहते हैं। यह आकार में **बिचौंदा** (बीच के से शरीर का) होता है।

(७) **कोसिया** को **मेवतिया** भी कहते हैं। यह बैल काफी ऊँचा और मेहनती होता है। इस नस्ल के बैल भारी-भारी **लढ़ियों** (लम्बी बैलगाड़ी) और हलों में जोते जाते हैं। इनका रङ्ग **धौरा** (सं० धवल = सफ़ेद) और माथा कुछ काला होता है। कोसिया बैल अधिकतर अलवर और भरतपुर में पाये जाते हैं। कोसिया की **पसमी** (फा० पश्म) नरम होती है, और माथा उठा हुआ होता है। इसके बड़े-बड़े सींग कुछ पीछे की ओर मुड़े रहते हैं—

"सींग मुड़े माथौ उठौ, म्हौं पै होइ जो गोल।
रूम नरम चंचल करन, सोई बढ़ अनमोल॥"[3]

(८) रोहतक के आस-पास का क्षेत्र हरियाना कहाता है। **हरियानी** बैल वहां की नस्ल है। यह रङ्ग में **धौरा** या **लीला** (सं० नीलक>प्रा० णीलअ>लीला) होता है। यह बैल पानीदार और कसदार होता है—

"बाढ़ौ भलौ बबूर कौ, औ हरियानौ बैल।
खेती दीखै चौगुनी, बैठौ चौसर खेल॥"[4]

---

[1] जिसके कान लम्बे और मुतान ढीला है, तथा जो हल देखते ही प्राण छोड़ देता है; उसे खैरीगढ़िया बैल समझ लेना चाहिए।

[2] "नागेषु गोषु तुरगेषु तथा नरेषु,
नह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम्॥" —मृच्छकटिक, ९।१६

[3] जिसके सींग मुड़े हुए हों, माथा कुछ उठा हुआ हो, मुँह गोल हो, रोम (बाल) नर्म हों और कान चंचल हों; वही बैल बढ़िया होता है।

[4] बबूल की लकड़ी का यदि पटेला है और हरियाने का बैल है, तो तेरी खेती चौगुनी दिखाई देगी। तुझे क्या परवाह, बैठा-बैठा चौसर खेलता रह।

के जबड़े में ८ दाँत जन्म से ही होते हैं, जो **दूध के दाँत** कहाते हैं। जब तक इन आठों दाँतों में से कोई नहीं गिरता और चारे का दाँत नहीं उगता, तब तक उसे **अदन्त** या **औन** (सं०अदत्, अदन्त =सं०अदन्त>अउन>औन) कहते हैं। दूध के दाँत दो-दो के हिसाब से ही गिरते हैं और उनकी जगह चारे के दाँत दो-दो करके ही उगते हैं। चारे के दाँत निकलने के अर्थ में **'दाँतना'** धातु प्रयुक्त होती है। यदि किसी गाय के बछड़े के दाँत एक-एक करके उगें तो वह **बछड़ा** (सं० वत्स+ अ।० प्रत्यय ड़ा>बच्छड़ा>बछड़ा) **असैना** (सं० असहनीय) माना जाता है। **सद्दर** (सं० सप्तदन्त=सप्तदत्>सद्दर =सात दाँतोंवाला बैल) और **नद्दर** (सं० नवदन्त=नौ दाँतोंवाला बैल) असैने माने गये हैं। **छद्दर** (सं० षट्दंत =छः दाँतोंवाला बैल) भी **दोखिल** (दोषयुक्त) कहा गया है--

> "छद्दर कहै मैं आऊँ-जाऊँ। सद्दर कहै गुसइयें खाऊँ।
> नद्दर कहै मैं नौ दिसि धाऊँ। घर कुनबा मिन्तुरऐ खाऊँ॥"[1]

जिस बछड़े के मुँह में चारे के दाँत निकलने आरम्भ हो जाते हैं, उसे **उदन्त** (सं० उद्दन्त) कहते हैं। प्रायः प्रत्येक बछड़ा लगभग दो बरस में **दुदन्ता** (सं० द्विदन्त=दो दाँतोंवाला), तीन बरस में **चौदन्ता** (सं० चतुर्दन्त), साढ़े तीन बरस में **छद्दर** या **छिदन्ता** (सं० षट्दन्त) और चार बरस में **अठदन्ता** (सं० अष्टदन्त) हो जाता है। दुदन्ते बछड़े के **नाथ** (सं० न्यस्तक> णत्थअ>णत्था[2]>नाथ=बैल की नाक में पड़ी हुई रस्सी) डाल दी जाती है; तब वह **नसौता** (सं० नस्योतक) कहाता है। **करुआ सद्दर** (सं० काल+सप्तदन्त) **असगुनी** (सं० अशकुनीय) माना गया है—

> "सात दन्त औदन्त कौ, रंग जौ कारौ होइ।
> भूलि कबहुँ मति लीजियौ, दाम चहैं जौ होइ॥"[3]

नाथ पड़ जाने के उपरान्त चौदन्तै या छिदन्ते बैल को **खेल्टा, खैरा** या **खैला** (सं० उक्षतर>उक्खयर>खइर>खैरा>खैला) कहते हैं। पाणिनि के सूत्र (वत्सोक्षाश्वर्षभेभ्यश्च तनुत्वे अष्टा० ५।३।९१) के आधार पर विदित होता है कि 'वत्सतर' और 'उक्षतर' शब्द अपने पारिभाषिक रूप में उन बैलों के लिए प्रयुक्त होते थे, जो पूर्ण रूप से जवान न हुए हों। जो बैल बुड्ढा हो जाता है, उसके नीचे के जबड़े में से दाँतों के मसूड़ों का मांस निकल जाता है। इस तरह मांस के निकल जाने को **'माँसी देना'** कहते हैं। जो बैल माँसी दे जाता है, वह **'मँसिया'** कहाता है। मँसिया बैल से न गाड़ी खिचती है और न हल। पाणिनि (अष्टा० ५।३।९१) के 'ऋषभतर'[4] की आयु से अलीगढ़ क्षेत्र के **'मँसिया'** नामक बैल की आयु का बहुत-कुछ साम्य है।

किसान बछड़े के लिए प्यार में **'बछरू'** (सं० वत्सरूप>बच्छरूव>बछरूअ>बछरू— हिं० श० नि०, पृ० १०३) और **'बाछा'** (सं० वत्स+क) शब्दों का भी प्रयोग करता है।

गाय का **चुखेटा** चारा नहीं खाता, केवल दूध के सहारे ही रहता है। इसके लिए प्राचीन

---

[1] छः दाँतोंवाला बैल कहता है कि मैं तो आने-जानेवाला हूँ, अर्थात् कहीं ठहरता नहीं हूँ। सात दाँतोंवाला कहता है कि मैं तो मालिक को भी खा जाता हूँ। नौ दाँतवाला नौ दिशाओं में दौड़ता फिरता है और किसान के घर, कुटुम्ब और मित्र तक को खा जाता है।

[2] "णत्था णासारज्जू।" —हेमचन्द्र : देशीनाममाला, वर्ग ४। छं० १७।

[3] यदि काले रंगवाला सात दाँत का बैल हो तो उसे भूलकर भी न लो; चाहे कितने ही कम दामों में क्यों न मिल रहा हो।

[4] "ऋषभो भारस्य वोढा। तस्य तनुत्वं भारोद्वहने मन्दशक्तिता, तद्वांस्तु ऋषभतरः" —सिद्धान्त कौमुदी, तत्वबोधिनी व्याख्या संवलिता, टिप्पणी, पृ० ३१०।

§२४६—आँख, कान और सींग के विचार से बैलों के नाम :—

(१) जिसकी आँखों में गहरा काजल-सा लगा रहता है, उस बैल को **कजरा** कहते हैं। यह पानीदार होता और हल-पैर में प्रायः **आँतरा** (फुर्तीला) देखा गया है। किसान आँतरे बैल को गहककर (प्रेमोल्लास के साथ) पकड़ता है। प्रेम पूर्वक प्राप्ति की इच्छा करने के अर्थ में '**गहकना**' क्रिया प्रचलित है।

"बद्धु खरीदौ काजरौ। रुपया दीजै आगरौ॥[1]

* * *

"कारी आँख काजरा होई। जो माँगै तुम दै देउ सोई॥"[2]

(२) यदि किसी बैल की आँख की पुतली चितवन से खिलाफ दूसरे रुख के कोये में घुस जाती हो तो उसे **ताकी या ताखी** (प्रा० तक्कइ=देखता है) कहते हैं। किसान इसे **असगुनियाँ** (अपशकुनवाला) मानते हैं—

"गिर्रा भैंसा ताखी बैल। नारि चुलबुली छोरा छैल॥
इनते बचतएँ चातुर लोग। राजु छोड़िकैं साधैं जोग॥"[3]

(३) जिस बैल के कान लम्बे-लम्बे होते हैं, वह **लमकना** (सं० लम्ब कर्ण) कहाता है। यह देह का **ढीला** (सं० शिथिल > सिढिल्ल > ढिल्ल > ढीला) होता है। जिस बैल का मुतान (सं० मूत्र-स्थान) अधिक लटका हुआ होता है, वह **ढिल्लमुतान** कहाता है। जहाँ ढीला **मुतान** देह के ढिल्लड़पन का सूचक है, वहीं कसा हुआ छोटा मुतान अर्थात् **हिरन-मुतान** कसीलेपन का द्योतक है। हिरन के-से छोटे मुतान का बैल **हिन्नमुतान** (सं० हरिणमूत्रस्थान > हिरनमुतान > हिन्नमुतान = हिरनका-सा मुतान) कहाता है। हिन्नमुतान को किसान बार बार देखता है और प्यार से पुचकारते हुए उसकी पीठ पर हाथ फेरता है, लेकिन ढिल्लमुतान की ओर से वह तुरन्त आँखें फेर लेता है—

"जाके लम्बे-लम्बे कान। जाकौ ढीलौ है मुतान॥
छोड़ि छोड़ि रे किसान। नहीं त्यागिदुंगो प्रान॥"[4]

* * *

"हिन्न मुतान और पतरी पूँछ। ताहि कन्थ! लैलेउ बेपूछ॥"[5]

(४) जिस बैल के कान काले होते हैं, वह **कनकरुआ** या **कनकरछौंहा** कहाता है। यह **सगुनी** (सं० शकुनीय) और पानीदार होता है—

"कनकरछौंहा सगुनी जान। जाइ छाँडि मत लीजै आन॥"[6]

---

[1] आगरा (पेशगी) रुपया देकर कजरा बैल खरीदो।

[2] काली आँख का कजरा बैल हो तो बेचनेवाला जितने रुपये माँगता हो, उतने ही रुपये देकर खरीद लो।

[3] खेती के काम में धरती पर गिर जानेवाला भैंसा, ताखी बैल, चंचल स्त्री और छैल लड़का—इन चारों से चतुर लोग बचते रहते हैं। वे इनके सङ्ग से बचने के लिए राज्य छोड़कर योग भी साधते हैं।

[4] लम्बे कान और ढीले मुतानवाला बैल किसान से कहता है कि मुझे जल्दी छोड़ दे नहीं तो मैं प्राण त्याग दूँगा।

[5] जो हिरन का-सा मुतान रखता हो और पूँछ जिसकी पतली हो; हे पति! उसे बिना पूछे खरीद लो।

[6] काले कानवाले बैल को सगुन वाला (शुभ) समझो। इसे छोड़कर दूसरा मत खरीदो।

का रूप मानते हैं। यदि किसी बैल के सींग आगे की ओर माथे पर आकर कुछ-कुछ मिल-से गये हों, तो उसे **म्हौरा** कहते हैं। झौंगे के सींगों की अपेक्षा म्हौरे के सींग कुछ अधिक मुड़े हुए होते हैं। 'मुकटा' और 'म्हौरा' अच्छे बैल होते हैं—

"सिर पै मुकटे, माथनु म्हौरे। इन्हें देखि, मति भूल्यौ रहि रे॥"[1]

"म्हौरे बद्ध कमेरुआ, राखें सदा उमंग।
पात जु खड़कै पेड़ कौ, उड़ैं पवन के संग॥"[2]

(८) जिस बैल के सींग पीछे को जाकर फिर कुछ नीचे को ख़म (टेढ़) खा गये हों, वह **मुराया या मौरिया** कहाता है। यदि मुराये के सींगों की मोड़ कुछ-कुछ कुन्नी भैंस के सींगों की भाँति हो गई हो, तो उस बैल को **ईंडु.रा** कहते हैं, क्योंकि उसके सींगों की बनावट **ईंडु.री** (वै०सं० इण्ड्र = मूँज की रस्सी से बनी हुई वृत्ताकार वस्तु जिसे कहारी सिर पर रखकर फिर ऊपर से घड़ा रख लेती है) की भाँति होती है।

(९) जिसके सींग कानों के ऊपर उगकर सीधे दाँयें-बाँयें धरती के समानान्तर चले गये हों और क्रमशः आगे की ओर पतले भी होते गये हों, उस बैल को **फड्डा** कहते हैं। यदि फड्डे के ढंग के सींग कुछ **पिछमने** (कुछ पीछे के रुख पर) हों, तो वे सींग **छेपरे या छेपड़े** कहाते हैं। उस बैल को **छिपर्रा** कहते हैं।

(१०) जिस बैल के सींग कानों से नीचे की ओर लटके हुए रहते हैं, उसे **मैना** कहते हैं। यदि मैने के-से सींग बीच में कुछ खम खा जायँ और उनकी नोंकें बैल के गालों में गड़ जायँ, तो वह बैल **गुलिया** कहाता है। मैना बढ़िया बैल होता है—

"मैना बैल बड़ौ बलवान। करै छिनक में ठाड़े कान॥"[3]

(११) जिस बैल का एक सींग नोकदार तीर की तरह आगे को ओर एक ऊपर आसमान की ओर रुखवाला होता है, उसे **ढलतरवारो** कहते हैं।

(१२) जिस बैल के सींग मेंढ़ों के सींगों की भाँति मुड़े हुए होते हैं, उसे **मेंढ़ासिंगी** (सं० मेढ्रशृंगी) कहते हैं।

(१३) जिस बैल का एक सींग किसी कारण टूट जाय या गिर जाय, तो उसे '**डूँड़ा**' कहते हैं। यदि जन्म से ही एक सींग न उगा हो, तो वह बैल **जनम डूँड़ा** कहाता है। जनम डूँड़े के सींग को देखकर माघ द्वारा वर्णित यमराज के भैंसे की याद आ जाती है, जिसे रावण ने इकसिंगा बना दिया है।[4] **जनम डूँड़ा** सूरत में भी अच्छा नहीं लगता और असगुनियाँ भी होता है। वास्तव में बैल की शोभा तो सींगों से ही है—

---

[1] जिन बैलों के सिर पर सींगों से मुकुट बन गया हो और माथे पर सींग मुड़े हुए हों तो उन्हें देखकर भूल में मत रह, तुरन्त खरीद ले।

[2] म्हौरे बैल कमेरे (काम करनेवाले) होते हैं और सदा उमंग से भरे रहते हैं। यदि पेड़ के पत्ते की खड़कन सुन लें तो वे हवा के साथ उड़ते हैं।

[3] मैना बलवान् बैल है। वह क्षण भर में कान खड़े कर लेता है। बैल के खड़े हुए कान उसकी स्फूर्ति का चिह्न हैं।

[4] "परेतभर्तुर्महिषोऽमुना धनुर्विधातुमुत्खातविषाणमण्डलः।
हृतेऽपि भारे महतस्त्रपाभराद्वाह दुःखेन भृशानतं शिरः॥"
—माघ : शिशुपालवध, सर्ग० १, छन्द ५७।

फ़ा० सीना) कहते हैं। यह काम में **बज्जा** (ख़राब) होता है, क्योंकि चलने में **ठोकर** खा जाता है।

जिसकी देह भारी और टाँगें छोटी हों, उसे **सुअर गोड़ा** सं० शूकर + हिं० गोड़) कहते हैं। लम्बी टाँगोंवाला बैल **लमटँगा** कहाता है। सुअर गोड़े के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

"न्हैंनी पसमी पतरपूँछिया, सूअर गोड़ा पावै।
हीला हुज्जत करै न कबहूँ, म्हों माँगे दे आवै॥"[1]

§२४५—जो बैल चलने के समय धरती पर खुर घिसता चले, वह **खुरघिसा**, जिसके खुरों की अगाई (अग्रभाग) खुरपे की शक्ल की-सी हो, वह **खुरपौलिया**; जिसके खुर गधे-के खुर की भाँति हों, वह **खरखुरा**; जिसके खुरों के बीच में काफी जगह हो, उसे **खुरफाट** और जिसकी टाँग के एक खुर के दोनों भागों में से एक भाग कटा हुआ हो, उसे **खुरकटा** कहते हैं। जिस बैल के खुर चलते समय मुँह खोलकर अधिक फैल जाते हैं, वह **खुरचला** कहाता है। **खुरचले** के खुर धरती पर पाँव रखते ही चौड़ जाते हैं और उठाते ही खुरों के दोनों भाग आपस में मिल जाते हैं। ऐसे बैल **पोच** (फा० फ़ूच = कमज़ोर) और **बज्जे** (ख़राब) माने गये हैं—

"दाँत गिरे और खुर घिसे, पींठ बोझ नहीं लेइ।
ऐसे बज्जे बैल कूँ, कौन बाँधि भुस देइ॥"[2]

मुराये अर्थात् मोंचिये के पास जिसकी टाँगें घूम जाती हों, वह बैल **मोचैल**; और चलने में जिसके खुर से खुर लग जाते हों, वह **नेवरा** कहाता है।

§२४६—**रूप और रंग के आधार पर बैलों के नाम**—बैल की पीठ पर जो लम्बी हड्डी होती है, उसे **रीढ़ा** या **बाँस** कहते हैं। जिस बैल का बाँस ऊपर को उभरा हुआ होता है, उसे **बाँसिया** कहते हैं। बाँस का ऊपर निकल आना **बोदगाई** (दुर्बलता) की निशानी है। मांसदार पीठ, जिसमें बाँस नीचे दबा रहता है और पींठ के बीच में लम्बी हालत में गहराई रहती है, **बरारी** कहाती है। बरारीवाला बैल **बरारिया** कहाता है। प्रायः प्रत्येक किसान बाँसिया को छोड़कर पेंठ में **बरारिया** को **गहककर** (उल्लास और प्यार के साथ आगे बढ़कर) पकड़ता है और पीठ थपथपाता है। सूरदास की राधा की पीठ जो बरारिया बैल की-सी (केले के सीधे पत्ते की भाँति) थी, वह वियोग में बाँसिया बैल की-सी (केले के उल्टे पत्ते के समान) हो गई थी।[3]

यदि पीठ का रीढ़ा (बाँस) **गुम्मटदार** बनकर एक जगह ऊपर को उठ गया हो, तो उस बैल को **कुबड़ा** (देश० कुब्बड़ > कुबड़ा) कहते हैं।

सामान्यतः प्रत्येक बैल के जितनी **पसुरियाँ** (सं० पर्शुका) होती हैं, उनमें से यदि किसी बैल में एक-दो कम हों तो उसे **अनासू** या **नहमुआ** कहते हैं। **अनासू** (सं० ऊनपार्शुक) **सीरा-धीरा** (सुस्त) होता है और **असैना** (सं० असहनीय) भी माना जाता है।

---

[1] बारीक बालोंवाला और पतली पूँछ का सूअर-गोड़ा बैल अच्छा होता है। यदि सूअर-गोड़ा बैल दीख पड़े तो खरीदनेवाले को चाहिए कि वह झंझट न करे, बल्कि मुँह माँगे दाम देकर उसे तुरन्त खरीद ले।

[2] जिस बैल के दाँत गिर गये हों, खुर घिस गये हों और जो पीठ पर बोझा न ढो सकता हो; ऐसे दुर्बल बैल को कौन खूँटे से बाँधेगा और भुस देगा अर्थात् कोई नहीं।

[3] "कदलीदल-सी पीठि मनोहर, मानौ उलटि ठई।"
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।३४०४

फ़ा० सीना) कहते हैं। यह काम में **वज्जा** (खराब) होता है, क्योंकि चलने में **ठोकर** खा जाता है।

जिसकी देह भारी और टाँगें छोटी हों, उसे **सुअर गोड़ा** सं०शूकर + हिं० गोड़) कहते हैं। लम्बी टाँगोंवाला बैल **लमटँगा** कहाता है। सुअर गोड़े के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

"न्हैंनी पसमी पतरपूँछिया, सूअर गोड़ा पावै।
हीला हुज्जत करै न कबहूँ, म्हौं माँगे दे आवै॥"[1]

§२४५—जो बैल चलने के समय धरती पर खुर घिसता चले, वह **खुरघिसा**, जिसके खुरों की अगाई (अग्रभाग) खुरपे की शक्ल की-सी हो, वह **खुरपौलिया**; जिसके खुर गधे-के खुर की भाँति हों, वह **खरखुरा**; जिसके खुरों के बीच में काफी जगह हो, उसे **खुरफाट** और जिसकी टाँग के एक खुर के दोनों भागों में से एक भाग कटा हुआ हो, उसे **खुरकटा** कहते हैं। जिस बैल के खुर चलते समय मुँह खोलकर अधिक फैल जाते हैं, वह **खुरचला** कहाता है। **खुरचले** के खुर धरती पर पाँव रखते ही चौड़ जाते हैं और उठाते ही खुरों के दोनों भाग आपस में मिल जाते हैं। ऐसे बैल **पोच** (फा० फ़ूच = कमज़ोर) और **वज्जे** (खराब) माने गये हैं—

"दाँत गिरे और खुर घिसे, पींठ बोझ नहीं लेइ।
ऐसे बज्जे बैल कूँ, कौन बाँधि भुस देइ॥"[2]

मुराये अर्थात् मोचिये के पास जिसकी टाँगे घूम जाती हों, वह बैल **मोचैल**; और चलने में जिसके खुर से खुर लग जाते हों, वह **नेवरा** कहाता है।

§२४६—**रूप और रंग के आधार पर बैलों के नाम**—बैल की पीठ पर जो लम्बी हड्डी होती है, उसे **रीढ़ा** या **बाँस** कहते हैं। जिस बैल का बाँस ऊपर को उभरा हुआ होता है, उसे **बाँसिया** कहते हैं। बाँस का ऊपर निकल आना **बोदगाई** (दुर्बलता) की निशानी है। मांसदार पीठ, जिसमें बाँस नीचे दबा रहता है और पींठ के बीच में लम्बी हालत में गहराई रहती है, **बरारी** कहाती है। बरारीवाला बैल **बरारिया** कहाता है। प्रायः प्रत्येक किसान बाँसिया को छोड़कर पैंठ में **बरारिया** को **गहककर** (उल्लास और प्यार के साथ आगे बढ़कर) पकड़ता है और पीठ थपथपाता है। सूरदास की राधा की पीठ जो बरारिया बैल की-सी (केले के सीधे पत्ते की भाँति) थी, वह वियोग में बाँसिया बैल की-सी (केले के उल्टे पत्ते के समान) हो गई थी।[3]

यदि पीठ का रीढ़ा (बाँस) **गुम्मटदार** बनकर एक जगह ऊपर को उठ गया हो, तो उस बैल को **कुबड़ा** (देश० कुब्बड़ > कुबड़ा) कहते हैं।

सामान्यतः प्रत्येक बैल के जितनी **पसुरियाँ** (सं० पर्शुका) होती हैं, उनमें से यदि किसी बैल में एक-दो कम हों तो उसे **अनासू** या **नहसुआ** कहते हैं। **अनासू** (सं० ऊनपार्शुक) **सीरा-धीरा** (सुस्त) होता है और **असँना** (सं० असहनीय) भी माना जाता है।

---

[1] बारीक बालोंवाला और पतली पूँछ का सूअर-गोड़ा बैल अच्छा होता है। यदि सूअर-गोड़ा बैल दीख पड़े तो खरीदनेवाले को चाहिए कि वह झंझट न करे, बल्कि मुँह माँगे दाम देकर उसे तुरन्त खरीद ले।

[2] जिस बैल के दाँत गिर गये हों, खुर घिस गये हों और जो पीठ पर बोझा न ढो सकता हो; ऐसे दुर्बल बैल को कौन खूँटे से बाँधेगा और भुस देगा अर्थात् कोई नहीं।

[3] "कदलीदल-सी पीठि मनोहर, मानौ उलटि ठई।"
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।३४०४

फ़ा० सीना) कहते हैं। यह काम में **बज्जा** (ख़राब) होता है, क्योंकि चलने में **ठोकर** खा जाता है।

जिसकी देह भारी और टाँगें छोटी हों, उसे **सुअर गोड़ा** सं०शूकर + हिं० गोड़) कहते हैं। लम्बी टाँगोंवाला बैल **लमटँगा** कहाता है। सुअर गोड़े के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

"न्हैंनी पसमी पतरपूँछिया, सूअर गोड़ा पावै।
हीला हुज्जत करै न कबहूँ, म्हौं माँगे दे आवै॥"[1]

§२४५—जो बैल चलने के समय धरती पर खुर घिसता चले, वह **खुरघिसा**, जिसके खुरों की अगाई (अग्रभाग) खुरपे की शक्ल की-सी हो, वह **खुरपौलिया**; जिसके खुर गधे-के खुर की भाँति हों, वह **खरखुरा**; जिसके खुरों के बीच में काफी जगह हो, उसे **खुरफाट** और जिसकी टाँग के एक खुर के दोनों भागों में से एक भाग कटा हुआ हो, उसे **खुरकटा** कहते हैं। जिस बैल के खुर चलते समय मुँह खोलकर अधिक फैल जाते हैं, वह **खुरचला** कहाता है। **खुरचले** के खुर धरती पर पाँव रखते ही चौड़ जाते हैं और उठाते ही खुरों के दोनों भाग आपस में मिल जाते हैं। ऐसे बैल **पोच** (फ़ा० फ़ूच = कमज़ोर) और **बज्जे** (खराब) माने गये हैं—

"दाँत गिरे और खुर घिसे, पींठ बोझ नहीं लेइ।
ऐसे बज्जे बैल कूँ, कौन बाँधि भुस देइ॥"[2]

मुराये अर्थात् मोचिये के पास जिसकी टाँगे घूम जाती हों, वह बैल **मोचैल**; और चलने में जिसके खुर से खुर लग जाते हों, वह **नेवरा** कहाता है।

§२४६—**रूप और रंग के आधार पर बैलों के नाम**—बैल की पीठ पर जो लम्बी हड्डी होती है, उसे **रीढ़ा** या **बाँस** कहते हैं। जिस बैल का बाँस ऊपर को उभरा हुआ होता हे, उसे **बाँसिया** कहते हैं। बाँस का ऊपर निकल आना **बोदगाई** (दुर्बलता) की निशानी है। मांसदार पीठ, जिसमें बाँस नीचे दबा रहता है और पींठ के बीच में लम्बी हालत में गहराई रहती है, **बरारी** कहाती है। बरारीवाला बैल **बरारिया** कहाता है। प्रायः प्रत्येक किसान बाँसिया को छोड़कर पैंठ में **बरारिया** को **गहककर** (उल्लास और प्यार के साथ आगे बढ़कर) पकड़ता है और पींठ थपथपाता है। सूरदास की राधा की पीठ जो बरारिया बैल की-सी (केले के सीधे पत्ते की भाँति) थी, वह वियोग में बाँसिया बैल की-सी (केले के उल्टे पत्ते के समान) हो गई थी।[3]

यदि पीठ का रीढ़ा (बाँस) **गुम्मटदार** बनकर एक जगह ऊपर को उठ गया हो, तो उस बैल को **कुबड़ा** (देश० कुब्बड़ > कुबड़ा) कहते हैं।

सामान्यतः प्रत्येक बैल के जितनी **पसुरियाँ** (सं० पर्शुका) होती हैं, उनमें से यदि किसी बैल में एक-दो कम हों तो उसे **अनासू** या **नहसुआ** कहते हैं। **अनासू** (सं० ऊनपार्शुक) **सीरा-धीरा** (सुस्त) होता है और **असैना** (सं० असहनीय) भी माना जाता है।

---

[1] बारीक बालोंवाला और पतली पूँछ का सूअर-गोड़ा बैल अच्छा होता है। यदि सूअर-गोड़ा बैल दीख पड़े तो खरीदनेवाले को चाहिए कि वह झंझट न करे, बल्कि मुँह माँगे दाम देकर उसे तुरन्त खरीद ले।

[2] जिस बैल के दाँत गिर गये हों, खुर घिस गये हों और जो पीठ पर बोझा न ढो सकता हो; ऐसे दुर्बल बैल को कौन खूटे से बाँधेगा और भुस देगा अर्थात् कोई नहीं।

[3] "कदलीदल-सी पीठि मनोहर, मानौ उलटि ठई।"
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।३४०४

स्वभाव का चंचल और तेज़ बैल **तत्तौ, विर्रा, चमकनौ** और **करुऔ** नाम से पुकारा जाता है।

जो बैल खूब खाता है लेकिन काम नहीं करता, वह **मच्चर** कहाता है। यह **गरिआ** का ही भाई-बन्द है। मच्चर जैसा एक बैल '**खद्दर**' होता है, जो खाता अधिक है, लेकिन ताक़त कम रखता है।

पास में आदमी को देखकर लात फेंकनेवाला बैल **लतखना**, सींग मारनेवाला **मरखना**, और सिर को आगे करके धक्का देनेवाला **भौरा** कहाता है। सिर से धक्का देकर बैल जब किसी को मारता है, तब '**भौरना**' क्रिया प्रयुक्त होती है।

मरखना बैल **हत्या-खोरी** (लड़ाई-झगड़ा) की जड़ है—

"बद्धु मरखनौ चमकनि जोय। ता घर उरहन नित उठि होय ॥"[1]

जो बैल घाम (सं० घर्म > घम्म > घाम) में **हौंक** जाता है (जोर से साँस का चलना '**हौंकना**' कहाता है) वह **तैपल** कहाता है। जो बैल अपनी जीभ बाहर निकालकर उसे साँप की भाँति प्रायः हिलाता रहता है, वह **साँपिया** कहाता है और उसकी जीभ पर साँपिन मानी जाती है। ऊपर-नीचे जीभ हिलाना '**लफलफाना**' या '**लपलपाना**' कहाता है।

जो बैल खूँटे पर बँधा हुआ हिलता ही रहता है, वह **हल्लना** कहाता है। हल्लना जिसके यहाँ होता है, उसकी **अनैठ** (सं० अनिष्ट) करता है। एक रोग '**सिन्न**' होता है, जिसमें बैल का पाँव नहीं उठता बल्कि वह उसे ज़मीन पर ही **कढ़ेरता** (= खचेड़ता) है। सिन्न रोग वाले बैल को **सिन्नैला** कहते हैं।

बैल कैसा ही क्यों न हो, भैंसे से वह हर हालत में अच्छा ही माना गया है। लोकोक्ति है—

"बैल नौ कौ। भैंसा सौ कौ ॥"[2]

छठ (सं० षष्ठी), **आठैं** (सं० अष्टमी) और **चौदस** (सं० चतुर्दशी) को बैल खरीदकर घर लाना अशुभ माना गया है—

"छठि आठें चौदसि चौपायौ। बदिकें नेटि करै घर आयौ ॥"[3]

§२४६—**बैलों के रोगों के नाम**— मनुष्य के गले में एक **कौड़ी** (सं० कपर्दिका) के समान छोटी-सी हड्डी उठी रहती है, उसे टेटुआ कहते हैं। ठीक इसी तरह बैल, गाय और भैंस आदि पशुओं के गले में एक हड्डी होती है। उसे **केसिया** कहते हैं। जब **केसिया** नाम की हड्डी पर सूजन आ जाती है तो उस रोग को '**हेलुआ**' कहते हैं।

जब बैल के खुरों के बीच में घाव हो जाते हैं, तब वह रोग **पका** कहाता है। पका में आया हुआ बैल जब चल नहीं सकता, तब वह **अपाहज** (सं० अपाधेय) कहाता है। **अपाहज** को **कजैल** या **कजाहल** भी कहते हैं। यदि बैल की टाँगों के जोड़ों में से खून निकलने लगे, तो उसे '**मूँज फूटना**' कहते हैं। बैल की एक टाँग मुड़ जाय और ज़मीन पर न रखी जा सके, तो उस रोग को **इकटंगा** कहते

---

[1] जिस घर में मरखना बैल है और चटक-मटक की स्त्री है, उसमें सदा उलाहने ही आते रहते हैं।

[2] बैल नौ रुपये का भी अच्छा; लेकिन सौ रुपयों में खरीदा हुआ बढ़िया भैंसा खेती के लिए अच्छा नहीं।

[3] यदि घर में चौपाया षष्ठी, अष्टमी और चतुर्दशी को आवे, तो अवश्य ही अनिष्ट करता है।

है। ऐसा ही रोग चारों टाँगों में हो जाय तो **चौरंगा** कहलाता है। जब बैल की देह में पानी हो जाता है और दर्द से वह रँभाने लगता है, तब उसे **बेदनी रोग** कहते हैं। गले में एक लम्बा फोड़ा-सा उठ आता है, जिसे **विलैना** कहते हैं। **सेंदुकी** रोग में गुदा भाग पर एक **गट्टनसी**-सी उठ आती है। **नस्का या टैना** रोग में बैल की टांग की कोई नस उतर जाती है। **चिरइयाचिस** रोग में बैल के शरीर पर चकत्ते पड़ जाते हैं किसानों का कहना है कि **चिरइयाचिस** बैल के शरीर पर एक विशेष प्रकार की चिड़िया के बैठ जाने से होता है। जब किसी बैल का पेट फूलकर [illegible]-सा हो जाता है, तब उसे 'अफरा' कहते हैं। संभवतः 'छपका' रोग में बैल की देह पर चकत्ते पड़ जाते हैं। **बंधा** रोग में बैल का गोबर और पेशाब बंद हो जाता है।

जब शरीर में गाँठें हो जायँ तो वह रोग **गुम्मरि**, पूरा शरीर सड़ जाय तो **सुजैका**, गला रूँध जानेवाला रोग **बिलइया** कहलाता है। जिस रोग में बैल के मुँह से घर्र-घर्र की आवाज़ निकले, तो वह **घर्रआ**, देह अकड़ जाय तो **अकड़ा**, और नाक के नथुओं से पानी-सा झड़ने लगे तो वह **कुम्हँड़ी** रोग कहलाता है। **मकोड़** रोग से बैल का एक सींग खोखला होकर गिर जाता है; तब वह **ढूँड़ा** कहलाने लगता है। **अमेंड़ी** रोग में जब बैल की कनपटी और कानों की जड़ें सड़ जाती हैं, उसका चारा दाना छूट जाता है और उससे पानी भी नहीं पिया जाता, तब उस रोग को **'आरजा'** (फ़ा० आज़ार) कहते हैं। किसान बैल के न चलने पर दो वाक्यों का प्रयोग बहुधा किया करता है—(१) **'अरे तोमें आजार है हूँ।'** (२) **'अरे तोइ आरजा सतावै।'**

आरजा रोग में बैल को ठीक करने के लिए एक विशेष प्रकार का **काढ़ा** या **मसाला** आठ दिन तक दिया जाता है, उस मसाले को **अठरोजा** (सं० अष्ट + फ़ा० रोज़ = आठ दिन) कहते हैं। आरजा में बैल ऐसा ही **नफसेल** (अ० नफ़्स = दम। [illegible]) हो जाता है, जैसा कि दमे में। **उफठा** का मारा जैसे पेड़ नहीं पनपता; वैसे ही **आरजा** का मारा बैल नहीं **सँभलता**। लोकोक्ति है—

"उफठा उफठु-रेला। और आरजा पौरिदु-रेला ॥"[1]

अधिक बोझा ढोने से बैलों की गर्दन पर सूजन आ जाती है। इस सूजन को **'कँधियाजाना'** कहते हैं; यह एक रोग ही है। यदि कंधे पर **घौंद** (फोड़ा) हो जाय तो वह **'कंध-घौंद'** कहलाता है। कभी-कभी बैल के मुतान में से धीरे झड़ने लगता है; इससे बैल बहुत **बोदा** (कमज़ोर) हो जाता है। इस रोग को **झरौला** या **झरैला** कहते हैं। एक रोग **जहल्बाद** कहलाता है, जिसमें बैल की गर्दन सूज जाती है और इधर-उधर मुड़ती नहीं है।

'गंभा' नाम का एक रोग होता है, जिसमें बैल का पेट फूलकर ढोल-सा हो जाता है। कभी-कभी कमज़ोरी से बैल बहुत [illegible] चौंककर चलने लगता है और वह भी लड़खड़ाकर; इस रोग को **लोहरा** कहते हैं। यदि गोबर में खून आवे और पेट में दर्द हो, तो उस रोग को **मरोरिया** या **पेचिस** कहते हैं। जब बैल के पेट में शूल दर्द होता है, तो उसे **सूल** या **सूला** कहते हैं। [illegible] करने के लिए, [illegible] का **बलगाग** [illegible] है। [illegible] **रोहतान** कहते हैं।

---

[1] उफठा नाम का रोग पेड़ को [illegible] है और आरजा रोग पशुओं को दुर्बल बना देता है।

अध्याय २

दूध देनेवाले पशु

(१) गाय

§२५०—**गाय और उसके अंग**—किसान के घर, **घेर** (वह स्थान जहाँ किसान के पशु बँधते हैं, **घेर** या **नौहरा** कहाता है) और **हार** (जंगल के खेत) में गाय की ही माया है। इसीलिए गइया मइया है। इसके दूध से किसान पलता है और इसी के बछड़े किसान को पैसा देते हैं। इसी से वे बछड़े बौहरे कहाते हैं—

गाय
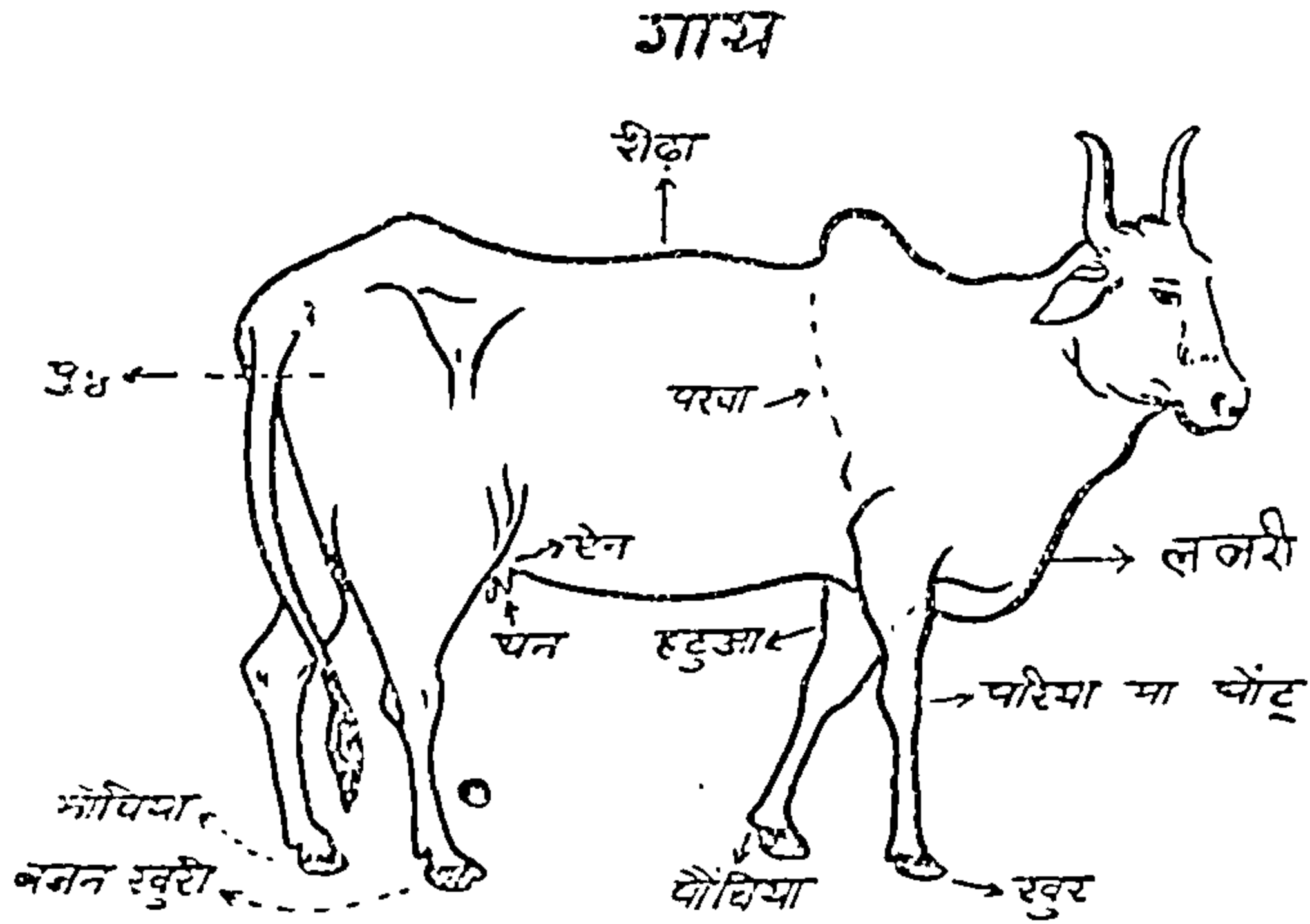
[रेखा-चित्र ३५]

'गइया मइया। भैंस चमरिया, बद्धु बौहरौ, बिजरा राजा॥''[1]

जिस प्रकार उक्त लोकोक्ति में गाय को माता के समान कहा गया है, उसी प्रकार वेद में 'अघ्न्या'। गाय के अर्थ में अथर्ववेद (एवा ते अघ्न्ये मनोऽधिवत्से निहन्यताम्—अथर्व० ६।७०।३) और निघण्टु (२।११) में आया हुआ 'अघ्न्या' शब्द सिद्ध करता है कि वैदिक काल में गौ अवध्य एवं पूज्य मानी जाती थी।

गाय घेरने और चरानेवाले व्यक्ति को **ग्वारिया** और दूध दुहनेवाले को **धार-कढ़इया** कहते हैं। दूध दुहने के अर्थ में कोल जनपद में प्रचलित धातुएँ **गाय मिलना** (=गाय का दूध दुह लेना), **धार काढ़ना** और '**धार निकालना**' हैं। दूध थनों से जिस रूप में निकलता है, उस रूप को '**धार**' कहते हैं। इस 'धार' शब्द के मूल में शतपथ का वह वाक्य ही मालूम पड़ता है, जिसमें ऋषि ने गाय को सहस्र धाराओंवाला झरना बताया है।[2]

गाय (अप० गावी[3] > गाई > गाइ गाय) की पूँछ की जड़ (पुच्छ-मूल) के दोनों ओर

---

[1] गाय माता है। भैंस चमारी है। बैल बौहरा है और बिजार (साँड़) राजा है।

[2] "साहस्रो वा एष शतधार उत्सो यद् गौः"— (शत० ७।५।२।३४)

[3] हेमचन्द्र ने अपने प्राकृत व्याकरण में 'गावी' शब्द गाय के अर्थ में ही लिखा है। (संपा० डा० आर० पिशल, हेमचन्द्रकृत प्राकृत व्याकरण, सन् १८७७ का संस्करण, पाद २। सूत्र १७४)। पतंजलि ने भी व्या० महा० में 'गावी' शब्द अपभ्रंश लिखा है।

"गौरित्यस्य गावी गोणी गोतागोपोतलिकेत्येवमादयोऽपभ्रंशाः।"

—पतंजलि : पाणिनीय व्याकरण महाभाष्य, निर्णयसागर, सन् १९०८, अ० १। पा० १। आह्निक १, पृ० २७।

पोहार या हेर (पशुओं का समूह जो जंगल में चरने जाता है) में से साँझ को **घेर या नोहरे** (हिं० नोई + सं० गृह) की ओर पूँछ उठाकर जंगल से वापिस आती हुई गाय बछरे को देखकर मुँह से जो एक प्रकार की आवाज करती है, उसे **हूँक, हुकार या रँभार** कहते हैं। रँभाती हुई गायों के लिए महाभारत में 'रेभमाणाः गावः' शब्दावली आयी है।[1] सूरदास ने **'हूँकना'** क्रिया का प्रयोग किया है।[2] बछड़े के वियोग में गाय जब बहुत जोर से अधिक देर तक रँभाती है, तब उसे **डकराना** कहते हैं।

गाय को बुद्ध के दिन मोल लेना शुभ है और **सनीचर** (सं० शनैश्चर) के दिन खरीदना अशुभ है—

"मंगल महसी फरहरै, बुद्ध फरहरै गाय।"[3]
"गाय सनीचर भैंस बुध, घोड़ा मंगलवार।
जो कोई धनी बिसाइहै, फेर न आवैं द्वार॥"[4]

ब्याते समय गाय की **जौनि** (सं० योनि) में से पहले एक पानी भरी थैली निकलती है, जिसे **मुतलैंड़ी** कहते हैं। फिर रक्त मांस से बनी जाली के अन्दर बच्चा आता है। उस जाली को **भेरी** कहते हैं। फिर **जेर** निकलता है।

§२५१—आयु, ब्याँत और दूध के विचार से गायों के नाम—गाय के गर्भ से पैदा हुआ मादा बच्चा **जेंगरी** कहाता है। **चुखेटी या जेंगरी** दूध ही पीकर रहती है। जेंगरी से बड़ी **बछिया** होती है। जब बछिया जवान हो जाती है, तो उसे **कलोर** (सं० काल्या) और उससे कुछ बड़ी को **ओसर या ओसरिया** (सं० उपसर्या > ओसरिया) कहते हैं। यास्क (निघण्टु कोश, २।११) ने गाय के अर्थ में दो पर्यायवाची शब्द **'उस्रा'** (ऋक्० १।६२।४)[5] और **'उस्रिया'** का उल्लेख किया है। पाणिनि ने अपने सूत्र (उपसर्या काल्या प्रजने—अष्टा० ३।१।१०४) में यह स्पष्ट किया है कि प्राचीन काल में आयु के दृष्टिकोण से गाय के लिए **'उपसर्या'** और **'काल्या'**—ये दो नाम प्रचलित थे। जिस गाय का गर्भधारण करने का समय आ गया हो, वह 'काल्या और जो गर्भाधान के लिए बिजार के पास जाने योग्य हो, वह **उपसर्या** कहाती थी। गर्भवती ओसरिया को **'धनार ओसर'** या **'धनार पठिया'** कहते हैं। इसके लिए संस्कृत में पुराना शब्द **'प्रष्ठौही'** (अमर० २।६।७०) था।

गाय जब बिजार से गर्भ धारण कराने की इच्छा करती है, तब उसके लिए **'उठना'** धातु का प्रयोग होता है। बिजार (साँड़) से मिलकर जब गर्भ धारण करा लेती है, तब उसके लिए **'हरी**

---

[1] "ऊर्ध्वं पुच्छान् विधुन्वाना रेभमाणाः समन्ततः।
गावः प्रतिन्यवर्तन्त दिशमास्थाय दक्षिणाम॥"
—महाभारत, विराट पर्व गोहरण पर्व, मानवतेश्वर संस्क०, अ० ५३, श्लो० २५

[2] "जल समूह बरषति दोउ अँखियाँ हूँकति लीन्हें नाउँ।
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा १०।३०७०

[3] मंगल को भैंस और बुद्ध को गाय खरीदी जावें तो फलती-फूलती हैं।

[4] यदि कोई धनी (पुरुष जो पशु मोल लेता है, अर्थात् पशु का स्वामी) शनिवार को गाय, बुद्धवार को भैंस और मंगलवार को घोड़ा खरीदता है तो ऐसे पशु फिर उसके द्वार पर नहीं आते।

[5] "अधिपेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम्।" ऋग्० १।९२।४

प्रचलित है। कुछ गायें पँसुराने पर भी दूध नहीं उतारतीं, तब दुबारा बछड़ा चुखाने पर ही उनके थनों में दूध आता है। ऐसी गायें **चुखेटियाई, बछदुही** या **लगैन** कहाती हैं। सूर ने उन्हें **'बच्छदोहनी'** लिखा है।[1]

दूध देनेवाली गाय का यदि बच्चा मर जाता है, तो वह **तोड़** कहाती है। यदि **लगैन** का बच्चा मर जाय तो बड़ी **हठलेर** (कष्ट से परिपूर्ण आयोजन) करनी पड़ती है। लगैन से दूध लेने के लिए उसके मरे हुए बछड़े की खाल कढ़वाकर उसमें भुस भरवा दिया जाता है। इस तरह जो बनावटी बछड़ा बनाया जाता है, उसे **कटेला** (खैर० खुर्जे में **कटेरना** भी), **सूँड़ा** या **खलबच्चा** (कोल में) कहते हैं। **तोड़** या **लगैन** गाय को दुहने से पहले उसके थनों में खलबच्चा का मुँह छुवा दिया जाता है, तभी वह दूध देती है। संभवतः ऐसी गायों के लिए ही शतपथ ब्राह्मण (२।६।१।६) में 'निवान्या' और ऐतरेय (७।२) में 'अभिवान्यवत्सा' शब्द आये हैं।

जिस गाय को दूध देते हुए और ब्याये हुए काफी दिन (लगभग ६ मास) बीत गये हों, उसे **बाखरी** या **बकेनी** (सं० बष्कयणी) कहते हैं। बष्कयणी शब्द बहुत प्राचीन है। पाणिनि ने अपने सूत्र (अष्टा० २।१।६५) में गृष्टि, धेनु, वशा, वेहत् शब्दों के साथ ही 'बष्कयणी' शब्द का उल्लेख किया है।[2]

जब गाय का गर्भ लगभग पूरे महीनों का हो जाता है, तब **'झुक आना'** क्रिया का प्रयोग होता है। झुकी हुई गाय बहुत **हौले-हौले** (धीरे-धीरे) चलती है। ब्याने से २-३ महीने पहले वह दूध देना बन्द कर देती है, उसे **लात जाना** कहते हैं।

प्रायः गायें **साँझ-सकारे** (सं० संध्या-सकाल) की **छाक** (समय) में ही दूध दिया करती हैं, किन्तु जो गाय सवेरे दुह जाने के बाद दोपहर को भी दूध दे दे और फिर साँझ को भी उतना ही दे, जितना कि हर साँझ को दिया करती है, तो उसे **दुधैल** कहते हैं। ऐसी गायों के लिए हेमचन्द्र (देशी० ना० मा०, ५।४६) ने **'दुद्धोलणी'** शब्द लिखा है। 'दुधैल' सम्भवतः सं० 'दुग्धिल' से व्युत्पन्न है। जो नियम से दोनों समय दूध न दे उस गाय को **तारकुतारी** कहते हैं।

जो गाय धूप में गर्मी बहुत मानती है, उसे **घमैल** या **घमियारी** कहते हैं। प्रायः ग्याबन (गाभिन) घमैल तू पड़ती है—

"हरी खेती ग्याबन गाइ। तब जानौ जब मुँह तक जाइ॥"[3]

कोई-कोई गाय अपने जीवन में केवल एक बार ही गर्भ धारण करती और ब्याती है। वह फिर कभी उठती भी नहीं; उस गाय को **तपोवनी** कहते हैं।

जब गाय के थनों में से मामूली दाब से ही काफी दूध निकल आता है, तब वह **नग्मधार** कहाती है।

बहुत पतली-दुबली गाय को **'टाँटर'** कहते हैं। टाँटर की देह में हड्डियाँ ही हड्डियाँ दिखाई देती हैं, मांस बिलकुल नहीं।

---

[1] वह सुरभी वह बच्छदोहनी खरिक दुहावन जाहीं।"
—सूरसागर काशी नागरीप्रचारिणी सभा, १०।४१५७

[2] पोटायुवतिस्तोक कतिपयगृष्टि धेनुवशा वेहद् बष्कयणी प्रवक्तृ श्रोत्रियाध्यापक धूर्तैर्जातिः"
—पाणिनि : अष्टाध्यायी २।१।६५

[3] हरी खेती का पूरा होना तभी समझो जब कि उसका दाना पककर खलिहान से घर में आ जाय। और रोटियाँ बनने लगें इसी तरह गाभिन गाय का ब्याना भी तभी सफल समझो, जब उसका दूध पीने को मिल जाय।

कबरी या **चितकबरी** (सं० चित्रकर्बुरी), कई रंगोंवाली **छुर्री** और भूरे रंग की **भूरी** कहाती है। जिसकी सारी देह **सुन्नकारी** (श्यामकाली) हो और चारों टाँगें खुरों के ऊपर सफेद हों, उसे **चरनामिरती** या **चिन्नामिरता** (सं० चरणामृती) कहते हैं। टेढ़े-मेढ़े खुरों की **गैनी**, आँखों में से पानी गिरानेवाली **'अँसुढरिया'**, मुँह पर सफेद चौड़ी धारीवाली **'मुँहपाट'** और जिससे **कलीले** (एक प्रकार का कीड़ा) चिपटे रहें वह **कल्लनी** कहाती है।

छोटे कद की गाय **गट्टी** या **नाटी**[1] कहाती है। बहुत ऊँची गाय को **बरधागाय** कहते हैं। टूटे सींगों की **डूँड़ी** या **डूँड़रिया** और बड़े सींगोंवाली **डूँगो** या **बड़सिंगो** कहाती है। जिस गाय के सींग आगे को माथे पर इतने झुके हुए हों कि गाय की आँखों के ऊपर आ जायँ तो उस गाय को **भागमान** या **लक्खो** कहते हैं। बहुत छोटे सींगों की **मुंडो** और कान से चिपटे हुए सींगोंवाली **कनचप्पो** कहाती है। जिस गाय के सींग छोटे हों और हिलते हों, तो उसे **कपिला**[2] कहते हैं। जिसके बड़े सींग हों. लेकिन हिलते हों, तो वह **डुग्गो** कहाती है।

जो गाय रंग की काली हो, लेकिन पूँछ सफेद हो, वह **चौरी** या **सुरगऊ** कहाती है (सं० सुरभि गौ>सुरगऊ)। कटी हुई पूँछ की **बंडी** और बहुत लम्बी पूँछवाली **तरवाभारनी** कहाती है। तरवरभारनी की पूँछ जमीन से छू जाती है।

जब गाय ब्याती है तो मुतलैंड़ी के बाद जौनि में से बच्चे की **खुरी** पहले निकलती है। उसी समय किसी-किसी गाय का गर्भाशय भी बाहर को आ जाता है, उसे **फूल** कहते हैं। प्रायः हर ब्यॉत पर जिस गाय का फूल निकल आता है, उसे **फूलनियाँ** कहते हैं। यह अच्छी नहीं मानी जाती।

सींग मारनेवाली **मरखनी**, **लात** (देश० लत्ता) फेंकनेवाली **लतखनी** और माथा आगे बढ़ाकर आदमी में धक्का देनेवाली गाय **भौरनी** कहाती है। भौरनी प्रायः **फुर्रकनी** भी होती है, क्योंकि **फुर्रकनी** गाय भौंरती तो है ही, परन्तु मुँह से 'फुर्र' जैसी आवाज भी करती है। बैलों, गायों और भैंसों के बहुत से नाम एक-से ही हैं। उनमें पुंल्लिग और स्त्रीलिंग का ही अन्तर है।

§२५४—स्वभाव के आधार पर गायों के नाम—जो गायें हेर या **नरिहाई** (पशुओं का समूह जो जंगल में चरने जाता है) में जाती रहती हैं, उनमें से किसी-किसी को यह टेव पड़ जाती है कि जहाँ हरा खेत देखा, वहीं तुरन्त घुसकर मुँह मार लेती है। ऐसा करने पर वह पिटती है पर नहीं मानती। ऐसी गाय को **हरिआ** कहते हैं। सूर ने अपने मन को **हरिआ** गाय से उपमा दी है।[3] लोकोक्ति भी है—

"हरिआ के संग में परी, कपिला हू कौ नास।"[4]

कभी-कभी किसान अपने खेत में कुछ अनुर्वर भाग अलग छोड़ देता है। उसमें खेती नहीं

---

[1] "सूरदास नँद लेहु दोहिनी दुहहु लाल की **नाटी**।"

—"सूरसागर काशी ना० प्र० सभा, १०।२५९

[2] महाभारत (अश्वमेध १०२।७।८) में दस प्रकार की कपिला बताई गई है—(१) सुवर्ण कपिला (२) गौर पिंगला (३) आरक्त पिंगलाक्षी (४) गलपिंगला (५) बभ्रुवर्णाभा (६) श्वेतपिंगला (७) रक्तपिंगलाक्षी (८) खुरपिंगला (९) पाटला (१०) पुच्छपिंगला।

[3] "यह अति हरहाई हटकत हूँ, बहुत अमारग जाति॥"

—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १।५१

[4] हरिआ गाय के साथ यदि बेचारी सीधी कपिला रहे, तो वह भी पिटती है।

टप्पल के आस-पास पड्डा को **'कटरा'** भी कहते हैं। जब **कटरा** जवानी में प्रवेश करता है, तब वह **झोटा** कहाता है। पूरा जवान झोटा **भैंसा** कहलाता है। साँड़ भैंसा **'भैंसा बिजार'** या **उन्ना** कहाता है। लोकोक्ति है—"राँड़ साँड़ ओ उन्ना भैंसा। जब बिगड़ेगा होगा कैसा।"

इसी प्रकार भैंस का मादा बच्चा क्रमशः **चुखेटी, जैंगरी, पड़िया**[1] (देश० पड्डी दे० ना० मा० ६।१) या **कटिया, झुटिया** (देश० झोट्टी—दे० ना० मा० ३।५६) और भैंस संज्ञा का अधिकारी होता जाता है। गायों में जो अवस्था **ओसरिया** की है, ठीक वही अवस्था भैंसों में **'झुटिया'** की है। जवान भैंस, जो गर्भ धारण करने योग्य हो, **झुटिया** कहाती है। **'झुटिया होना'** एक मुहावरा भी है, जिसका प्रयोग जवान और मोटी स्त्री के लिए किया जाता है। यदि कोई स्त्री प्रौढ़ और बहुत मोटी हो गई हो, तो उसके लिए मुहावरा **'भैंस-पड़ना'** प्रचलित है।

एक प्रकार से बड़ी पड़िया ही **झुटिया** कहाती है। ब्याने के बाद वह भैंस कहाने लगती है—

"भूरौ रंग बड़ी पड़िया। दुद्धा देइगी द्वै हँड़िया॥"[2]

जब भैंस गर्भ धारण करना और ब्याना छोड़ देती है, तब उसे **ठल्ल** कहते हैं। प्रायः **बुड्ढी, हड्डो** (जिसकी देह में हड्डियाँ ही दिखाई देती हों) और **ठल्ल** भैंसें कसाइयों को दे दी जाती हैं और वे उन्हें कटवा देते हैं; वे **कट्टी** कहाती हैं। कट्टी को **'कटैलिया'** भी कहते हैं। जहाँ पशु कटते हैं, वह **कट्टी घर** कहाता है।

भैंस किसान का **पनिहाँ पोहा** (पानी को विशेष चाहनेवाला पशु) है। जब भैंस पानी के **गड़हेले** (गड्ढा) में लोट मारती है, तब उस क्रिया को **'लोरा मारना'** कहते हैं। **पोखर** (सं० पुष्कर > पुक्खर > पोखर) में घुस जाने पर भैंस फिर घण्टों में निकलती है। **'भैंस पानी में चली जाना'** एक मुहावरा भी है, जिसका अर्थ है—'काम जल्दी पूरा न होना', अथवा 'काम बिगड़ जाना।'

खुरीले पोहे (खुरोंवाले पशु) पहले एक साथ पेट में चारा भर लेते हैं, फिर उसे थोड़ा-थोड़ा मुँह में लाकर चबाते रहते हैं। इस क्रिया को **रौंथ** (सं० रोमन्थ)[3], **जुगार** (खैर में), **उगार** या **वार** (हाथ०-इग० में) कहते हैं। ये शब्द क्रमशः **'रौंथना'**, **'जुगारना'** और **उगारना** नाम धातुओं से सम्बन्धित हैं। हेमचन्द्र ने प्राकृत व्याकरण (४।४३) में 'ओग्गालइ' को क्रिया शब्द माना है, जिसका अर्थ है, 'पगुराना' या 'जुगाली करना' (प्रा० ओग्गाल > उगार)।

'जुगारना' क्रिया का प्रयोग ब्रजभाषा के कवि सेनापति ने भी किया है।[4]

§२५६—**भैंसों के थन और ऐन**—जो थन ऊपर मोटे और नीचे की ओर क्रमशः पतले होते हैं, वे **'सुराये'** कहाते हैं। सुराये थन अच्छे होते हैं, क्योंकि उन पर धार-कढ़इया की मुट्ठी जम जाती है। इनके उल्टे थन **लठियाये** कहाते हैं। ये ऊपर पतले और नीचे मोटे होते हैं। छोटे-छोटे,

---

[1] देश० पड्डी—दे० ना० मा० ६।१; प्रा० पड्डिया > पड़िया = कम उम्र की भैंस; प्रा० पड्डिया—पा० स० म०।

[2] भूरे रंग की बड़ी पड़िया अच्छी होती है। वह दो हाँड़ी दूध देगी।

[3] "वृषभरोमन्थफेन-पिण्ड-पाण्डुरः।"

—बाण : कादम्बरी, चन्द्रापीड दिग्विजय-प्रस्थानम्, सिद्धान्त विद्यालय, कलकत्ता द्वितीय संस्करण पृ० ४४८।

[4] "हरिन के संग बैठी जो वन जुगारति है।"

सं० उमाशंकर शुक्ल : सेनापतिकृत कवित्त रत्नाकर, १।८४

जिसके सींग पीछे की ओर दराँतीनुमा होते हैं, वह **मौरी** कहाती है। **दुगलिया कुन्नी** या **दोगली कुन्नी** के सींग मौरी के सींगों से कुछ अधिक मुड़े हुए होते हैं। जिस भैंस के सींग चौड़े और चपटे होते हैं, वह **चपटासिंगिनी** और जिसके सींग कानों के नीचे तक लटक गये हों, वह **गुलिया** या **मैनी** कहाती है। गुलिया के सींग नीचे की ओर तो होते हैं, परन्तु वे कुछ गालों में भी घुस जाते हैं। इसलिए कभी-कभी वे कटवाने पड़ते हैं। कटे सींगों की भैंस **कटसिंगो** कहाती है।

रङ्गों के विचार से भैंसों के चार ही नाम मुख्य हैं—**साँकारी** (सं० श्याम काली), **कारी** (सं० काली), **भूरी** और **लोहरी**। भूरी भैंस का रङ्ग बादामी होता है और आँखों की **बिनूनी** (बरौनी) भी बादामी ही होती हैं। **लोहरी** की **पसमी** (शरीर के बाल) तो लाल होती है, लेकिन खाल कुछ काली होती है।

जिस भैंस की जौन की **साँकरी** (जौन में पेशाब की जगह का खुला हुआ रास्ता) अन्दर से **करछौंही** (कुछ काली और मटियाली) होती है, उसे **धूसरी** कहते हैं। यदि धूसरी भैंस देह की भारी हो, तो वह **धमधूसरी** कहाती है। **धूसरी** की **ऐनरी** (ऐन = दूध का स्थान) भी काली होती है। काली जौन की भैंस अच्छी होती है। लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं—

"बड़ी ऐनरी जौनरि कारी। बीसौ बिस्से भैंस दुधारी॥"[1]
"भैंस गुनीली जो साँकारी। भूरी पूँछ नाक की न्यारी॥"[2]
"भूरी भैंस देह की छोटी। सोऊ दाय निकसैगी खोटी॥"[3]

भैंस की जुगाली के सम्बन्ध में भी एक लोकोक्ति प्रसिद्ध है, जो उसकी मूर्खता की ओर संकेत करती है—

"भैंस के आगें बीन बाजै, भैंस ठड़ी पगुराइ।"[4]

§२५८—**रूप और स्वभाव के आधार पर भैंसों के नाम**—जिस भैंस की आँख और कान के बीच में एक सफेद-सी धारी हो, उसे **कनपट्टी** कहते हैं। यह **असगुनियाही** (अशकुनवाली) मानी जाती है—

"डूँड़रिया और टँगपुछी, सङ्ग कनपटी लीक।
भाजो जाय तो भाजियो, मँगवाइ देगी भीक॥"[5]

जिस भैंस का पीछे का हिस्सा भारी और आगे का हलका और पतला होता है, वह **घाट की** कहाती है। शरीर भारी और खाल चिकनी हो, तो उसे **'दिखनोटू'** कहते हैं।

---

[1] जिसकी जौन (योनि) बड़ी और ऐन काला हो, वह भैंस अवश्य ही दुधारी होती है।

[2] जो भैंस रंग में श्याम काली हो, जिसकी पूँछ भूरी हो और नाक अलग दिखाई दे, वह घी-दूध में अच्छी निकलती है।

[3] देह की छोटी और रंग की भूरी भैंस अवश्य ही खोटी निकलती है।

[4] भैंस के आगे मधुर और सुरीले स्वरों में बाजा बज रहा है, लेकिन भैंस उसकी ओर लेशमात्र भी ध्यान नहीं दे रही, बल्कि उपेक्षित होकर खड़ी-खड़ी जुगाली कर रही है। सारांश यह है कि भैंसें वीणा की मधुर ध्वनि का आनन्द लेने के लिए नितान्त अयोग्य हैं। वे तो हिरन ही होते हैं जो वीणा के नाद पर रीझकर प्राण तक निछावर कर देते हैं। वस्तुतः अपात्र के आगे किसी उत्तम और उत्कृष्ट कला को दिखाना व्यर्थ ही है।

[5] टूटे सींगोंवाली, छोटी पूँछ की और कनपट्टी भैंस भीख मँगवा देगी। यदि इनसे बच सके, तो तू बच अन्यथा वह भीख मँगवा देगी।

खेरादेई (खेड़े की देवी) के रूप में काली का नाम ही **चाँमड़** (चामुण्डा)[1] है (सं० खेटक > खेडअ > खेड़ा > खेरा)। जो खीर चाँमड़ पर चढ़ाई जाती है, उसे **चमौना** कहते हैं।

पशुओं में एक छूत की बीमारी फैल जाती है, जिससे सात-आठ दिन में ही बहुत से पशु मर जाते हैं, उसे **'मरी पड़ना'** कहते हैं। पशुओं में से मरी हटाने के लिए **खपरा** या **खप्पर** (एक प्रकार का टोटका जिसमें टूटे हुए घड़े के पेंदे में जलती हुई आग लेकर गाँव में लोग घूमते हैं और उसे पशुओं के ऊपर इस भावना से घुमाते हैं कि बीमारी दूर हो जाय। यह क्रिया **खपरा निकालना** कहाती है।) निकाला जाता है। पशुओं में रोग फैल जाने से किसान के घर में दूध-दही का **तोड़ा** (कमी, अभाव) पड़ जाता है। सेनापति ने 'तोरा' शब्द का प्रयोग किया है।[2]

कभी-कभी भैंस को एक रोग हो जाता है, जिसमें उसका दिमाग खराब हो जाता है, और वह चकई की तरह घूमने लगती है, इसे **भूमर** या **चाईमाई रोग** कहते हैं। कभी-कभी कमजोरी में भैंस की बच्चेदानी बाहर निकल आती है; उस रोग को **बेल निकलना** बोलते हैं। बेल हथेली से अन्दर कर दी जाती है। यह क्रिया **बेल दाबना** कहाती है।

(३) बकरी

§२६०—**बकरी और उसके बच्चे—बकरी** (सं० बर्करी) को **बकरिया** और **छिरिया** (प्रा० छेलिआ > छेली—पा० स० म०) नाम से पुकारा जाता है। छेरी या छिरिया बहुत सीधा जानवर है; इसीलिए सीधे व्यक्ति के लिए **'कान पकड़ी छेरी'** मुहावरा प्रचलित है। हेमचन्द्र (दे० ना० मा० ३।३२) ने बकरे के अर्थ में 'छेलअ' शब्द लिखा है। भेड़-बकरियों के झुण्ड को **टैना** या रेवड़ कहते हैं। 'रेवड़' शब्द अक्कदी भाषा के 'रेऊ' (=भेड़) शब्द से विकसित है।[3]

बड़ा और साँड़ बकरा **'बोक'** कहाता है। इसके लिए हेमचन्द्रकृत 'देशी नाममाला' (६।९६) में बोक्कड और पाइअसद्द महण्णवो में 'बोकड' शब्द लिखा है। बकरी का बहुत छोटा और दूध पीता मादा बच्चा **'बच्ची'** और नर बच्चा **'बच्चा'** कहाता है।

बकरे दो तरह के होते हैं—(१) **खस्सी** (अ० खशी>खस्सी=जिसके अंडकोश कुचल दिये गये हों) (२) **आँडुआ** (जो खस्सी न किया गया हो)

बकरी जब गर्भ धारण करने की इच्छा करती है, तब उस दशा को **नमी होना** कहते हैं।

स्थान के विचार से अलीगढ़ क्षेत्र में पाँच प्रकार की बकरियाँ पाई जाती हैं—(१) **देसी**, (२) **जमनापारी**, (३) **बीकानेरी**, (४) **पहाड़ी** और (५) **मारवाड़ी**।

बकरी के गोबर को **लैंड़ी** (देश० लिंडिया—पा० स० म०) या **मैंगनी** कहते हैं। लैंड़ी (मैंगनियाँ) काली गोलियों की तरह होती हैं।

§२६१—**आकार के आधार पर बकरियों के नाम**—जो देह में छोटी और कम ऊँची

---

[1] "चण्डिका ने काली से कहा—" यस्माच्चण्डं च मुण्डं च गृहीत्वा त्वमुपागता।
चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवि भविष्यसि।
वही, ७।२७।

[2] "तोरा है अधिक जहाँ बात नहिं करसी।"
—सं० उमाशंकर शुक्ल : कवित्तरत्नाकर, हिंदी परिषद्, प्र० वि० वि०, १।१४

[3] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हिंदी के सौ शब्दों की निरुक्ति,
—काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५४, अंक २-३, पृ० १०७।

होती है, उसे **गुटिया** कहते हैं। ऊँची और मोटी बकरी **चोकर्सी** या **भोकर्सी** कहाती है। लम्बी और पतली बकरी को **सूँनिया** कहते हैं।

§२६१ (अ)—**अन्य दृष्टिकोणों से बकरियों के नाम**—जिस बकरी के चारों पैर आगे-आगे सफेद हों और बाकी सब देह एक-से रंग की हो, उसे **पायँपखारी** कहते हैं। जिस बकरी के बच्चे प्रायः मर जाते हैं, वह **मरैनिया** कहाती है। पहलौठा गर्भ धारण करनेवाली बकरी **पठिया** और दो-तीन बार ब्याई हुई **चंकटियाँ** कहलाती है। जो बकरे से मिलने के लिए न उठती है और न गाभिन होती है, उसे **बैला** या **ठल्ल** कहते हैं।

जिस बकरी के कान बहुत छोटे हों, वह **न्योंरी**; दोनों कान जन्म से ही न हों, वह **बूची**; जिसके कान काटे गये हों वह **कनकटो** और जिसके कान सिरों पर चिरे हुए हों, वह **चिरकनियाँ** कहाती है।

किसी-किसी बकरी के दो थनों के अतिरिक्त और भी एक-दो थन होते हैं। थनों के हिसाब से वह **तिथनी** व **चौथनी** भी कहाती है। किसी-किसी बकरी के गले में लम्बी-लम्बी दो खालें थनों की भाँति लटकी रहती हैं, वह **गलथनियाँ** कहाती है। ये थन **गलथन** (सं० गलस्तन) कहाते हैं। जिस बकरी के मुँह पर बकरे की भाँति दाढ़ी होती है, उसे **डढ़ैली** कहते हैं। बरसात के दिनों में पानी के कारण घास में से बकरी के मुँह में एक रोग लग जाता है, जिसे '**चिर्री**' कहते हैं। इस रोग से बकरी का मुँह **फदक** जाता है, अर्थात् उसमें फोड़े और घाव हो जाते हैं। इस रोग से बहुत-सी बकरियाँ मर जाती हैं।

अध्याय ३

कृषक-जीवन से सम्बन्धित अन्य पशु

(१) घोड़ा

घोड़े के अंग
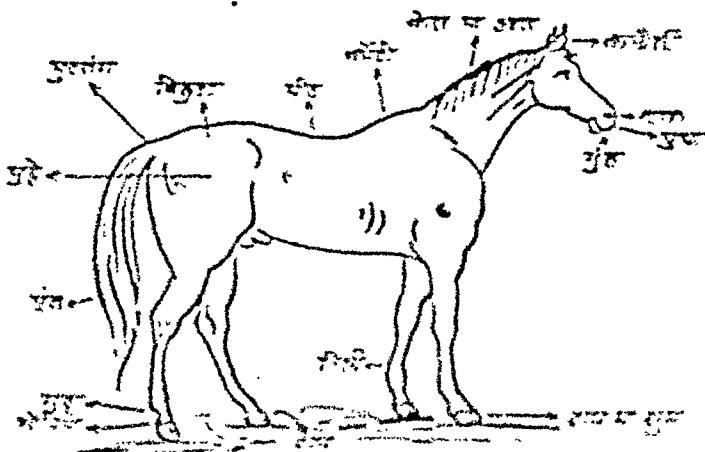
§२६२—**घोड़ा और उसके अंग**—घोड़ा रखनेवाले तथा घोड़ों के लक्षणों और रोगों को जाननेवाले व्यक्ति **घुड़ैत** कहाते हैं। घुड़ैत घोड़े की बड़ी **दास्त** (हफाज़त तथा चुगाई) करते हैं।

सामान्यतः नर घोड़े के लिए **घोड़ा** और मादा के लिए **घोड़ी** कहा जाता है। छोटे देसी घोड़े को **टटुआ** या **टट्टू** कहते हैं। मादा टट्टू **'टटुनी'** या **घुड़िया** कहाता है। छोटे कद की घुड़िया को **लदघुड़िया** कहते हैं। ऊँची और लम्बी-चौड़ी देह का घोड़ा **'तुरंग'** कहाता है। घोड़े के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है—

"घोड़न कूँ घरु कितनी दूर।"[1]

घोड़े के पुट्ठों से ऊपर पूँछ के पास का भाग **पुस्तंग** कहाता है। जब घोड़ा इस भाग को ऊपर की ओर उछालता है, तब उस क्रिया को **पुस्तंग फेंकना** या **पुस्तंग मारना** कहते हैं। रीढ़ का पिछला भाग **पुट्ठे** या **पिछपुट्ठे** कहाता है। पूँछ और कमर के बीच में कुछ उठा हुआ हिस्सा **बिछुआ** कहाता है। गर्दन का वह भाग जो पीठ से लगा हुआ होता है और जहाँ से **केस** (सं० केश) या **आल** (तु० याल, फ़ा० अयाल) उगने शुरू होते हैं, **काँठी** कहलाता है। कानों के ऊपरी भाग को **कनौती** कहते हैं। कनौती को घुमाना **'कनौती बदलना'** कहाता है। घोड़े की नाक के नीचे और दाँतों के ऊपर जो मुलायम और लिबलिबी खाल होती है, वह पुथा (सं० प्रोथ) कहाती है। जब घोड़ा आनन्द का अनुभव करता है, तब मुँह से एक प्रकार की 'फुर्र-फुर्र' ध्वनि करता है, इसे **'फुरफुरी'** कहते हैं। बाण ने इसके लिए घुरघुर[2] शब्द लिखा है। फुरफुरी मारते समय घोड़े का पुथा खूब हिलता है। फुरफुर से नाम धातु **फुरफुराना** है। घोड़ा जब अपनी **हरारत** (थकान) मिटाने के लिए रेत में लोटता है, तब वह व्यापार **'लुटलुटी'** कहाता है। लुटलुटी के बाद में वह खड़े होकर देह को पूरी तरह हिला देता है। उस हरकत को **झुरझुरी** कहते हैं। शरीर में जब कुछ ठंड-सी अनुभव होती है या कोई अन्य विकार होता है, तब घोड़ा अपनी देह को हिला देता है। उस हरकत को **फुरहरी** कहते हैं। **सईस** (घोड़े की टहल करनेवाला) घोड़े की पींठ को एक लोहे की खुरखुरी वस्तु से खुजाता है, जिसे **खुरैरा** कहते हैं। फिर घोड़े की **मलाई** (शरीर को हाथों से मलना) और **हत्थियाई** (पींठ पर जोर-जोर से हथेली मारना) की जाती है। घोड़े की टाँगों को ऊपर से नीचे की ओर मलना **'सूँतना'** कहाता है। जहाँ घोड़े बँधते हैं, वह जगह **थान** (सं० स्थान) कहाती है। यदि थान के चारों ओर बाँस या बल्ली बाँधकर एक घेरा-सा बना दिया जाय, तो वह **बाड़ा** या **बाढ़ा** कहाता है। जब घोड़ा पिछली दोनों टाँगों को एक साथ पीछे को फेंकता है, तब उसे **दुलत्ती मारना** कहते हैं। दुलत्ती लग जाने पर आदमी का बचना मुश्किल है। तभी तो कहावत प्रसिद्ध है—

"हाकिम की अगाई और घोड़ा की पिछाई, आफति की अवाई है।"[3]

घोड़े की पिछली टाँगों में जो रस्सी बाँधी जाती है, उसे **पिछाई** या **पछेती** कहते हैं। अँड़ुआ घोड़ा (वह घोड़ा जिसके अंडकोश कुचले न गये हों) अपने थान पर बाड़े में इधर-उधर

---

[1] घोड़ों के लिए घर कुछ भी दूर नहीं होता, अर्थात् समर्थ जन बड़ी शीघ्रता से कार्य पूरा कर लेते हैं। सारांश यह है कि वे लक्ष्य को बड़ी जल्दी पकड़ लेते हैं।

[2] "घुरघुरायमाण घोरघोणेन"—बाण: कादम्बरी, इन्द्रायुधवर्णना, सिद्धान्त विद्यालय, कलकत्ता, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ ३०२।

[3] यदि कोई हाकिम के आगे और घोड़े के पीछे आ जाता है, तो उसकी मुसीबत आ जाती है।

जिस घोड़े पर कभी-कभी सवारी की जाती है, उसे **कोतल** कहते हैं। यात्रा में पहले सवारी के घोड़े के साथ एक कोतल रहा करता था। आवश्यकता पड़ने पर ही उससे काम लिया जाता था। घोड़े पर चढ़नेवाले को **घुड़चढंता, सवार** या **असवार** (सं० अश्ववार[1]) कहते हैं। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

"घोड़चढ़न्ता गिरै, गिरै का पीसनहारी[2] ।"

घोड़े के मल को **लीद** (देश० लद्दी—पा० स० म०) कहते हैं। घोड़े की लीद और पेशाब से भींगी हुई घास **लीदमुतारी** घास कहाती है।

अलीगढ़ क्षेत्र में नस्लों के हिसाब से जो घोड़े पाये जाते हैं, उनके नामों में **ताजी, तुर्की, अरबी, पहाड़ी, भूटिया, काबुली** और **देसी** नाम अधिक प्रचलित हैं। खुरासान की नस्लवाला **ताजी** (फा० ताज़ी), तुर्किस्तानी नस्ल का **तुर्की** (फा० तुर्क से सम्बन्धित), अरब देश का **अरबी**, नैपाल आदि पहाड़ी स्थानों का **पहाड़ी**, भूटान का **भूटिया**, काबुल का **काबुली** और यहीं की घोड़ी और घोड़ा से उत्पन्न **देसी** कहाता है। पहाड़ी, भूटिया और देसी घोड़े प्रायः **गटुआ** (छोटे) होते हैं। अरबी घोड़ा बढ़िया होता है। यह तुरन्त **कनोती** और **त्यौरी** (सं० त्रिकुटी > तिउरी > त्यौरी) बदलता है।

जवान और नये घोड़े को **घसीटे** (लकड़ी का बना हुआ एक ढाँचा) में जोतकर फिराया
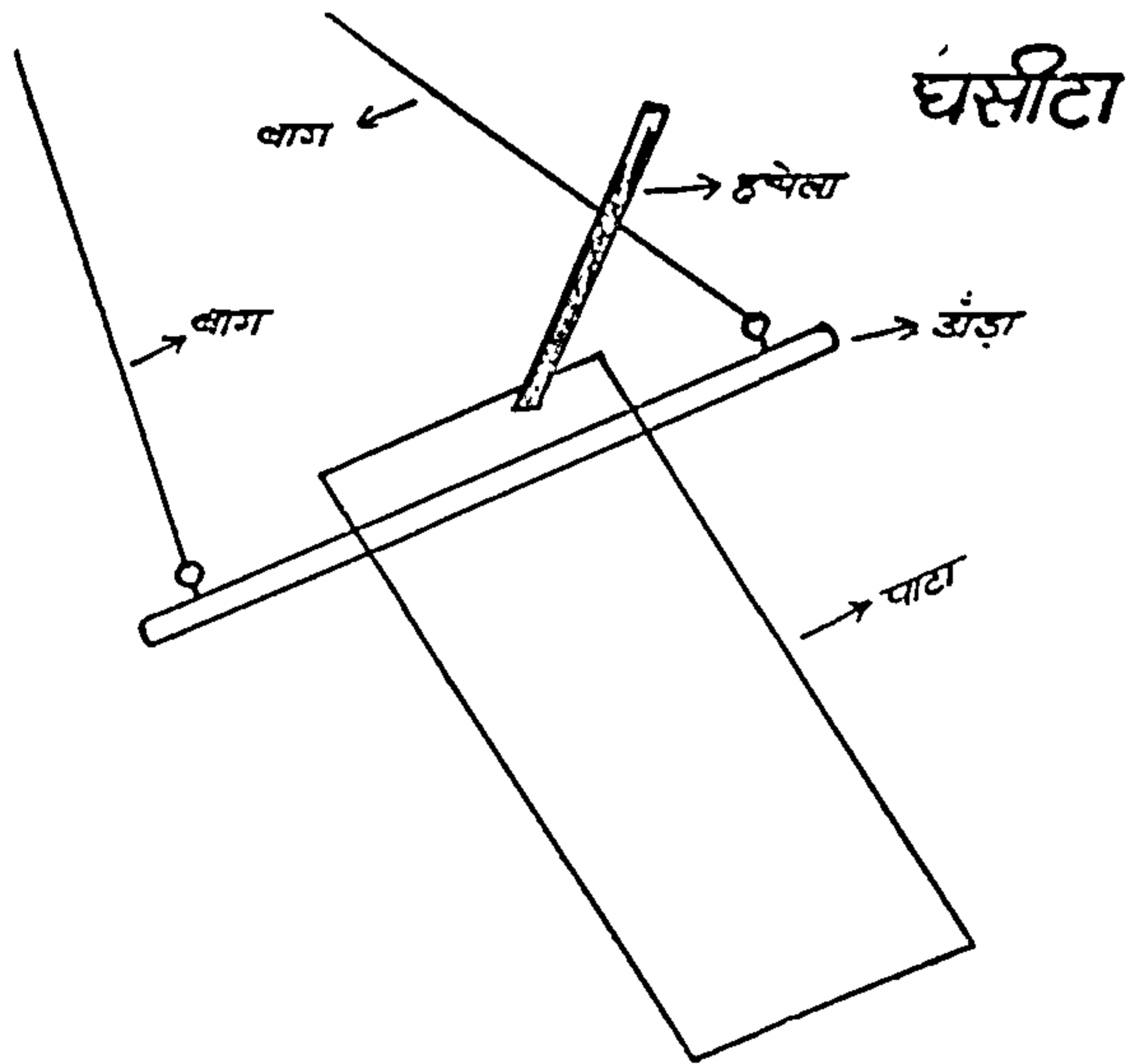
[रेखा-चित्र ३६ (अ)]

जाता है, ताकि चलने में ठीक हो जाय। घसीटे का डंडा **हथेला** और हथेले का तख्ता **पाटा** कहाता है। डाँड़े के कुन्दों में बँधी हुई रस्सियाँ **बाग** कहाती हैं।

§२६४—**रंगों और विशेष चिह्नों के आधार पर घोड़ों के नाम**—सफेद और लाल रंगों का घोड़ा **अबलक** (फा० अबलक) कहाता है। यदि सारी देह सफेद हो और उस पर लाल

---

[1] 'तमश्ववारा जवनाश्वयायिनं प्रकाशरूपा मनुजेशमन्वयुः'—श्री हर्ष : नैषध, १।६५

[2] घोड़े पर चढ़नेवाला ही गिरता है, चक्की पीसनेवाली थोड़े ही गिरेगी, अर्थात् कठिन एवं भीषण कार्य करनेवाले ही कठिनता और असफलता का सामना किया करते हैं।

प्याजू रंग की घोड़ी और काले रंग का **लमटंगा** (लम्बी टाँगोंवाला) घोड़ा अच्छा नहीं होता—

"प्याजू रंग बँधी घर घोड़ी। बदिकैं करवाइ देगी चोरी ॥"[1]

जिस घोड़े का रंग सफेद हो और बाल पीले हों, वह **सिराजी** (शीराज़ी=ईरान के नगर शीराज़ का) कहाता है।

"लमटंगा होइ रंग में कारौ। घर ते करि देइ देस निकारौ ॥"[2]

मुश्की घोड़े की देह पर कुछ **लालामी** (लाली) और छा जाय तो वह **लाखी** कहाने लगता है। लाखी का रंग **लाख** (पीपल के पेड़ का गोंद) के समान होता है।

सुरंग घोड़े का रंग लाल होता है। यदि सुरंग की खाल में कालेपन का अंश और झलकने लगे तो उसे **चौधर** कहने लगते हैं। यह अशुभ माना जाता है। प्रसिद्ध है—

"गज समान जा अश्व कौ, रंग होइ सब गात।
चौधर चौकस असुभ है, करौ न वाकी बात ॥"[3]

हलके नीले रंग की देह पर कुछ तिल भी हों तो वह घोड़ा **अरसी** (फ़ा० अर्श=आस्मान;अरसी=अस्मान के-से रंग का) कहाता है। बादामी और किशमिशी रंगों के मिलाने से जो रंग बनता है, वैसा रंग तो देह का हो; और कहीं-कहीं काले धब्बे भी हों, उसे **भीकम्बरी** कहते हैं। घोड़े के माथे का सफेद दाग **टिप्पा** कहाता है। टिप्पेवाले घोड़ों को **टिप्पल** कहते हैं। छुट्टल घोड़ा **भँदुआ** कहाता है। यह खेतों में बे रोक-टोक घूमता रहता है। इसे दाग दिया जाता है, ताकि लोग समझ लें कि यह **भँदुआ** है।

§२६५—जिस घोड़े के चारों पैर और मुँह भी सफेद हो तो उसे **पचकल्यानी** कहते हैं। यह बहुत उत्तम और शुभ माना गया है।

देवमन (सं० देवमणि) घोड़ा बड़ा भाग्यशाली माना जाता है। इसकी गर्दन के नीचे छाती पर दो भौंरियाँ होती है। 'देवमणि' एक विशेष भौंरी का ही नाम है। श्रीहर्ष ने नैषध (१।५८) में 'देवमणि'[4] शब्द का प्रयोग किया है और मल्लिनाथ[5] ने उसका अर्थ 'आवर्त-विशेष' किया है।

जिस घोड़े की दाहिनी टाँग पर सुम से चिपटी हुई **भौंरी** (=बालों का गोल चक्कर, सं० भ्रमरिका>भँउरिअ>भौंरी) होती है, उसे **पदमा** कहते हैं। **सबजा, देवमन** और **पदमा** आदि घोड़े शुभ माने गये हैं—

"सबजा पदमा देवमन, चौथौ पचकल्यान।
इनमें दोस न ऐब कछु, कहि गये चतुर सुजान ॥"[6]

---

[1] यदि प्याज के-से रंग की घोड़ी घर में बाँधी गई, तो वह अवश्य चोरी करा देगी।

[2] यदि किसी के यहाँ काले रंग का लम्बी टाँगोंवाला घोड़ा होगा, तो वह उसका घर से देश-निकाला करा देगा।

[3] जिस घोड़े का रंग हाथी के समान हो, उसे चौधर कहते हैं। यह अशुभ होता है। इसकी बात भी मत करो, खरीदना तो दूर रहा।

[4] "निगालगाद्देवमणेरिवोत्थितैः"—श्रीहर्ष : नैषधम्, १।५८

[5] "देवमणिः आवर्त विशेषः ; निगालजो देवमणिरिति लक्षणात्"
मल्लिनाथी टीका, नैषध, १।५८।
"निगालस्तु गलोद्देशे"—अमर० २।८।४८

[6] सबजा, पदमा, देवमन और पचकल्यानी घोड़ों में कोई दोष नहीं होता। ऐसा चतुर मनुष्यों ने कहा है।

काटनेवाला **कट्टर** (जायसी ने इसे 'काटर'[1] लिखा है) सवारी करते समय अड़ जानेवाला और पीछे को हटनेवाला **हट्टर**, लात मारनेवाला **लतखना** और चुपचाप काट लेनेवाला **चुप्पा** कहाता है। हट्टर घोड़ा ठीक नहीं होता—

"नारि करकसा हट्टर घोड़। हाकिम होइ पर खाइ अँकोर।
कपटी मितुर पुत्तर चोर। इन्हें जाइ गहरे में बोर॥"[2]

जिसकी देह में प्रायः **खाज** (खुजली या खारिश) रहती है, उसे **खस्स** कहते हैं।

जिस घोड़े के सुम गाय के खुरों के समान हों वह **गौसुम्मा** (सं० गो + फ़ा० सुम) और पूँछ गाय की-सी हो तो वह **गवदुम्मा** (सं० गो + फ़ा० दुम) कहाता है। जिसकी छाती पर गाँठ-सी उठी हुई हो, उसे **बंकहिया** (सं० वक्रहृद्) कहते हैं। जिस घोड़े की छाती पर एक सफेद रेखा हो, वह **लकचीरिया** कहाता है। यदि मुँह सफेद और आँखें काली हों, तो उसे **सेतंजनी** और **तरुआ** (सं० तालु) काला हो तो उसे **सौंतरा** (सं० श्यामतालु) कहते हैं। जिसके पुट्ठों के नीचे आँख की शक्ल की भौंरी होती है, उसे **गैबतकी** (अ० गैब = परोक्ष + तकी = ताकनेवाला; प्रा० तक्कइ = देखता है) कहते हैं। बगल की भौंरीवाला **कखावत** (सं० कक्षावर्त) कहाता है। गधे के समान मुँहवाला **खरमुहाँ** कहाता है। इसके सम्बन्ध में **घुड़ैतों** (घोड़ों के लक्षण जाननेवाले) का कहना है कि इसको रखनेवाले आदमी की मौत जल्दी हो जाती है। जिसके सुम फटे हुए हों, वह **चौचर** और जिसके कान में एक छोटा-सा कान और हो, वह **कन्नुआँ** कहाता है। कड़े बालों और आलोंवाला **करूमिया** (संभवतः सं० कड्ड + सं० रोम से सम्बन्धित) कहलाता है। कन्नुआँ असैना माना जाता है—

'कान में कान कन्नुआँ जान। ताहि छोड़िकें बिसहौ आन।"[3]

घोड़े की रोंगीली टाँग के भाग और उनके रोग

[रेखा-चित्र ३७]

---
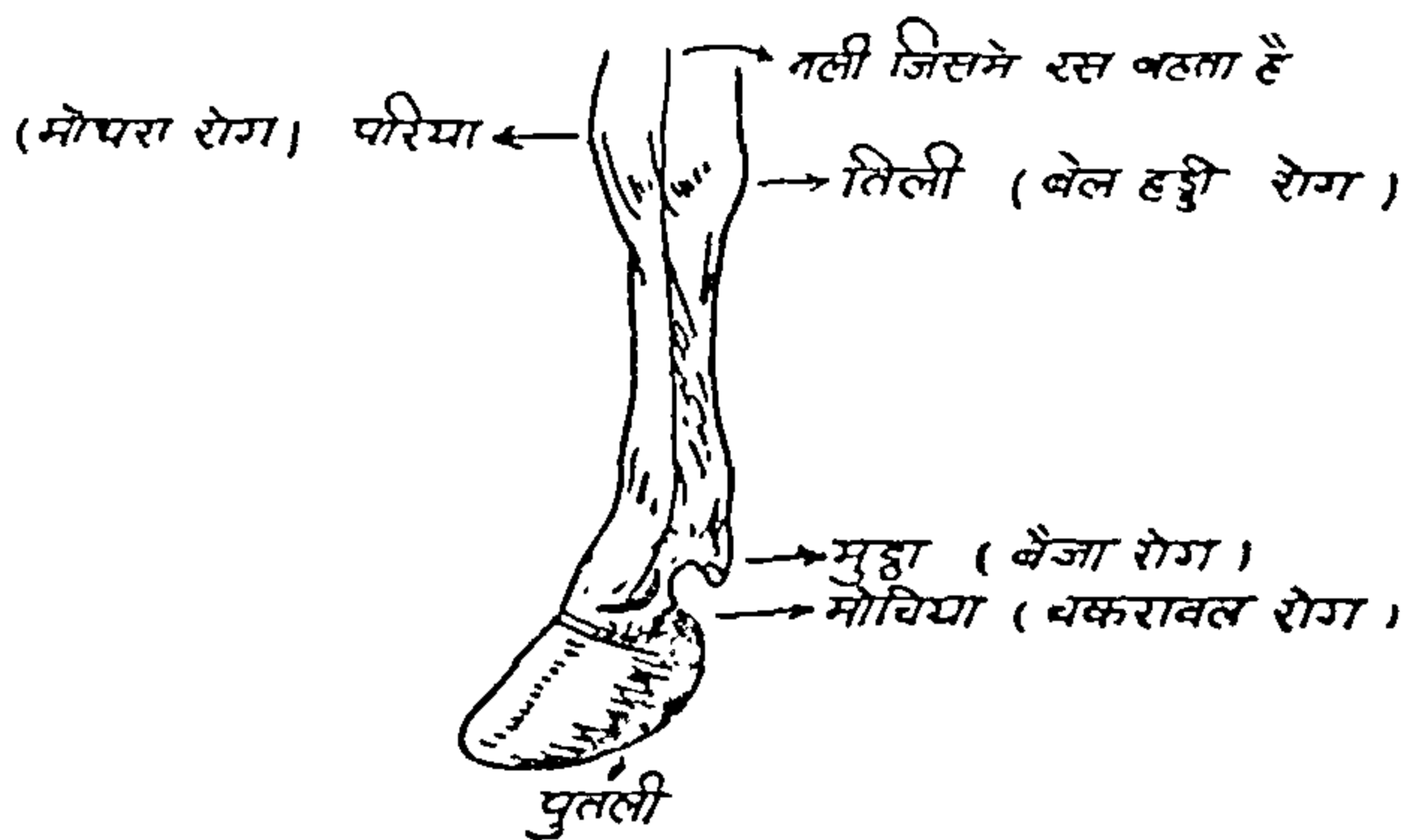
[1] "आना काटर एक तुखारू"
—सं० माताप्रसाद गुप्त : जायसी ग्रन्थावली, पद्मावत, २७३।६

[2] यदि किसी की स्त्री कर्कशा (लड़ाकू तथा झगड़ालू) हो, घोड़ा हट्टर (पीछे हटनेवाला) हो, हाकिम रिश्वतखोर हो, मित्र कपटी हो, और पुत्र चोर हो तो इन सबको गहरे में ले जाकर डुबा देना चाहिए।

[3] जिस घोड़े के कान में एक छोटा-सा कान और हो, उसे कन्नुआँ जानो। उसे न खरीदो, किसी दूसरे को क्रय करो।

अरगा या कदम चाल चलते समय घोड़ा देह को साधकर चलता है। चारों टाँगें अलग-अलग पड़ती हैं। इस चाल में सवार घोड़े की लगाम खिंची हुई रखता है और घोड़े का **कल्ला** (गर्दन) भी उठा हुआ और स्थिर रहता है। जिस तरह कि कहारी सिर पर घड़ा ले जाते समय अपनी गर्दन को रखती है, ठीक उसी तरह से ही घोड़े की गर्दन रहती है।

घोड़े में एक चाल **सागाम** (फ़ा० सिहगान = तीन चालों का मिश्रण) नाम की होती है। इसे **आरामी चाल** भी कहते हैं। इसमें दुलकी से अधिक आराम मिलता है। जिस तरह कोई आदमी प्रातः भ्रमण के लिए जाते समय कुछ तेजी से टहलता है, ठीक उसी तरह घोड़ा भी **सागाम** चाल में कुछ तेज चलता है। ऊपर को उछट्टी मारते हुए घोड़े का कूदना **कुलाँच** (फा० कुलाच—स्टाइन०) कहाता है।

एक चाल जिसमें घोड़े की लगाम काफी ढीली रहती है। शरीर पर जोर देकर घोड़े को चलना पड़ता है। कटाई के समय जैसे कैंची के फल चलते हैं, ठीक उसी तरह घोड़े की टाँगें पड़ती हैं। इस चाल में न घोड़े का शरीर हिलता है और न सवार। इसे **रुहाल** कहते हैं।

धम्मक और **नासनी** चालें भी होती हैं। ये प्रायः जैपुरी जाति के घोड़ों में पाई जाती हैं। **'नासनी'** शब्द का सम्बन्ध सम्भवतः सं० 'न्यासनिका' से है। नासनी चाल में अगली टाँगों में से कोई न कोई हर समय उठी हुई और घुटने पर से मुड़ी हुई रहती है। दुलकी चाल चलते समय घोड़ा बीच-बीच में उछट्टी-सी मारता चलता है, उस उछट्टीवाली चाल को **'लंगूरी'** कहते हैं।

दो मिली हुई चालें **दुगामा** कहाती हैं। दुलकी और कदम मिलकर **दुगामा** चाल कहाते हैं। एक चाल **चौगामा** कहलाती है। चौगामा में क्रमशः चार चालों का दिखावा है। अक्सर गाँवों में बरात की चढ़त पर कुछ सवार अपने घोड़ों को **चौगामा** में चलाते हैं। थोड़ी-थोड़ी देर बाद **कदम, रुहाल, दुगामा** और **सागाम** की चालों में घोड़े को चलाना ही **चौगामा** कहलाता है।

एक बहुत मुश्किल और प्रसिद्ध चाल **चूँमक धम्चाल** है। इस चाल को होशियार सालोत्तरी ही जानता है। इस चाल के लिए घोड़े को खास तौर से अभ्यस्त किया जाता है। चूँमक धम्चाल के समय घोड़ा क्रमशः अपने अगले घुटनों को मुँह से चूमता चलता है। चूमते समय वह घुटने को ऊपर उठाता भी है।

एक चाल, जिसमें घोड़ा अगले घुटनों में से एक-एक को क्रमशः सीने से लगाता चलता है, **इकवाई** कहाती है। इसी चाल से मिलती-जुलती एक चाल **लँगड़ी** कहाती है। इसमें सदा अगला एक ही पैर लगातार उठा रहता है और शेष तीन पैरों से घोड़ा चलता रहता है।

§२६७—**घोड़ों के सामान्य रोगों के नाम**—कभी-कभी घोड़े को एक रोग हो जाता है, जिसमें उसकी नाक से पानी-सा बहता रहता है। इसे **सकनार** या **नकार** कहते हैं। बैलों के जैसे मुँजे फूटते हैं और शरीर में से कई जगहों पर खून निकलने लगता है, ठीक उसी तरह से घोड़े की चारों टाँगें **लोहू-लुहान** (खून से लथपथ) हो जाती हैं। वह चलने से मजबूर हो जाता है। इस रोग को **चौरंगा** कहते हैं। जिस रोग में घोड़े के मुँह का **तरुआ** (तालु) फट जाता है, वह **तरवाई** कहाता है। इसी तरह एक रोग **थमचाई** होता है, जिसमें घोड़े का एक पाँव आगे तनकर अकड़-सा जाता है।

घोड़े की टाँग में एक द्रव पदार्थ होता है। वह नसों द्वारा बहता हुआ टाप की **पुतली** (सुम के नीचे तलवे में एक खास जगह) में से बाहर निकल जाता है। इस द्रव पदार्थ को **रस** कहते हैं। टाँग में **रस** के रुक जाने से कई रोग पैदा हो जाते हैं। घोड़े की तिली में एक मोटी-सी नस **नली** कहाती है। इस नली में जब रस रुक जाता है और तिली सूज जाती है, तब वह रोग

(६) **मुँह के रोग—गुम्मबाइ** रोग में मुँह सूज जाता है और घोड़ा चुप-चाप पड़ा रहता है। एक रोग **दुसाकबाइ** होता है। इस रोग में घोड़े के मुँह पर खून निकलने लगता है। **साँख** रोग में घोड़ा मुँह खोलकर लम्बी-लम्बी साँसें भरता है और जल्दी हार जाता है, अर्थात् चलते-चलते जल्दी थक जाता है। कान के पास सूजन आ जाय तो उस रोग को '**गलसुरा**' कहते हैं। **खबक** रोग में गले में छाले पड़ जाते हैं।

(७) **पेट के रोगों के नाम—अफरा, अखरखुली, मरोरा, ऐंठन, आम** (आँव) आदि पेट के ही रोग हैं। इन रोगों से पेट में दर्द उठता है। एक रोग '**कुरकुरी**' या **कुसकुसी** कहाता है। इसमें घोड़े के पेट में बड़ा दर्द होता है, तब वह थोड़ी-थोड़ी देर में खड़ा होता और लेटता है।

(८) **टाँगों के रोग**—घोड़े के अगले और पिछले पैरों में जब बाहर की ओर हड्डी बढ़ जाती है, तब उस रोग को **हाडिन** या **बजरहड्डी** कहते हैं। जब अगले पैर की हड्डी फूल जाती है, तब उस रोग को **बेलहड्डी** कहते हैं। जब घोड़े का पिछले पैर का घुटना 'फूल' जाता है, तब वह रोग **भोखड़ा** या **जनुआँ** कहाता है।

जब अगली या पिछली टाँगों के सुम चलने में एक दूसरे से लगते हैं, तब वह रोग **नेबर** कहाता है।

पिछली टाँगों की गाँठें सूख जायँ तो वह रोग **मूतरा** कहाता है।

घोंटू सूजने पर **घोंटुआ** रोग कहा जाता है।

घोड़े की चारों टाँगें जब लकड़ी की भाँति तन जाती हैं तब उस रोग को **उतकनबाइ** कहते हैं। इसी तरह **संतनबाइ** और **झनकबाइ** भी टाँगों में ही होते हैं। इन रोगों में घोड़े की टाँगों में दर्द होता है और वे सूज जाती हैं।

सुम में एक रोग होता है, जिसे **थालभस्स** या **थलभरसा** कहते हैं।

(९) **पूँछ का रोग**—पूँछ (सं० पुच्छ) का एक रोग **बम्हनी** कहाता है। इसमें घोड़े की पूँछ के बाल गिर जाते हैं, और अन्त में पूँछ भी सूखकर बहुत पतली पड़ जाती है।

घोड़े की रोगीली टाँग और रोग [रेखा-चित्र ३७]।

§२६९—**घोड़ा बँधने का स्थान**—खुली हुई जगह जहाँ घोड़ा बँधता है, '**थान**' (सं० स्थान) कहाती है। घोड़ा बँधने का कोठा या पटावदार दालान-सा स्थान **असबल** (अ० अस्तबल), **तबेला** या **घुड़सार** (सं० घोटशाल) कहाता है।

थान के सम्बन्ध में कहावत है कि—

"घोड़ा और बर थान पै ही पुजतएँ।"[1]

(२) ऊँट, गधा और कुत्ता

§२७०—गधा और कुत्ता किसान के जीवन से अप्रत्यक्ष रूप में सम्बन्धित हैं। ऊँट तो किसान की खेती में काम आता ही है। ऊँट को '**बलबला**' या **करहा** (सं० करभक)[2] भी कहते हैं।

---

[1] घोड़ा और वर (वह लड़का जिसको लड़कीवाला ब्याह करने की दृष्टि से देखने आता है) अपनी जगह पर ही सम्मान पाते हैं।

[2] "पृथ्वीराजः करभकण्ठ कडारमाशो ॥"

—माघ : शिशुपालवध, ५।३

लेता है, तो वह एकदम **रौंहद** (उछल-कूद) मचा देता है और **गौनि** (सं० गोणी = सिली हुई दुत-रफा बोरी) को पटककर **फड़फड़ी** (दौड़) भरने लगता है। छोटी गौनि को **गौनरी** कहते हैं। पाणिनि के समय में गोणी और गोणीतरी शब्द प्रचलित थे।[1]

गधे के सम्बन्ध में लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—

"गधाऐं दयौ नौंन गधा ने कही मेरी आँख फूटी।"[2]

§२७२—कुत्ते को **कूकुरा** (सं० कुक्कुर) भी कहते हैं। कुत्ते के भोंकने के लिए **भूकना, भौंकना, भूसना, भौंसना और घूँसना** क्रियाएँ प्रचलित हैं।

§२७३—कुत्ते के बच्चे को **पिल्ला** कहते हैं। जो कुत्ते पालतू नहीं होते और इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं, वे **लहैंड़ी** कहाते हैं। कुत्तों के समूह को '**लहैंड़**' कहते हैं।

पंजों के नाखूनों के विचार से कुत्तों के कई नाम हैं। जिसके प्रत्येक पंजे में पाँच-पाँच नाखून हों, वह **पंचा** और यदि छः-छः हों तो **छंगा** कहाता है। यदि चारों पंजों में बीस **न्हौ** (नाखून) हों तो उसे **बीसा** कहते हैं। रंगों के आधार पर भी **करुआ, ललुआ, कबरा** (सफेद + काला) **चितकबरा** (सं० चित्रक + कर्बुर = काला और सफेद) और **भूरंगा** नाम होते हैं। यदि किसी कुत्ते के **खाज** (खारिश) हो तो, उसे **खजैला या खजुला**) और जिसकी देह पर **बघी** (एक प्रकार के उड़नेवाले कीड़े जो कुत्तों की गर्दनों पर चिपटे रहते हैं) अधिक चिपटी हों, तो उसे **बग्घिया** कहते हैं।

जब कुत्ते को अपने पास बुलाने के लिए आवाज लगाई जाती है, तब "**लैकूर, कूर, कूर**" या "**आ लै लै लै**" कहकर पुकारते हैं। मेरठ की कौरवी में "**तू लै, तूलै, तूलै**" कहकर कुत्तों को बुलाते हैं। बड़े-बड़े बालोंवाला कुत्ता **झबुआ** और कुतिया '**झब्बो**' कहाती है।

पालतू कुत्ते की गर्दन में चमड़े की एक पट्टी बँधी रहती है, उसे **बद्दी** (सं० बद्‌ध्री = चमड़े का पट्टा) कहते हैं।

---

[1] "कासू गोणीभ्यां ष्टरच्"

—पाणिनि : अष्टा० ५।३।९०

[2] गधे को किसी व्यक्ति ने नमक दिया, लेकिन गधे ने समझा कि मेरी आँख फोड़ी जा रही है। यह लोकोक्ति उस समय कही जाती है जब कि किसी के साथ में नेकी की जाय और वह उसे बड़ी समझे।

प्रकरण ७

पशुओं से सम्बन्धित वस्तुएँ
और
किसान की सांकेतिक शब्दावली

हैं। जब चुनी में भुसी मिला दी जाती है, तब वह मिश्रण **बाट** कहाता है। बाट की सानी पौहे के लिए रहीम की उक्ति के अनुसार मीठे पर का **नोंन** (सं० लवण>लउन>लौन[१]>नोन) समझिए।

§२७६—बकरी और ऊँट को पेड़ों की **गुदलइयाँ** (टहनियाँ) काट-काटकर खिलाई जाती हैं। गुदलइया को **लहरा** भी कहते हैं। पेड़ की बड़ी शाखा **गुद्दा** और छोटी **गुद्दी** कहाती है। ऊँट गुद्दियों पर से पत्तियाँ और **किलसियाँ** खा लेते हैं।

§२७७—जब बछड़ा, बछिया या पड़िया आदि के पेट में चारे का पचाव ठीक नहीं होता है, तब उस अपच को **औगुन** कहते हैं। पेट फूलना **'अफरा'** कहा जाता है। अफरा या औगुन को दूर करने के लिए **मठा** (छाछ या तक्र) में नमक मिलाकर पिला दिया जाता है। इसे **मठौंना** (मठा + नोंन) कहते हैं। बाँस की एक पोली नली जो एक ओर से बन्द होती है, **नार** या **नरुका** कहाती है। इस नार में मठौंना भरकर औगुन या अफरावाले पौहे के मुँह में उँड़ेल दिया जाता है।

एक थैला, जो चमड़े का बना हुआ होता है और जिसमें किनारे पर दो चमड़े की **पटारें** (तस्मा) जुड़ी रहती हैं, **तोबड़ा** (फ़ा० तोबरा—स्टाइन०) कहाता है। उसमें **रातिब** (अ० रातिब = चने का दाना जिसे घोड़े खाते हैं) या **महेला** (उबली हुई मोठ और गुड़ मिलाकर बनाया हुआ खाद्य) भर दिया जाता है और उसे घोड़े के मुँह के आगे लटका दिया जाता है। तोबड़े में से घोड़ा **रातिब** को धीरे-धीरे खाता रहता है।

पौहे को **अफरा** (एक रोग जिसमें पेट फूल जाता है) बीमारी हो जाने पर उसे एक दवा दी जाती है, जिसमें तेल, गुड़, सोंठ और हल्दी मिली होती है। इसे औटाकर पौहे को पिलाया जाता है। इसको **औटी** कहते हैं।

अध्याय २

पशुओं को बाँधने में काम आनेवाली वस्तुएँ

§२७८—**धरती** (सं० धरित्री) में गड़ी हुई लकड़ी जिससे पशु बाँधे जाते हैं, **खूँटा** कहाती है (देश० खुंट = खूँटा या खूँटी)। गाँव में आई हुई **बरात** (सं० वरयात्रा) के **भारकसों** (फ़ा० बारकश = गाड़ी—स्टाइन०) के बैलों को बाँधने के लिए जो खूँटे दिये जाते हैं, उन्हें **मेख** (फ़ा० मेख़) कहते **हैं**। **जनमासे** (सं० जन्यवास>हिं० जनवासा = बरातियों के ठहरने का स्थान) में गड़े हुए सब खूंटे मेख ही पुकारे जाते हैं। मेखों को धरती में गाड़नेवाला **मेखिया** कहाता है। जिस मोटी और भारी लकड़ी से मेखें ठोंकी जाती है, वह **मोंगरी** (सं० मुद्गरिका) कहलाती है। इसका आगे का हिस्सा **मुड्ढा** और पीछे पकड़ने का **हत्था** या **बेंट** कहाता है। मोंगरी मेख से कहती **है**—

> "कहै मेख ते बैठी मोंगरी। मोते चौं तू करै चैंगरी॥
> तनिक मेखिया लावै ढूँढ़। तौ मारूँ तेरे मूँड़ ही मूँड़॥"[२]

---

[१] "नैन सलोने अधर मधु, कहि रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लोन पर, अरु मीठे पर लौन॥
—सं० मायाशंकर याज्ञिक, रहीम—रत्नावली, दोहावली, दो० ११२।

[२] बैठी हुई मोंगरी मेख (खूँटा) से कहने लगी कि तू मुझसे जली-कटी बात क्यों कहती है? यदि मेखिया मुझे कहीं से तलाश करके ले आवे, तो मैं फिर तेरे सिर पर ही मार बजाती हूँ।

§२७६—जिन रस्सियों से पशु बाँधे जाते हैं, वे कई तरह की होती हैं। रथ, गाड़ी आदि में जुते हुए बैलों की **नाथों** (=नाक में पड़ी हुई रस्सी; दे० नत्था—दे० ना० मा० ४।१७) में जो दो लम्बी रस्सियाँ बँधी रहती हैं, उन्हें **रास** (सं० रश्मि) कहते हैं। बछड़ी, कटड़ा (भैंस का बच्चा) और पड़वा (भैंस का बच्चा) आदि के बाँधने के लिए जो छोटा रस्सा काम आता है, वह **जेवरा या पगहा** कहलाता है। जेवरे से पतली रस्सी को **जेवरी**[1] कहते हैं। बहुत लम्बी रस्सी जो जेवरी से मोटी होती है और पशुओं को पानी पिलाने में काम आती है, **डोर** (दे० दवर—दे० ना० मा० ५।३५) कहलाती है। डोर से मोटी रस्सी को **लेज** कहते हैं। डोर और लेज से किसान कुएँ से पानी खींचकर पशुओं को पिलाता है। लेज से भी मोटी और लम्बी रस्सी, जो लढ़िया (लम्बी बैलगाड़ी) के सामान के ऊपर बाँध दी जाती है, **बरती या लास** कहलाती है। बैल चलाने की पुरानी बर्त में से कुछ टुकड़े काट लिये जाते हैं, जिनसे कि किसान प्रायः भैंसे बाँध लिया करते हैं। बर्त के उन टुकड़ों को **बरैंड़ा** कहते हैं। किसान पशुओं के काम आनेवाली रस्सियों में कई तरह के फन्दे और गाँठें लगाते हैं।

§२८०—डोर में एक प्रकार का फन्दा जो सरकता है और घड़े की गर्दन में लगता है, **खाँसा या फाँसा** (सं० पाशक) कहलाता है। लोटे या घड़े की गर्दन को फाँसे में फाँसकर कुएँ से पानी खींचते हैं। पशुओं को खूँटों से बाँधने के समय **पगहे** (एक छोटा रस्सा) में जो **सरकउआ** (सरकने-वाला) फन्दा लगाया जाता है, उसे **खूँटा-फंदा** कहते हैं।

नीचे-ऊपर लगी हुई बहुत कड़ी और दुहरी एक गाँठ जो खोलने पर भी न खुले, **गुरगाँठ, घुरगाँठ या घुर्गाँठ** कहलाती है। एक गाँठ, जो दुहरी तो लगती है, लेकिन रस्सी का एक सिरा खींचने पर तुरन्त खुल जाती है, **सरकफूँद** कहलाती है। कभी-कभी पगहे को खूँटे में मजबूती से बाँधने के लिए किसान खूँटे के ऊपर पगहे का एक मोड़ और लगा देता है, उसे **मोरा** कहते हैं। पतली रस्सी को हाथ की पाँचों उंगलियों में डालकर जो फंदेदार गाँठें लगाई जाती हैं, उन्हें **मोर-पंजा** कहते हैं। **बरती** (बैलों का समूह) पैननेवाले व्यापारी अपने बैलों के रस्सों में [illegible] की तरह के फन्दे लगाकर जो गाँठें बनाते हैं, वे **ब्योंकरी** कहलाती हैं। गाय-भैंस की नज़र-गुज़र के लिए गले में एक काली डोरी बाँधते हैं, जिसमें पास-पास कई गाँठें होती हैं। उस डोरी को **गंडा या गंडापैंड़ा** कहते हैं। गंडे की प्रत्येक गाँठ गुरगाँठ की भी मानी होती है। कहावत है—

"बहुत मारि ताप गंडा न टूटै।"[2]

कभी-कभी रस्सी में जोड़ देने के लिए **पैंठ** (सं० [illegible]=[illegible]) [illegible] का सीधा पेंच रहता है [illegible] **बिच्छ-गाँठ** (सं० [illegible]ग्रंथि) कहते हैं। एक गाँठ [illegible] **मुद्धा** [illegible] **मोरकचाहू** [illegible] **मोरक-पंधा** भी कहते हैं। [illegible]

* [illegible]

[1] [illegible]

—[illegible]

[2] [illegible]

टाँग) कहते हैं। गाय या भैंस के कुछ बच्चे अपना रस्सा खोलकर चुपके-से थनों में से दूध पी जाते हैं। उन बछरों या पड्डों केमुँह पर कैंचीनुमा X दो नोंकीली लकड़ियाँ बाँध देते हैं। जब वे दूध पीना आरम्भ करते हैं, तब गाय-भैंस के ऐन में उन लकड़ियों की नोंकें छिदती हैं। इन कैंचीनुमा लकड़ियों को **कठकीला** (सं० काष्ठकीलक) कहते हैं। जब म्हौरी में काँटे लगा दिये जाते हैं, तब वह **कँटीला** कहाती है। (चित्र ४२)

§२८६—घोड़े या गधे की टाँगों में सुमों से ऊपर एक रस्सी बाँधी जाती है। इस रस्सी का एक सिरा घोड़े की अगली टाँग में और दूसरा सिरा उसी तरफ की पिछली टाँग में बाँध दिया जाता है। यह रस्सी इतनी छोटी होती है कि घोड़े का पूरा कदम खुलकर नहीं पड़ सकता, इसे **पैंड़** या **धगना** कहते हैं। यदि यही **पैंड़** घुटनों के ऊपर बाँध दिया जाता है तो **धगना** कहाता है। जो पैंड़ ऊँट के बाँधा जाता है, उसे **धामन** कहते हैं, लेकिन धामन अगले दोनों पैरों में बँधता है। घोड़े-गधे का जो **धगना** कहाता है, वही रस्सी ऊँट के घुटनों पर **मुजम्मा** कहाती है।

बढ़िया अरबी घोड़े की पिछली दोनों टाँगें अलग-अलग दो लम्बे रस्सों से बाँधी जाती है और वे दोनों रस्से अलग-अलग दो खूँटों से बाँध दिये जाते हैं, ताकि घोड़ा **दुलत्ती** न फेंक सके। इन रस्सों को **पिछाई** कहते हैं।

§२८७—बकरी के बच्चे कभी-कभी चुपके-से बकरी के थनों से सारा दूध पी जाते हैं। इसकी रोक के लिए किसान बकरी के थनों से एक तनीदार थैला बाँध दिया करता है। थन उसमें ढक जाते हैं, फिर बच्चे दूध नहीं पी सकते। इस थैले को **थनैता** या **थनत्ता** (संभवतः सं० स्तन + सं० लक्तक>थण + लत्तअ>थनलत्ता>थनत्ता) कहते हैं।

कभी-कभी कपड़े की दो लम्बी चीरें लेकर उन्हें बकरी की मसली हुई **मेंगनियों** (लेंड़ी) में मिला लेते हैं और फिर उन चीरों को बकरी के थनों से लपेट देते हैं। इन्हें **'चीनी'** कहते हैं। **'चीनी'** के छुड़ाने पर ही थनों से दूध निकल सकता है, अन्यथा नहीं।

§२८८—बैठे हुए ऊँट की गर्दन और अगली दोनों टाँगों में लोहे की एक साँकर डालकर ताला लगा दिया जाता है, इस साँकर को **बेल, तारा** या **नेवर** (फ़ा० नेवारा—स्टाइन०) कहते हैं। नेवर लग जाने पर ऊँट जहाँ का तहाँ ही बैठा रहता है।

ऊँट, बैल आदि को कभी-कभी बोरों से बनी हुई लम्बी-चौड़ी चादर-सी में भुस-न्यार आदि खिलाया जाता है। उसे **पल्ली** या **झोरी** कहते हैं। झोरी के कोनों पर डोरियाँ भी बाँध दी जाती हैं, जो **बँधना** या **कसना** कहाती हैं।

अध्याय ३

पशुओं के रोकने, चलाने और सजाने आदि में काम आनेवाली वस्तुएँ

§२८९—**बैलों से सम्बन्धित वस्तुएँ**—बैल को रोकनेवाली वस्तुओं में **नाथ** (देश० णत्था) और चलानेवालियों में **पैना** मुख्य है। नाक में पड़ी रस्सी **नाथ** और हाँकने में काम आने-वाली डण्डी **पैना** (सं० प्राजन) कहाती है। 'नाथ' और 'पैना' के सम्बन्ध में लोकोक्तियाँ—

(अ० तथा फ़ा० तुर्रा) कहाता है। कभी-कभी बैल या घोड़े को अरहर या नीम आदि की हरी और पतली डण्डी से भी हाँकते हैं। उसे **संटी या कमची** कहते हैं। सूरदास ने 'संटी' को **साँटी** या साँटि[1] लिखा है।

बैलों को सजाने के लिए उनके सींगों पर जो कपड़ा लपेटा जाता है, उसे **सेली, सेला, स्वाफा या मुड़ासा** कहते हैं। तुलसीदास ने **सेल्ही**[2] शब्द का प्रयोग किया है।

नाक की नाथों में और गले के गण्डों में एक पीतल की कुन्देदार वस्तु पड़ी रहती है, इसे **तारी** कहते हैं। एक डोरी में बजनी पीतल की **टाल** और बजने पीतल के बजनेवाले **घूँघरे** भी पुहे रहते हैं। बड़े घूँघरों को **गलगला** भी कहते हैं। जब छोटे-छोटे घूँघरों को एक चमड़े की पटार में टाँक दिया जाता है, तब वे **चौरासी** कहाते हैं। टालों के बीच-बीच में पीतल की एक लम्बी और पोली नली-सी पड़ी रहती है, उसे **करेली** कहते हैं। डहीर, मोर पँच या **मोरपंख** (सं० मयूर-पक्ष) को चौड़ी पट्टी के रूप में बुनकर बैल की गर्दन में डाल देते हैं; उसे **सेहली** कहते हैं। ताबीज और साँकरी भी गर्दन में ही पहनाई जाती है। कभी-कभी मुँह के ऊपर सींगों के **मखेरा** (एक चौड़ी चमड़े की पट्टी, जिसमें २०-२५ पतली पटारें निकली रहती हैं) पहनाया जाता है।

बैलों की पीठ और पेट को ढँकने के लिए और बैल को सुहावना बनाने के लिए कपड़े की बनी हुई **झूलें** पहिनाई जाती हैं। झूलें रंग-बिरंगी होती हैं। ऊपर-नीचे भी अलग-अलग रंग होते हैं। सम्भवतः इसीलिए बाण ने हर्षचरित में झूल के लिए '**वर्णक**'[3] शब्द का प्रयोग किया है। झूल की तनियाँ जो बैल के पेट पर बँधती हैं, **पेटी** कहाती हैं। पीछे दो घुंडियाँ लगी रहती हैं, उनमें पिछले दोनों कोनों को लौटकर हिलगा देते हैं। वह लौटा हुआ भाग **पलेट** कहाता है। झूल की वह पट्टी जो बैल की पूँछ के नीचे रहती है, **पुछौटी** या **पुछैटी** कहाती है।

जिस समय मूँगों की **कंठी, टाल, गलगला, चौरासी,**[4] **मुड़ासा** और **झूलों** से सजी हुई रथ की नामी जोट **हल्ले** के साथ घनघोर मचाती हुई चलती है, उस समय रथवान भी अपने को गौरववान् समझता है। बरात में **भारकसों** (फ़ा० बारकश = गाड़ियों) की दौड़ में **घूँघरों** की घोर, **टालों** की टलटल तथा **गलगलों** की गलगलाहट किसान के कानों को अपूर्व सुख देती है और उसका मन बाँसों उछलने लगता है। **गड़वारे** (गाड़ी हाँकनेवाला) की हथेली का **नेंक टोहका** (किंचित् स्पर्श) लगते ही और '**हाँ बेटा**' (ओ पुत्र) शब्द के सुनते ही जो जोट हवा से बातें करने लगती है, उसी का गड़वारा (गाड़ीवान) उस समय अपनी जिन्दगी की सारी **हौंस** (अ० हवस = लालसा) पूरी कर लेता है और अपने परिश्रम को पूर्ण सफल समझता है। किसान चलते और अच्छे बैल को '**बेटा,**' '**सितावी**' आदि नामों से शाबासी देता है, लेकिन **सीरे-धीरे** (सुस्त) और **बज्जे** (दोषयुक्त) बैल को चलाते समय वह झींकता जाता है, और गुस्से की **भाड़** (आवेश) में '**कनास**', '**कंस**' आदि नामों से पुकारता है।

---

[1] "बार-बार अनरुचि उपजावति महरि हाथ लिये **साँटी**।"
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।२५४

[2] "ओझरी की झोरी बाँधे आँतनि की सेल्ही बाँधे।"
—तुलसी : कवितावली, तुलसी ग्रन्थावली, दूसरा खण्ड, काशी ना० प्र० सभा, ६।५०

[3] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल के कथनानुसार बाणकृत हर्षचरित (निर्णय-सागर प्रेस, पंचम संस्करण) के चतुर्थ उच्छ्वास में पृ० १४५ पर 'वर्णक' शब्द 'झूल' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।
—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ८२।

[4] "**चौरासी** समान कटि किंकिनी विराजति है।"
—सं० उमाशंकर शुक्ल : सेनापतिकृत कवित्त रत्नाकर, ३।६०

गधे की नंगी पीठ पर जो कपड़ा पहले डाला जाता है, उसे **छई** कहते हैं। छई के ऊपर गधे के **रीढ़ा** (रीढ़ की हड्डी) की रक्षा के लिए ईंडुरी के ढंग की गद्दीदार ऊँची वस्तु जमाई जाती है, जिसे **सूँड़ा** कहते हैं।

जब सूँड़ा ठीक तरह रीढ़ा पर जमा दिया जाता है, तब उसके ऊपर एक सन या सूत का रस्सा कस दिया जाता है। इसे **पलानना** या **पलान कसना** कहते हैं, और वह रस्सा पलाट कहाता है। **छई, सूँड़ा और पलाट**--इन तीनों का सामूहिक नाम **पलान** (सं० पर्याण> प्रा० पल्लाण>हिंदी पलान) है। 'पलान' शब्द सं० 'पर्याण' से व्युत्पन्न है।
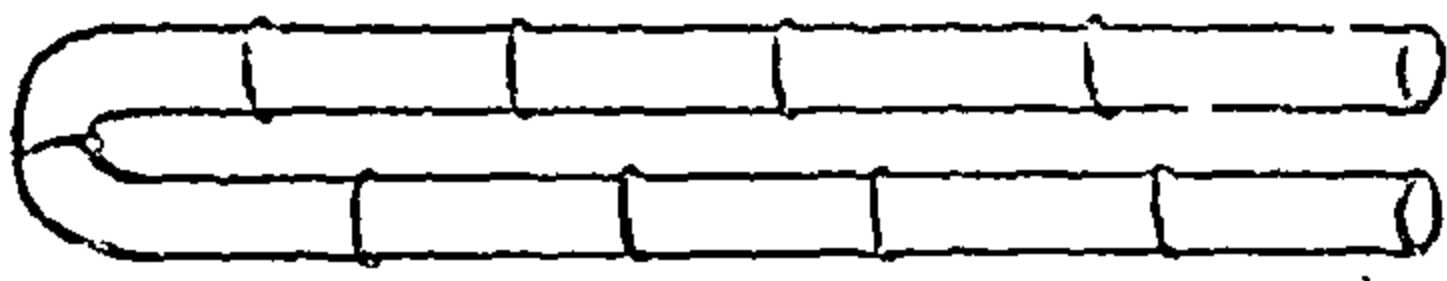
[रेखा-चित्र ५०]

यदि गधे की पीठ पर **कौद** (घाव) हो, तो उसके बचाव के लिए छल्लेनुमा गोल और मोटी गद्दी रख देते हैं, जिसे **कूँड़रा** कहते हैं। **कूँड़रा और सूँड़ा** दोनों को ही पलाट से कस दिया जाता है।

पलान तैयार हो जाने पर कुम्हार गधे पर **बोरा** रख लेता है। रस्सी से बुना हुआ जालीदार थैला जिसमें ईंट, मिट्टी और कण्डे आदि भरे जाते हैं, **बोरा** कहाता है। पटसन या काली ऊन का बना हुआ दुपल्लू और दुरुखा बोरा **गौन** कहाता है। गौन में प्रायः नाज ही भरा जाता है। कहावत है—

"गधा न कूदौ कूदी गौन ॥"[1]

पलान सहित कुम्हार का एक गधा देखिए (चित्र ६)।

§२६२—ऊँटों से सम्बन्धित वस्तुएँ—ऊँट की वस्तुओं में से मुख्य **काँठी** (लकड़ी का बना हुआ हौदा) और **नकेल** (नाक में पड़ी हुई कील) है। काँठी कसते समय सबसे पहले जो गद्दीदार कपड़ा ऊँट की पीठ पर डाला जाता है, उसे **गदैनी** कहते हैं। सवारी की काँठी **'कूँची'** कहाती है। कूँची का **काँठरा** (त्रिभुजाकार काठ) **ताड़ी** कहाता है।
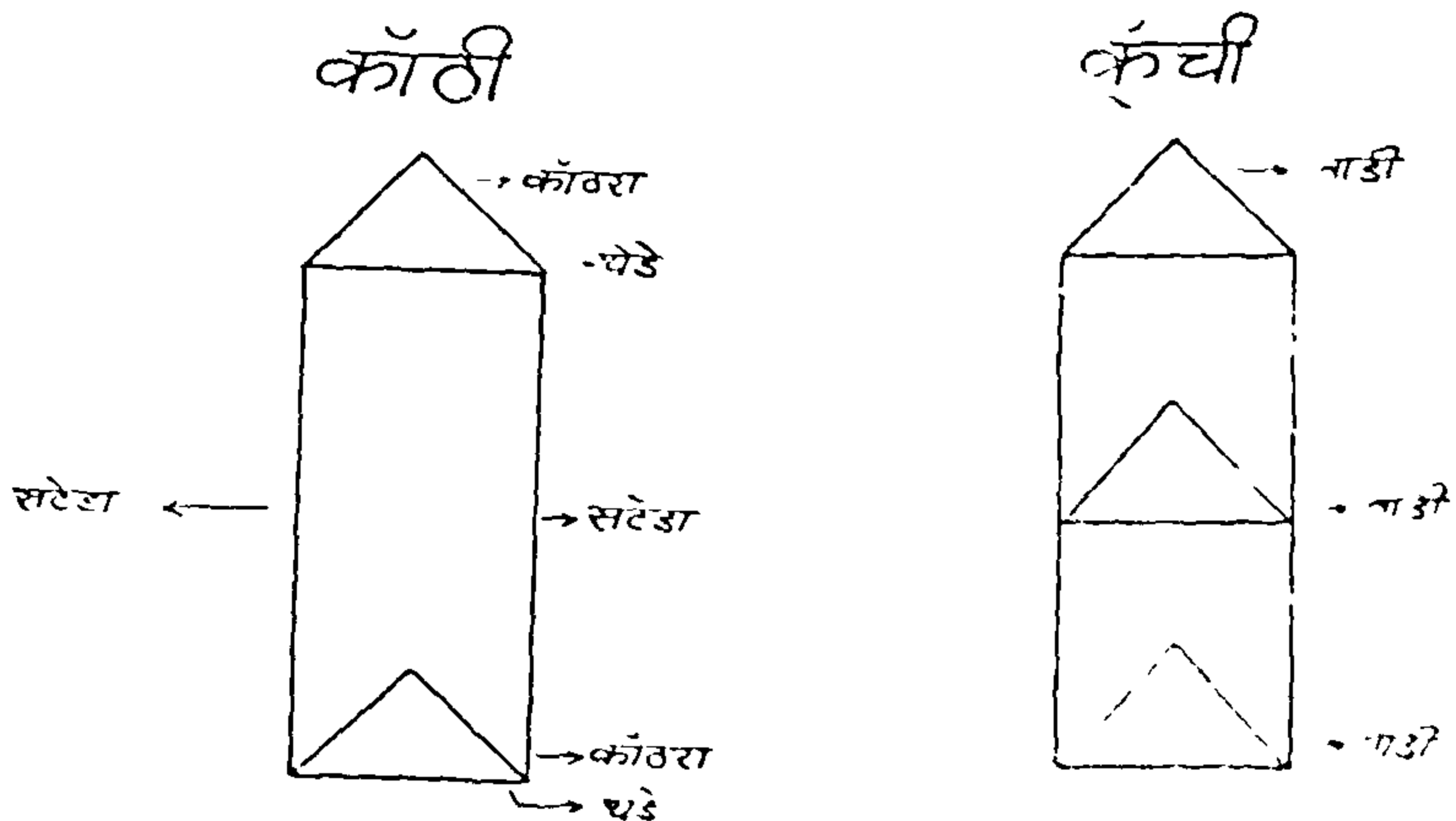
[रेखा-चित्र ५१, ५२]

[1] गधा तो कूदा नहीं, लेकिन उसकी पीठ पर रक्खी हुई गौन कूद पड़ी, अर्थात् बड़ा आदमी तो शान्त बना रहा, लेकिन उसका आश्रित छोटा आदमी इतराने लगा।

ऊँट की काठी में स्थान जिसे गीन होते हैं। कुहान के आगे-पीछे रखी जानेवाली दो काठियाँ **थड़े** कहाती हैं। थड़ों के ऊपर आगे-पीछे दो त्रिभुजाकार काठ के टोल्हे लगे रहते हैं, इन्हें **फाँटना** कहते हैं। दोनों काठियों को जोड़नेवाले तीन-तीन डंडे दाईं-बाईं ओर लगे रहते हैं, जो **मचैंगा** कहाते हैं। (चित्र ३०)

ऊँट की नाक में जो लोहे की कील पड़ी रहती है, उसे **नकेल** या **नाकी** कहते हैं। नाकी और उसमें बँधी हुई रस्सी को मिलाकर भी **नकेल** कहते हैं। **सिकरम** (ऊँट गाड़ी) में जुतनेवाले ऊँट की छाती के आगे एक मोटा रस्सा पड़ा रहता है, जिस पर कपड़ा लिपटा हुआ रहता है। इसी के सहारे ऊँट सिकरम खींचता है, उसे **गोरबन्द** कहते हैं।

ऊँट की काठी पर बैठे हुए सवार को जो हाल लगती है, उस हाल को **मचोका** कहते हैं। मचोकों से पेट का पानी न हिले, इसलिए सवार कमर से एक कपड़ा कस लेता है, जो **कमरकसा** कहाता है।

§२६३—हाथी से सम्बन्धित वस्तुएँ—हाथी की पीठ पर रक्खा जानेवाला लकड़ी का चौखटा जिसमें आदमी बैठते हैं, **हौदा** (अ० हौदज—) कहाता है। इसको **अम्मारी** (अ० अम्मारी) भी कहा जाता है।

लोहे की वह मोटी साँकल, जो हाथी की टाँगों में डाली जाती है, **अलानी**[1] (सं० आलानिका) या **बेड़ी** कहाती है। हाथी के माथे पर सफ़ेद, काला और लाल रंग लगाया जाता है। इसे **तिलक** या **चीतन** (सं० चित्रण) कहते हैं।

हाथी हाँकनेवाले को **हाथीवान** या **पीलवान** (फ़ा० पील + वान) कहते हैं।
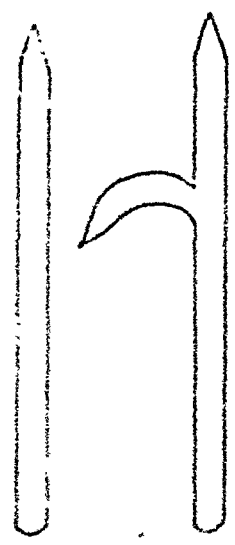
[illegible]

[illegible]

[1] [illegible]

हाथी चलाने के दो औजार होते हैं, जो लोहे के बने हुए भारी और नोंकदार होते हैं—
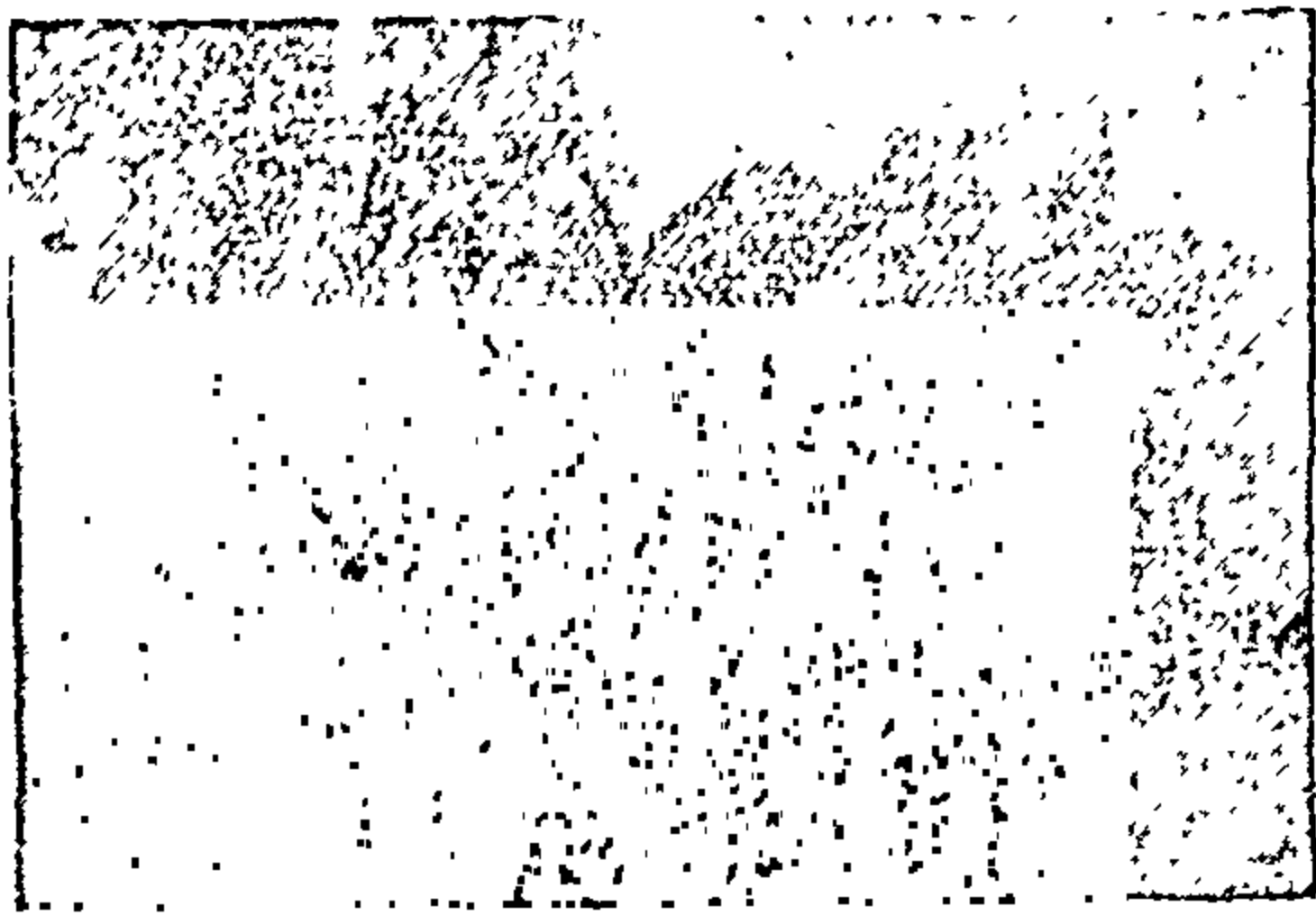
[चित्र १०]

(१) आँकुश (सं० अंकुश) लोहे का बना हुआ छोटे त्रिशूल की भाँति का एक औजार होता है। (२) लगभग एक गज लम्बा लोहे का भारी और नोंकदार एक डंडा-सा होता है, जिसे **तुम्मर** (सं० तोमर)[1] कहते हैं। बिगड़ैल (दंगली) हाथी को चलाने के लिए तुम्मर से काम लिया जाता है।

आँकुस और तुम्मर, देखिए (चित्र ५३, ५४)

हाथी के खाने की सामग्री **भाँउ-ताँउ** (किंचिन्मात्र) नहीं होती; वह तो **अनाप-सनाप** (बहुत ज्यादा; सीमा से अधिक) खाता है। हाथी के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति भी प्रचलित है—

"हाथी के पायँ में सबकौ पायँ ॥[2]

बहुत मूल्य की वस्तु अथवा बहुत धनी व्यक्ति कितना ही बिगड़ जाय, किन्तु वह साधारण वस्तु या व्यक्ति से बढ़कर ही सिद्ध होता है। इसी अर्थ में कहावत प्रचलित है कि "लटौ हाथी बिटौरा की दर तौ देतुई ऐ।" अर्थात् कमजोर तथा सूखे शरीरवाला हाथी **बिटौरा** (सं० विष्ठा-कूट + क>विट्ठाऊर + अ>विट्ठौरा > बिटोरा = उपलों से बनाया हुआ ऊँचा कूट-विशेष) का मूल्य तो देता ही है।

अध्याय ४

किसान की सांकेतिक शब्दावली

§२९४—कुँए से सिंचाई करने में दो आदमी लगते हैं। बैलों की सहायता से चरस द्वारा कुँए से पानी निकालने की विधि **पैर** कहाती है। पैर चलाने में एक आदमी **पुर** (चरस) लेता है, जिसे **पच्छिहा** कहते हैं, और दूसरा बैलों को चलाता है, जिसे **कीलिआ** कहते हैं। जब **पच्छिहा** पुर लेता है, अर्थात् कुँए में से आये हुए भरे पुर को **पारछे** (कुँए का किनारा या मन जहाँ पुर का पानी डाला जाता है) में रखता है, तब **'आइगये राम,'**

[1] "भीमाश्च मत्तमातंगास्तोमरांकुशनोदिनाः।"
—महाभारत, सातवलेकर संस्करण, विराट-पर्व, गोहरणपर्व, अध्याय २२, श्लोक ३।

[2] बड़े तथा समर्थ जनों का ही सब अनुसरण करते हैं। इससे मिलती-जुलती संस्कृत की उक्ति है—"महाजनो येन गतः स पन्थाः।"

"आरे राम हमारे। तुम जोरौ ऐंचन हारे।"
"आदे राम कुआ में ते। फौली लेउ नकुआ में ते॥"

कहता है। इसका अर्थ यह है कि पुर कुँए में से अपने ठीक स्थान पर आ गया। अब **कौलिआ** को वर्त में से फौली निकाल देनी चाहिए, ताकि बारहे में पुर का पानी डाला जा सके।

पैर के कुँए पर भौंर के पास बैलों को खड़ा दिखाने के लिए एक जगह बनी होती है, जिसे **हौटारा या लड़ामनी** कहते हैं। कौलिआ उस लड़ामनी पर खड़े होकर और **पैना** (बैल हाँकने की छड़ी) ऊपर को करते हुए **'आ-आ'** कहता है। इस सांकेतिक शब्द का अर्थ है कि वह बैलों के **ज्वारे** (जोड़ी) को अपने पास बुला रहा है।

फौली देते समय भौंर पर खड़े हुए बैल यदि बहुत जल्दी चलने का प्रयत्न करते हैं, तो कौलिआ उन्हें रोकने के लिए **'हौ-हौ'** या **'हौर-हौ'** कहता है। जब वह मुँह से **'ट्-ट्-ट्-ट्, फड़-फड़'** की ध्वनि करता है, तब बैल चलने लगते हैं। सुस्त बैल में क्रोध उत्पन्न करके तेज चलाने के लिए कौलिआ **'फनास'** (सं० फणाश[1]) और **'आजार'** (फा० आज़ार) शब्द भी कहता है। अलीगढ़ क्षेत्र में क्रूर और निर्दय मनुष्य के लिए भी **'फनास'** शब्द का प्रयोग होता है। यदि खेत पर खड़े हुए किसान के मुख से **'गला-गाला'** का शब्द सुनाई पड़ रहा हो, तो समझ लेना चाहिए कि वह खेत की फसल में से चिड़ियों को उड़ाकर भगा रहा है। यदि वह मुख से **'डो-डो'** या **'ढो-ढो'** कहे, तो उसका अर्थ है कि वह कौए उड़ा रहा है।

§२६५—यदि किसान अपने पशु से पानी पीने के लिए कहता है तो वह मुँह से **'चौहो-चौहो'** की आवाज करता है। ऊँट को पानी पिलाने के लिए **'तेस-तेस'** कहा जाता है। ऊँट को झुकाने तथा बिठाने के लिए उससे किसान **'ज्हौं-ज्हौं'** कहता है।

§२६६—खेत की जुताई के समय जब **हलवया** (खेत की मेंड़ से मिली हुई जगह) के **किनारे** (कोर) पर हल **कूँड़** (हल के चलने से बनी हुई गहरी रेखा) से कुछ हटकर खेत में **ओनरा** (दो कूँड़ों के बीच में छूटी हुई जगह जहाँ हल न चला हो) छोड़ते हुए चलने लगता है, तब किसान हल के बैलों से **'पायें तर, पायें तर'** कहता है। इसका अर्थ यह है कि बैल कूड़ पास में चलें जिससे खेत में **भरपूर** जुताई हो अर्थात् प्रत्येक कूड़ दूसरे से ठीक मिलता हुआ चलता जाए। हलवया अर्थात् **हलवाहा** हल में चलनेवाले **भीतरे बैल** (दाईं ओर का बैल) को नाम से बुलाता है। कूँड़ के मोड़ पर किसान हल को लौटाते समय भीतरे बैल को रोकता है और **बाहिरे** (बाईं ओर का) बैल को आगे बढ़ाता है। इस प्रकार कूँड़ बाईं ओर को मुड़ जाता है। [illegible] **'ह्वो-र्रो'** [illegible] **महकाम्ना, मांकाम्ना या खोनाम्ना** [illegible] **मोड़ या खोनरी** [illegible] **ब्होंर्री जांग** [illegible] **'गिड़-गिड़'** [illegible] **निकालना** [illegible]

¹ [illegible]

२२

"मोटी जोत। खेत में खोट ॥"[1]

बैलगाड़ी या हल में जुते हुए बैलों से **'आँहाँ'** कहने का अर्थ है कि किसान उन्हें तेज़ चलाना चाहता है। गाड़ीवान बैलों की पूँछ पकड़कर जब **'हाँ बेटा'** कहते हुए रास ढीली छोड़ देता है, तब उसका अर्थ होता है कि वह बैलों को **जोट** (जोड़ी) से **भर चौक** (अगले दोनों पाँव एक साथ और पिछले दोनों पाँव एक साथ जिस दौड़ में पड़ें यह **चौक** या **चौका** कहाती है) दौड़ने के लिए कह रहा है। जुताई आदि काम को खत्म करना **सिलटाना** कहाता है। खेत की पूरी बरबादी के लिए **सैट पल्लै** (सं० सृष्टि-प्रलय) होना कहते हैं। बैलों की जोड़ी को भर चौक दौड़ाना **सहल** (सं० सफल>अन० सभल>हिं० सहल=आसान) काम नहीं है। गाड़ीवान की **तनिक-सी लहतलालो** (लापरवाही) से बड़ी **जोखम** (हानि) उठनी पड़ती है।

—

[1] मोटी जुताई खेत का एक दोष है। अतः हलवाहे को न्हैंनी (बारीक) जुताई करनी चाहिए।

प्रकरण ८

किसान का घर और घेर

चौखट के **उतरंगे** के पास द्वार के ऊपरी भाग में लकड़ी का एक तख्ता लगा रहता है, जिसे **पटाव, सरदल** या **सुहावटी** कहते हैं। सरदल में दाईं-बाईं ओर बने हुए दो छेद, जिनमें किवाड़ों के **चूरिये** (चूलें) फँसे रहते हैं, **सरदलुए** कहाते हैं। देहरि के दायें-बायें सिरों पर लकड़ी की एक-एक गट्टक-सी जमी रहती है, जिसके ऊपर मामूली-सा गड्ढा भी बना रहता है। उस गट्टक को **खुमी** या **खुँभी** कहते हैं। द्वार की देहली में दो खुमियाँ होती हैं। किवाड़ों की निचली चूलें खुमियों पर ही घूमती हैं।

चौखट के **थान** (बाजू = दाईं-बाईं ओर की दोनों चौखटें) जिन कीलों से दीवाल में जड़ दिये जाते हैं, वे कीलें **हौलपात** कहाती हैं। थान से किवाड़ को मिलानेवाली गोल कील **कुलावा** कहाती है। यदि कुलावे के स्थान पर छोटी-सी **साँकर** (संकल) लगी हुई हो, तो उसे **जुलफी, रोका** या **सटैनो** कहते हैं। किवाड़ों को मज़बूती से बन्द रखने के लिए उनके पीछे एक मोटा और भारी डण्डा अड़ा दिया जाता है, जो **अरगड़ा** (सं० अर्गला), **अड़गड़ा** (सं० अर्गड), **अड़ंगा, अड़-बंगा, बेंड़ा, कठगड़ा** या **सड़कोड़ा** कहाता है। 'अर्गड' वैदिक साहित्य (शत० ५।१।१४) में प्रयुक्त बहुत पुराना शब्द है। किवाड़ों के पीछे मध्य भाग में एक छोटी-सी लकड़ी लगी रहती है, जो कील के आधार पर आसानी से घूम जाती है। उसे **बिइलया** कहते हैं। बिइलया के लगा देने पर **भिड़ो हुई** (बन्द) किवाड़ें खुल नहीं सकतीं। एक तरह से बिइलया को अड़गड़े के खानदान की छोटी बहिन ही समझिए। किन्हीं-किन्हीं दरवाजों में देहरि के सिरों पर और बाजुओं के बीच में भी लकड़ी की गट्टकें लगा देते हैं, जिन्हें **अड़ंगो, गुटको** या **बलबली** कहते हैं। बलबली जब किवाड़ और बाजू के बीच में अड़ा दी जाती है, तब खुली हुई किवाड़ें बन्द नहीं हो सकतीं। साँकर और बिइलया का काम प्रायः रात में ही रहता है, लेकिन बलबली दिन में बाहर की ओर द्वार की किवाड़ से पीठ सटाये अड़ी रहती है। बाजुओं में नीचे की ओर जो फूल-पत्तियाँ बनी रहती हैं, वे **भराव** कहाती हैं। देहरि में घुसे हुए बाजुओं के सिरे **छुई** कहाते हैं।
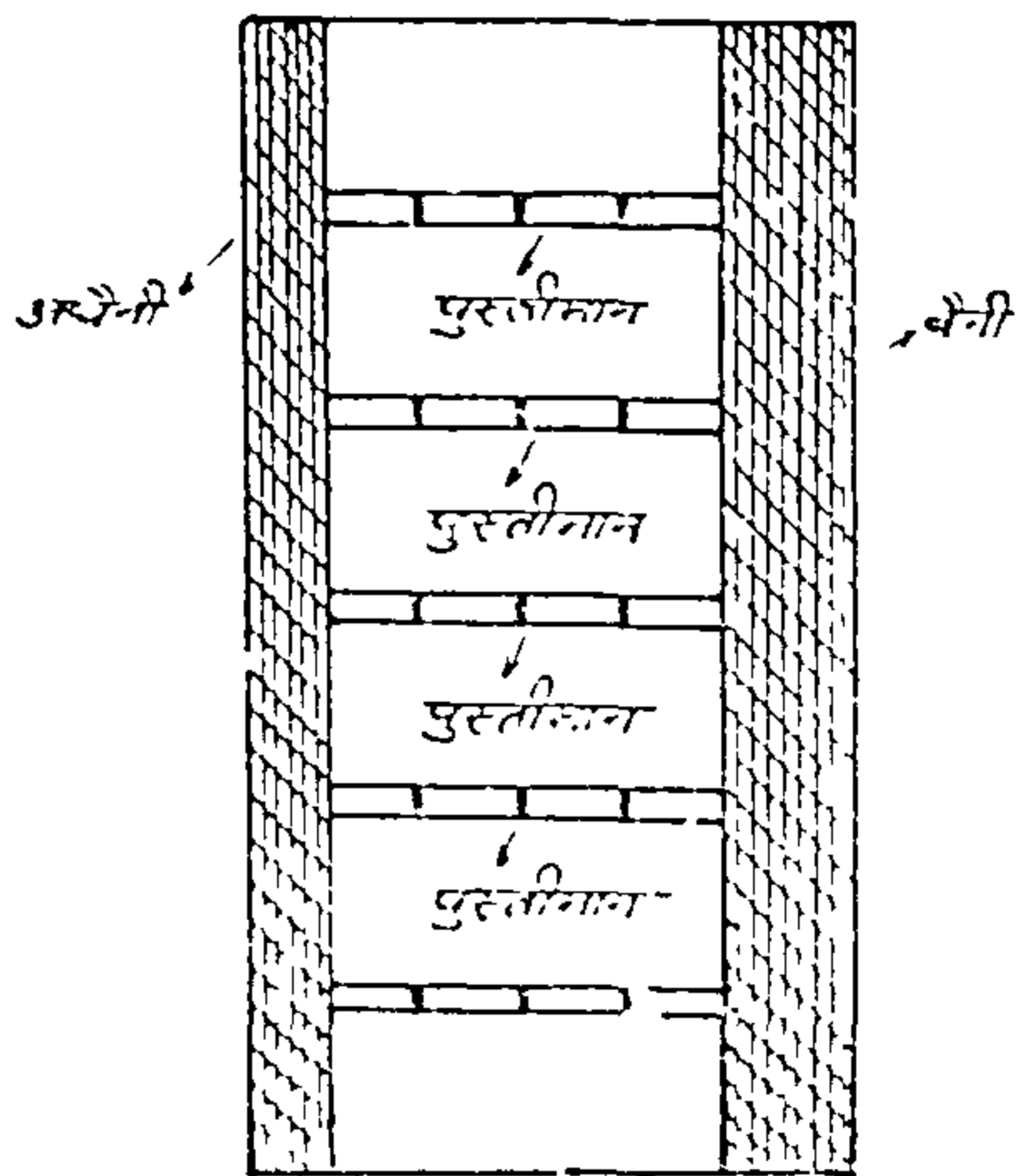
[रेखा-चित्र ६४]

जोड़ी के अन्दर जो बैनी **थान** (बाजू) के पास होती है, **अधैनी** कहाती है, क्योंकि वह चौड़ाई में बैनी से आधी होती है। पँचबैनियाँ जोड़ी में जो बैनी बीच की बैनी के नीचे लगती है, उसे **फरकोटा** कहते हैं। **फरकोटे** की चौड़ाई बैनी से लगभग तीन अंगुल अधिक होती है। चौखटे और किवाड़ें देखिए (रेखा चित्र ६३, ६४)

§२९८—घर का आँगन, कोठा और छत— (१) घर के बीच में खुला हुआ चौकोर भाग **चौक** या **आँगन** (सं० अंगन) कहाता है। यदि आँगन के चारों ओर कोठे और उन कोठों के आगे **दल्लान** (बराम्दा) हों, तो उन दल्लानों की पूरी सतह या फर्श **चौसरा** या **चौफड़ा** कहाती है। तीन दरवाजों का दल्लान **तिदरी** (सं० त्रि + फ़ा० दर) कहाता है। '**चौसरा**' या '**चौफड़ा**' शब्द लगभग उसी अर्थ का द्योतक है, जो अर्थ कि हर्षचरितकार बाणभट्ट के 'चतुःशाल' शब्द से व्यक्त होता है।[1] घर में कुर्सी से नीचे बना हुआ कोठा

[1] "घर का चतुःशाल भाग इस समय चौमहला कहलाता है। आँगन के चारों ओर बने हुए कमरे चतुःशाल का मूल रूप था।"
—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ११६।

(५) छत की कुछ मुड़गेलियाँ बिना छप्परों के नंगी ही रहती हैं। उनकी हिफाजत के लिए किसान हर साल उन्हें **लहेसते** और **लीपते** रहते हैं। 'लीपना' संस्कृत की लिप् और 'लहेसना' संस्कृत की 'श्लिष्' धातु से सम्बन्धित हैं। प्रायः **लिहसाई** तो **चीका** (चिकनी मिट्टी) से और **लिपाई** गोबर से की जाती है। मुड़गेलियों (मुड़ेरों) के नीचे यदि **गरदना** कुछ चौड़ा अधिक होता है, तो प्रायः पड़ुकिया और कबूतर आदि चिड़ियाँ उस पर बैठी रहती हैं, और अपने अण्डे भी रख लेती हैं। सम्भवतः मेघदूत में कालिदास ने **वलभी** (पूर्वमेघ—छंद ३८) शब्द **मुड़गेली** (मुंडेर) के अर्थ में ही प्रयुक्त किया है। 'गरदना' शब्द के लिए संस्कृत में 'कपोतपालि' शब्द आया है।[1]

मुंडेर में घने टोढ़े लगाकर उन्हें **किरचों** (छोटी-छोटी चिरी हुई या फटी हुई लकड़ियाँ) से पाट दिया जाता है। इस पटाव को **छज्जा** कहते हैं।

(६) किसान के कोठे की छत भी दो तरह की होती है—एक **किरचिया** या **किरइया छत** और दूसरी **जाफरी छत**। बन या अरहर की लकड़ियों का घना जाल-सा बुनकर उसे सोठों के ऊपर डाल देते हैं और फिर उसके ऊपर कुछ फूँस बिछाकर मिट्टी पाट देते हैं। अरहर की लकड़ियों के बुने हुए जाल को **'किरा'** (सं० किरक) कहते हैं और उस किरे से जो छत पटती है, वह **किरइया छत** कहाती है। **नीम** या **बबूल** (सं० निम्ब अथवा सं० बब्बूल) आदि की लकड़ियों को फाड़कर उनके छोटे-छोटे टुकड़े किये जाते हैं; वे **किरचा** कहाते हैं। किरचों द्वारा पटी हुई छत **किरचिया छत** कहाती है। बाँसों की फटी हुई **फरूचटों** (चिरा हुआ बाँस) से पटी हुई छत **जाफरी** (अ० जअफ़री) कहाती है। जनाना कमरा **भीतर घर** या **भीतरा कोठा** कहाता है।

(७) किसान के घर के कोठे में **खिड़कियाँ** भी होती हैं। 'खिड़की' शब्द सं० तथा प्रा० 'खिडक्किका' से व्युत्पन्न है। कोठे के दरवाजे के ऊपर अन्दर की ओर की बड़ी ताक, दिवाल या तिवाल **'गुलम्बर'** कहाती है। कभी-कभी किसान अपना सामान रखने के लिए कोठे की चौड़ाई के रुख में लम्बाईवाली दीवालों में दो सोठें गाड़ लेता है और उन्हें **पट्टों** (तख्ता) से पाट लेता है। इसे **टाँड़** कहते हैं। कोठे के अन्दर कुछ वस्तुएँ टाँगने के लिए लकड़ी की **खुंटियाँ** और लोहे के **आँकुड़े** (अत०—कोल में हुक्क भी) दीवालों में गड़े रहते हैं। आँकुड़े का सिरा ऊपर की ओर थोड़ा-सा मुड़ा रहता है। आँगन में कपड़े आदि सुखाने के लिए एक तार अथवा एक रस्सी तान ली जाती है, जिसे **अरगनी** (सं० लंगनी वैज० कोश) कहते हैं। लोहे की सलाखों से बना हुआ लकड़ी का एक चौखटा **जंगला** कहाता है। जंगले के ऊपर दीवाल में बनी हुई एक चन्द्राकार महराब **'बहादुरी'** कहाती है। बहादुरी में नीचे की ओर किनारे-किनारे खमदार मोड़ें हों, तो उसे **बंगरी** कहते हैं।

(८) बरसात का पानी छतों पर से नीचे गिर जाय, इस दृष्टिकोण से किसान मुंडेल में लकड़ी या लोहे का एक टुकड़ा लगाता है, जिसे **पँदरा, पँदारा, पनरा** या **पनारा** (सं० प्रनाडक) कहते हैं। सूर ने **'पनारा'**[2] शब्द का उल्लेख किया है। छोटा 'पनारा' **पनारी** कहाता है। 'पनारी' शब्द का प्रयोग भी ब्रजभाषा के कवि सूर ने किया है।[3]

छत पर चढ़ने के लिए लगातार बनी हुई सीढ़ियाँ **झीना** (फ़ा० जीना) कहाती है। लकड़ी की सीढ़ियाँ **नसैनी** (सं० निःश्रेणी—पालन०) कहाती है। इसी अर्थ में हेमचन्द्र ने णीसणिआ (देश० नाममाला ४।४३) लिखा है।

---

[1] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : मेघदूत एक अध्ययन, पृ० २२१।

[2] "कंचुकि-पट सूखत नहिं कबहूँ, उर-बिच बहत **पनारे**॥"

—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।२२३६

[3] "तटयारू उपचार चूर जलपूर प्रस्वेद **पनारी**।—वही, १०।३१९१

सं०पालि—भाण्डिका) या **घिनौंची** (सं० घटमंचिका > घड़ौंची > घिनौंची) कहते हैं। पढ़ैनी के पास ही एक दीवाल के सहारे एक छोटी-सी डंडी या लाठी गड़ी रहती है जो दूध चलाने में काम आती है; उसे **बिल्लौट** कहते हैं। आँगन में या कोठे में एक गड्ढेदार कंकड़ या पत्थर गड़ा रहता है, जिसमें स्त्रियाँ लड़की के **धनकुटे** (सं० धान्यकुट्टक > धन्न कुट्टअ > धनकुट्टअ > धनकुटा = मूसल) से **अनाज** (सं० अन्नाद्य) छरती हैं। धनकुटे की चोट से अनाज के दानों का छिलका उतारना **छरना** कहाता है। वह गड्ढेदार कंकड़ **ओखरी** (ओखली) कहाता है। ओखरी के लिए वेद में **'उलूखल'** शब्द (ऋक्० १। २८। ६) आया है। कोठे में चौड़ाई वाली दीवाल अर्थात् पाखे के बराबर कुछ जगह छोड़कर दूसरी एक छोटी सी दीवाल अर्थात् ओटा लगा देते हैं। उसे **डाँड़** या **अड्डा** कहते हैं। डाँड़ में प्रायः किसान नाज भर दिया करते हैं। डाँड़ के पास ही नाज से भरे मिट्टी के बर्तन तलेऊपर (एक दूसरे के ऊपर) रक्खे रहते हैं, जो **जेट** कहाते हैं।

२—किसान की चौपार, कुटैरा और घेर

§३००—किसान की मरदानी बैठक **चौपारि** या 'चौपार' कहाती है। इसमें कम से कम एक **कोठा** (सं० कोष्ठक) अवश्य होता है। कोठे के आगे एक बड़ा-सा छप्पर पड़ा रहता है, जिसे **'उसारा** (सं० अपसरक) कहते हैं। हेमचन्द्र ने **'ओसरिआ'** (देशी नाममाला, १। १६१) शब्द भी 'अलिन्द' के अर्थ में लिखा है। उसारे का छप्पर इतना चौड़ा होता है कि उसके नीचे साधने के लिए खड़ी लकड़ियाँ जमानी पड़ती हैं। उन्हें **खम्म** (खम्भ) कहते हैं। खम्भों के ऊपरी सिरे प्रायः दुसंखे होते हैं। उन पर **बड़ेंड़ा** (मोटी और लम्बी सोंठ जो छप्पर के नीचे लगती है) रख दिया जाता है। यदि खम्भे छोटे बैठते हैं, तो उन्हें ऊँचा करने के लिए उनके नीचे दो-एक ईंट या लकड़ी का टुकड़ा लगा देते हैं; उसे **उटेटा** या **टेकिया** कहते हैं।

चौपार के आगे एक चौकोर चबूतरा होता है और उसको तीन ओर से कुछ-कुछ ऊपर उठा दिया जाता है, अर्थात् तीनों सीमाओं पर मुड़ेलें उठाई जाती हैं। इन मुड़ेलों को **पार**[1] या **सपील** (अ० फ़सील) कहते हैं। 'पालि' शब्द का अर्थ 'तालाब आदि का बाँध' है—(प्रा० पालि = तालाब आदि का बाँध, पाईअसद्दमहण्णवो कोश, पृ० ७३०)। जायसी ने भी **'पाली'** शब्द **'पार'** तालाब के बाँध) के अर्थ में ही प्रयुक्त किया है[2]। चौपार के चबूतरा में तीन ओर सपीलें और एक ओर कोठे की दीवाल होती है। इस तरह चारों ओर बाँध बँध जाता है (सं० चतुः पालि > चउपालि > चौपारि > चौपार)।

§३०१—प्रायः चौपार के पास ही **कुटैरा** (कुटी कुटने का स्थान) होता है। चौपार के चबूतरे पर या उससे कुछ अलग एक छप्पर के नीचे धरती में एक गोल और मोटी लकड़ी गड़ी रहती है, जिस पर किसान गँड़ासे से कुट्टी काटता है। उस लकड़ी को **मुढ़ी** कहते हैं। जहाँ मुढ़ी गड़ी रहती है, वही स्थान **कुटैरा** कहाता है। कुटैरे पर ही एक छोटी-सी कोठरी बनी रहती है, जिसमें भुस भरा रहता है। उसे **भिसौरा** या **भिसौरी** कहते हैं। चौपार या कुटैरे पर ही एक गड्ढा होता है, जिसमें आग रहती है। इस गड्ढे को **अध्याना** या **अगिहाना** (सं० अग्निधान—

---

[1] पुत्रोत्पत्ति की कामना से जो स्त्रियाँ गंगा-स्नान करने जाती हैं, वे गंगा के किनारे जल की धारा के पास बालू की मेंड़ लगा देती हैं, जिसे **पार** कहते हैं। यह क्रिया पार 'बाँधना' कहाती है। पार बाँधतेहुएवे कहती हैं—"हे गंगा मैया! गोद भरी पाऊँ तो पारि खोलन आऊँ।"

[2] "कित हम कित एह सरवर —पाली"

—सं० डा० माताप्रसाद गुप्त : जायसी-ग्रंथावली, पद्मावत, ६०। ५

किसान की सारी बसुधा बेर और खेत में ही रहती । इसलिए लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

"किसान के हैं तीन मढ़ा। बेरु, कुटेरा, बौंहड़ा ॥"[1]

कोई-कोई किसान अपने बेर के पास ही एक पानी की कुंडी बनवा लेता है, जिसमें पानी भर दिया जाता है और आवश्यकता पड़ने पर पौहे उसमें पी लेते हैं। इसे **पौसरा** (सं० प्रपाशाला) कहते हैं।

अँधेरी रात में किसान जब सार में घुसता है, तब **सन** की सेंटी को जलाकर **उजीते** (उजाला) के लिए ले जाता है। इस जलती हुई सेंटी को **'लूकटी'** कहते हैं। सार के दरवाजे पर एक चौड़ी किवाड़ चढ़ा दी जाती है। इस किवाड़ में न चैनी होती है और न पुस्तीमान। केवल दोरुखे तख्ते जड़े रहते हैं। पहले चौड़ाई में फिर उनके ऊपर लम्बाई में तख्ते जड़ दिये जाते हैं। ऐसी एक किवाड़ का दरवाजा **खिरका** या **खरिका** कहलाता है। बिना किवाड़ की सार **सार** कहाती है और किवाड़ की सार **खिरका** कहाती है। **खिरका** बड़ा और **खिरकिया** छोटी होती है। खिरकिया का उपयोग किसान के घर और चौपाल पर होता है। ब्रजभाषी कवि सूर ने 'खरिक'[2] शब्द का प्रयोग खिरके के अर्थ में किया है।

सार की पुरानी छत चौमासों में कई जगह से टपकने या चूने लगती है। इस प्रकार के चूने के लिए **'भदकना'** धातु का प्रयोग होता है।

§३०४—गाय, भैंस तथा बैलों के गोबर से जो गोल-गोल चाँदियाँ-सी बनाई जाती हैं, उन्हें **कंडा, उपला** (खैर-खुर्जे में) या **गोसा** (बुलं० में) (सं० गोसर्ग>गोसग्ग>गोस्सग्ग>गोसा) कहते हैं। कंडे बनाने के लिए **पाथना** क्रिया का प्रयोग किया जाता है। जंगल में पशु के गोबर के स्वतः सूख जाने पर जो कंडा बनता है, उसे **आन्ना** (सं० आरण्य) कहते हैं। बहुत छोटा और पतला कंडा **कंडी, कंडिया** या **करसी** (खुर्जे में) कहाता है (सं० करीष[3]>करसी)।

किसानों की स्त्रियाँ कंडों को एक खास तरह से चिनकर एकत्र करती हैं; वे तभी सुरक्षित रहते हैं। कंडों को सुरक्षित रखने का साधन **बिटिआ** (खैर में) या **बिटौरा** (सं० विष्ठाकूट) कहाता है। बिटौरे का ऊपरी भाग **पाखा** और मध्यवर्ती भीतर की चिनाई **चया** कहाती है। चया आयताकार होती है, लेकिन पाखा त्रिभुजाकार। बिटौरा बड़ी सावधानी से बनाया जाता है।

पहले कई **पाँतियों** (पंक्तियों) में कंडों को तले ऊपर रक्खा जाता है। तीन-चार हाथ ऊँची ढेरियाँ लगाई जाती हैं, जिन्हें **बाँट** कहते हैं। बाँटों के बीच में खाली जगह को जिन कंडों से भरा जाता है, वे **भरन** या **भरैंत** कहाते हैं। बाँट और भरैंत को मिलाकर चया बनाया जाता है। प्रत्येक बाँट में कंडे पट्ट ही रक्खे जाते हैं। यदि बाँट में चित्त कंडे लग जाते हैं, तो वे कष्टप्रद बताये जाते हैं। किसानों का कहना है कि बाँटों में जितने कंडे चित्त चिने हुए होंगे, उतने दिनों बिटौरे के मालिक के सिर में दर्द रहेगा। जब चया और पाखा बनकर तैयार हो जाता है, तो उनके ऊपर **गुबरेसी** (पानी मिला हुआ गोबर) लहँस दी जाती है। बिटौरे के ऊपर गुबरेसी लहँसने को **कंडा**

---

[1] किसान के रहने के लिए तीन स्थान ही हैं—एक बेर (जहाँ पशु बँधते हैं) दूसरा कुटेरा (जहाँ कुट्टी की जाती है) और तीसरा खेत।

[2] "वे सुरभी वह बच्छदोहनी खरिक दुहावन जाहीं।—सूरसागर, १०।४१५७

[3] "करीष मिष्टकाङ्गाराच्छर्करा वालुकास्तथा।"
—मनुस्मृति, अध्याय ८, श्लोक २५०।

किसान की सारी वसुधा घेर और खेत में ही रहती । इसलिए लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

"किसान के हैं तीन मढ़ा। घेर, कुरैरा, बौंहड़ा ॥"[1]

कोई-कोई किसान अपने घेर के पास ही एक पानी की कुंडी बनवा लेता है, जिसमें पानी भर दिया जाता है और आवश्यकता पड़ने पर पौहे उसमें पी लेते हैं। इसे **पौसरा** (सं० प्रपाशाला) कहते हैं।

अँधेरी रात में किसान जब सार में घुसता है, तब **सन** की सेंटी को जलाकर **उजीते** (उजाला) के लिए ले जाता है। इस जलती हुई सेंटी को **'लूकटी'** कहते हैं। सार के दरवाजे पर एक चौड़ी किवाड़ चढ़ा दी जाती है। इस किवाड़ में न चैनी होती है और न पुस्तीमान। केवल दोहरे तख्ते जड़े रहते हैं। पहले चौड़ाई में फिर उनके ऊपर लम्बाई में तख्ते जड़ दिये जाते हैं। ऐसी एक किवाड़ का दरवाजा **खिरका** या **खरिका** कहलाता है। बिना किवाड़ की सार **सार** कहाती है और किवाड़ की सार **खिरका** कहाती है। **खिरका** बड़ा और **खिरकिया** छोटी होती है। खिरकिया का उपयोग किसान के घर और चौपाल पर होता है। ब्रजभाषी कवि सूर ने 'खरिक'[2] शब्द का प्रयोग खिरके के अर्थ में किया है।

सार की पुरानी छत चौमासों में कई जगह से टपकने या चूने लगती है। इस प्रकार के चूने के लिए **'भदकना'** धातु का प्रयोग होता है।

§३०४ गाय, भैंस तथा बैलों के गोबर से जो गोल-गोल चाँदियाँ-सी बनाई जाती हैं, उन्हें **कंडा, उपला** (खैर–खुर्जे में) या **गोसा** (बुलं० में) (सं० गोमर्ग > गोसग्ग > गोस्सअ > गोसा) कहते हैं। कंडे बनाने के लिए **पाथना** क्रिया का प्रयोग किया जाता है। जंगल में पशु के गोबर के स्वतः सूख जाने पर जो कंडा बनता है, उसे **आरना** (सं० आरण्य) कहते हैं। बहुत छोटा और पतला कंडा **कंडो, कंडिया** या **करसी** (खुर्जे में) कहाता है (सं० करीष[3] > करसी)।

किसानों की स्त्रियाँ कंडों को एक खास तरह से चिनकर एकत्र करती हैं; वे तभी सुरक्षित रहते हैं। कंडों को सुरक्षित रखने का साधन **बिटिआ** (खैर में) या **बिटौरा** (सं० विष्टाकूट) कहाता है। बिटौरे का ऊपरी भाग **पाखा** और मध्यवर्ती भीतर की चिनाई **चया** कहाती है। चया आयताकार होता है, किन्तु पाखा त्रिभुजाकार। बिटौरा बड़ी सावधानी से बनाया जाता है।

पहले कई **पाँतियों** (पंक्तियों) में कंडों को तले ऊपर रक्खा जाता है। तीन चार हाथ ऊँची टेकियाँ लगाई जाती हैं, इन्हें **चाँट** कहते हैं। चाँटों के बीच में खाली जगह को जिन कंडों से भरा जाता है, वे **भरत** या **भरैत** कहाते हैं। चाँट और भरैत को मिलाकर चया बनाया जाता है। प्रत्येक चाँट में कई पट्ट ही रक्खे जाते हैं। यदि चाँट में चित्त कंडे लग जाते हैं, तो वे कष्टप्रद बताये जाते हैं। किसानों का कहना है कि चाँटों में जितने कंडे चित्त चिने हुए होंगे, उतने दिनों बिटौरे के मालिक के सिर में दर्द रहेगा। जब चया और पाखा बनकर तैयार हो जाता है, तो उनके ऊपर **गुदरेसी** (सना मिला हुआ गोबर) लीप दी जाती है। बिटौरे के ऊपर गुदरेसी लीपने को **कंडा**

---

[1] किसान के रहने के लिए तीन स्थान ही हैं—एक घेर (जहाँ पशु बँधते हैं) दूसरा कुरैरा (जहाँ कुट्टी की जाती है) और तीसरा खेत।

[2] "वे सुरभी वह वत्सदोहनी खरिक दुहावन जातीं।—सूरसागर, १०।४१५०

[3] "करीष विष्टाकूटाराद्रकूटेषु गोकुलान्तथा।"

—मनुस्मृति, अध्याय ८, श्लोक २५०।

प्रकरण ६

किसान के गृह-उद्योग

प्रकरण ६

किसान के गृह-उद्योग

विभाग १

पुरुषों के गृह-उद्योग

अध्याय १

खाट बुनना

§२०५—**रस्सी तैयार करना**—रस्सी को जेवरी भी कहते हैं। रस्सी जिन पौधों और घासों से बनाई जाती है, वे कई प्रकार की होती हैं। सन के पौधों को किसान असाढ़-सावन में बन के साथ बोता है। शेष सब घासें हैं, जो हरिमाया से (प्राकृतिक रूप में) ही खेतों में उग आती हैं। वे घासें **भाभर, पटेर, काँस** (सं० काश), **कुस** (सं० कुश) या **दाब** (सं० दर्भ), **पतेल** और **मूँज** (सं० मुंज) हैं। फुलसन और सूत की रस्सी **सूतरी**[1] कहाती है और शेष सब घासों की बनी रस्सी जेवरी कही जाती है।

रस्सी जिन खास वस्तुओं से ऐंठी जाती है, उन्हें **चरखी** और **ढेरा** कहते हैं। चरखी का वह मोटा और चौड़ा खूँटा-सा टुकड़ा जिसके सिरे पर छेद होता है, **गड़ना** कहाता है। गड़ने के छेद में पड़नेवाली तथा ऐंठा लगानेवाली लकड़ी **घिरनी** या **घेन्नी** कहाती है। ढेरे में दो लकड़ियाँ एक दूसरे के ऊपर इस (+) तरह कटान रूप में जड़ी रहती हैं, जिन्हें **चपका** कहते हैं। उनके ऊपर एक खड़ी लकड़ी लगा दी जाती है, जो **नरा, डाँड़ी** (सं० दण्डिका > दण्डिआ > डण्डी > डाँड़ी) या **ढिरनी** कहाती है। ढिरनी के ऊपर एक छोटी लकड़ी जुड़ी रहती है, जिसमें रस्सी को अटकाकर ढेरे को घुमाते हैं। उस छोटी लकड़ी को **नोक, सुलहुल** या **नकिरनी** कहते हैं। चपके के चारों भाग अलग-अलग दशा में '**पखुरिया**' कहाते हैं।
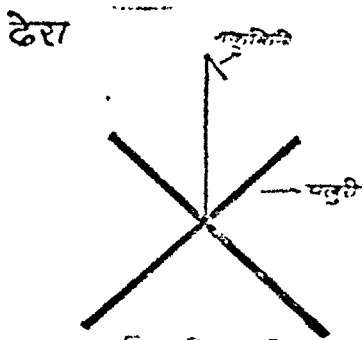
[रेखा-चित्र ६६]

ढेरे द्वारा जब रस्सी ऐंठी जाती है, तब उसके लिए '**ढेरना**' क्रिया का प्रयोग होता है। हाथों की हथेलियों से जेवरी के दो **पूँजों**—(पदार) को मिलाकर ऐंठा लगाना **बटना** कहाता है। बटी हुई रस्सी को हुकरी या गिंडुरी करके उन्हें आपस में लपेटना **भानना** कहाता है। भन जाने पर रस्सी बहुत मजबूत हो जाती है और उसे रस्सा कहने लगते हैं। बैल चलाने के लिए किसान **बर्त** की लटों (लड़ी या लड़) को भानता है। तीन लटें भनकर ही बर्त बनती है। जब, इकहरी लट में घिरनी की बिन्नी से ऐंठे लगाये जाते हैं, तब उस क्रिया को **बर्त चलाना** कहते हैं। पुरानी बर्त का टुकड़ा **बर्तैड़ा** कहाता है। चौंडे में से उधेड़कर निकाली हुई लट **गुड़** या **बट** कहाती है। बट की लट बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी और ऐंठी हुई होती है। सूर ने सिमिटिनी बाहों की डण्डल को बट की लट के समान बताते हुए 'बट' शब्द का उल्लेख किया है।[2]

[1] "सूरदास कहूँ सुनी न देखी पोत सूतरी पोहन।"
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।३६९०।

[2] "कनक दु हुँगी भुयंगम हू सी बट-लट ललहू नई।"
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।३४०५।

जेवरी में जब अधिक ऐंठे लग जाते हैं, तब उसमें जगह-जगह मुड़ी हुई गाँठें पड़ जाती हैं, उन्हें **अंटा, अलवेटा, गुर्डी, लहवेड़, घुर्रा** या **बल** (सं० वल = टेढ़ कहते हैं। 'त्रिवलि'[1] (= मांसलता के कारण पेट पर पड़नेवाली तीन रेखाएँ) शब्द के मूल में सं० वल, या 'वलि' शब्द ही है। बाण ने 'वल'[2] शब्द का प्रयोग टेढ़, मोड़ या झुकाव के अर्थ में किया है। टेढ़े होने के अर्थ में '**बल खाना**' मुहावरा भी प्रचलित है।

पतेल के पौधे के तने को **दरकंडा, सैंटा, दरकना** या **सरकंडा** कहते हैं। सरकंडे के ऊपर का पत्तर **पतोल** कहाता है। सरकंडे की ऊपरी **फुलक** (सिरा) **तीर** कहाती है। तीरों की **सिरकी** बनती है। तीर के ऊपर का छिलका या पत्तर **कोथ** कहलाता है। **सैंटे** या **सरकंडे** के टुकड़े, जो **मूढ़े** बनाने के काम आते हैं, **फरी** कहाते हैं। सैंटे, पत्ते, पतोल और तीर सहित सरकंडों की पूलियों का समूह **बिड़ौरी** कहाता है। **पतोल** और **कोथ** को कूटकर रस्सी बनाई जाती है। वह **पतेलिया जेवरी** कहाती है। वह **नीमन** (मजबूत) नहीं होती; बहुत **बोदी** (कमज़ोर) होती है।

मूँज के सैंटों से भी पत्तर उचेला जाता है। यह क्रिया '**पतोलना**' कहाती है। मूँज के तीर पर लिपटा हुआ पत्तर **नारी** कहाता है। **नारी** को कूटकर जो रस्सी बनाई जाती है, वह बहुत मजबूत होती है। सरकंडे के नीचे से मध्य भाग तक लिपटा हुआ एक पर्त **समन्द** कहाता है। समन्द की जेवरी पतेलिया [illegible] होती है।

कोथ, नारी, समन्द और पतोल को सुखाकर उन्हें जिस लकड़ी के तख्ते पर कूटा जाता है, उसे **मुटर्री** या **मुर्दी** कहते हैं। जिससे पीटते हैं, वह मूँठदार लकड़ी **मोंगरी** कहाती है। कुटी हुई मूँज के पूलों को चरखी से ऐंठते हैं। चरखी में एक चौखटा होता है, जिसकी लम्बाईवाली दो लकड़ियाँ **पाटी** और चौड़ाईवाली दो लकड़ियाँ **गिल्लियाँ** या **सेरे** कहाती हैं। चौखटे के बीच में दो लकड़ियाँ घूमती हैं, जिन्हें **बेलन** कहते हैं। सेरे की गिल्ली में एक छोटी खटक पड़ी रहती है, जिसे फूल कहते हैं। बेलना पर जो मोटी डोरी लिपटी रहती है, वह **ईंटानी** कहाती है। ईंटानी से ही बेलन घूमते हैं और मूँज ऐंठती है।

ऐंठ जाने के बाद लकड़ी से बने हुए एक अड्डे या चौखटे पर रस्सी को लपेट लिया जाता है। [illegible] लपेट **बान** कहलाती है। एक बान में ५०० गज के लगभग जेवरी होती है।

§ ३६६— **खाट के लिए रस्सी सुलझाना और खाट की बुनावट**—आकार के [illegible] से खाटें (सं० खट्वा > खट्टा > खाट) कई प्रकार की होती हैं। बहुत छोटा खाट जिस पर छोटे छोटे बालक सोते हैं, और जिसकी लम्बाई [illegible] हाथ होती है, **खटोला** (सं० खट्वा + सं० [illegible]) कहाता है। खटोले से बड़ी **खटिया**, खटिया से बड़ी **खाट**, खाट से बड़ा **पलका**,

---

[1] "[illegible] त्रिवलिरेपावलम्य।"
—बाण: कादम्बरी, पंचम संस्क० निर्णयसागर प्रेस, १९१६, पृ० १३२।

[2] "[illegible] वृथा क्रियते।"
—बाण: कादम्बरी, [illegible] सिद्धांत विद्यालय, कलकत्ता, पृ० ३२८।
"[illegible]"
बाण: कादम्बरी, [illegible] पृ० २०० तथा निर्णयसागर प्रेस, पंचम संस्क०, पृ० ४३५।

पलिका या पलँग (सं० पर्यंक[1]) और पलँग से बड़ा मचान या माँचा (सं० मंचक) होता है। लोक-गीतों की भाषा में पति-पत्नी के सोने की खाट सेज या सिजिया कहाती है।

खाट में आठ अंग होते हैं। चौड़ाई में लगी हुई दो लकड़ियाँ या बाँस सेरे, और लम्बाईवाले डंडे पाटी या पट्टी (सं० पट्टिका) कहाते हैं। खाट में चार पाये (सं० पादक) होते हैं। पायों के सिरों पर छेद होते हैं, जिन्हें सिल्ल, भिल्ल (सं० बिल) सुराख (फ़ा० सूराख़) या स्याल कहते हैं। इन सूराखों में पाटी और सेरों को सिरों पर कुछ पतला करके ठोक दिया जाता है। वह भाग जो सूराखों में घुसा हुआ रहता है, चूर (सं०चूड़>चूल>चूर) कहाता है। यदि सूराखों में चूलें ढीली होती हैं, तो उनमें दो-एक लकड़ी की फच्चट ठोक दी जाती हैं, जिसे घाँस कहते हैं।

खाट का ऊपरी भाग जिधर सोते समय सिर रहता है, सिराना या सिरहाना कहाता है; और जिधर पाँव रहते हैं, वह पाइँता या पाइँत (सं० पादान्त>पायंत>पाइंत>पाइँत) कहाता है। पाटी और सेरों के ऊपर की चार, छः या आठ रस्सियों की सामूहिक लड़ें सोंथा कहलाती हैं।

जिस खाट की रस्सियों की लड़ें ढीली हो गई हों और जहाँ-तहाँ टूट भी गई हों, उस खाट को झाँवरझल्ला, झाँगी या झटोला कहते हैं। लोकोक्ति है—

"झाँगी खाट, बाइ की देह। छिनार तिरिया, दुख कौ गेह ॥"[2]

जिस खाट की एक पट्टी बड़ी और दूसरी छोटी हो अथवा एक सेरा दूसरे सेरे से छोटा हो, वह आकार में आयताकार नहीं रहती; बल्कि कोनों पर कुछ खिंच जाती है, वह खाट कैंकची कहाती है। उस टेढ़े खिंचाव को 'कान' या 'खोंच' कहते हैं। बिना बिछी खाट (जिस पर बिछौना न हो) खरैरी कहाती है।

जिस खाट का एक पाया शेष तीन पायों से छोटा होता है, वह कुत्तामूतनी कहाती है। बैठने अथवा लेटने के समय जो खाट 'चर-चर' ध्वनि अधिक करती है, वह चरमरी कहलाती है। जो खाट इतनी ढीली हो कि उसके झोंगे (खाट का ढीला और गड्ढेदार पेट) में आदमी का सारा शरीर पट्टियों और सेरों से नीचा चला जाय, वह सकल्लोलि या सबकल्लोल कहाती है। पाइँत में पड़ी हुई मोटी रस्सी अदमाइन, या अदवाँइन कहाती है। यदि खाट इतनी छोटी हो कि सोनेवाले व्यक्ति की टाँगें कुछ आगे को निकली रहें और टखने के पास लगा एड़ी से ऊपरवाली नस अदमाइन (खाट के पाइँत में लगनेवाली मोटी रस्सी) से कटती हो, तो वह नसफाट कहाती है। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

"कुत्तामूतनि चरमरी, सकल्लोलि नसफाट।
इन चारनु कूँ छोड़िकैं, बैठा पीढ़ी खाट ॥"[3]

---

[1] "पंजरं मंचकं मंचकाष्ठं फलकासनम्।
तथैव बालपर्यङ्कं पर्यङ्कमिति कथ्यते ॥"
—सं० डा० प्रसन्नकुमार आचार्य : मानसार, अध्याय ३, श्लोक ६।
"परेश्च घांकयोः" अष्टा० ८।२।२२ के अनुसार 'पलंग' की सं० पल्यंक से व्युत्पत्ति है।

[2] ढीली खाट, बात से पीड़ित शरीर और कुलटा स्त्री—ये तीनों जहाँ होते हैं, वहाँ दुःख ही दुःख है।

[3] कुत्तामूतनी, चरमर करनेवाली, सकल्लोल (सब हिलने वालेवाली) और नसफाट—इन चार तरह की खाटों को छोड़कर, हे भाई! तुम पीढ़ी और खाट पर सोओ।

और खाट की चौड़ाई की हालत में रस्सी की पन्द्रह-बीस लड़ें पूरकर एक जुट्टा-सा बना लेते हैं, जिसे **कौंधनी** कहते हैं। इस कौंधनी के ऊपर मजबूती के लिए **लत्ता** (कपड़ा) लपेट देते हैं, जिसे **लँगोटा** या **लँगोट** कहते हैं। कौंधनी के बीच में एक छोटा-सा डण्डा डालकर उससे कौंधनी में ऐंठा लगा देते हैं और उस डंडे को खाट बुनने तक कौंधनी और पाइँत के सेरे में अटकाये रखते हैं, जो **अँतरसटा** कहाता है। लड़ें पूरने के बाद जो जोट पड़ती है और चार या छः कड़ियाँ दब जाती हैं, तब उसे **सोखा फूटना** कहते हैं। बुनते-बुनते बीच में इस तरह बुनावट करनी चाहिए कि चौक की कड़ियाँ अन्त में उछली हुई रहें। उसे **उछरा चौक** (उछला हुआ चौक) कहते हैं। **दबैले चौक** (दबा हुआ चौक) की खाट अच्छी नहीं मानी जाती। किसानों का कहना है कि दबे चौक की खाट पर सोनेवाला बर्राता रहता है। सोते-सोते कुछ मुँह से कहना **'बर्राना'** कहाता है। लोकोक्ति है—

"चौक जौं न उछराइ। खाट परौ बर्राइ॥"[1]

खाट की बुनावट में यदि केन्द्र-स्थान का चौक उछलता हुआ नहीं आता, तो खटबुना एक लकड़ी से उसकी कड़ियाँ पास-पास करता है। इस क्रिया को **'सिचियाना'** कहते हैं। जिस लकड़ी से खाट सिचियाई जाती है, वह **सँचनी** कहाती है। सिचियाने से **खाट के पेठ** (मध्यवर्ती भाग) में जगह हो जाती है और तब चौक को उछलता हुआ डाल दिया जाता है। बुनते समय यदि लड़ें भूल से एक-दो ऊपर नीचे हो जाती हैं, तो उसे **लरकाट** कहते हैं। खाट बुनने में तीन आदमी लगने चाहिएँ—

"चार छावैं। छः नरावैं॥ तीन खाट। दो बाट॥"[2]

पुरानी खाट जब दो-एक जगह उधड़ जाती है, या उसकी रस्सी टूट जाती है, तब उसे एक रस्सी से जहाँ-तहाँ बुनकर ठीक कर देते हैं। इस तरह बुनने को **'साँटना'** कहते हैं।

अध्याय २

गन्ने पेलना और गुड़ बनाना

§२०७—**कोल्हू के भाग और गन्नों का रस**—ईख (सं० इक्षु) के खेत में **गाँड़े** (गन्ने) छीलनेवाला **छोला** कहाता है। छोला खेत में से कोल्हू के पास गन्नों का जो बोझ लाकर डालता है, उसे **फाँदी** कहते हैं। जहाँ पर फाँदियाँ इकट्ठी की जाती हैं, वह जगह **पैर** या **फड़** कहाती है। **कोल्हू** (देश० कोल्हुअ > दे० ना० मा० २।६५) में मुख्य वस्तु एक मोटी बल्ली होती है, जिसमें

---

[1] यदि खाट के केन्द्रस्थान में चौक उछला हुआ न रहा, तो उस पर सोनेवाला नींद में बर्रायेगा।

[2] छप्पर छाने में चार, नराने में छः, खाट बुनने में तीन और रास्ते में दो आदमियों का साथ-साथ होना ठीक है।

बैलों की जोट (जोड़ी) जोतकर चक्कर लगवाया जाता है। उस बल्ली को लाट कहते हैं। बल्ली के सिरे पर एक बड़ा सा मोटा टुकड़ा बाँधा जाता है और उसके दूसरे सिरे का सम्बन्ध बैलों के जूए से कर दिया जाता है। उस टुकड़े को काढ़ कहते हैं। बैलों की जोत को हाँकनेवाला व्यक्ति जोटिया कहाता है। कुछ आदमी ऐसे भी होते हैं जो गन्ना छीलते नहीं, बल्कि छोलाओं के गन्नों को सिर पर लाकर ढेर में पटकते रहते हैं, वे आदमी ढोवा कहलाते हैं। कोल्हू के बैल जिस वृत्ताकार रास्ते पर चलते रहते हैं, वह पाढ़ कहाता है। जिस ज़मीन पर कोल्हू गाड़ा जाता है, वह स्थल थरिया या थरी (सं० स्थली > थली > थरी) कहाती है। थरी के पास एक नाली बनी रहती है, जिसमें कोल्हू के बेलनों में से गन्नों का रस आता है और बहता हुआ नीचे एक गड्ढे में रखे हुए बर्तन में गिरता जाता है। वह छोटी-सी नाली पँदारी और वह बर्तन रसैंड़ी (सं० रस + सं० भाण्डिका) कहाते हैं। कभी-कभी छोटी नाँद (सं० नन्दा) भी अधिक लाभदायक रहती है, उसे नँदोरी (सं० नन्दा + सं० पोतलिका) कहते हैं। गन्नों का रस पँदारी में बहता हुआ रसैंड़ी में आकर गिरता है। रसैंड़ी के पास ही एक आदमी बैठा रहता है, जो कोल्हू में गन्नों का मूँठा देता रहता है। उस व्यक्ति को मूठिया कहते हैं। कोल्हू के दूसरी ओर गन्नों के निचुड़े हुए छिलके निकलते जाते हैं। बेलनों की गन्नों के टुकड़े पाते या खोई कहाते हैं। खोई भट्टी में झोंकने के काम आती है। खोई उठाने के लिए लकड़ी की बनी एक वस्तु होती है, जिसमें बाँस की फन्टें और दो डंडे लगे रहते हैं। उसे मंभी या पच्छी कहते हैं (रेखा-चित्र ८२) प्रायः भट्ठी के ऊपर रखे हुए तीन कढ़ावों में रस औटता रहता है। सूखे हुए पातों को भट्टी में झोंकनेवाला 'झोंकिया' कहाता है। औटे हुए रस के ऊपर से मैल अलग किया जाता है। उस मैल को 'मैली' या 'लदोई' कहते हैं। रस की सफ़ाई के लिये भिंडी या सुकलाई (एक पौधा) का लुआब डालते हैं, जिसे निखारी कहते हैं। लदोई को छानने के लिए जिस कपड़े में रस डाला जाता है, उसे छन्ना और जिस वस्तु से लदोई हाँडी में से उठाई जाती है, उसे पौना या पौइना कहते हैं।
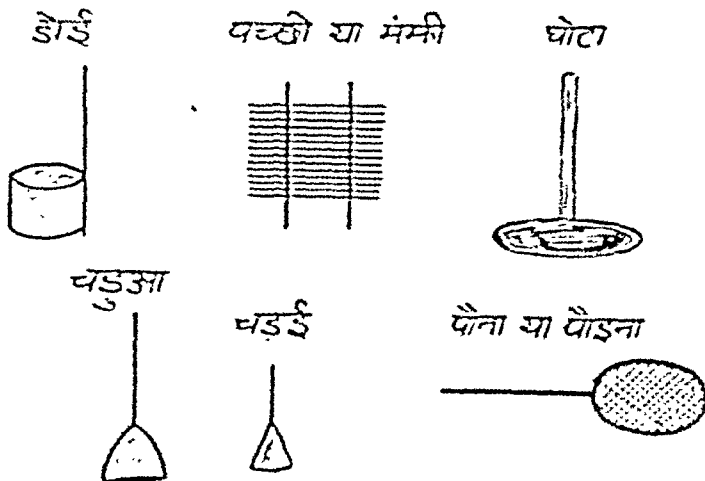
(रेखा-चित्र ८१ से ८६ तक)

§३०८—गुड़ौरा और भट्ठी के हिस्सों के नाम—जिस झोंपड़ी में गन्नों से गुड़ बनाया जाता है, उस झोंपड़ी को गुड़ौरा या गुन्नौरा कहते हैं। गुड़ौरे के दो मुख्य भाग होते हैं—(१) पाखड़ (२) [illegible]। [illegible] पाखड़ा या पाखड़ा कहाती है। [illegible], जहाँ गुड़ बनाकर डाल कर रखा जाता है, औंरी या औंदी कहाती है। गुड़ बनानेवाले व्यक्ति को गुड़िहा या गुड़हा कहते हैं।

भट्टी में मुख्य तीन भाग होते हैं। पीछे का भाग, जहाँ एक गड्ढे में सूखी खोई भरी रहती है, और **झौंकिया** (खोई झोंकनेवाला) बैठा-बैठा खोई झोंकता रहता है, **झुकुण्ड** (झोंक + कुण्ड) कहाता है। भट्टी के पीछे बना हुआ एक छेद, जिसमें से झौंकिया सूखी खोई भट्टी में फेंकता है, **मंझा** कहाता है। भट्टी के आगे का हिस्सा, जिसमें से धुआँ निकलता रहता है **धुँनैना** (सं० धूम-नयन) **धूमना** या **धुमैना** कहलाता है। धूमने के पास की **करहैया** (कढ़ाई) पहली कढ़ाई होती है। इसी तरह पीछे की ओर की क्रमशः दूसरी और तीसरी कढ़ाई मानी जाती है। रसैंड़ी में से लाया हुआ रस पहली कढ़ाई में ही पड़ता है। उस कढ़ाई को **हौदी** कहते हैं। इसी तरह दूसरी कढ़ाई **करहैया** और तीसरी **तई** कहाती है। पहली कढ़ाई का रस **कचैला**, दूसरी का **पाका** और तीसरी का **चासनी** (फ़ा० चाशनी) कहाता है। तई की चासनी ही गुड़ बनाने के लिए **चाक** (सं० चक्र > चक्क > चाक) पर डाली जाती है। गुड़ या शक्कर बनाने के लिये जो वस्तुएँ दूध, भिंडी का रस आदि डाली जाती हैं, उन्हें **लाग** कहते हैं।
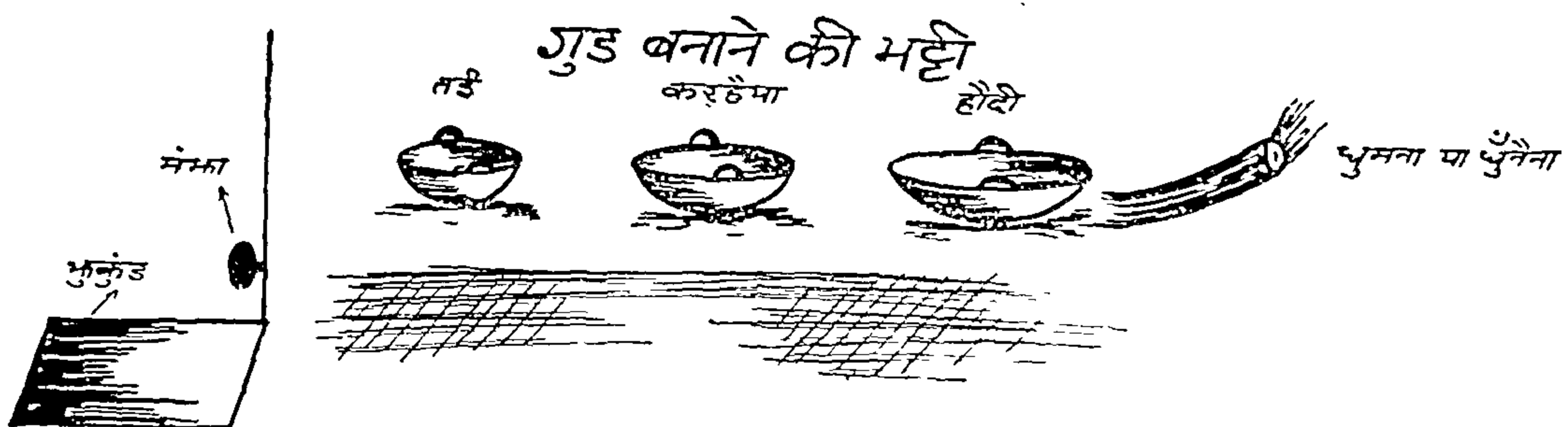
रेखाचित्र ८७

§३०६—**गुड़ बनाने में काम आनेवाले औज़ार गुड़ बनाना**—लकड़ी के जिस वर्तन से चासनी चाक पर डाली जाती है, उसे **डोई** (देश० डोअ—दे० ना० मा० ४।११) कहते हैं। लकड़ी के चमचे से मिलती-जुलती दो वस्तुएँ **चडुआ** और **घोटा** हैं। तई की चासनी को लकड़ी की जिस वस्तु से घोटते हैं, वह **घोटा** कहाता है। चाक पर पड़ी हुई चासनी को लकड़ी के जिस औज़ार से इधर-उधर फैलाया जाता है, उसे **चडुआ** कहते हैं। यह क्रिया **चड़ना** कहाती है। चडुए से छोटी एक वस्तु **चड़ई** होती है, जिससे चाक पर जहाँ तहाँ चिपटी हुई चासनी खुरची जाती है।

रस की चासनी से **शक्कर** (सं० शर्करा > पाली० सक्खर सक्कर) **राब**, और **गुड़** (सं० गुड) बनाया जाता है। 'गुड़' को **'मिठाई'** कहते हैं। ढाई सेर चासनी कपड़े में भरकर उसका एक बड़ा-सा ढेला बना देते हैं, जिसे अढ़इया **भेली**[1] कहते हैं। पाँच सेर की भेली को **पंसेरी भेला** कहाते हैं। यदि १० सेर के लगभग चासनी किसी छबड़े में जमाई जाती है, तो वह भेला **धौंदा** या **धौंधा** कहाता है। मुट्ठी भर के गोले जब सोंठ डालकर बनाये जाते हैं, तब वे **सौंठिया** कहाते हैं। गर्मी के कारण पिघला हुआ गुड़ **लाट** या **धाप** कहाता है। पानी में एक तरह की घास होती है, जिसे **सिवार** (सं० शैवाल > सिवाल > सिवार) कहते हैं। सिवार के पत्तों पर राब बिछा दी जाती है। उसमें से जो द्रव पदार्थ निकलता है, वह **सीरा** कहाता है।

गन्नों में दो किस्में बहुत प्रसिद्ध हैं—(१) ऊभा (२) **चिन**। चिन गन्ने का गुड़ अच्छा माना जाता है। कड़े गन्ने को **कठा गाँड़ो** कहते हैं। जिस नरम गन्ने का छिलका ऊपरी **पँगोली**

---

[1] "कान्ह कुँअर को कनछेदन है हाथ सुहारी भेली गुर की।"
सूरसागर : काशी नागरी प्रचारिणी सभा, १०। १८०

से लेकर नीचे की पँगोली तक निरन्तर उतरता चला जाता है, वह "कनफर्री गाँड़ौ" कहाता है। गाँड़े (गन्ने) से सम्बन्धित यह उक्ति प्रचलित है—"हाथिनु के सँग गाँड़े खाइबो।" इसका अर्थ है धींग अर्थात् बलवान् से प्रतिद्वन्द्विता मोल लेना या स्पर्धा करना। ऐसा करना वास्तव में अपने को छोटा, असमर्थ और विफल सिद्ध करना ही है। 'सूरसागर' में इस उक्ति का प्रयोग हुआ है।[1]

इसी प्रकार मतलब गाँठने के लिए 'टिल्लो लगाना' और बिना कष्ट के आनन्दपूर्ण जीवन बिताने के लिए 'फूली-फूली चरना' मुहावरों का प्रयोग होता है। काम की सफलता के लिए आशा की समाप्ति होने पर कहा जाता है कि "गई भैंस पानी में"। बात यह है कि भैंस जब किसी पोखर (सं० पुष्कर > पुक्खर > पोखर = छोटा तालाब, जोहड़) आदि के पानी में लोटने के लिए चली जाती है, तो उसका जल्दी वापस आना संभव नहीं।

विभाग २

किसान-स्त्रियों के गृह-उद्योग

अध्याय ३

बन बीनना

२१०—कपास के पौधे को बन या बाड़ी (बुर्ज में) कहते हैं। संभवतः सबसे पहले 'कपास' (सं० कर्पास) का उल्लेख आश्वलायन श्रौतसूत्र (२। ३। ४। १७) और लाट्यायन श्रौत सूत्र (२। ६। १; ६। २। १४) में हुआ है[2]।

बन के खेत में से कपास चुनना बन बीनना कहाता है। किसानों की स्त्रियाँ लहँगे पहनकर और ओढ़ने (देश० ओड्ढण, दे० ना० मा० १। १५५) ओढ़कर बन बीनने जाती हैं। बन बीनने वाली स्त्रियाँ पैहारी कहाती हैं। बन बीनने में खेत का जितना भाग एक पैहारी के बाँट (हिस्सा) में आता है, वह माँग कहाता है। एक-एक माँग में एक-एक पैहारी बन बीनना आरम्भ करती है। माँग में घुसकर बन बीनना आरम्भ करना, मूढ़ा उठाना कहलाता है। बन का गूला अर्थात् गूलर हवा और धूप से फट जाता है और उसमें कपास फूली-फूली-सी दिखाई देने लगती है, उसे बन का निरना कहते हैं। खिले हुए गूले को टैंट कहते हैं। जब टैंट को तोड़कर उसमें से कपास निकाल लेते हैं, तब उस गूले का खाली खूखा खोल कोंथ या काँकरी कहाता है। पैहारियाँ (बन बीननेवाली स्त्रियाँ) कपास चुन लेती हैं और काँकें छोड़ देती हैं।

---

[1] "कहु करन, कैसे बैरनु है हाथिन के सँग गाँड़े।"—सूरदास, भ्रमरगीतसार, संपादक रामचन्द्र शुक्ल, सं० २००७ वि०, पद, ३५

[2] डा० मोतीचंद्र, प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० १२।

पैहारियाँ बिनी हुई कपास को **कछेला, कछौटा** (सं० कच्छपट > कच्छपट > कच्छवट + क > कच्छउट + अ > कच्छौटा > कछौटा) या **झोर** में रखती जाती हैं। लहँगे की एक विशेष प्रकार की मोड़ **कछेला** कहाती है, जिसमें पैहारी कपास रख लेती है। पैहारी अपने लहँगे के आगे के कुछ **पाटों** (=घूमों) को ऊपर उठाकर उसके दोनों **ठोक** (=सिरे) अपनी कमर के दायें-बायें भाग में उरस लेती है। उनको इस ढंग से उरसा जाता है कि पैहारी की **टूंड़ी** (नाभि) के नीचे लहँगे में एक बड़ा थैला-सा बन जाता है। उसे ही **कछेला** कहते हैं। कछेला मारने पर लहँगे का आगे का हिस्सा पैहारी के घुटनों तक ही रहता है ।

कुछ पैहारियाँ ओढ़नी की **झोर, झोरी** (सं० **झोलिका**) या **झोरिया** बना लेती है। पीठ-पीछे ओढ़नी को लहँगे में इस ढंग से उरस लिया जाता है, कि पीठ पर एक ऐसा बड़ा थैला बन जाता है, जिसमें दाँयें-बायें रुख में दो मुँह होते हैं। वह थैला-सा ही **झोर** कहाता है। उसमें पैहारियाँ अपने दाँयें या बायें हाथ से कपास रखती जाती हैं। **झोर** में कछेले से अधिक कपास आती है। कछेले में पाँच सेर और झोर में दस सेर के लगभग कपास समा जाती है।

जिस बन में गूला समाप्तप्राय हो जाता है और जिसका तिरना भी बन्द हो जाता है, वह **निहरा** (अत० में) या **निनरा** (कोल-हाथ० में) बन कहाता है। जब बन के पौधों पर से गूले पूरी तरह टूट जाते हैं और हरे-हरे पत्ते भी पशुओं के लिए सूँत लिये जाते हैं, तब उस बन को **उजरा** (उजड़ा हुआ) कहते हैं।

पैहारियाँ **बिनी हुई** (एकत्र की हुई) कपास को खेत की मालकिन के घर ले जाती हैं। वहाँ मालकिन (खेतवाली किसानी) एक **तखरी** या **नरजा** (तोलने की तराजू) लेकर उसे **जोखती** है (तोलती है) अथवा हाथों से बाँट करती हैं। सारी कपास के सोलह **बाँट** (हिस्से) किये जाते हैं। उनमें से एक पैहारी को मिलता है और पन्द्रह खेतवाली किसानी ले लेती है। इन हिस्सों को **खूँट** या **कूँड़ा** कहते हैं। इस तरह पैहारी को **बन-बिनाई** (बन बीनने की मजदूरी) बीनी हुई कपास की १/१६ मिलती है।

तिरे हुए बन की कपास के सम्बन्ध में एक लोकोक्ति पहेली के रूप में प्रसिद्ध है—

पहलें दही जमाइकैं, पीछैं दुहिऐ गाय।
बछरा माँ के पेट में, लौनी हाट बिकाय॥[१]

किसानों की स्त्रियाँ कपास को एक बड़ी डलिया में रखती हैं, जो बिना चिरी अरहर की लकड़ियों से बनी होती है। उस डलिया को **अधनौटा** कहते हैं। अधनौटा ऐसे अनुमान से बनाया जाता है कि उसमें २० सेर कपास आ जाती है। वर्तमान 'अधनौटा' हमें प्राचीन काल के **'द्रोण'** और **पाय्य** (पाणिनि : अष्टा० ३। १। १२६) की याद दिलाता है, जो नाप-विशेष के प्रसिद्ध बर्तन थे। सं० अर्धमान > अद्धवाँन > अधडन > अधौग्न = आधा मन, २० सेर।

---

[१] पहले बन को अच्छी तरह तिर जाने दो, जिससे खेत ऐसा मालूम पड़े, मानों सफेद-सफेद दही जम रहा है। फिर बन को बीन लो ('गाय दुहना' का अर्थ 'बन बीनना' है)। बछरा अभी गाय के पेट में ही है (अर्थात् बिनौला कपास के अन्दर है); परन्तु आश्चर्य है कि गाय की लौनी बाजार में बिक रही है [कपास लौनी (नवनीत) की भाँति सफेद होती है, इसलिए उसे लौनी की उपमा दी गई है]।

अध्याय ४

कपास ओटना

§३११—चरखी और उसके अंग—रैंटी (सं० अरघट्टिका) या चरखी द्वारा कपास से बनौरा (बन + सं० पोतलक—बन + ओलअ > बनौला > बनौरा) अलग करना 'ओटना' (सं० आवर्तन > ओट्टण > ओटना) कहलाता है। ओटी हुई कपास रूअ[1] (रूअ—दे० ना० मा० ७। ६) या रुई कहलाती है।

रैंटी में एक खास चीज फरई है। यह लकड़ी का एक चौड़ा तख्ता होता है, जिसके सिरों पर दो चौड़े खूँटे ठुके रहते हैं। उन दोनों खूँटों के ऊपरी सिरे पर एक-एक छेद होता है। उनमें एक लोहे की छड़ी और काठ का चिकना डण्डा पड़ा रहता है। छड़ी को डाँड़ी और डण्डे को बेलन कहते हैं। बेलन के सिरे पर एक लकड़ी और ठुकी रहती है, जिसे हथिया कहते हैं। हथिये के सूराख में एक छोटी-सी लकड़ी डालकर बेलन को घुमाते हैं। उस लकड़ी को चेरी या चेरनी कहते हैं। लोहे की डाँड़ी का सिरा नुकीला और पत्तीदार कर दिया जाता है उन पत्तियों को पर (फ़ा० पर = पंख) कहते हैं। डाँड़ी पर कटे के ऐसे (× × × ×) चिन्ह बने होते हैं। उन्हीं के कारण कपास बेलन और डाँड़ी के बीच में दबती है और बिनौले उससे अलग हो जाते हैं। उन गुणात्मक (×) या धनात्मक (+) चिन्हों को चित्ती या गुदना कहते हैं। फरई के बीच में पीछे की ओर एक डण्डा ठुका रहता है, उसे संभा कहते हैं। चरखी चलाते समय संभे को किसी भारी कंकड़ या पत्थर से दाब देते हैं, ताकि चरखी अपनी जगह पर से इधर-उधर हिल न सके।
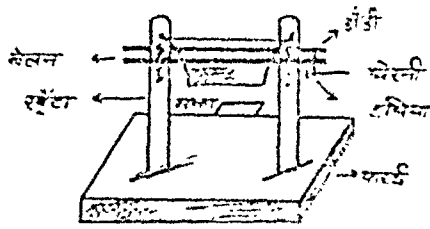
चरखी और उसके अंग

(रेखाचित्र ८८)

बेलन और फरई के बीच में पीछे की ओर एक कपड़ा बँधा रहता है, इससे ओटी हुई कपास (रुई) पीछे की ओर ही रहती है। उस कपड़े को 'लँगोटा' कहते हैं।

अध्याय ५

चरखा कातना

§३१२—चरखा या रैंहटा लकड़ी का बना हुआ एक यंत्र होता है, जिसमें धुनी हुई रुई को सूत में बदल दिया जाता है। चरखा घुमाकर सूत निकालना कातना (सं० [illegible]) कहलाता है।

[1] पाइअसद्दमहण्णवो कोश में 'रूअ' शब्द के आगे देश० 'रूत' भी दिया है।

कते हुए सूत को लकड़ी के बने एक अड्डे पर लपेटा जाता है। इस तरह लपेटने के लिए 'ऐनना' या '**अटेरना**' क्रिया का प्रयोग होता है। उस अड्डे को **ऐना** या **अटेरना** कहते हैं। ऐने से लिपटा हुआ सूत जब अलग कर लिया जाता है, तब वह एकत्र किया हुआ सूत **आट** या **अटिया** कहाता है।

चरखे में चौड़ा और भारी एक तख्ता होता है, जिसमें दो खूँटे ठुके रहते हैं; उस तख्ते को **फरई** कहते हैं। फरई में गड़े हुए दोनों खूँटों के बीच में एक लम्बी लकड़ी पड़ी रहती है जिसे **नरा** या **लाट** (खुर्जा० में) कहते हैं। नरे के बीच में गोल तथा अंडाकार भारी काठ पड़ा रहता है, जो **मदरा** कहाता है। मदरे के दोनों ओर लकड़ी की चौड़ी-चौड़ी पत्तियाँ लगी रहती हैं, जो पखुरियाँ कहाती हैं। पंखुरियों के सिरों पर दो-दो कटान (गड्ढे) कर दिये जाते हैं, जो **खाँचे** कहाते हैं। खाँचों में एक डोरी लपेट दी जाती है, जो **अदमाइन**, **अदवाँइन** या **जंदनी** (खुर्जे में) कहाती है। नरे के एक सिरे पर एक लकड़ी ठुकी रहती है, जिसे **हथिया** कहते हैं। हथिये में एक छेद होता है जिसमें कि तर्जनी उँगली डालकर **नरा** घुमाया जाता है। नरे के घूमने से उसके ऊपर की वस्तुएँ मदरा और पखुरियाँ आदि भी घूमती हैं। यदि खूँटे और पखुरियों के बीच में काफी जगह होती है और नरा तथा मदरा ठीक नहीं घूमता, तो पखुरियों और खूँटे के बीच में लकड़ी की एक गोल चकई-सी डाल दी जाती है, जिसे **चेंगी** या **चिरइया** कहते हैं। यदि लोहे का नरा होता है तो नरे में दोनों ओर लोहे का एक गोल छल्ला लगाया जाता है, जिसे **कुम** कहते हैं। कुम नरे के ऊपर ही घूमती है।

फरई से कुछ पतली और हलकी एक लकड़ी **तकुली** नाम की होती है, जिसके सिरों के ऊपर एक-एक खूँटा और बीच में दो छोटी-छोटी लकड़ियाँ गड़ी रहती हैं। उन दो लकड़ियों के बीच में **तकुआ** (सं० तर्कु) होता है और उस पर **माल** (एक काली डोरी) घूमती है। छोटी-छोटी दोनों लकड़ियों को **गुड़ियाँ** कहते हैं। तकली और फरई को जोड़ने वाला बीच में एक डंडा होता है, जो मंझा (सं० मध्यक > मज्झअ > मंझअ > मंझा) कहाता है।

तकली की दोनों गुड़ियों (खूँटों) के छेदों में मूँज की बनी हुई **चमरखें** लगी रहती हैं। उन चमरखों के छेदों में ही **तकुआ** आर-पार होकर घूमता रहता है। तकुए के ऊपर सैंटे या बगनर की एक पोली गड़ेली चढ़ी रहती है, जिसे **नरी** या **बीड़ी** (खुर्जे में) कहते हैं। नरी से आगे **दिमिरका** चढ़ा रहता है। सूखे और पके हुए **तौमरे** (लौका) में से एक गोल चकई-सी बना ली जाती है और उसे तकुए के ऊपर चढ़ा दिया जाता है। उस चकई को **दिमिरका** (द्रम्म + क + अड़— अपभ्रंश प्रत्यय = दमकड़ा > दमकरा > दिमिरका) कहते हैं। दिमिरका पैसे की भाँति का होता है, लेकिन आकार में पैसे से दूना होता है।

जब पखुरियों की अदमाइन और तकुए पर माल को मजबूत बनाने के लिए उस पर **रार** (सं० राल = एक प्रकार का काला गोंद) रगड़ी जाती है। जिस चमड़े के टुकड़े में रखकर राल को डोरे पर रगड़ा जाता है, वह चमड़ा **छिपटा** या **छेवटा** कहाता है।

पींजन (धुनकी) की ताँत से धुनी हुई रुई में से **सींक** (सं० इषीका) द्वारा मोटी और पीली बत्तियाँ-सी बटकर तैयार कर ली जाती हैं, जिन्हें **पौनी** (देश० पूणी—दे० ना० मा० ६। ५६) कहते हैं। कातते समय पानी में से **तार**, **तागा** या **तगा** (पह० ताग; फा० ताग > तागा) निकाला जाता है। उस तागे को फिर तकुए पर ही लपेट दिया जाता है। तकुआ फिराकर पौनी में से तागा निकालना ही '**कातना**' कहलाता है। ऋग्वेद (१। १५६। ४) में तागे के लिए 'तन्तु' शब्द का और कातने के लिए 'तन्' धातु का प्रयोग हुआ है[१]।

---

[१] 'नव्यं नव्यं तन्तुमातन्वते'— ऋक्० १। १५९। ४

(१) तकुए पर तागा (देश० तग्ग—दे० ना० मा० ५। १) लपेटना 'तगा पेलना' कहाता है (सं० प्रेर् > प्रेरण > प्रा० पेलण > पेलना)। जब तकुए पर लगातार तागा लपेटा जाता है, तब सूत का जो पिंडा बनता है, उसे कुकरी कहते हैं। छोटी कुकरी पिंदिया (सं० पिंडिका) कहाती है। कुकरियाँ जब सर्दी पहुँचाने के लिए पानी में भिगोई जाती हैं; तब वह क्रिया 'मोश्रा लगाना' कहलाती है। मोश्रा लगाने के बाद कुकरियों को भूभर[1] (गर्मराख) पर रख दिया जाता है। किसी की मौत चाहने के अर्थ में स्त्रियों की एक गाली प्रसिद्ध है—

'मुँह पर भूभर डालना।'[2]

चरखे को तेज चलाना 'घुन्नाना' कहाता है, क्योंकि वह चलते समय 'घुन्न-घुन्न' की आवाज करता है। चरखे के सम्बन्ध में पहेली प्रसिद्ध है—

"एकु पुरस, बहुत गुनभरो। लेटो जागै, सोवै खड़ो॥
उलटो हँकै, डारै बेल। जे देखो, करता के खेल॥"[3]

पोनी में से थोड़ी-सी निकाली हुई रुई फोश्रा कहाती है। प्रारम्भ में फोए को लम्बा करके और उसे तकुए की नोंक पर पेलकर तार निकाला जाता है।

[चित्र १२]

कत जाने के उपरान्त कुकरियों के तार (धागा) निकालकर उसे लकड़ी के एक अट्टई पर लपेटते हैं जिसे ऐना या अटेरना कहते हैं। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का मत है कि अट्टी और अटेरन शब्द पश्तो भाषा से हिन्दी में आये हैं[4]। ऐने पर सूत के धागे लपेटना 'ऐनना' कहाता है। कोरी लोग ऐने हुए सूत की आटें कपड़ा बुनने के लिए खरीद लेते हैं। बहुत गर्म पानी में जब कुछ ठंडा पानी मिलाया जाता है, तब उसे 'समोना' कहते हैं। आटों को समोये हुए पानी में भोया जाता है। भोया हुआ सूत वजन में भारी हो जाता है। चालाक कत्ती (सं० कर्त्री = कर्त्री कातने वाली) भोया हुआ सूत ही बेचने के लिए ले जाती है। कहावत है—

---

[1] 'भूभर' शब्द का प्रयोग गर्म रेत के अर्थ में भी होता है। तुलसीदासजी ने इसी अर्थ में इसका प्रयोग किया है—

"पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि डाढ़े।"

तुलसी ग्रन्थावली, दूसरा खंड, कवितावली, अयोध्याकांड, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, छन्द, १२।

[2] 'खोज खोना', 'कढ़ी करना' और 'मुँह पर फूस फेरना' जिन पीसना, मसेस करना भी स्त्रियों की प्रचलित गालियाँ हैं, जिनका अर्थ 'मौत चाहना' ही है।

[3] एक पुरुष है (एक वस्तु है जो पुल्लिंग है) गुण (डोरा) उसके ऊपर है। लेटा हुआ वह जागता है और खड़ा हुआ सोता है। उल्टा हाँककर बेल डालता है। यह करता का खेल है।

[4] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हिन्दी के कई शब्दों की निरुक्ति, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५४ अंक ३ पृ० ९२।

"मोई आटें वेचीं मन्दी 'कत्ती बड़ी चकत्ती।'
कत्ती कहै कोरिया लूटो, कोरी कहै मैंने कत्ती ॥"[१]

ऐने या अटेरने
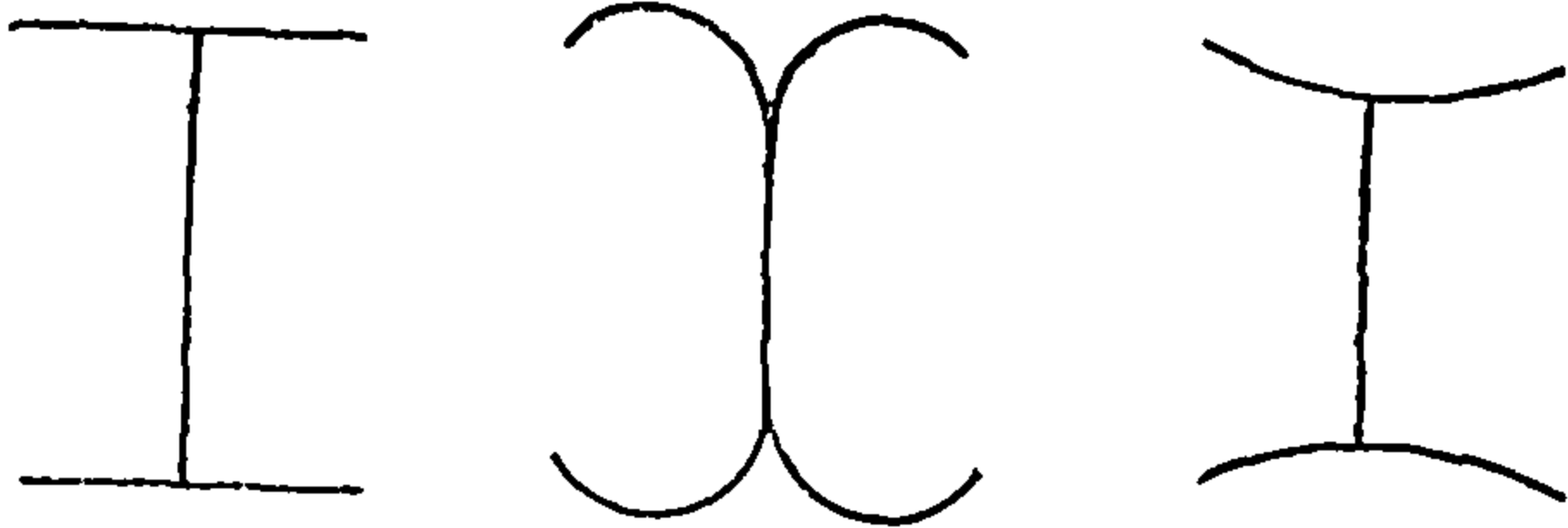
विभिन्न प्रकार के ऐने (रेखाचित्र ८६)

——

अध्याय ६

दही बिलोना

[चित्र १३]
दही बिलोती हुई किसानी

§२१२—दही के विभिन्न रूप—जमा हुआ दूध **दही** (सं० दधि) कहाता है। जिस थोड़े से दही से दूध जमाया जाता है, उसे **बीथन, सेंहन, सहेजा** या **जामन** कहते हैं। दही को मिट्टी के एक बड़े बर्तन में जमाया जाता है। यह बर्तन आकृति में **गागर** की भाँति होता है, परन्तु उसका पेट और मुँह चौड़ा होता है। उसे **कछुरी** कहते हैं। कछुरी में दही को बिलोकर जब **लौनी** या **नौनी** (सं० नवनीत[२]>नवनीअ>नउनी>नौनी) निकाली जाती है, तब उस क्रिया को **दही बिलोना** (सं० विलोलन>बिलोना), **दूध चलाना,** या **मठा चलाना** कहते (सं० मथित मठा हैं। हेमचन्द्र ने 'बिलोना' के लिए अपने प्राकृत-व्याकरण में 'विरोल' (४। १२१) धातु का उल्लेख किया है। दोनों हथेलियों से रई को दही में चलाना 'खुरकना' कहाता है। थोड़ा दही खुरका ही जाता है।

फटे हुए दूध को **छैना** या **छीलर** कहते हैं। दही के कण **'फिटक'** कहाते हैं। बिना पानी का दूध **निपनियाँ** और पानी का **पनिहाँ** या **पनियाँ** कहाता है।

---

[१] कत्ती (चरखा कातनेवाली) बड़ी चालाक थी। उसने मोआ लगी हुई आटें कोली को मन्दे भाव पैंठ में बेचीं। तब कत्ती कहने लगी कि मैंने कोली लूट लिया और कोली कहने लगा कि मैंने कत्ती लूट ली।

[२] "तस्यै नवनीतं तस्यै घृतं तस्या आमिक्षा तस्यै वाजिनम्।" शत० ३।३।३।२

जिस मिट्टी के बर्तन में दही बिलोया जाता है, उस बर्तन को चिलोमनी (गुड़ें में) चलामनी या दहेंड़ी (सं० दधि+भाण्डिका) कहते हैं। दही का पानी जब दही से अलग किया जाता है, तब उस क्रिया को नितारना कहते हैं।

§३२४—रई के अंग-प्रत्यंग—दही की चलामनी में लकड़ी का एक डंडा पड़ा रहता है, जिसे रई या मथानी[1] कहते हैं। चलती हुई रई के सम्बन्ध में पहेली प्रसिद्ध है—

"घोंटुन कौंच कमर फन्दा। नाचतु आवै रसनन्दा॥"[2]

रई के नीचे काठ की दो चिड़ियाँ लगी रहती हैं, जिन्हें चौंदा (कोल, हाथ० में) या चौंड़ (सादा० में) कहते हैं। इन चौंदों के ऊपर बाँस या लकड़ी की चार सींकें लगी रहती हैं, जिन्हें फँम (सादा० में) तिल्ली या तीली कहते हैं। रई के लिए हेमचन्द्र (देशीनाममाला-७।३) ने रवअ शब्द लिखा है। रई से जो रस्सी लिपटी रहती है, उसे नेंती या नेंता (सं० नेत्र) कहते हैं। तिल्लियों के ऊपर रई में काठ की एक गोलाई बनी रहती है, जिसे कंठा या कंठी कहते हैं। जब नेंती के दोनों सिरे पकड़कर खींचे जाते हैं, तब रई घूमती है और दही को मथकर लौनी का लौंदा (लौनी का गोला) निकाला जाता है। रई चलते समय दही में से जो आवाज़ निकलती है, उसे खुरक, खुरकन या घमरा कहते हैं। सूरदास ने इसके लिए 'घमरकौ' शब्द का उल्लेख किया है[3]।

किसानों की स्त्रियाँ लौनी को ताकर (गर्म करके) और छानकर घीउ (सं० घृत) कर लेती हैं और उसे बेचती भी हैं। घी खरीदनेवाला घीया कहाता है। हर अट्ठे (आठ दिन) के बाद इकट्ठा घी खरीद लेना कटनऊ करना कहाता है।

कछुरी या चलामनी में दही जमाने से पहले अथवा धौनी (सं० दोहनी) में दूध दुहने से पहले किसान की स्त्रियाँ थोड़ा-सा पानी डालती हैं और उसे हिलाकर फिर उस पानी को फेंक देती हैं। इस क्रिया को 'खँगारना' या 'पखारना'[4] कहते हैं।

नेंती[5] के सिरों पर काठ की छोटी-छोटी दो गट्टकें पड़ी रहती हैं, इन्हें डील, कोड़ली (गुड़ें) कोड़ीला (अन०) या गिल्ली (इग०) कहते हैं। रई को दो रस्सियों से ज़मीन में गड़े हुए एक डंडे से सम्बन्धित किया जाता है। वह डंडा खिसोंट या गिड़गम कहाता है। उन गोल रस्सियों को गुड़ें में सेमड़ा (सं० शिक्य+ड) दोंना या दोंमना (कोल—हाथ० में) कहते हैं। एक दोंमना रई के सिरे पर और एक रई के बीच में डाला जाता है, ताकि रई चलामनी में टिकी रहे। चलामनी को मिट्टी के एक ढक्कन से ढक दिया जाता है। उसे ढकना

---

[1] "कोउ मटुकी कोउ माटभरी मथनीन मथानी।"
सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०। १६१८

[2] घुटनों तक काँछ है और कमर में फन्दा पड़ा है। इस हालत में रसनन्दा नाचता हुआ आ रहा है।

[3] "ज्यौं-ज्यौं मोहन नाचै, त्यौं-त्यौं रई-घमरकौ होइ (री)।"
सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०। १४८

[4] "रई पेहनी धोंति पखारी"
सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०। १६००

[5] "नेति भाजन मनि-खंभ निकट धरि नेति रई घर नाइ।"
सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०। १४८

या **पारा** कहते हैं। **पारा** गहरे धरातल का एक तश्तरीनुमा बर्तन होता है, जिसके बीच में पकड़ने के लिए एक **ढूमनो** (एक गोली-सी) बनी रहती है।

दही में से **लौनी** निकल जाने पर **मठा** (सं० मथित) **या छाछ** (सं० छच्छिका) रह जाती है। हेमचन्द्र ने देशीनाममाला (३। २६) में 'छाछ' के लिए 'छासी' शब्द लिखा है। महाकवि सूर ने दही को **'दहयौ'** और मठा को **'महयौ'** भी लिखा है[1]। दही के चल जाने पर उसमें **फिटक** (नवनीत के कण) ऊपर आ जाती हैं। उन्हें हाथ की खौंच में ले लेते हैं। जब दही के **तिलूला** पूरी तरह से फिटक बन जाते हैं, तब उसे **'मठा आना'** कहते हैं। मठा आ जाने पर ही फिटकों को इकट्ठा करके लौंदा तैयार किया जाता है। लौंदा बनाते समय फिटकों को मठे पर से ले लेते हैं। इस क्रिया को **नितारना** या **सैंतना** कहते हैं। यदि पूरी तरह फिटकें नहीं निकलतीं तो वह **मठा अधचला** कहाता है। अधचले में हाथ डालकर थोड़ी देर हिलते हुए हाथ से खुर-खुर ध्वनि करते हुए उसे हिलाते हैं। मठे में हाथ डालकर धीरे-धीरे हाथ को हिलाना **'फलफलाना'** कहलाता है।

अध्याय ७

चक्की चलाना

§३१५—**चक्की के अंग**—चक्की को **चाकी** (सं० चक्रिका या चक्री) कहते हैं। चक्की चलाकर अन्न के दानों को आटे में बदलना **चाकी चलाना, चाकी पीसना** या **चाकी औरना** कहाता है। पिसा हुआ आटा **पिसान** या **चून** (सं० चूर्ण) कहाता है। इसे जिस वस्तु में छानते हैं, उसे **छलनी या चलनी** (सं० चालनी) कहते हैं। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

"सूप तो सूप परि चलनीऊ बोली जामैं हैरए सौ-सौ छेद।"[2]

"चलनी में धार काढ़ै करमऐ ठोकै।"[3]

चक्की पीसनेवाली स्त्री **पिसनहारी** कहाती है। जितना अनाज एक बार में चक्की में डाला जाता है, उस मात्रा को **कौर** (सं० कवल) कहते हैं।

चक्की में ऊपर नीचे जो दो गोल पत्थर लगे होते हैं, उन्हें **पाट** कहते हैं। ऊपर का पाट **उपरौटा** और नीचे का **तरौटा** कहाता है। ऊपरी पाट के बीच में एक गोल छेद होता है, जिसे **गलारा** कहते हैं। गलारे में लकड़ी की एक गट्टक अड़ी रहती है, जो गलुआ कहाती है। तरौटे (नीचे के पाट) के बीच में लोहे की एक कील ठुकी रहती है, जिसे **कीली**

---

[1] "कोऊ दूध कोउ दहयो महयौ लै चली सयानी।"
वही, १०। १६१८

[2] सूप बोला तो बोला, लेकिन आश्चर्य है कि चलनी भी अपनी प्रशंसा करती है जिसमें कि सौ-सौ छेद (सं० छिद्र = दोष) मौजूद हैं। यह लोकोक्ति उस समय कही जाती है, जब कोई दोषी या अवगुणी व्यक्ति अपनी प्रशंसा में बढ़-बढ़कर बातें बना रहा हो।

[3] जो चलनी में दूध दुहता है, वह व्यर्थ ही अपना कर्म ठोकता है। अर्थात् वह व्यर्थ तक़दीर को दोष देता है।

कहते हैं। कीली पर ही गलुआ घूमता है। कीली जिस लकड़ी के सिरे पर ठुकी रहती है, उसे **मानी** कहते हैं। मानी के नीचे लकड़ी का एक लम्बा तख्ता लगा रहता है, जो **पटुली** कहाता है। पटुली पत्थर के एक टुकड़े पर जमी रहती है। उस टुकड़े को **करका** कहते हैं। करके को ऊँचा-नीचा करने से ही चाकी चलने में हलकी-भारी हो जाती है।

मानी मिट्टी के बने हुए चूल्हे की भाँति के दो मटीलनों के बीच में रहती है, जिन्हें **चउआँ** कहते हैं। उन्हीं चउओं पर मिट्टी की **मिर** बनाई जाती है, जिसमें पिसा हुआ आटा आकर इकट्ठा होता रहता है। मिर में एक जगह खाँच-सी होती है, जहाँ से **झान्ने** (वह कपड़ा जिससे आटा बटोरा जाता है) द्वारा आटा डले (सं० उल्लफ = कागज कूटकर बनायी हुई एक टोकरी) में लाया जाता है। मिर की उस खाँच को **'आयना'** कहते हैं। चक्की के ऊपरी पाट में १०-१२ अंगुल की एक लकड़ी ठुकी रहती है, जिसे पकड़कर **पिसनहारी** (पीसने वाली) चक्की घुमाती है। उस लकड़ी को **हथेला** कहते हैं। कभी-कभी अधिक समय तक चक्की चलाने पर पिसनहारी की हथेली में हथेले की रगड़ से **फलक** या **फफोला** (सं० पुष्पफल > फोप्फल > फोप्फला > फफोला > हिं० श० नि०) पड़ जाता है।

यदि चक्की बहुत भारी चलती है, अर्थात् यदि ऊपर का पाट आसानी से नहीं घूमता है, तो कपड़े की चीर का एक छल्ला बनाया जाता है और उसे चक्की की कीली में डाला जाता है। उस छल्ले को **गेड़ी** कहते हैं। पीसने में काम आने वाली चक्की से छोटी वस्तु **दरैंता** (सिकं० में) **चकुला** या **चकला** कहाती है। चकला दाल आदि दलने में काम आता है। प्रायः दालों के दलने में कीली के ऊपर **गेड़ी** को काम में लाया जाता है। अलीगढ़ क्षेत्र की बोली में सूप, चलनी, चकला आदि को सामूहिक रूप में **'सौंज'**[1] कहते हैं।

§३१६—**पीसना तैयार करना**—जो अनाज पिसने के योग्य बना लिया जाता है, उसे **'पीसना'** कहते हैं। 'पीसना' तैयार करने में जो जो क्रियाएँ होती हैं, वे सब **'पीसना करना'** कहाती हैं।

सबसे पहले लोहे या पीतल के छेददार बर्तन में **नाज** (अनाज) छाना जाता है, ताकि उसमें से सरसों, रेत, राई, लाहा आदि के दाने निकल जायँ। अलग किये गये रेत, सरसों आदि को **छाँटन** कहते हैं। उस छेददार बर्तन को **छँटना** कहते हैं। सिरकी अर्थात् तुली की बनी हुई एक वस्तु होती है, जिसमें अनाज को फटकते हैं। जिस वस्तु से अनाज फटकते हैं, उसे **सूप** (सं० शूर्प)[2] कहते हैं। फटकने में गैल, मिट्टी, कंकड़ियाँ, ढेलियाँ आदि निकालकर गेल दी जाती हैं। **फिटाना** और **गोरना** (गोलना) महत्त्वपूर्ण क्रियाएँ हैं। जब सूप के आगे के भाग को कुछ नीचा करके हाथ ऊपर-नीचे किये जाते हैं, तब उसे **'फिटाना'** कहते हैं। सूप को दायें बायें हिलाना **गोरना** (गोलना) कहाता है। फिटाने से सरसों राई आदि अनाज से अलग हो जाते हैं। कभी-कभी दानों सहित बाल के टुकड़े नाज में मिले हुए रह जाते हैं, जो **दोबरी** कहाते हैं। फटकने से दोबरियाँ अलग हो जाती हैं। उन सब दोबरियों को लेकर **धनकुटे** (मूसल) से स्त्रियाँ एक **ओखरी** (ओखली) में डालकर कूट लेती हैं (सं० धान्यकुट्टक > धनकुटा = अनाज कूटने का लकड़ी का बना हुआ एक मोटा और

---

[1] "[illegible] सौंज सचि नहिं राखी [illegible] ।"
सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, ११ १३० [illegible]

[2] "शूर्पसम्मार्जनम्"
[illegible] : [illegible], पंजाब यूनिवर्सिटी
[illegible], [illegible] १, [illegible] १०, पृ० ११५।

भारी डंडा, मूसल)। कभी-कभी सारा अनाज भी ओखली में कूटा जाता है, ताकि उसके ऊपर से मोटा छिलका उतर जाय। इस प्रकार धनकुटे से कूटने को **'छरना'** कहते हैं। यदि दोवरियाँ थोड़ी होती हैं, तो वे खरल या इमामदस्ते में **मूसरी** (सं० मुशलिका, मुपलिका, या मुसलिका) से कूट ली जाती हैं। पत्थर या कंकड़ की बनी हुई **उठउआ ओखरी** (चल ओखली) खरल, और लोहे की उठउआ ओखरी **इमामदस्ता** कहाती है। पत्थर के सिलबट्टे (सं० शिला + वट्टक) से भी दोवरी में से अन्न निकलते हैं। सिल को **सिलौटा** या **सिलौटिया** भी कहते हैं। बट्टा **लोढ़ा** या **बटना** कहाता है। लोढ़े से सिल के ऊपर किसी वस्तु को घिसना **बटना** कहाता है। मूसली से अनाज कूटने के बाद दोवरी में से अन्न का दाना बाहर निकल आता है। उसे फिर फटके हुए साफ अनाज में मिला दिया जाता है। फटकने से जो कूड़ा-करकट निकलता है उसे **फटकन** कहते हैं। साफ अनाज को बाद में बीन लिया जाता है अर्थात् उसमें से कंकड़ियाँ और मिट्टी निकाल कर बाहर फेंक दी जाती हैं। बिन जाने के बाद अनाज पिसने योग्य बन जाता है। उस अनाज को **'पीसना'** कहते हैं। **पिसनहारियाँ** (चक्की पीसनेवाली) पीसने को चक्की में पीसकर उसका आटा बनाया करती हैं।

'पीसने' के अनाज को जल्दी ही चक्की में पीस लिया जाता है। यदि कोई स्त्री अपने पीसने को एक दो महीने रखा रहने के बाद पीसती है तो उसकी पड़ोसिनें कभी-कभी कह देती हैं—

"परु कें मरी मइया, एसों आये आँसू।"[1]

बीता हुआ वर्ष **परु की साल** या **पार साल** कहाता है। आनेवाली साल भी **पार साल** ही कहाती है। वर्तमान साल को **एसों** (सं० एतद्वर्ष) कहते हैं। बीती हुई तीसरी साल या आनेवाली तीसरी साल **त्यौरस** कहाती है।

सल्लो (सं० सरला = सीधी, मूर्ख) **बइयरबानी** (स्त्री) **चाकी ओरते** (चक्की चलाते) समय अपना मुँह, नाक, आँखें आदि **चून** (आटा) से भुड़भुड़ी कर लेती हैं। **सुतैमन** (सं० सुस्त्री-कमणि>सुतीयमनि>सुतैमन) और **करतबीली** (कर्तव्यशीला) स्त्रियाँ ढँग से पीसती हैं। **कमेरी** (काम करने में लगी रहने वाली) स्त्री यदि काम करती रहे और पुष्टिकारक भोजन के स्थान पर **अल्लौ-मल्लौ** (बेकार का; बहुत खराब) **खानौ** (भोजन) खाती रहे तो **देह** (शरीर) में **लट जाती** है अर्थात् दुबली-पतली हो जाती है। वह आये दिन **माँदी** (बीमार) ही रहती है। लोकोक्ति प्रचलित है—

"मोंटौ जब तक लटै घटै। पतरौ तब तक मरि मिटै।"[2]

कोमल तथा कमज़ोर व्यक्ति के लिए जनपदीय शब्द **लुजगुन** या **भूभूपाऊँ** प्रचलित है। उसे **लपसी कौ पिंड** (सं० लप्सिका-पिंड) भी कह देते हैं। दुर्बलता के लिए ब्रज बोली का शब्द **'बोदिगाई'** है। अच्छे **खन्ने** (कुल, खानदान) की स्त्रियों को बिना काम किये **जक** (चैन, कल) नहीं पड़ता। 'जक' शब्द का प्रयोग बिहारी ने भी किया है।[3]

---

[1] माता तो पार साल मरी थी, किन्तु उसकी **धीय** (पुत्री) उसके वियोग में इस वर्ष रोई। भावार्थ यह है कि उपयुक्त समय के बीत जाने पर बहुत काल के उपरान्त किसी काम को करना और वह भी दिखावटी रूप में।

[2] जब तक मोटा व्यक्ति पतला-दुबला होता है, तब तक पतला व्यक्ति मर जाता है।

[3] "न जक धरत हरि हिय धरैं, नाजुक कमला बाल।
भजत, भार-भय-भीत ह्वै, धनु, चन्दनु, बनमाल॥" बिहारी—रत्नाकर, प्रणेता श्री जगन्नाथदास रत्नाकर, सन् १९५५ ई०, दो० ४०५

प्रकरण १०

बर्तन, खिलौने और संदूक

अध्याय १

मिट्टी के बर्तन और मिट्टी की अन्य वस्तुएँ

§३१७—सभी प्रकार के मिट्टी के बर्तनों को सामान्यतः **बासन**[1] या 'भाँड़ा'[2] (सं० भाण्डक) कहा जाता है। धातु और मिट्टी के बर्तन एक जगह रखे हों तो उनको सामूहिक रूप से '**बासन-कूसन**' या '**बर्तन-भाँड़े**' भी कह दिया जाता है। जब तक **बासन** (मिट्टी का बर्तन) इस्तैमाल में नहीं आता, तब तक वह **कोरा** कहलाता है। यदि मिट्टी के बर्तन को टट्टी-पाखाने के हाथों से छू लिया जाय तो वह **भँड़ौरा** हो जाता है। पेशाब की कूँड़ियों का पानी जिन गागरों से **भंगिनें** (महतरानी) बाहर निकालती हैं, वे **भँड़ौरी गागरें** कहाती हैं। यदि **जूठे** (सं० जुष्ट) हाथों से पानी की गागर छू ली जाय तो वह **उतरी गागर** कहाती है।

गोधन (गोवर्धन) त्योहार से दो दिन पहले अर्थात् कातिक लगती चौदस (कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी) को कुम्हार किसान के घर छोटे-बड़े सभी प्रकार के बर्तन दे जाता है, जिन्हें सामूहिक रूप में **कुलवारा** कहते हैं।

§३१८—**छोटे-छोटे बर्तन और खिलौने**—मिट्टी के छोटे-छोटे बर्तन कई प्रकार के होते हैं और एक ही बर्तन को कई नामों से पुकारते हैं। बहुत छोटा बर्तन, जिसमें प्रायः तेल या चटनी रख ली जाती है, **चिपिया** कहाता है। इससे कुछ बड़ा **दीवला** या **दिवला**, दीवले से कुछ बड़ा **दीया** या **दीवा** कहलाता है। दीये से बड़ा **मानक दीया** होता है। दीवले, दीये और मानक दीये **दिवाली** (सं० दीपावली=दीप+आवली) पर तेल और **बाती** (सं० वर्तिका) द्वारा जलाये जाते हैं।

मंगल कलश के ऊपर एक ढक्कन आटे से भरकर रखा जाता है। यह आकार में दीये से दुगुना-तिगुना होता है। उसे **सरवा** (सं० शराव+क) या **सरइया** कहते हैं। इससे कुछ बड़ी **तस्तरी** या **रकेबी** कहाती है। सरवे से बड़ा **सकोरा**, **कसोरा** या **ढोकला** होता है। '**अम्बर ढोकला दीखना**' एक मुहावरा भी है, जिसका तात्पर्य 'अभिमान हो जाना' है। पानी पीने के लिए जो छोटा बर्तन काम आता है, वह **भोलुआ** या कुल्हड़ कहलाता है। कुल्हड़ के लिए हेमचन्द्र ने '**कोल्लर**' (देशीनाममाला, २।४७) शब्द लिखा है। [illegible] से कुछ छोटा बर्तन **कुल्हा**, **कुल्हुआ** या **कुल्हिया** (सं० कुल्हिका) कहाता है। ब्याह शादियों की **पाँति** (पंगत) में बूरे के लिए **सकोरा** और पानी के लिए **भोलुआ** रखे जाते हैं। कुल्हों में खील भरकर प्रायः दिवाली की रात को लक्ष्मी का पूजन किया जाता है। [illegible] में [illegible] जाते हैं, तब वे **चँडोल** कहाते हैं। [illegible] के विवाह में एक कुल्हे पर कई कुल्हे २, ५, या ७ की संख्या में [illegible] जाते हैं, [illegible]

[1] '[illegible] न बासन [illegible] ।'
[illegible], गीता प्रेस, गोरखपुर, [illegible]
[2] [illegible] —सूरसागर, [illegible] १०, [illegible]

वह खिलौना **कोठी** या **भँडेर** (सं० भाण्डावलि>भँडेर—खुर्जे में) कहाता है। यह प्राचीन 'वर्धमान'[1] (ऐनसाइ०) था। मकान की तिदरी की भाँतिका खिलौना **हठरी** कहाता है। बालक हठरी के द्वारों में दीवले जलाते हैं और खीलें भी भर लेते हैं। लक्ष्मी और गोधन की पूजा में **हठरी** रखी जाती है। सूर के बलदाऊ और कान्हा ने भी 'हठरी' से अपना मनोविनोद किया था[2]।

बुर्ज की आकृति का ऊँचा-सा खिलौना **बुर्ज** कहाता है। यदि ऊपर से वह गोलाई में हो तो **गोल बुर्ज** कहलाता है। किसी बड़े मुँह से बर्तन को ढकने के लिए एक ढक्कन काम में लाया जाता है, जिसके बीच में पकड़ने के लिए एक **टूमनी** लगी रहती है, वह **पारा** या **परिया** कहाता है। कहावत है—

"सबरी राति पीसौ और परिया भर सकेरौ ॥"[3]

मिट्टी के खिलौने और छोटे बर्तन—(रेखाचित्र ९० से ९४ तक)
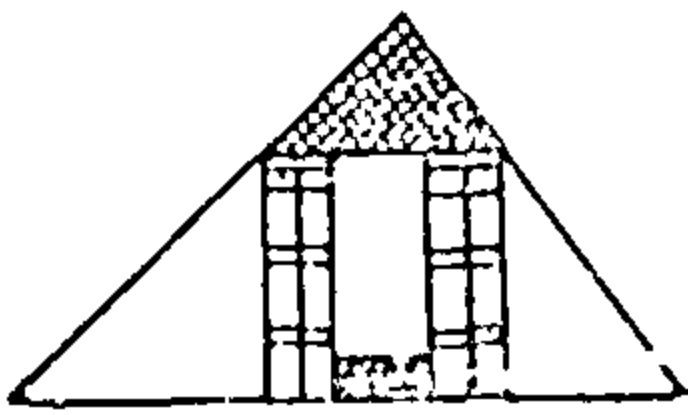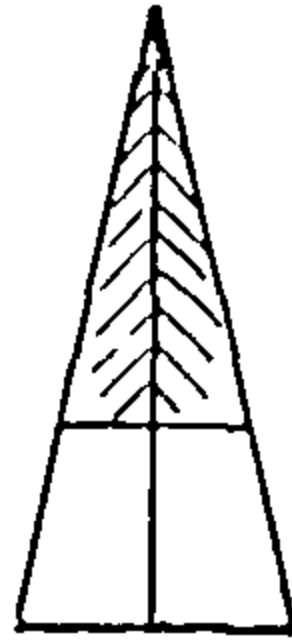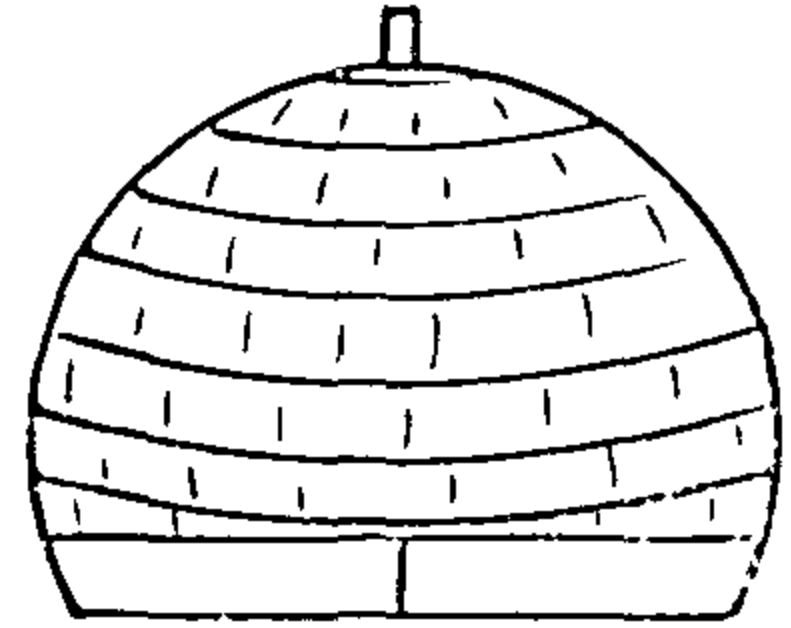
३१९—मिट्टी की बनी हुई गट्टक-सी पर एक दीया (सं० दीपक>दीवअ>दीवा>दीया) बना दिया जाता है; उसे **दीवट** (सं० दीपस्थ) कहते हैं। एक गोल छोटा पहिया-सा जिसपर घड़ा (सं०घट+क) रखा जाता है, **घेरा** कहाता है। साग-तरकारी रखने के लिए एक छोटा बर्तन जिसके

---

[1] डा० प्रसन्न कुमार आचार्य : एनसाइक्लोपीडिया आफ हिन्दू आरकीटेक्चर, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, सन् १९२७ पृष्ठ, ४४८।

[2] "सुरभी कान्ह जगाय खरिकहि बलमोहन बैठे हैं हठरी।"
सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, प्रथम संस्करण, स्कन्ध १०, पद ८१०।

[3] एक पिसनहारी खो सारी रात पीसती रही, परन्तु जब प्रातः में पिसे हुए आटे को सकेरा (इकट्ठा किया) तो कुल परिया भर ही बैठा।

किनारे पतले और सपाट होते हैं, **कुँडेली**, **कूँडी** या **कुंडी** कहाता है। कुँडी से कुछ बड़ा बर्तन **कुँडेला** कहलाता है। एक खुरखुरा टुकड़ा-सा जिससे हाथ-पाँवों का मैल छुड़ाया जाता है, **झामा** कहाता है।

घड़े से छोटा बर्तन जिसका मुँह और पेट चौड़ा होता है, गर्दन बहुत कम होती है, और **किनाटे** (मुँह का किनारा) कुछ मुड़े हुए तथा गोल होते हैं, **कछुरी**, **चपटिया**, **कमोरी**, **मटुकी**, **हँड़िया** (सं० भाण्डिका>हंडिआ>हंडिया>हँड़िया) या **हड़ुकी** कहलाता है। जिस कछुरी में दूध दुहा जाता है, वह **धोनी** (सं० दोहनी) कहाती है। जिस कछुरी में दूध जमाया जाता है वह **जमावनी** कहाती है; और जिसमें दही बिलोया जाता है, वह **बिलोमनी**, **मथनी**[1] या **चलामनी** कही जाती है। त० सादाबाद में उसे ही **पसघा** (सं० प्रलम्बक) कहते हैं।

कछुए की शक्ल का बना हुआ एक बर्तन **कछुवा** कहाता है। जिसकी गर्दन लम्बी होती है, वह बर्तन **सुराही** या **कुंजी** और छोटी गर्दन का **झारी** या **झज्झर** कहलाता है। कछुवा, सुराही और झारी पानी के काम में आनेवाले बर्तन हैं। बाण ने झारी के लिए ही सम्भवतः संस्कृत-शब्द 'आचामकक' (हर्षचरित, चतुर्थ उच्छ्वास, निर्णयसागर प्रेस, पंचम संस्करण, पृ० १४८) लिखा है।

बूरे को रखने में एक चौड़े मुँह का बर्तन काम आता है, वह **तौला** या **स्वमड़ा** कहाता है। तौला आकार में घड़े का आधा होता है। तौले से छोटे बर्तन जो पानी के लिए काम में लाये जाते हैं, **डबुआ**, **कूँजा**, **कमण्डल** (सं० कमण्डलु); **चकआ** (सं० चषक); **करवा** और **मलरा**; **मलसा** (मुँह में मटकना) और **मल्ला** (सं० मल्लक=एक बर्तन—मो० वि०) कहलाते हैं। करए को **बदना**, **करवली**, (सं० करक>करआ) या **करवा** भी कहते हैं। करवा असल में एक प्रकार का **पेंटुनीदार** (टोंटीदार) मिट्टी का लोटा होता है। उससे प्रायः **सोवर** (सूतिका) के बालक नहलाये जाते हैं और दिवाली पर गोवर्धन की परिक्रमा और पूजा में उसी से जल डाला जाता है। उसी में रक्खा हुआ नजर का पानी सौबरवाली जच्चा (बच्चे वाली स्त्री) को पिलाया जाता है। एक मलरे में जब जौ भर दिये जाते हैं और ढक्कन अर्थात् एक सरवा ऊपर से रखकर चून (सं० चूर्ण=आटा) में मिली पूरी हल्दी लपेट दी जाती है, तब ब्याह के समय उसे ही **बरमनियाँ** या **बरोनियाँ** कहते हैं (सं० शराव>सरवा=छोटा सकोरा)।

मिट्टी के जिस बर्तन में तेल रखा जाता है, उसे **गगिया** या **टिरिया** कहते हैं। टिरिया का पेट बड़ा होता है, लेकिन मुँह छोटा और गर्दन बहुत कम होती है। टिरिया से बड़ा एक तेल का बर्तन **मौना**, **मौनी** या **मौनि** कहाता है। मौनि का मुँह भी बहुत छोटा होता है, लेकिन पेट बहुत बड़ा होता है। लोटे के बराबर मिट्टी का एक बर्तन, जिसमें तेल रहता है, **मलरिया** या **मललिया** कहाता है। कुछ लम्बा और छोटे मुँह का एक बर्तन जिसमें अचार (अ० आचार>दास्त०) या मुरब्बा रहता है 'अमरितबान' कहाता है।

---

[1] "नन्दजू के बारे कान्ह छाँड़ि दै मथनियाँ।"
सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १० । १४५

[2] "[illegible]।"
बाण : हर्षचरित, चतुर्थ उच्छ्वास, निर्णयसागर प्रेस बम्बई, पंचम संस्करण, पृष्ठ १४८।

घड़े को सामान्यतः **गागर** या **गगरी** (सं० गर्गरी > गग्गरी > गगरी) कहते हैं। छोटी गागर **चपटा, घल्ला** या **घल्लिया** कहाती है। घल्ले से कुछ बड़ा मिट्टी का बर्तन जिसमें पानी भरा रहता है, **मटुकिया** कहाता है। शिवमूर्ति पर चढ़ाई हुई पानी की दो गागरें **जेहर** कहाती हैं।

थाली की भाँति का मिट्टी का एक बर्तन, जिसमें हलवाई पेड़े रखते हैं, **गिरदी** कहलाता है। **गिरदी** से बड़ा और गहरा एक बर्तन जिसमें दूध जमाया जाता है, **कूँड़ा** कहा जाता है (सं० कुण्डक[1] > कुंडअ > कूँड़ा)। गहरे कटोरे की भाँति का मिट्टी या कंकड़-पत्थर का एक बर्तन **कूँड़ी** (सं० कुंडिका[2] > कुंडिआ > कुंडी > कूँड़ी) कहाता है।

३२०–बड़े और भारी बर्तन—मिट्टी के बहुत बड़े बर्तन जो आकार में घड़े से दुगने, तिगुने तथा चौगुने तक होते हैं, **मथना, माँट, मटुका, नाप** (सं० निप[3]) **बोट**[4], **गोल**[5] और **करसी** (लम्बोतरा मटका) कहलाते हैं। करसी में खाँड़ और उक्त शेष बर्तनों में प्रायः अनाज भरा जाता है।

(मिट्टी से बनी हुई विशिष्ट वस्तुएँ और बर्तन)
(रेखा-चित्र ९५ से ९९)

---

[1] "पिठरः स्थाल्युखा कुण्डम्"
अमर० २।९।३१
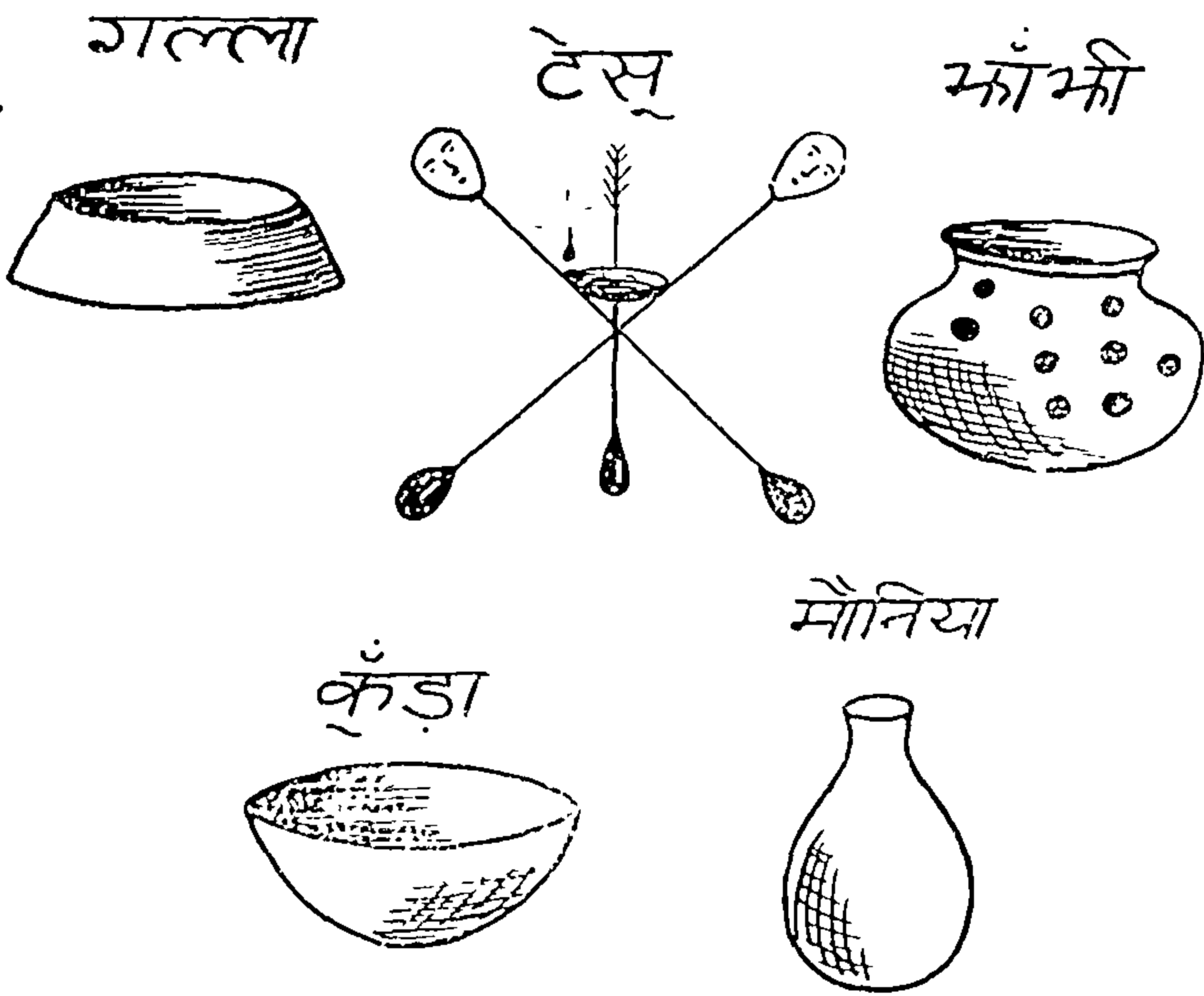
[2] "कुण्डिका स्रवति"
वामनजयादित्य, पाणिनीय व्याकरणसूत्रवृत्ति काशिका, अष्टा० १।३।८५

[3] "घटः कुट निपा"
अमर० २।९।३१

[4] बोट = बोटकुट = लंबोतरा कम चौड़े मुँह का घड़ा। इस प्रकार की बोट अजन्ता गुफा १ में चित्रित है। (औंधकृत अजन्ता, फलक ३९, बुद्ध की उपासना करती हुई स्त्रियाँ शीर्षक चित्र में।) ऊपर दीवाल गिरी में लम्बोतरा पात्र 'बोटकुट' रक्खा है।
डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : जनपद त्रैमासिक वर्ष १, अंक ३, पृ० १९।

[5] 'अलिंजर' एक महाकुम्भ अर्थात् बड़ा माँट था। बाण ने इसी का दूसरा नाम 'गोल' दिया है। (हर्षचरित, पृ० १५६)
"सरसशैवल वलयित गलद् गोलयंत्रके।"
डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, विन्ध्य वन का एक गाँव, जनपद, खंड १, अंक १, पृ० १८।

ब्याह-शादियों के अवसर पर एक गहरे और भारी बर्तन में प्रायः साग रक्खा जाता है, उसे **नाँद** (सं० नन्दा) कहते हैं। छोटी नाँद **नँदोरा** (सं० नंदापोतक=नाँद का बच्चा) कहाती है।

§३२१—**मिट्टी की अन्य वस्तुएँ**—कटोरेनुमा मिट्टी का एक बर्तन, जिसमें प्रायः दुकान पर हलवाई अपने पैसे रखता है, **'गल्ला'** कहाता है। हुक्के की **चिलम** भी मिट्टी की ही बनती है। बड़ी चिलम को **चिलमा** और पतली तथा लम्बी गर्दन की छोटी चिलम को **सुलफियाई चिलम** कहते हैं। कटोरदान की तरह की मिट्टी की एक वस्तु जिस पर खाल मढ़ी जाती है और बजती है, **झील** कहाती है। तबले की खाल जिस मिट्टी के बर्तन पर मढ़ी जाती है, वह **कुंडा** या
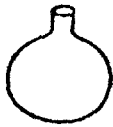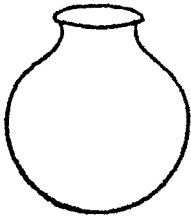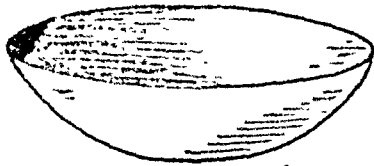
मिट्टी से बनी हुई विशिष्ट वस्तुएँ और बर्तन
(रेखा-चित्र १०० से १०५ तक)

कुण्डी कहाता है। गिलास की आकृति की मिट्टी की एक वस्तु, जिसके किनारे कुछ झुके हुए होते हैं और पैंदे की अपेक्षा मुँह का घेरा बड़ा होता है, **गमला** या **घमला** कहाती है। मिट्टी की बनी हुई एक वस्तु जो चूल्हे के बराहे में रहती है और जिसके सहारे से रोटी सिकती है, **सिपना** कहाती है। एक प्रकार का बन्द मुँह का कुल्हड़, जिसमें पैसा डालने के लिए एक लम्बा-सा छेद बना होता है, **गुल्लक** या **गोलक** कहाता है।

मिट्टी की एक लोटेनुमा गोल वस्तु, जिसमें किनारों के नीचे बेढ़ दर कई छेद बने होते हैं

[चित्र १४]
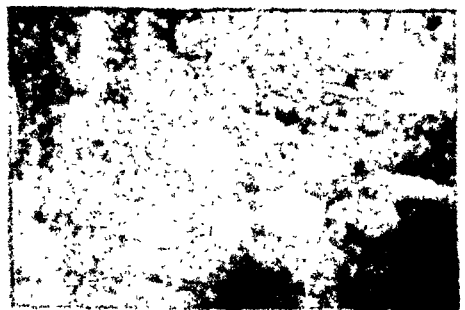
[चित्र १५]

और उन छेदों पर एक रंगीन [illegible] कागज़ [illegible] लगा दिया जाता है, **औंधी** कहाती है।

दसमी (आश्विन शुक्ला दशमी) से लेकर क्वार की पूरनमासी (आश्विन शुक्ला पूर्णिमा) तक लड़कियाँ घर-घर जाकर गीत गाती हैं और अनाज प्राप्त करती है। इस **झाँझी माँगना** कहते हैं। इसी तरह छोटे-छोटे लड़के **टेसू** माँगते हैं। तीन लकड़ियाँ (डंडियाँ) कैंचीनुमा जोड़ी जाती हैं। इनके सिरों पर मिट्टी के आदमी का सिर लगाया जाता है। ऊपर दीपक रखकर जलाते हैं। वे डंडियाँ **टेसू** कहलाती हैं।

अध्याय २

काठ के बर्तन

§३२२—काठ का बड़ा और गहरा बर्तन, जिसमें आटा माँड़ा और गूँदा जाता है, **कठौटा** या **कठउटा** कहाता है। इसी तरह का पत्थर का **पथरौटा** होता है। सिकं०, हाथ० में पथरौटे को '**उदला**' भी कहते हैं। कठौटी से छोटे आकार का बर्तन, जिसमें रोटियाँ रखी जाती हैं, **कठउआ** या **पतिया** कहाता है। पतिये से छोटा **कठेला** और कठेले से छोटी **कठेली** होती है।

वह गोल काठ जिस पर रोटी बेली जाती है, **चकरिया** या **चकरा** कहाता है। अंडाकार काठ, जिसमें दोनों ओर पकड़ने के लिए पतली डण्डी निकली रहती है, **बिलनिया** या **बेलन** कहाता है। काठ का चमचा **डोआ** (देश० डोअ० दे० ना० मा० ४। ११) कहाता है। खानेदार एक काठ की संदूकी जिसमें नमक-मिर्च आदि मसाले रक्खे रहते हैं, **मसालदानी** कहाती है।

मुसलमानों के घरों में साग-भाजी बनाने के लिए काठ की **करछुली** भी होती है। हेमचन्द्र ने इसके लिए 'कडच्छु' (दे० ना० मा० २। ७) शब्द लिखा है। गिरी निकले हुए एक खोखले

काठ के बर्तन

(रेखा-चित्र १०६ से १०६ तक)

नारियल में एक लकड़ी और लगा ली जाती है; उसे मटके के पानी में डाले रहते हैं और पानी पीते समय उसी से पीते हैं। वह **डबुआ** कहाता है। बेसन या कढ़ी में काम आनेवाली काठ की एक **डोई** भी होती है।

अध्याय ३

चमड़े के बर्तन

§३२३—एक चमड़े का टुकड़ा जो पुराने पुर (चरस) में से काटकर बनाया जाता है और जिस पर गुड़ आदि कूटकर महेले (घोड़े की एक खुराक) में मिलाया जाता है **चमोटा** या **पुरेंड़ा** कहाता है। पानी पिलाने तथा छिड़काव करने के लिए सक्का या भिश्ती के पास बकरी के चमड़े की एक लम्बी थैली होती है, जिसे **मुसक** (फ़ा० मश्क-स्टाइन०) कहते हैं। चमड़े का एक **डोल** (सं० दोल) होता है, जिससे सक्का कुएँ से पानी खींचता है। डोल से छोटी **डोलची** होती है। डोलची के किनारे-किनारे चमड़े की पट्टी लगी रहती है, उसे कन्धा कहते हैं।

ब्याह-शादियों में **मसाल** (अ० मशाल) पर तेल डालने के लिए मशालची नाई पर एक **कुप्पी** (सं० कुतुपिका) होती है जिसमें तेल रहता है। कुप्पी के नीचे का हिस्सा चमड़े का और मुँह काठ की नली का बना होता है। कुप्पी से बड़ा बर्तन **कुप्पा** कहाता है।

§३२४—**मुशक के अंगों के नाम और छिड़काव**—मुशक का मुँह, जिसमें से पानी की **दाल** या **दल्ल** (धार) निकलती है, **धाना** (फ़ा० दहाना) कहाता है। कमर पर लटकाने के लिए मुशक में लगी हुई बकरी के अगले दोनों पैरों की खाल काम में लाई जाती है। उन दोनों खालों को **पाँचे** (फ़ा० पाइचा-स्टाइन०) कहते हैं। पाँचों में लगी हुई गाँठ और पटार **दसफला** कहाती है। बकरी की पिछली टाँगों की खाल से बनी हुई चमड़े की चोंच-सी **खूँटा** कहाती है। खूँटा पकड़कर ही भरी हुई मुशक उठाई जाती है और पीठ पर लादी जाती है। चमड़े की डोरी जो भिश्ती के कन्धों पर रहती है और मुशक में भी बँधी रहती है, **जोती** कहाती है। मुशक में लम्बाई की हालत में एक **सीमन** (सिलावट) होती है, उसे **दरज** या **दर्ज** (अ० दर्ज़) कहते हैं।

मुशक के द्वारा धरती को पानी से तर करना **छिरकाव** या **छिड़काव** कहाता है। जब पानी पतली और हलकी बूँदों के साथ छिड़काया जाता है, तब वह छिड़काव **झींटिया छिरकाव** कहाता है। झींटिया छिरकाव से अधिक पानीवाला छिड़काव **बूँदिया छिरकन** कहलाता है। बूँदिया छिरकन में यदि लम्बी धार से आगे पतली बूँदें फुहारे की भाँति पड़ें, तो उस छिड़काव को **फुर्रा**

(चित्र-संख्या [illegible])
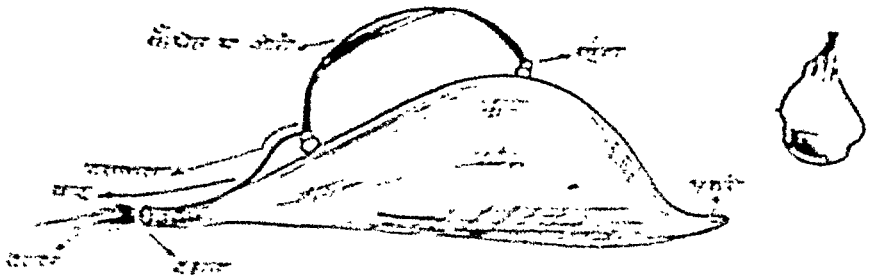
कहते हैं। यदि कुर्री में [illegible] बूँदें भी साथ-साथ गिरें तो वह छिड़काव कुर्रा कहाता है। यदि बूँदें न गिरें बल्कि पानी मोटी धार में गिरे, तो उसे [illegible] कहते हैं। [illegible] **कुर्री** कहाती है।

'मुसक' के लिए संस्कृत-शब्द 'दृति' और भस्त्रा हैं। पाणिनि काल में 'दृतिहरि' (हरतेर्दृतिनाथयोः पशौ पाणिनि : अष्टा० ३।२।२५) शब्द प्रचलित था। 'दृतिहरि' एक छोटा पशु होता था जो दृति में पहाड़ों पर सामान ढोने में काम आता था। आजकल भी उसी भाँति की पहाड़ी भेड़ें और बकरियाँ पहाड़ों पर सामान ढोया करती हैं।
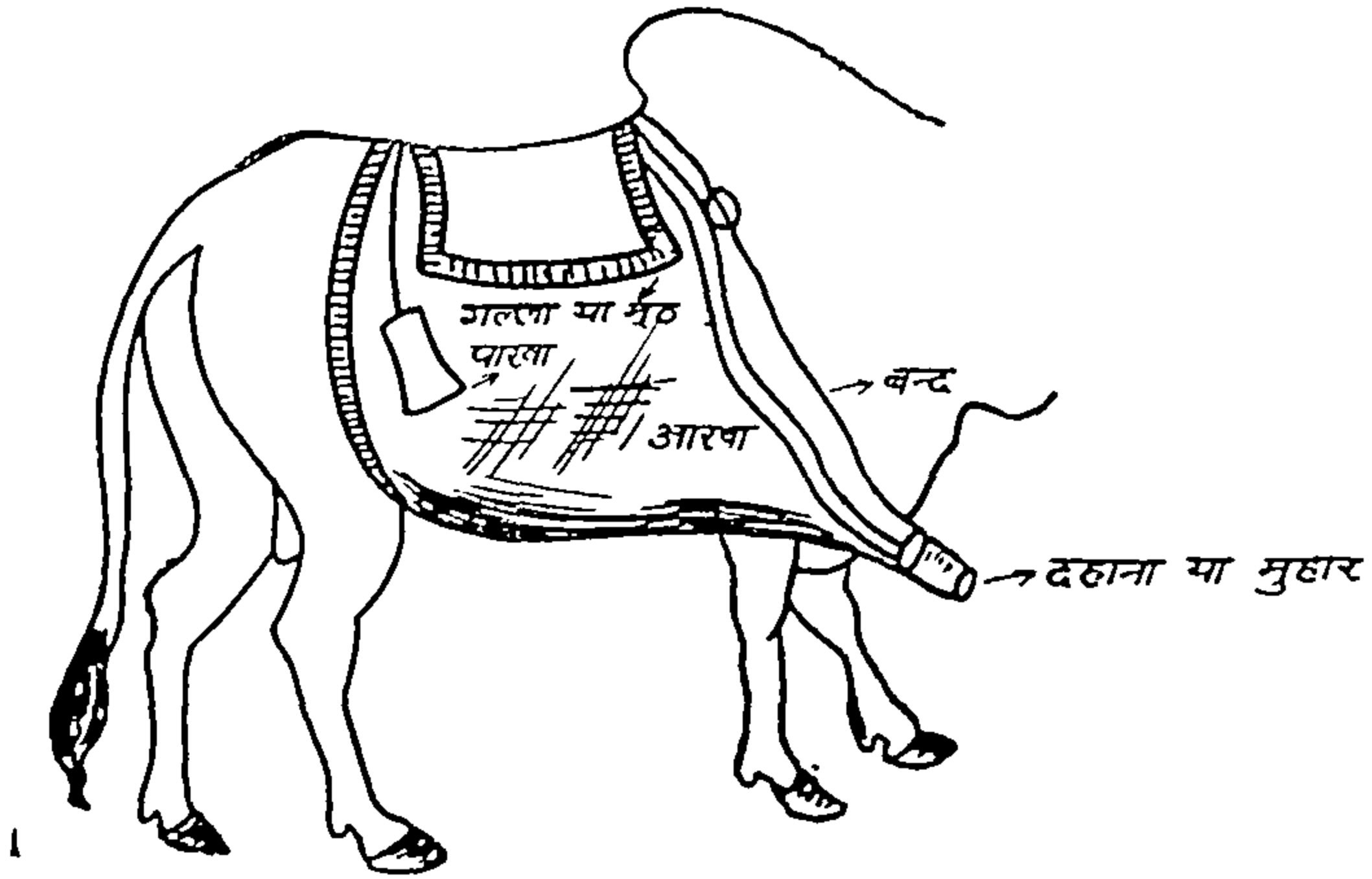
(रेखा-चित्र ११२)

§३२५—मुशक से भी बड़ी **पखाल** होती है, जिसमें भंगी (मेहतर) मोरियों और नालियों का गन्दा पानी भरकर बाहर फेंकते हैं। पखाल को भैंसे पर लादकर ले जाते हैं। वह दुहरी और दुतरफा थैलेनुमा होती है। दोनों तरफ एक-एक थैला लटकता है। प्रत्येक भाग **आखा** कहाता है। पानी भरा जानेवाला मुँह **गल्ला** और पानी भरते समय गल्ले में लगनेवाली लकड़ी **पक्खा** या **पाखा** कहाती है। पखाल में भरा हुआ पानी जहाँ से बाहर निकलता है, उस स्थान को **मुहार** कहते हैं। मुहार को बाँधनेवाली चमड़े की डोरी **बंद** कहाती है।

अध्याय ४

पत्तों और कागजों से बने हुए बर्तन तथा अन्य वस्तुएँ

§३२६—कमल के पत्ते अथवा बर (सं० वट) और ढाक के पत्ते ब्याह-शादियों में **पाँनि** (दावत) जिमाने के काम में आते हैं। ढाक के पत्तों को नीम की सींकों से जोड़ लेते हैं। इस तरह वे एक थाली के पैंदे के बराबर हो जाते हैं। उन्हें **पातर, पत्तर** या **पत्तल** (सं० पत्र > पत्तल > पत्तर > पातर) कहते हैं। कमल का केवल एक ही पत्ता **पत्तर** कहाता है। यदि बरी या ढाक के एक पत्ते को गोल और गड्ढेदार ढंग में मोड़कर उसमें सींकें लगा दी जाती

हैं, तो उसका वह रूप **दौना** (सं० द्रोण[१]) कहाता है। इसे ही मांट में **पतोखा**[२] और सादाबाद में **पनउआ** भी बोलते हैं। एक सौ दौनों की एक **गड्डी** और २०० पत्तलों का एक **गट्ठा** होता है। बड़ा गट्ठर जिसमें २५ गट्ठे होते हैं, एक **ओरा** कहाता है।

हवन में घी की **आहोती** (सं० सं० आहुति) डालने के लिए लकड़ी के एक सिरे पर चमचानुमा आम का पत्ता बाँध लेते हैं, उसे **सुरवा** (सं० स्रुवा) कहते हैं। कथा के समय या पुत्र के **दट्ठौन** (सं० दशोत्थान) पर अथवा ब्याह में दरवाजे पर एक रस्सी में आम के कई पत्ते लगाकर बाँध दिये जाते हैं, उन्हें **वन्दनवार** कहते हैं। पूजा के लिए जिस पत्ते में फूल ले जाते हैं, उसे **पुड़िया** या **पतौनी** कहते हैं। दरवाजे के ऊपर जब अर्द्धचन्द्राकार रूप में पत्ते लगा दिये जाते हैं, तब वह बँधाव **तोरन** (सं० तोरण) कहाता है। यदि आम की तीन-चार डालियाँ एक जगह करके रस्सी में बाँधकर दरवाजे या छत में लटका दी जाती हैं, तो उन्हें **झरौना** कहते हैं। त० सिकंदराराऊ और सोरों में उन्हें **सुवना** (शोभनक) भी बोलते हैं। कथा या पूजा के समय काठ की चौकी के चारों पायों पर केले के पत्ते बाँधकर फिर उन चारों पत्तों के सिरों को मिलाकर ऊपर बाँध देते हैं। केलों का वह बँधाव **मण्डप** या **मंडुआ** (हाथ० में) कहाता है। कभी-कभी पंडित अपने **जिजमान** (सं० यजमान) के हाथ में एक आम का पत्ता दे देते हैं और उससे देव-विशेष के लिए जल छुड़वाते हैं, तब वह पत्ता **अरघनी** (सं० अर्घनिका) कहलाता है। जिस पत्ते से पंडित या **पिरोहत** (सं० पुरोहित) जिजमान को पूजा के समय जल पिलाते हैं, वह पत्ता **अचौंनी** (सं० आचमनी) कहाता है।

§३२७—स्त्रियाँ **रद्दी** (पुराने कागज) इकट्ठी करके उन्हें पानी में गला देती हैं। जब कागज गलकर कुटने के योग्य हो जाते हैं, तब उन्हें **पनपना** कहते हैं। पनपनों को एक ओखली में

(रेखा-चित्र ११३ से ११७ तक)
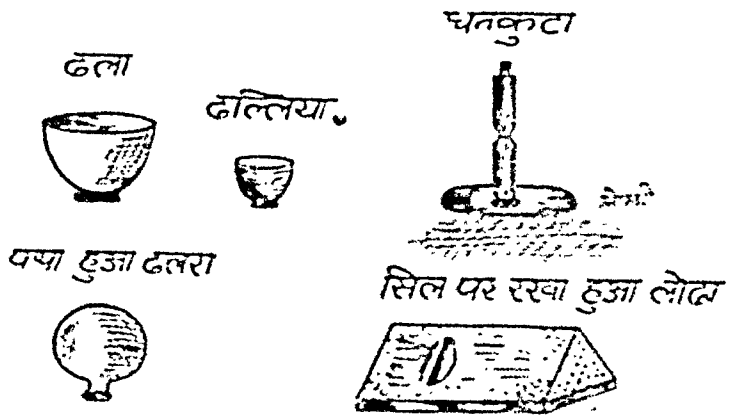
पनकुटे (मूसल) से कूट लिया जाता है। सिल पर पनपनों का कुटा हुआ रूप लुगदा या लुगदी

१ "द्रोणाजनवनजनकं मधकोर्नं मिष्नाकृपाकाम्"
ऋक्० १०।१०१।७
"द्रोणं कूमलं भरति"
सं० डा० ..., ..., ...,
अध्याय ४, खंड २७, पृ० १०७।
२ "बारत बह तुम भाति दिनावहु ... पतूनी।"
सूरसागर, ना० प्र० सभा, १०।३५५

कहाता है। किसी गागर या **मल्ले** (सं० मल्लक) को औंधा रखकर उसके ऊपर लुगदी को ल्हेसते जाते हैं। गागर के पैंदे और पेट पर लुगदी को पूरी तरस ल्हेसकर हाथ से धीरे-धीरे थपथपा देते हैं। सुखाने के बाद उस पर से उतार लेते हैं। लुगदी से बना हुआ वह बर्तन **डला** (सं० डल्लक), **ढला, ढल्ला** या **ढलरिया** कहाता है।

अध्याय ५

बर्तन रखने के आधार और काठ की बनी हुई अन्य वस्तुएँ

§३२८—मिट्टी और ईंटों से बना हुआ छोटा-सा खम्भ, जिस पर पानी के घड़े रख दिये जाते हैं, **मठौना** या **मठोटा** कहाता है। यदि मठोटा ऊँचाई में कम और चौड़ाई में अधिक हो तो उसे **घलथरी** या **पनथलो** (कासगंज में) कहते हैं। यदि ऊँची और लम्बी-सी **चौंतरी** पर बर्तन रखे जायँ तो उसे **बसैंड़ी** कहते हैं। ऊँची तथा गोल चौंतरी **थमैंड़ी** या **थमैंरी** कहाती है।

काठ का एक चौखटा जो दीवाल में गड़ा रहता है और जिस पर पानी के बर्तन रखे जाते हैं, **पढ़ैंनी** या **पढ़ैंली** कहाता है। इसे माँट में **घड़ौंची** (सं० घट+मंचिका घड़ौंची>घनौंची) और सादाबाद में **घनौंची** कहते हैं।

एक गोल काठ जो बीच में खाली होता है और जिसमें नीचे तीन या चार लकड़ी के पाये लगा दिये जाते हैं, **टिकठी** या **टिखटी** (सं० त्रिकाष्ठिका) कहाता है। गड्ढेदार और आयताकार तख्ते में तीन पाये लगा दिये जाते हैं, तो वह **तिपाई** कहाती है। तिपाई और टिखटी घड़े रखने के काम आती है। इसे **टेकनी** या **सधैनी** भी कहते हैं।

देहातों में चौपाल पर एक बड़ा तख्त पड़ा रहता है, जिसे **कठमाँचा** कहते हैं। उसके पाये **टापदार** बनते हैं। पायों के कोनों पर जो कीलें जड़ी जाती हैं वे **कोनिया** कहाती हैं। लकड़ी के तख्तों पर जड़ी जानेवाली कीलों को **बताशेदार** कीलें कहते हैं।

लोहे, पीतल आदि के बर्तन रखने के लिए एक ऊँचा-सा तख्ता काम में आता है, उसे **पट्टा** (सं० पट्टक) या **पटा** कहते हैं। यदि पट्टे की चौड़ाई कम हो और लम्बाई अधिक हो, तो उसे **पटुली** या **पटलिया** कहते हैं। झूले की रस्सी में लगाने की खाँचदार लकड़ी भी **पटुली** ही कहाती है। बल्ली पर पड़े हुए दुहरे झूले **'हिंड़ोले'** कहाते हैं।

चार पायों की छोटी-सी चौकोर मँचिया **चौकी** (सं० चतुष्किका>चउक्किआ>चउक्की>चौकी) कहाती है। इस पर भी बर्तन रक्खे जाते हैं। बहुत बड़ी और ऊँची चौकी **तखत** (अ० तथा फ़ा० तख़्त—स्टाइन०) कहाती है। तख्त के पाये ऊँचे नीचे हों, तो उनके नीचे ईंट-पत्थर का एक टुकड़ा लगा दिया जाता है, उसे **उटेटा** (कोल, हाथ० में) या **टिकेटा** (मांट में) कहते हैं।

खाट, खटोला, चौकी, तखत, पट्टा, टिखटी आदि वस्तुओं को सामूहिक रूप में **'भाजर'** कहते हैं।

§३२६—काठ की वस्तुओं में जो चौके के काम आती हैं, उनमें **चकरा, बेलन** और **कठपरिया** बहुत प्रचलित हैं। पानी के घड़ों के मुँह ढकने के लिए काठ के बने गोल ढकने (ढक्कन) **कठपरिया** कहाते हैं।

काठ के दो पल्लों से बनी हुई एक वस्तु होती है, जिसके दोनों पल्लों के बीच में नींबू आदि को रखकर रस निचोड़ा जाता है; उसे **निम्बूनिचोड़** कहते हैं। काठ की चौड़ी पटली पर एक लोहे का सरौता लगाया जाता है। उससे आमों को अचार के लिए फाड़ते हैं। वह **अमसरौता** कहाता है। हर्द (सं० हरिद्रा), मिर्च आदि कूटने के लिए लोहे का गहरा खरल होता है, जिसमें एक मूसली भी होती है, उसे **इमामदस्ता** (फ़ा० हावनदस्ता) कहते हैं। नाव की शक्ल का पत्थर का बना हुआ खरल और छोटी मूसली **'खल्लरबट्टा'** कहे जाते हैं।

सावन के महीने में बालक जिन काठ की वस्तुओं से खेलते हैं, उनमें **चकई** (सं० चक्रिका) या **चकती** और **लहट्टू या भौंरा** (सं० भ्रमरक) अधिक प्रचलित हैं। चकई जिस डोरी पर घूमती है, अर्थात् आती-जाती है, वह **चकडोरी**[1] कहलाती है। **लहट्टू** या **लट्टू** की डोरी **लटडोर** या **डोर** कहाती है। भौंरे के घूमने पर जो आवाज़ निकलती है, उसे **'बुस'**, या **'भुन'** कहते हैं। जब भौंरा इतने जोर से घूमता है कि उसका घूमना दिखाई नहीं देता, तब उसे **तायभरना** या **ताव भरना** कहते हैं। यदि एक जगह ही भौंरा ताय (ताव) भर रहा हो, तो वह **'सोया हुआ'** कहाता है।

भादों उजली द्वादशी (इन्द्र द्वादशी) को चटसारों में पढ़ानेवाले अध्यापक विद्यार्थियों को लेकर उनके घर जाते हैं और उनके माता-पिताओं से दक्षिणा लेते हैं। उस समय विद्यार्थी छोटी-छोटी काठ की डंडियों के जोड़े बजाते हैं और चौपई (पन्द्रह मात्रा का एक छन्द) गाते हैं। वे छोटे-छोटे डंडे **चट्टा** कहाते हैं। वे चौपइयाँ **'चट्टा-चौपई'** कहाती हैं। उस समय सब छात्रों को कुछ मीठा भी दिया जाता है, उसे **मिठाई** या **सिन्नी** (फ़ा० शीरीन—स्टाइन०) कहते हैं।

सींकों से बनी हुई कुट्टी, जो मकान भाड़ने के काम आती है, **बुहारी सोहनी**, (सकेंतो और खुनैत खलिहान में) और **झाड़ू** कहाती है। हेमचन्द्र ने **'बोहारी'** शब्द (देशी नाममाला ६।६७) देश्य माना है।

अध्याय ९

चौके तथा अन्य गृह-कार्य में काम आनेवाले धातु के बर्तन

§३३०—चूल्हे की आग ठीक करने की वस्तुएँ—**चिमटा** या **चीमटा** लोहे का होता है। इसके दोनों **पाते** (पत्ता) आग की कंडी या अँगार (सं० अंगार) को पकड़ने में काम आते हैं। लोहे या काठ की पोली नली-सी होती है, जिससे चूल्हे की आग फूँक मारकर जलाई जाती है, **फूँकनी, फुकनी** या **फुकना** कहाती है।

---

[1] 'ब्रज-वनिता मधि खेलत डोलत, हाथ लिये चकडोरि।
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।६३०

§३३१—**रोटी सेकने में काम आनेवाली वस्तुएँ**—लोहे अथवा पीतल की एक वस्तु, जिससे तवे की रोटी पलटी जाती है, **बेलचा, पल्टा** (सं० प्रलोटक) या **पल्टिया** कहाती है। उसकी डाँड़ी के आगे लगा हुआ पत्ता कुछ-कुछ अर्द्धचन्द्राकार होता है। यदि पत्ता बिलकुल गोल होता है, तो उसे **कच्छू, करछुल, करछुला** या **करछुली** कहते हैं। हेमचन्द्र ने इसके लिए 'कडच्छू' (दे० ना० मा०, २।७) शब्द लिखा है।
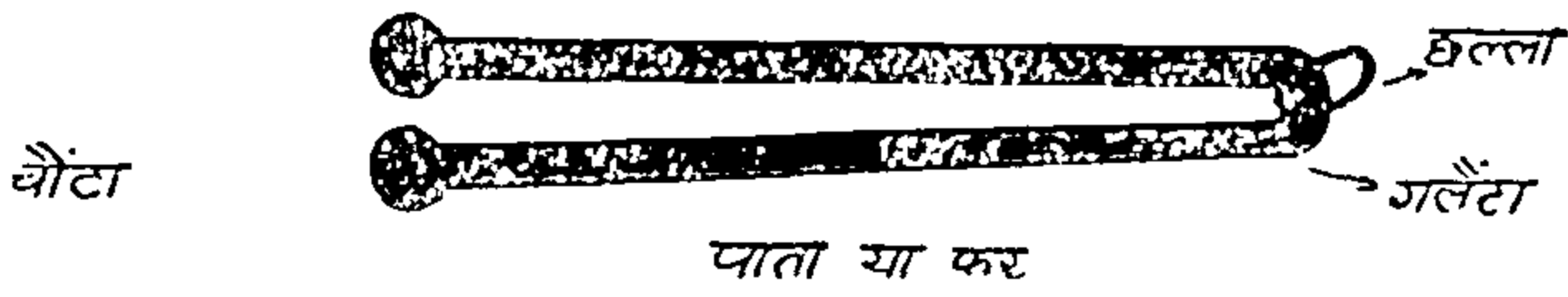
[रेखा-चित्र ११९]

§३३२—**पूरी, परामठे और सेव बनाने में काम आनेवाली वस्तुएँ**—परामठों को **पल्टा** और **टिक्कर** भी कहते हैं। ये **तये** (तवे) पर सिकते हैं। **चमचा** या **चमचिया** से घी लगाया जाता है। **पूरियाँ** (पूड़ियाँ) **करहैया** (कढ़ाई) में सिकती हैं। सिकी हुई पूड़ियाँ **परछा** या **पच्छा, परछिया** या **पच्छिया** में से **पौइना** (हत्था) या **पौनियाँ** से **करहैया** (कढ़ाई) से बाहर निकाल ली जाती हैं। बहुत बड़ी कढ़ाई को **पच्छा** कहते हैं।

काठ की दो डंडियों के बीच में लोहे की चौड़ी एक छेददार पत्ती लगी रहती है। उसे **छँटना** कहते हैं। उसमें सेव छाँटे जाते हैं। जिस घी और तेल में पूरी-कचौड़ी सिक चुकती है और फिर जो कढ़ाई में बच रहता है, वह **ढँढ़ेल** कहाता है। ढँढ़ेल को कढ़ाई से निकालने के लिए **डोई** काम में आती है। एक काठ के डंडे में एक कटोरी को कील से ठोक दिया जाता है। उस कटोरी को **डोई** कहते हैं। यदि **कटोरा** लगा दिया गया हो तो वह **डोआ** कहाता है। "दारुहस्त" अर्थात् लकड़ी की चमची के अर्थ में देशी नाममाला (४।११) में **"डोओ"** शब्द लिखा है।
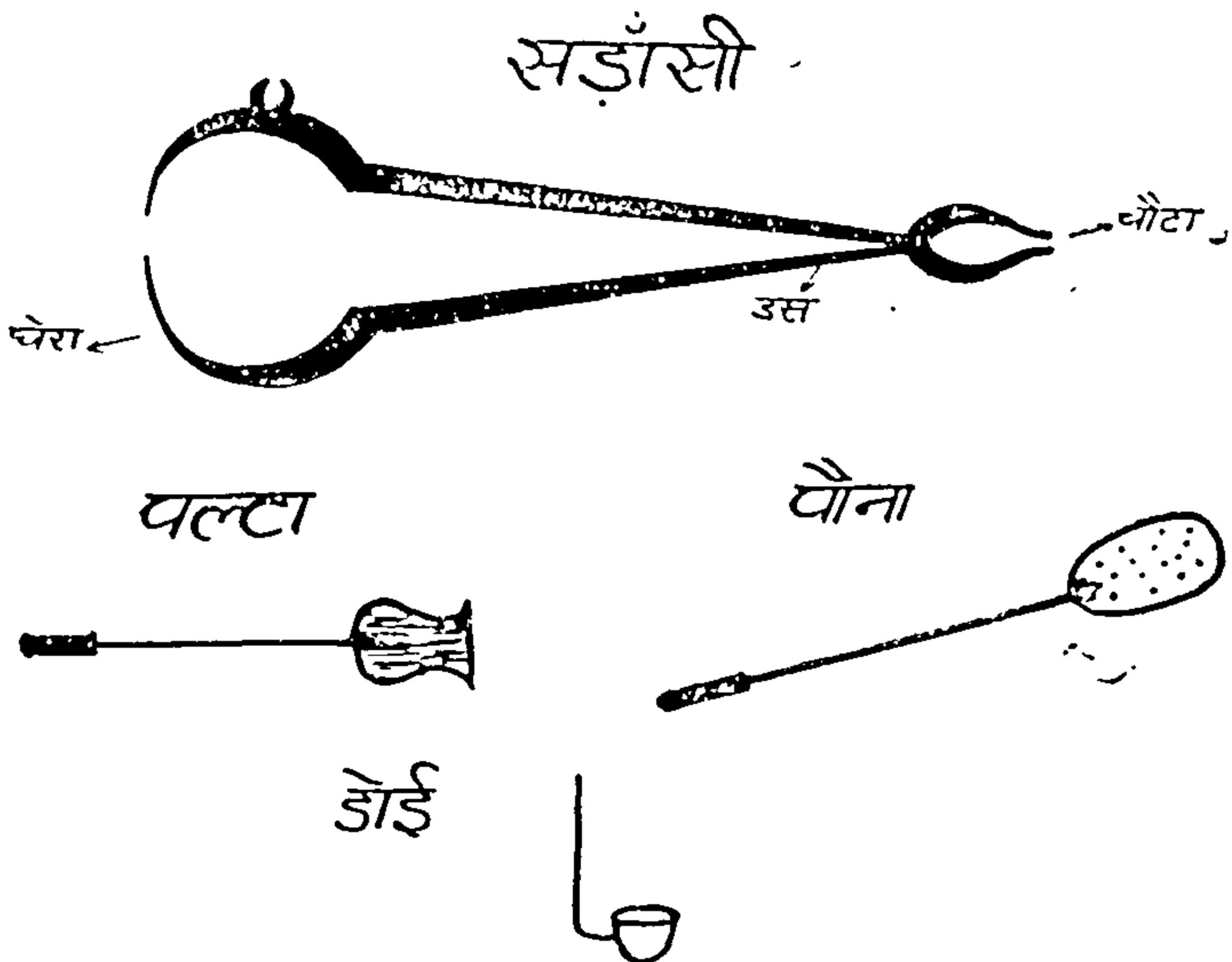
पकवान बनाने में काम आनेवाली वस्तुएँ—
(रेखा-चित्र १२० से १२२ तक)

§३३३—दाल-साग में काम आनेवाले बर्तन—स्त्रियाँ जिन बर्तनों में साग-दाल **राँधती** (सं० रन्ध् = राँधना, पकाना) हैं, वे बर्तन पीतल, कसकुट (भरत) और खिलवर आदि के होते हैं। उनमें **बटुला, कसेंड़ा** (सं० कंस + भांडक) **बटलोई, पतीली** (सं० पातिली), **देगची** (फा० देगचा शब्द का स्त्रीलिंग) आदि अधिक प्रसिद्ध हैं। लोहे की **सँड़ासी** (सं० संदंशिका > प्रा० संडासिआ > संडासी > सँड़ासी) गर्म पतीली उतारने में काम आती है। लोहे या पीतल की छेददार एक वस्तु होती है, जिस पर गोला या लौका हरौंथते हैं। वह **त्रिलइया, घीयाकस** या **कद्दूकस** कहाती है। त्रिलइया पर किसी चीज को रगड़ना **हरौंथना** कहलाता है।

§३३४—आटा माँड़ने और रोटी रखने में काम आनेवाले बर्तन—**परात, थारी** या **थरिया** (सं० स्थालिका > प्रा० थल्लिया > थरिया), **तसला, थार** (सं० स्थाल) और **कटोरदान**। कटोरदान में दो पल्ले होते हैं। दोनों कटोरेनुमा पल्ले एक दूसरे में फँस जाते हैं और जो वस्तु रखी जाती है, वह अन्दर बन्द हो जाती है।

§३३५—दाल-साग के खाने में काम आनेवाले बर्तन—**कटोरी, वेला** या **विलिया, छोला** और **कटोरा** (सं० करोटि[1], करोट, कटोर) विशेषतः काम आते हैं। वेले और छोले फूल (काँसा[2]) के बने होते हैं।

§३३६—पानी पीने में काम आनेवाले बर्तन—मनुष्य प्रायः **गिलास, लोटा** या **लुटिया** और **घण्टी** में पानी पीते हैं। छोटा और हलका लोटा **घण्टी** कहाता है। लोटे को **गड़ुआ** और लुटिया को **गड़ई** भी कहते हैं। एक विशेष प्रकार का गिलास जिसका पेट पिचका होता है, **कमण्डल** (सं० कमण्डलु) कहाता है। बालकों की छोटी टोंटीदार घण्टी या लुटिया **तुतई** कहाती है। प्रायः दो-तीन वर्ष के बच्चे तुतई में पानी पीते हैं।

§३३७—पानी भरने में काम आनेवाले बर्तन—ताँबे का टोंटीदार बड़ा लोटा **गंगा-सागर** कहाता है। पीतल का एक बर्तन जिसका पेट बहुत बड़ा और मुँह छोटा होता है, **तौली** कहाता है। ताँबे की तौली को **तमिया** कहते हैं। इसी से मिलते हुए बर्तन **टोपिया, टोकनी**[3] **टोकना** (देशी० टोक्करणअ) **कलसा** और **कलसिया** हैं। ताँबे की बड़ी और ऊँची नाँद **तमेंड़ी** या **तमेंड़ा** कहाती है। पीतल की बड़ी नाँद को **देग** (फा० देग) कहते हैं। मुसलमानों में बहुत बड़ी पतीली को देग ही कहते हैं।

चौड़े मुँह का पीतल का एक बर्तन जिसके किनारे कुछ मुड़े होते हैं, '**भगौना** (सं०

---

[1] कटोरा शब्द की व्युत्पत्ति सं० करोट, कटोर या करोटि—तीनों से ही सम्भव है। मोनियर विलियम्स कोश और वाचस्पत्यबृहदभिधान कोश में कटोर शब्द का अर्थ पात्र-विशेष लिखा है। कटोरा लिये हुए देवमूर्तियों के लिए "करोटिपाणिदेव" शब्द प्रयुक्त हुआ है। डा० प्रसन्नकुमार आचार्य द्वारा संपादित एनसाइक्लोपीडिया आफ हिन्दू आर्किटेक्चर (पृ० १०३) में 'करोटि' शब्द का अर्थ बर्तन लिखा है।

[2] "न पासीतासने भिन्ने भिन्नकांस्यं च वर्जयेत्"

—महाभारत, अनुशासन पर्व, सातवलेकर संस्क०, १०४।६६।

[3] "कबीर तष्टा टोकणीं लीए फिरै सुभाइ।

—रामनाम चीन्हें नहीं पीतल ही कै चाइ॥"

कबीर ग्रन्थावली, काशी ना० प्र० सभा, चाँणक कौ अंग, दो० ५।

भागद्रोण[१]) कहाता है। वह पानी भरने के काम आता है। प्राचीन संस्कृत में "भाग" का अर्थ था—"अन्न का राजग्राह्य अंश और 'द्रोण' शब्द का अर्थ था—'नापने के काम आनेवाला एक लकड़ी का बर्तन।' (सं० भागद्रोणक > भागदोणअ > भागओनअ > भगौना)।

कुछ छोटे बर्तन जो लोटे या बड़े गिलास के बराबर होते हैं, **टैनुआ** और **बंटा** कहाते हैं।

चार बड़ी-बड़ी कटोरियाँ जिसमें जुड़ी रहती हैं, वह **चौकड़ा** कहाता है। एक हत्थेदार छोटा भगौना जिसमें द्रव पदार्थ बाहर निकलने के लिए एक नाली-सी बनी रहती है, **रायतेदान** कहाता है। इसे ही हाथरस में **टेनी** या **टेनिया** कहते हैं।

डोल और **बल्टी** भी पानी के बर्तन हैं। इसके अतिरिक्त **कनस्तर** और **कोठी** या **ताश** (ड्राम जैसा लोहे का गोल और गहरा बर्तन) में भी पानी भर दिया जाता है। कनस्तर का आधा भाग **कट्टा** या **कट्टिया** कहाता है। पीतल या अन्य किसी धातु की बनी हुई एक तरह की दीवट,
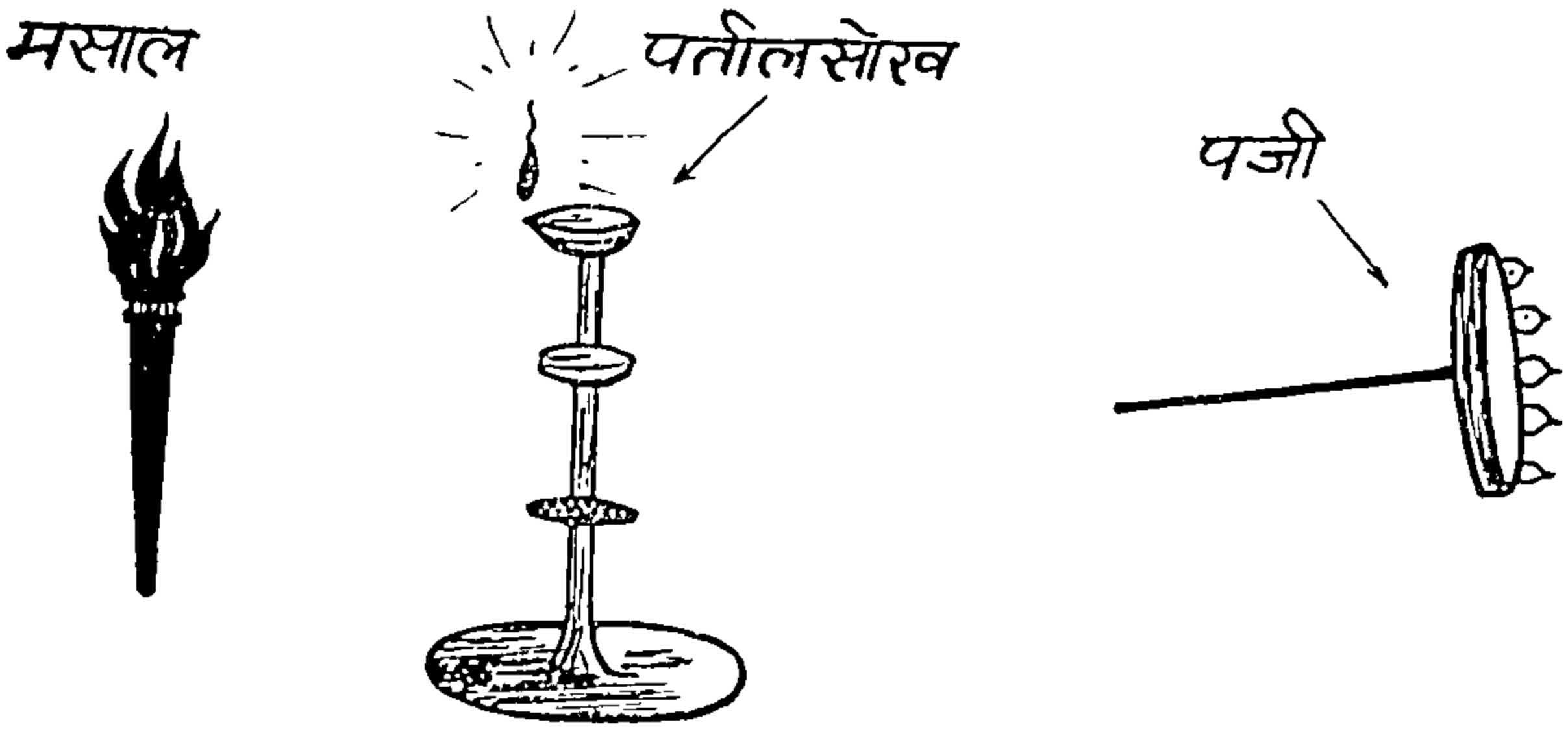
(रेखा-चित्र १२३ से १२५ तक)

जिस पर रखकर प्रायः दीपक जलाया जाता है, **पतीलसोख** (फ़ा० फ़तीलसोज़[२]) कहाती है। हाथ की पाँचों उँगलियों की भाँति पाँच डंडियों में, जो एक ही मोटी डंडी में से बनाई जाती है, एक कपड़ा लपेटा जाता है। उस कपड़े को **पलीता** (फ़ा० फ़लीता) कहते हैं। जिस चीज में पलीता लगाया जाता है, वह **पंजी** कहाती है।

अध्याय ७

धातु और लकड़ी के सन्दूक

§३३८— काठ की बनी हुई गोल और ढक्कनदार वस्तु डिब्बा कहाती है। डिब्बे में

---

[१] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : दस हिन्दी शब्दों की निरुक्ति, हिन्दी अनुशीलन पत्रिका (त्रैमासिक), वर्ष ४, अंक ३, पृ० ४।

[२] स्टाइनगास 'फतीलसोज' को अरबी और फारसी दोनों भाषाओं का शब्द मानते हैं। —पर्शियन इंगलिश डिक्शनरी, द्वितीय संस्क० सन् १९३० पृ० ९०८।

कटोरदान की भाँति दो पल्ले होते हैं, जो आवश्यकतानुसार मिला दिये जाते हैं, और अलग हो जाते हैं, डिब्बे से छोटी **डिबिया** होती है, जिसमें प्रायः स्त्रियाँ ईंगुर-बेंदी (बिन्दी) रखती हैं।

§३३६—बाँस या खजूर की बनी हुई गोल या आयताकार दो पल्लोंवाली मंजूषा **पिटारी** या **पिटारा** कहाती है। पिटारे बाँस की **खपंचों** (चिरे हुए बाँस के टुकड़े) या खजूर के **पलिगों** (पत्तों) से बनाये जाते हैं।

जब पिटारों में पकड़ने या लटकाने के लिए हत्थे लगा देते हैं, तब वे **कँडिया** कहाते हैं।

काठ की खानेदार संदूकी जिसमें स्त्रियाँ अपने शृंगार की वस्तुएँ रखती हैं, **'सिंगरौटी'** कहाती है। इसे त० माँट में **'सुहोगिली'** और त० सादाबाद में **'सोहिली'** भी कहते हैं।

§३४०—लकड़ी का बना हुआ बहुत बड़ा बक्स, जिसमें गद्दा, रजाई दड़ी, लिहाफ आदि बड़े-बड़े कपड़े रखे जाते हैं, और जिसमें दो-दो कुन्दे और साँकरें जड़ी होती हैं, **सिंदूका** (अ०सन्दूक़) कहलाता है। इससे छोटा **सिंदूक** या **संदूक** कहाता है। संदूक से छोटी **सिंदूकिया** या **संदूकची** होती है।

§३४१—लोहे की चद्दर के बने हुए संदूक **बक्स** (अँग० बौक्स) कहाते हैं। बहुत छोटा बक्स **बकसिया** कहाता है। बकसिया से कुछ बड़ा बक्स **पेटी** कहलाता है। इन सबमें एक ही साँकर-कुन्दा होता है और पकड़ने के लिए कुन्दे के पास ही **हत्था** या **कौंड़ा** पड़ा रहता है, जिसे पकड़कर बक्स उठाया जाता है।

§३४२—जब बक्स आकार में काफी बड़ा होता है और उसमें दाईं-बाईं पलों में भी कौंड़ों को जड़ दिया जाता है, तब वह **टिरंक** (अ० ट्रंक) कहाने लगता है।
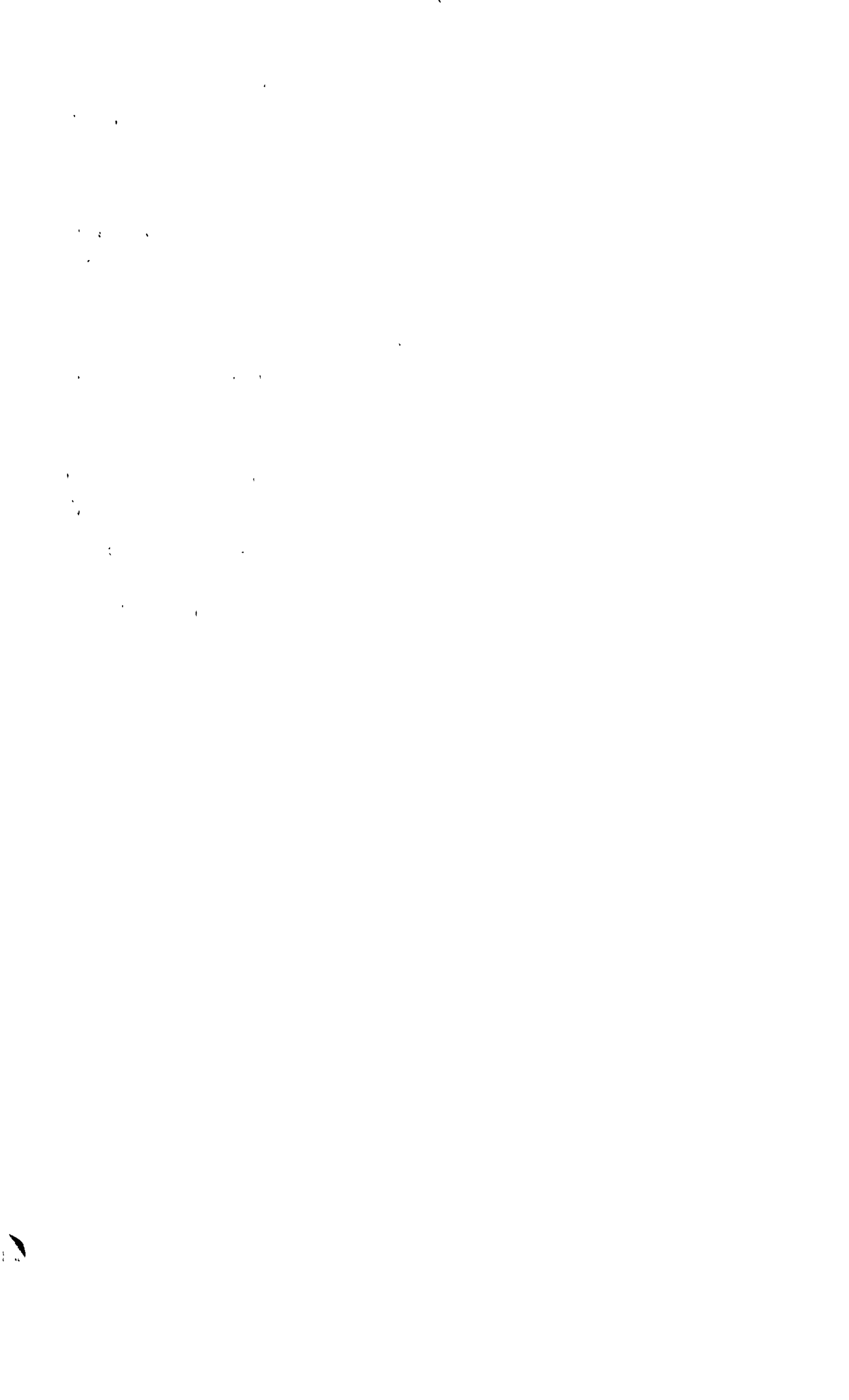
प्रकरण ११

पहनाव-उढ़ाव, साज-सिंगार और खान-पान

अध्याय १

पुरुषों के कपड़े

§२४३—कपड़े के लिए जनपदीय बोली में प्रचलित शब्द **लत्ता** (सं० लक्तक-मो० वि०; प्रा० लत्ता-स्टाइन०) है। जो कपड़ा प्रायः रक्खा रहता है, अर्थात् जो विशेष अवसरों पर ही पहना जाता है, उसे **धरऊ** कहते हैं। प्रतिदिन पहना जानेवाला **रोजनदार** कहाता है। फटे-पुराने को **गूदरा** (गूदड़ा) या **चीथरा** (चीथड़ा) कहते हैं। गूदड़ों का ढेर **गूदड़** कहाता है। किसी कपड़े का बहुत कम चौड़ा लेकिन अधिक लम्बा टुकड़ा **चीर** कहाता है। चौड़ी चीर **पट्टी** कहाती है। शरीर से उतारकर जो कपड़ा अलग कर दिया जाता है, तथा जिसे फिर नहीं पहना जाता, उसे **उतरन** कहते हैं। पुराना और फटा हुआ कपड़ा **फटीचरा** (सं० पटच्चर-अमर० २।६।११५) कहाता है। एक प्रकार के मोटे कपड़े को **गाढ़ा** या **गजी** कहते हैं। एक का प्रकार बहुत मोटा कपड़ा **सनीचरा** कहाता है। कपड़ा फट जाने पर उसमें जो कत्तल लगाई जाती है, उसे **थेगरी** या **पैबन्द** कहते हैं। कठिन और आश्चर्यजनक कार्य करने के अर्थ में **'अम्बर में थेगरी लगाना'** एक मुहावरा भी प्रचलित है। कपड़े का एक टुकड़ा, जो एक-दो **बिलाइँद** (बालिश्त) का हो, **टूँक** या **टुकेला** कहाता है।

§२४४—सिर से पाँव तक पहने जानेवाले पाँच विशेष कपड़े **पँचबसना**[१] या **सिरोपा**[२] कहाते हैं। विवाह में भात आदि के अवसर पर जब किसी को सिरोपा पहनाया जाता है, तब उसे **पहरावनी** कहते हैं। सिरोपे के कपड़ों में सिर की **पाग** (सिर पर बाँधा जानेवाला एक कपड़ा), **अँगरखा** (सं० अंगरक्षक>अँगरखा=अचकन या कोट की तरह का एक वस्त्र), गले का **डुपट्टा, पाजामा** (फ़ा० पायजामा-स्टाइन०) और **पटुका** (कमर में बाँधने का एक कपड़ा) सम्मिलित हैं। पटुके को **फेंटा** या **कमरपेटा** भी कहते हैं। स्त्रियों के एक लहँगे और उसके साथ एक ओढ़नी को मिलाकर **तीहर** कहा जाता है। विवाह में लड़केवाला **बरीपुरी** (चढ़ावा) के समय एक बढ़िया तीहर चढ़ाता है, जो प्रायः प्रदर्शन के लिए ही रक्खी जाती है, उसे **दिखाये की तीहर** कहते हैं। उसे **ब्याहुली** (नवविवाहिता लड़की) विदा के समय पहनती नहीं, बल्कि साथ में बक्स के अन्दर रख दी जाती है। जब सुन्दर तथा स्वस्थ मनुष्य किसी काम-धन्धे को नहीं करता, केवल बैठा ही रहता है; तब उसके लिए **'दिखाये की तीहर'** मुहावरे का प्रयोग किया जाता है। पाग (पगड़ी) और दुपट्टे को मिलाकर **बागा** कहते हैं। सूरदास ने 'बगा'[३] और सेनापति ने 'बागा'[४] शब्द

---

[१] अथर्ववेद में पँचबसना देने का उल्लेख है—

'पंचरुक्मा पंचनवानि वस्त्रा पंचास्मै धेनवः कामदुघा भवन्ति।'

—अथर्व० ९।५।२५

[२] 'दियौ सिरपाव नृपराव नैं नगर कौं आपु पहिरावने सब दिखावे।'

—सूरसागर, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, १०।५८७

'दैके सिरपाउ तौ हरावैं बाँधि राखिए।'

—उमाशंकर शुक्ल (संपादक) : सेनापति-कृत कवित्तरत्नाकर, तरंग १, छंद ।३८।

[३] 'माथे पै चढ़ाइ लीनौ लाल कौ बगा।' सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।३९

[४] 'बागौ निसिबासर सुधारत हौ सेनापति।'

—उमाशंकर शुक्ल (सं०) : सेनापति-कृत कवित्तरत्नाकर, २।७२

का प्रयोग किया है। ब्याह में दूल्हे के **म्हौर** (सं० मुकुट > मउर > मौर > म्हौर) की पाग के ऊपर जो एक लाल पट्टी बँधती है, उसे **पेचों** कहते हैं। पेचों की लपेट **पेच** कहाती है। अचकन-जैसा लम्बा और ढीला वस्त्र जिसे दूल्हा विवाह में पहनता है, **जामा, झगा** या **चोला** कहाता है। जामे के ऊपर कमर में एक पीले रंग का फेंटा बाँधा जाता है, जिसे **पीरिया** कहते हैं। पीरिये को दूल्हे के कन्धे पर या गले में भी डाल देते हैं। पीरिये के एक **ठोक** (एक कोने का सिरा) पर एक लम्बी लाल पट्टी बाँध दी जाती है, जिसे **चीरा** कहते हैं। ३-४ हाथ लम्बा एक कपड़ा जो हाथ-मुँह पोंछने के काम आता है, **अँगौछा** (सं० अंग[1] + प्रोञ्छ् = रगड़ना) कहाता है।

§३४५—**सिर के कपड़े**—आठ-दस गज लम्बा कपड़ा, जो सिर पर बाँधा जाता है, **साफा, स्वाफा, मुड़ाइसा, मुड़ासा** (सं० मुण्डवासक) या **हिमामा** (अ० इमामा-स्टाइन०) कहाता है। मुड़ासे का **पना** या **बर**[2] (अर्ज = चौड़ाई) पगड़ी के बर से बहुत बड़ा होता है। **टोपे-टोपियाँ** भी सिर के ही कपड़े हैं। एक टोपा, जो कानों को ढक लेता है और जिसकी दाईं-बाईं पट्टियाँ कानों पर होती हुई गले के नीचे घुण्डी द्वारा मिला दी जाती हैं, **कंटोपा** कहाता है। घुण्डी जिस गोल छेद में प्रविष्ट की जाती है, उसे **नक्की** कहते हैं। बालकों की छोटी गोल टोपी **कुल्हइया** (फ़ा० कुलाह-स्टाइन०) कहाती है। टोपी के अर्थ में सूरदास ने '**कुलही**'[3] शब्द का प्रयोग किया है।

§३४६—**धड़ पर पहने जानेवाले सिले हुए कपड़े**—एक प्रकार का सिला हुआ कपड़ा, जो बन्द गले के कोट की भाँति नीचा होता है, **अचकन** (सं० कंचुक[4] > प्रा० अंचुक-हिं० श० सा०) कहाता है। अचकन से मिलते-जुलते एक कपड़े को **चपकन** (फ़ा० चपकन-स्टाइन०) कहते हैं। शरीर में ढीला-ढाला और चपकन की तरह नीचा एक कपड़ा **अँगरखा** (सं० अंगरक्षक) कहाता है। अँगरखा नीचाई में घुटनों से नीचे तक होता है। इसके दाहिने पर्त का ऊपरी भाग इस तरह गोलाई में काटा जाता है कि उसको पहननेवाले आदमी का दाहिना स्तन चमकता रहता है। अँगरखे **दुपोरते** (दुहरे पर्त के) और रुईदार भी बनते हैं। एक प्रकार से रुईदार अँगरखे को किसान का चैस्टर समझिए। अँगरखे में बटन नहीं लगते, उनके स्थान पर प्रायः आठ **तनियाँ** (कपड़े से बनाई हुई डोरियाँ-सी) टाँकी जाती हैं। अँगरखा दो प्रकार का होता है—(१) **छिकलिया** (सं० षट् > प्रा० छ + सं० कलिका = ६ कलियोंवाला) (२) **चौकलिया** (सं० चतुष्कलिक)।

अचकननुमा ढीला कपड़ा, जिस पर सोने के सलमे-सितारे जड़े रहते हैं, **पिसवाज** (फ़ा० पेशवाज़-स्टाइन०) कहाता है। इसे प्रायः ब्याह में **बन्ने** (दूल्हा) को पहनाते हैं। कारचोबी

---

[1] डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० १००।

[2] 'पूरी गजगति **बरदार** है सरस अति।'
—सेनापति : कवित्तरत्नाकर, प्रयाग विश्वविद्यालय, हिन्दी परिषद्, तरंग १, छंद १७।

[3] '**कुलही** लसति सिर स्यामसुंदर कैं बहुविधि सुरँग बनाई।'
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, स्कंध १०। पद १०८।

[4] अँगरखे की भाँति का एक वस्त्र 'कंचुक' कहाता था। विक्रम की ६-७ वीं शताब्दि में राजाओं के अन्तःपुर में रहनेवाले कंचुकी 'कंचुक' पहनते थे। हर्ष ने रत्नावली में लिखा है कि—'राजा उदयन के अन्तःपुर में रहनेवाले कंचुकी के कंचुक में एक बौने (गट्टा आदमी) ने बन्दर के डर से अपने को छिपा लिया था। उदाहरण—
'अन्तः कंचुकिकंचुकस्य विशति त्रासादयं वामनः।'
—हर्ष : रत्नावली, निर्णयसागर प्रेस, चतुर्थ संस्क० अंक २, श्लोक ३।

या कसीदे के काम के लिए ऋग्वेद में 'पेशस्' (श्रेष्ठं वः पेशो अधिधायि दर्शतं-ऋक्० ४।३६।७) शब्द आया है। प्राचीन काल में कढ़ाई के सीधे **तार** (ऊपर के धागे) 'प्रवयण' और **उलटे तार** (नीचे के धागे) 'अवप्रज्जन' कहलाते थे। ऐतरेय ब्राह्मण में 'अवप्रज्जन' शब्द का उल्लेख किया गया है।

रुईदार ढीला अँगरखा-सा जिसमें बाँहें नहीं होतीं **'धगला'** कहाता है। इसे साधु-संन्यासी अधिक पहनते हैं।

§३४७—अँगरखे से छोटी **अँगरखी** होती है, जिसे **मिर्जई** भी कहते हैं। इसकी नीचाई घुटनों से ऊपर जाँघों तक ही होती है। मिर्जई का **पेस** (सामने का भाग) दो पर्तों का होता है। पर्तों का ऊपरी भाग **चोली**; और ढूँड़ी (नाभि) से नीचे का भाग **घेर** कहाता है। घेर में लगे हुए कपड़े के पर्त **कली** कहाते हैं। मिर्जई के सामने में दो कलियाँ होती हैं। बाँहों को **'आस्तीन'** भी कहते हैं। आस्तीन के किनारे को **म्होरी** कहते हैं। बगल के नीचे एक तिखुंटा कपड़ा लगाया जाता है, जिसे **बगल** कहते हैं। बगलों के ऊपर का भाग जो बाँह और कन्धे के बीच में होता है **कोठा या मुड्ढा** कहाता है। मिर्जई के पीछे का भाग **पीठ या पछेती** कहाता है।

§३४८—यदि अँगरखी की नीचाई कम हो अर्थात् उसका घेर चूतड़ को न ढक सके, तो उसे **चुतरकटी अँगरखी** कहते हैं। अँगरखी या मिर्जई में छाती का दाहिना भाग कुछ-कुछ चमरता रहता है, जैसा कि अँगरखे में चमकता है।

मिर्जई से मिलता-जुलता एक कपड़ा **बगलबन्दी** कहाता है। इसमें भी मिर्जई की भाँति ८ तनियाँ होती हैं, लेकिन बटन और काज नहीं होते। बगलबन्दी को किसान का देशी डबलब्रेस्ट कोट समझिए, जिसमें तनियाँ होती हैं और उन्हीं में गाँठ लगाकर बायें पर्त पर दाहिना पर्त बिठा दिया जाता है। कपड़े की बहुत पतली चीर, जिसे लम्बाई में दुहरी मोड़कर सिलाई कर देते हैं **तनी**[1] कहाती है। दो तनियों में जो जल्दी खुल जानेवाली गाँठ लगती है, उसे **सरकफूँद** कहते हैं। तनी का सिरा खींच देने पर गाँठ तुरन्त खुल जाती है। बगलबन्दी के अन्दरवाले पर्त में एक जेब (अ० जेब) भी लगाई जाती है।

§३४९—बच्चे की एक तरह की गोल टोपी, जिसमें चार या छः पट्टियाँ लगती हैं, **चौंननी** कहाती है। कुरतेनुमा एक कपड़ा, जिसे छोटे-छोटे बच्चे पहनते हैं, **झगुला या झगुली**[2] कहाता है। झगुले के गले के आगे एक चौड़ी पट्टी भी ऊपर से बाँधी जाती है, जिसे **गरोंट** कहते हैं। बच्चे की लार **गरोंट** पर ही गिरती रहती है। जन्मोत्सव पर छठी के दिन बच्चे की **फूफी** (बूआ) एक प्रकार का कुरता, अपने भतीजे को पहनाती है, जो **छटूकरी** कहाता है। दूल्हे को ब्याह में अनरखा जैसा एक कपड़ा पहनाया जाता है, जिसे **झगा** कहते हैं। एक प्रकार से झगुला **झगे**[3] का बेटा है, जो बाप की **होर** (छवि) और **उनहार** (आकृति) पर ही होता है। दूल्हा जब ब्याहने के लिए घर से चलता है, तब उस लोकाचार को **निकरौसी या सेकोंड़ा** कहते हैं। निकरौसी पर दूल्हे को झगा पहनाया जाता है।

§३५०—जनपदीय बोली में कुरते को 'कुरता' और कमीज को 'फमीच' (अ० कमीस-

---

[1] 'आनँदमगन राम गुन गावैं दुख-सँताप की काटि तनी।'
—सूरसागर, काशी नागरीप्रचारिणी सभा १।३९।
[2] 'आँगोंदे झगुलि तामैं कंचन-नगा।' —वही, १०।३९
[3] 'लाल कपाईं पाऊँ लाल की झगा।' —वही, १०।३९

स्टाइन०) भी कहते हैं। कुरते दो प्रकार के होते हैं—(१) **कलीदार** (२) **कलकतिया**। कलीदार में बगल से नीचे की ओर कलियाँ पड़ती हैं और वह आकार में बड़ा तथा ढीला-ढाला होता है। कलकतिया देह से चिपटा हुआ-सा रहता है और बाँहें ऊपर से नीचे की ओर संकोच होती चली जाती हैं। कमीज के आकार का एक छोटा कपड़ा कुरती (फा० कुरती[1]-स्टाइन०) कहाता है। कलीदार कुरते के घेर में चार कलियाँ पड़ती हैं। पट्टी का एक जोड़, जो ऊपर कम और नीचे अधिक होता है, **कली** कहाता है। बारीक मलमल के कपड़े के कलीदार कुरते प्रायः गर्मियों में पहने जाते हैं। इनकी कलियों की सिलाई **गोल दर्ज** (गोल किनारी की सिलाई) की होती है। सामने और पीठ के घेर के किनारों पर **तुरपाई** (कपड़े के किनारों को मोड़कर और ऊपरी तथा निचले पर्त को लेते हुए जो सिलाई की जाती है, उसे **तुरपाई** या **तुरपन** कहते हैं) की जाती है। जिस सिलाई में तुरपन की चौड़ी पत्ती-सी बनती है, वह **अमलपत्ती की सिलाई** कहाती है। अमलपत्ती से भी अधिक चौड़ी **सीमन** (सिलाई) **चौरा** कही जाती है। कुरते के दायें-बायें खुले हुए भाग **चाक** कहाते हैं। चाकों के ऊपरी भाग में भी अमलपत्ती की सिलाई होती है। यदि कुरता फट जाता है तो फटे हुए भाग के दोनों किनारे मिलाकर जब सुई से सिलाई की जाती है, तब उस क्रिया को **'फौंक भरना'** कहते हैं। वह भाग, जो फट जाता है, **फौंक** या **खोंप** कहाता है। हाथ की **सिमाई** (सिलाई) में पाँच काम मुख्य हैं—(१) **लंगर** (लम्बे-लम्बे टाँकों की कच्ची सिलाई) (२) **फौंक** (३) **अमलपत्ती** (४) **गोलदर्ज** (५) **तुरपाई**। मशीन की सिलाई **बखिया** कहाती है। जब **खोंता** (फटा हुआ हिस्सा) उसी कपड़े से मिलते-जुलते डोरे को पूरकर भर दिया जाता है, तब उसे **'रफ़ू'** कहते हैं। रफ़ू का काम करनेवाला कारीगर **रफ़ूगर** कहाता है। फौंक के दोनों पर्त मिलाकर जब एक साथ फन्दे डालते हुए उठी हुई किनारी की भाँति सिये जाते हैं, तब उस क्रिया को **गोंठना** कहते हैं। प्रायः **सल्लो** (अनाड़ी और अनभिज्ञ) **बहुअरबानी** (स्त्री) कपड़े की फौंक को गोंठ लिया करती है।

कुरते प्रायः **मलमल, डोरिया, गजी, गाढ़ा, खद्दर, रेशम, टसर** और **पोपलेन** आदि कपड़ों के बनते हैं। एक प्रकार की घास से बने हुए कपड़े के लिये अथर्ववेद (१८।४।३१) में 'तार्प्य' शब्द आया है। डा० सरकार ने 'टसर' से 'तार्प्य' की तुलना की है[2]।

कलकतिये कुरते में कलियाँ नहीं पड़तीं। उसका घेर कम होता है। उसकी बगलों में **चौबगले** (बगलों में लगनेवाली चौखूँटी पट्टी) नहीं डाले जाते। कलीदार कुरते में चौबगले डाले जाते हैं। किसी कपड़े में सिलाई की खराबी से यदि कहीं सिकुड़न अर्थात् सलवट पड़ने लगती है, तो उसे **झोल** कहते हैं। यह कपड़े की सिलाई का दोष या त्रुटि मानी जाती है। सूरदास ने **'झोल'**[3] शब्द का प्रयोग कमी या खोट के अर्थ में किया है। कुरतों में गले कई तरह के होते हैं। सामने का गला **पेसगला**; बगल के पास का **बगली** कहाता है। जिसके कन्धे पर घुंडियाँ लगती हैं, उसे **हँसुलिया गला** कहते हैं। पेस-गले में प्रायः काज और बटन लगते हैं। शेष अन्य प्रकार के गलों में कपड़े की घुंडी और डोरे की फन्देदार नक्की से ही काम हो जाता है।

पेस-गले में नीचे का पर्त, जिसमें बटन लगे रहते हैं, **बटनटेक** कहाता है। ऊपर की काजवाली पट्टी **काजपट्टी** कहाती है। गले के नीचे का हिस्सा **गरा** या **गरेबान** (फा० गिरीबान

---

[1] एफ० स्टाइनगास : पर्शियन-इँगलिश डिक्शनरी, द्वितीय संस्करण, पृ० १०२१।

[2] डा० मोतीचन्द्र : प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० १४।

[3] कैधों तुम पावन प्रभु नाहीं, कै कछु मोमैं झोलौ।

—सूरसागर, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, १।१३६

स्टाइन०) कहाता है। गरेबान के नीचे कपड़े की एक छोटी-सी पट्टी लगी रहती है, जो **तावीज** (अ० तावीज़) कहाती है। तिकोने तावीज को **तिखूँटिया** और चौकोने को **चौखूँटिया** कहते हैं। कलीदार कुरते में तिखूँटिया और कलकतिये कुरते में **चौखूँटिया तावीज** लगता है। काज बनाते समय दर्जी जो डोरे का फन्दा डालता है, वह **आँट** कहाता है।

आधी बाँहों की कम नीची कमीज **कट्टा** कहाती है। कट्टे के घेर की नीचाई कमर से कुछ नीचे तक होती है। कट्टे का घेर और गला कुरते के घेर और गले से मिलता-जुलता होता है। कुरता हमारा प्राचीन पहनावा है। इसका उल्लेख लियेन के संस्कृत-चीनी कोश (पृ० ७८५-७९४) में हुआ है। एक चीनी शब्द "चान-का" है जिसका पर्यायवाची शब्द "कुरतउ" लिखा गया है—(बागची, द्वलेक्सीक संस्कृत शिनुआ, भाग २, पृ० ३५७, पेरिस १९२७)। पुर्तगाली भाषा में एक शब्द 'कुरता-कबाया' है। इससे भी 'कुरता' शब्द का साम्य स्थापित किया जाता है[1]। टर्नर और स्टाइनगास 'कुरता' शब्द को फारसी भाषा का मानते हैं। हिन्दी शब्दसागर में इसे तुर्की माना गया है। कुरतों या कमीजों में जो कपड़ा, गले के चारों ओर पट्टी के रूप में लगता है, वह **गरोटी** कहाता है। यह अँगरेजी शब्द 'कौलर' के लिए प्रचलित जनपदीय शब्द है। कमीज या कुरते की बाँह या आस्तीन (फा० आस्तीन = बाँह) के आगे किनारे की पट्टी **वहोलटी** कहाती है। नाप की अपेक्षा बड़ी आस्तीनें बन जाने पर उन्हें बीच में कुछ मोड़कर सीं देते हैं। वह मुड़ा हुआ भाग **गुरकन** या **मुरकनि** कहाता है। कुरते की बाहों के अग्र भाग को **"वहोल"**[2] कहते हैं।

§३५१—आजकल की फैशन में जो रूप 'जवाहरकट' का है ठीक उसी प्रकार का एक कपड़ा **फतूरी** या **सलूका** कहलाता है। सलूके में बाँहें होती हैं और सामने में दो परत (पर्त) होते हैं। यह प्रायः दुहरे कपड़े का बनता है। दुहरे कपड़े से तात्पर्य यह है कि इसमें नीचे **अस्तर** (नीचे लगने वाला कपड़ा) लगता है। अस्तर वाला सलूका **दुपोस्ता सलूका** कहाता है। बिना बाँहों के सलूके को **बंडी** कह देते हैं। जनाने सलूके के **पेस** (सामना) में दो भाग होते हैं। ऊपर का भाग सीना और नीचे का **पेटी** कहाता है। पेटी नाम का भाग पेट को ढकता है। कपड़े की नाप को **नपाना** कहते हैं। जनाने सलूके में सीने का नपाना पेटी से कुछ **सिजल** (अधिक) रखा जाता है।

पानदार या गोल गले वाला एक कपड़ा **बनियान** कहाता है। इसमें बटन नहीं लगते, लेकिन कन्धों पर तुरिइयाँ लग जाती हैं। बिना आस्तीनों की बनियान **कट्टी** कहाती है। बंडी बनियान की भाँति सिली हुई बिना बाहों की बनियान को **अधकट्टी** कहते हैं।

§३५२—**कमर से नीचे पहने जानेवाले कपड़े**—कुछ कपड़े, जिनमें तनियाँ और पट्टियाँ लगती हैं और जो सामने के भाग और नितम्ब भाग को ढक लेते हैं, **फन्छा**, **लँगोट**, **लुंगी** और **रूमाली** कहाते हैं। प्रायः पहलवान अर्थात् मल्ल लँगोट बाँधकर **मसाई** (पहलवानी) करते हैं। कुछ लोग गुप्तांगों को ढकने के लिए कमर और सामने के भाग में दो पट्टियाँ बाँधते हैं; उन्हें **लँगोटी** या **कोपीन** (सं० कौपीन) कहते हैं। एक वस्त्र, जिसके पायँचे घुटनों तक होते हैं, **घुटना**

---

[1] डा० मोतीचन्द्र : प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० १७८।

[2] "धारत भरा पै ना उदार अति आदर सौं,
कारन वहोलनि जो आँसु-रुधिराई है।"
—जगन्नाथदास रत्नाकर : रत्नाकर पहला भाग, उद्धव-शतक, काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, तीसरा संस्करण, सं० २००३, कवित्त संख्या १०८, पृ० १५५।

कहाता है। यह किसान का देशी नेकर है। घुटने से छोटा एक वस्त्र जो प्रायः लँगोट के ऊपर पहिना जाता है, **जाँगिया** या **जाँघिया** कहाता है।

§३५३—घुटने के पायंचों से बड़े पायँचोंवाला एक वस्त्र **पाजामा** (फा०पायजामा), **पजामा**, **पजम्मा** या **सूतना** (सं० स्वस्थान > सुत्थन > सूथान > सूथन > सूथना > सूतना) कहाता है। बाण ने हर्षचरित में 'स्वस्थान'[1] और सूरदास ने सूरसागर में सूथन[2]' शब्दों का उल्लेख किया है। ढीला और बहुत चौड़ी म्हौरियों का पाजामा **खूसना**, **खुसन्ना** या **गरारेदार पाजामा** कहाता है। तंग पाजामा **चूड़ीदार** या **औरेबी** कहाता है। चूड़ीदार के पायँचे बहुत तंग और लम्बे होते हैं। उनमें पहनने के समय बहुत सी सलवटें-सी पड़ जाती हैं जो **चूड़ियाँ** कहाती हैं। मामूली चौड़े पायँचों का एक मध्यवर्ती पाजामा **अलीगढ़ी** कहाता है। अलीगढ़ी पाजामा अलीगढ़ के मुसलमान बहुत बड़ी संख्या में पहनते हैं। यह चूड़ीदार की भाँति पिंडलियों पर कसा हुआ और चिपटा हुआ नहीं रहता।

§३५४—आधी धोती के बराबर एक कपड़ा, जिसे प्रायः मुसलमान बाँधते हैं, **तहमद** या **तैमद** कहाता है। इसे बिना **लाँग** (काँछ=धोती का वह भाग जो आगे से पीछे को उरस लिया जाता है) के कमर में लपेट लिया जाता है। **धोती** (सं० धोत्रिका > धोतिआ > धोत्ती > धोती) को जनपदीय बोली में **धोवती** भी कहते हैं। 'धौत' शब्द का अर्थ कपड़ा है[3]। लाँग के दृष्टिकोण से धोतियाँ दो प्रकार से बाँधी जाती हैं—(१) **इकलंगी** (२) **दुलंगी**। बँधाव के विचार से धोतियों के अलग-अलग नाम हैं—(१) **फेंटिया बँधाव** (२) **पटुलिया बँधाव**।

फेंटिया बँधाव की धोती में कमर में **फेंटा** (धोती का एक सिरा जिससे कमर बाँधी जाती है) बाँधा जाता है। इसमें एक टाँग पर लाँगदार मोड़ आती है। यह एक लाँग का फेंटिया बँधाव कहाता है। प्रायः किसान काम के समय दुलंगा फेंटिया बँधाव ही बाँधते हैं) इकलंगा फेंटिया और पटुलिया नाम के बँधावों की धोतियाँ प्रायः पंडित लोग बाँधा करते हैं। प्रत्येक धोती में दो **छोर** और चार **ठोक** (कोने) होते हैं। चौड़ाई वाले दोनों ठोकों के बीच का भाग छोर कहाता है। प्रसिद्ध है—

"धोवती के छोर लटकावै। जलइया काहे घर नायँ आवै॥"[4]

'छोर' के लिए संस्कृत में 'पटान्त'[5] शब्द भी प्रयुक्त होता था। जनानी धोती का वह भाग, जो स्त्रियों के स्तनों को ढँके रहता है, **आँचर** (सं० अंचल) या **पल्ला** (सं० पल्लव > पल्लअ >

---

[1] 'उच्चित नेत्र सुकुमार **स्वस्थान**-स्थगित जवाकाण्डैः।"
अर्थात् फूलदार नेत्र नामक कपड़े के बने हुए मुलायम सूथनों में जिनकी पिंडलियाँ फँसी हुई थीं।
—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्ष चरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ७६।

[2] "नारा-बन्धन **सूथन** जंघन।"
—सूरसागर, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, १०। ११८०

[3] डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० १०१।

[4] वह दिलजलानेवाला पटलीदार धोती बाँधकर उसके छोर लटकाता फिरता है, न मालूम घर क्यों नहीं आता है?

[5] 'राजा पटान्तेन फलकमाच्छादयति।'
—हर्ष : रत्नावली नाटिका, निर्णयसागर प्रेस, चतुर्थ संस्करण, पृ० ६२

पल्ला) कहाता है। कादम्बरी में महाश्वेता के पल्ले (सं० पल्लव[1]) से कपिंजल के पाँव पोंछने का उल्लेख है। छोटी आयु की तथा क्वारी लड़की का अंचल-पट **गाती**[2] (सं० गात्रिका) कहाता है। धोती का छोर जब बाईं बगल में दबाया जाता है, तब उसे **गाती मारना** कहते हैं। साधु-संन्यासी चादर या धोती को इस ढंग से लपेटते हैं कि उनका पेट, पीठ, छाती और जाँघें आदि सब कुछ ढँक जाता है। इस प्रकार के बँधाव को 'गाती' ही कहते हैं।

३५५§—वे बड़ी चादरें जिन्हें किसान लोग जाड़ों में ओढ़ते हैं, **पिछौरा, पिछौरी**[3] या **पिछौरिया** कहाती हैं। कबीर ने इसके लिए 'पछेवड़ा' शब्द का प्रयोग किया है[4]। एक प्रकार का दुपोत्ता (दो पर्तों का) चादरा **खोर, दोहर** या **दोहड़** (खैर-खुर्जे में) कहाता है। दोहड़ के किनारों पर जो **गोट** लगाई जाती है, उसे **झल्लर, संजाप, मगजी** या **बोट** कहते हैं। खोर के किनारों पर **गोट** (किनारों की पट्टी) नहीं लगती है। दोहड़ में दो पर्त होते हैं। ऊपर का पर्त **अबरा** और नीचे का **अस्तर** कहाता है। झल्लर या संजाप के अर्थ में वैदिक संस्कृत में 'दशा'[5] (कात्या० ४। १। १७) और 'दश' (शत० ३। ३। २। ६) शब्दों का उल्लेख हुआ है। बाण ने भी उसी अर्थ में 'दश' शब्द का प्रयोग किया है। वर्षा के समय अपने शरीर को भीगने से बचाने के लिए किसान नलई या पिछौरे का एक खास तरह का ओढ़ना बना लेते हैं, जिसे **खोइआ** कहते हैं। नलई के खोइए को **किरा** भी कहते हैं। किरा अथवा खोइआ एक प्रकार की किसान बरसाती है, जिसे ओढ़कर किसान बरसते हुए मेह में भी काम करता रहता है।

§३५६—सोते समय ओढ़ने-बिछाने के कपड़े—सोते समय खाट पर जो कपड़े ओढ़े-बिछाए जाते हैं, वे **उढ़इया-बिछइया** कहाते हैं। दुहरे सूत का बुना हुआ एक प्रकार का बिछइया (बिछौना) **खेस** (फा० खेश-स्टाइन०) कहाता है। **बटैमा** (बटे हुए) और मोटे ताने-बाने से एक कपड़ा दो पर्तों का बुना जाता है। दोनों पर्तों को बराबर रखकर बीच में जालीनुमा जोड़ लगा दिया जाता है, उसे **दोबरा** या **दोबड़ा** कहते हैं। दोबड़े में बर (अर्ज) की ओर छोटे-छोटे डोरे लटके रहते हैं। उन्हें ऐंठकर आपस में बाँध दिया जाता है। उस क्रिया को **छोर बाँधना** कहते हैं। वे डोरे **छोर** कहाते हैं। मोटा और मजबूत कपड़ा **अटूट लत्ता** कहाता है। मोटे सूत का एक बिछौना

---

[1] 'चरणावुपमृज्यचोत्तरीयांशुकपल्लवेन।'
—बाण : कादम्बरी, मदनाकुलमहाश्वेतावस्था, सिद्धान्त विद्यालय, कलकत्ता, संस्करण, पृ० ५७७।

[2] 'गात्रिका' से ही हिन्दी का 'गाती' शब्द निकला है। ब्रह्मचारी या संन्यासी अभी तक उत्तरीय की गाती बाँधते हैं।'
—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० १५।

[3] 'पीत पिछौरी स्याम तनु।'
—सूरसागर, काशी नागरीप्रचारिणी सभा, १०। ११८०

[4] "दिल मन्दिर में पैसिकर तानि पछेवड़ा सोइ।"
—कबीर ग्रंथावली, बिसास कौ अंग, काशी ना० प्र० सभा, दोहा ३।

[5] "ऊर्णा दशा वा"
—कात्यायन श्रौतसूत्र, अध्याय ४, कंडिका १, सूत्र १७।

[6] "गोरोचनाचित्रित दशमनुपरतनतिधवलं दुकूलयुगलम्।"
—बाण: कादम्बरी पूर्व भाग, बाणभिषेकावसर, सिद्धान्तविद्यालय, कलकत्ता, पंचम संस्क०, पृ० २६२।

दरी या **दड़ी** कहाता है। **महीन** (बारीक) सूत का एक बिछौना जिनमें दो पर्त होते हैं, **दुतई** (दोतही=दो तहवाली) कहाती है। चार तहों की बनी हुई **चौतई** कही जाती है। यदि कोई बिछौना दो तहें करके बिछाया जाता है, तो उसे **दुल्लर** या **दुहल्लर बिछइया** कहते हैं। चार तहों का **चौलर** या **चौहल्लर** कहाता है। फूलों और पत्तियों की उभरी हुई बुनावट का एक बिछौना **सुजनी** (फा० सोज़नी) कहाता है। ओढ़ने में काम आनेवाला एक हलका कपड़ा **चादरा** या **चद्दरा** कहाता है। फटे-पुराने कपड़ों के टुकड़ों को जोड़कर तहदार मोटा बिछौना **कथूला** कहा जाता है। इसी तरह के एक **उढ़इये** (ओढ़ने का कपड़ा) को **गूदरी, गुदरी** या **गूदड़ी** कहते हैं।

सूर ने **'गूदरि'**[1] शब्द गूदड़ी के अर्थ में ही प्रयुक्त किया है। साल, दो साल के बालक के नीचे कपड़े का एक टुकड़ा लगाये रहते हैं, ताकि उसके टट्टी-पेशाब से गोद खराब न हो; उस टुकड़े को **फलरिया, फलरुआ** या **पोतड़ा** कहते हैं।

§३५७—रुई से भरा हुआ बिछाने का एक कपड़ा **गद्दा** या **जीनपोस** कहाता है। बैठने में काम आनेवाला छोटा चौकोर गद्दा **गद्दी** कहाता है। मैले और बदबूदार गद्दे को **गलीज गद्दा** (अ० ग़लीज़-स्टाइन०) कहते हैं। असह्य बदबू **'बुक्काइँद'** कहाती है। उससे हलकी बदबू को **बास** कहते हैं।

रुई से भरे हुए ओढ़ने के कपड़े **सौर** या **सौड़** (खैर-खुर्जे में), **लिहाफ** (अ० लिहाफ़) **रजाई** (फा० रज़ाई) और **फर्द** कहाते हैं। सौर मोटे कपड़े की होती है और उसमें लगभग ३-४ सेर रुई पड़ती है। लिहाफ और रजाई में क्रमशः ३ सेर या २ सेर के लगभग रुई भरी जाती है। प्रायः छींट और रंगीन कपड़े की बनी हुई हलकी सौर **रजाई** कहाती है। **फर्द** किसान की सफरी रजाई है। इसमें सेर-सवा सेर रुई पड़ती है। **सौर** सबसे बड़ी होती है इससे छोटा **लिहाफ,** लिहाफ़ से छोटी **रजाई** और रजाई से छोटी **फर्द** होती है। बिना रुई की गोटदार फर्द **गलेफ** कहाती है। जायसी ने 'सौर' शब्द का प्रयोग 'पदमावत' में किया है।[2] उक्त वस्त्रों के सम्बन्ध में जाड़े के लिये कहावत प्रचलित है—

'सौर में सौ मन। रजाई में नौ मन।
नैंक फर्द फटी में। परि नंगे की मुठी में ॥'[3]

सौर या फर्द के नीचे लगा हुआ हल्का-सा कपड़ा **अधोतर** कहाता है। अधोतर कुछ **बेगरी**(विरल) बुनी हुई होती है और खुरखुरी भी होती है, इसीलिए उसमें रुई चिपट जाती है।

§३५८—**ओढ़ने-बिछाने के ऊनी कपड़े**—भेड़ आदि पशुओं के गर्म बालों को **ऊन** (सं० ऊर्ण>प्रा० उण्ण>उन्न>ऊन) कहते हैं। दुहरे पर्त का एक ऊनी कपड़ा जो ओढ़ने में काम आता है, **दुसाला** कहाता है। जरी के काम सहित इकहरे पर्तवाले को **साल** कहते हैं। बड़ा

---

[1] "पाटम्बर अंबर तजि गूदरि पहिराऊ।"
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १। १६६।

[2] **सौर** सुपेती आवै जूड़ी। जानहुँ सेज हिवंचल बूड़ी।
—डा० माताप्रसाद गुप्त (सं०) : जायसी ग्रन्थावली, पदमावत, ३५०।४

[3] जाड़ा सौर में सौ मन और रजाई में नौ मन लगता है। फटी हुई फर्द में थोड़ा-थोड़ा अनुभव होता है। लेकिन नग्न (वस्त्रहीन) मनुष्य मुट्ठी बाँधकर ही उसे बिता देते हैं।

और ऊनी एक कपड़ा **कम्बर** अथवा **कम्मर** (सं० कम्बल[1]) कहाता है। ऊन से बुना हुआ एक कपड़ा **लोई** (सं० लोमिका) कहाता है। जिस लोई में दोनों ओर बाल होते हैं, वह **उद्लोई** (सं० उद्लोमिका) कहाती है। मोटी और खुरदरी-सी ऊन का एक प्रकार का कम्बल **दुस्सा** या **धुस्सा** (सं० दूर्श > प्रा० दुस्स > धुस्सा) कहाता है। अथर्ववेद (४।७।६; ८। ६। ११) में 'दूर्श' शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में हुआ है। लम्बे बालोंवाली ऊन का एक कपड़ा **समूरा**[2] कहाता है। एक प्रकार के ऊनी कपड़े के अर्थ में 'शामुल्य' शब्द ऋग्वेद (१०। ८५। २६) और अथर्ववेद (१४। १। २५) में प्रयुक्त हुआ है। सम्भवतः 'समूरा' शब्द 'शामुल्य' से विकसित है।

§२५६—**अन्य कपड़े**—गले में लपटने की या कानों पर लपेट लगाने की एक ऊनी पट्टी **गुलीबन्द** कहाती है। यात्रा के समय कुछ लोग पिंडलियों पर ऊनी पट्टियाँ लपेटा करते हैं, उन्हें **मँजली** कहते हैं।

§२६०—एक छोटी-सी थैली होती है, जिसका मुँह गाय के मुँह से मिलता-जुलता होता है; उसे **गऊमुखी** (सं० गोमुखी) कहते हैं। पंडित, पंडे, पुजारी आदि भगवान् का भजन गऊमुखी में हाथ डालकर किया करते हैं। उसके अन्दर माला भजी जाती है।

भाँग-ठंडाई तथा **तमाखू** (तम्बाकू) आदि रखने के लिए जो सरकनी डोरियों का एक गोल थैला होता है, **बटुआ** कहाता है। वह कपड़े का सिलवाकर बनाया जाता है। इसी तरह की खुले मुँह की एक थैली होती है। **थैली** को **थैलिया** (प्रा० थइआ[3] + अल्लिया) भी कहते हैं। बटुए का मुँह डोरियों के खींचने से खुलता और बन्द होता है।

एक प्रकार की सिली हुई दुतरफा झोली **खुरजी** (फ़ा० खुरजीन-स्टाइन०) कहाती है। उसमें दो गहरी थैलियाँ बनी रहती हैं, जिनमें किसान अपना सामान रखकर उसे (खुर्जी को) कन्धे पर दोनों ओर लटका लेता है। खुरजी की गहरी थैलियाँ अर्थात् गहरी जेबें **खलीता** (अ० ख़रीता) या **खीसा** (फ़ा० कीसा) कहाती हैं।

§२६१—छतरी को **अड़ानी** नाम से पुकारते हैं। अड़ानी के कपड़े को **ओढ़ना** या **टोपी** कहते हैं। लोहे की पतली पत्तियाँ **तानें** और डंडी में ठुका हुआ गोल तथा लम्बा-सा तार **घोड़ा** कहाता है। घोड़े पर ही तानों से जुड़ा हुआ **छल्ला सधता** है। इसे **लाम** या **गुजरी** कहते हैं। तभी छतरी खुली हुई रहती है। छतरी का खोलना 'तानना' और बन्द करना 'सकोरना' कहाता है। छतरी की डाँडी (डंडी) का वह भाग, जहाँ उसे पकड़ते हैं, **मूँठ** कहाता है। मूँठ से दूसरी ओर सिरे पर एक लम्बा गोलाईदार छल्ला ठुका रहता है, जिसे **पोला** कहते हैं। छतरी के कपड़े

---

[1] प्रो० प्रिजलुस्की के मतानुसार 'कम्बल' शब्द मुंडा-ख्मेर भाषा का है। उनका कहना है कि उस भाषा से इस शब्द को वैदिक संस्कृत ने उधार ले लिया है।

[2] 'समूर' शब्द का अर्थ है 'रूएँदार चमड़ा'। इस अर्थ में यह शब्द कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी आया है।

—डा० मोतीचन्द्र : प्राचीन भारतीय वेश-भूषा, पृ० ११।

[3] 'थैली' शब्द के अर्थ में संस्कृत शब्द 'स्थगिका' है। इसका प्राकृत रूप 'थइआ' (पाइअ सद्दमहण्णवो कोश, पृ० ५४२) है। 'थइआ' में प्राकृत की अल्लिया प्रत्यय के योग से 'थइअल्लिया' की व्युत्पत्ति सम्भव है। 'थइअल्लिया' शब्द ही विकसित होकर हिन्दी में थैली हो गया है।

की ऊपरी **डाँड़ी** (डंडी) में एक गोल कपड़ा लगा दिया जाता है, जो **चँदुआ** या **चँदउआ** कहाता है। तानों के सिरों पर जो छेद होते हैं, वे **'नकुए'** कहाते हैं। नकुए के पास की तान की घुंडी **गोलिआ** कहाती है। मूँठ के पास का घोड़ा, जो छतरी बन्द करते समय गुजरी के **घारे** (खाँच) में ऊपर निकल आता है, **खुटका** कहाता है। छोटी तान का सिरा जहाँ बड़ी तान के बीच हिस्से में जुड़ा रहता है, वहीं कपड़े की एक कतरन लगी रहती है, उसे **टिकरी** कहते हैं। मूँठ पर एक खाँचदार छपका लगा रहता है, जिसमें तानों के **गोलिए** (घुंडियाँ) फँस जाते हैं, उस छपके को **हुलका** कहते हैं। कपड़ा रहित छतरी **ढाँच** कहाती है। रेशमी कपड़े की बड़ी और बढ़िया छतरी, जो प्रायः ब्याह में दूल्हे पर तानी जाती है **छत्तुर** (सं० छत्र) कहाती है।

§३६२—सोते समय सिर को ऊँचा रखने के लिए सिरहाने **तकिया** लगाया जाता है। तकिये के ऊपर का कपड़ा **खोखा, खोल** या **गिलाफ** (अ० ग़िलाफ़-स्टाइन०) कहाता है। लम्बा, भारी और गोल तकिया, जो बैठते समय पींठ के सहारे के लिए लगाया जाता है, **मसन्द** (अ० मसनद) कहाता है। मसन्दनुमा एक तकिया **गेंडुआ** (खुर्जे में) या **गेंदुआ** कहाता है। बाणभट्ट ने हर्षचरित (हर्षचरित, निर्णयसागर प्रेस, पंचम संस्करण, पृ० १४०) में 'गंडक-उपधान' शब्द लिखा है।[1]

'तकिया' को इगलास और माँट में **'सिराहना'** भी कहते हैं (सं० शिरस् + आधान > सिराहना > सिराना)। भवभूति द्वारा उत्तररामचरित नाटक में प्रयुक्त संस्कृत के 'उपधान' शब्द का अनुवाद कविरत्न स्व० सत्यनारायण ने हिंदी उत्तररामचरित नाटक में **'सिराहनों'** किया है।[2]

§३६३—फर्श पर बिछाने के मोटे, रंगीन और ऊनदार कपड़े **कालीन** (तु० कालीन-स्टाइन०) और **गलीचा** हैं। सूती कपड़े जो फर्श पर बिछाये जाते हैं, **फ़र्स, जाजिम** और **दड़ी** हैं। खजूर और **गाँड़र** (एक घास) से बननेवाला फर्श **चटाई** कहाता है। बढ़िया चटाई जो प्रायः ठंडी रहती है, **सीतलपट्टी** कहाती है।

छत में लगनेवाला कपड़ा **चाँदनी** कहाता है। नीचे बिछानेवाली सफेद चादर भी **चाँदनी** कहाती है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि "यह शब्द 'फर्श-ए-चन्दनी' से निकला है" अर्थात् चन्दन के रंग का फर्श जिसे पहली बार नूरजहाँ ने चलाया था (आईन अकबरी, फिलोट, अँगरेजी अनुवाद, पृ० १। ५७४)।[3]

बजाजों के यहाँ बिकनेवाले कपड़ों में **मलमल, मारखीन, कसमीरा, लट्ठा, लहरिया, नैनसुख, दिल की प्यास, धूप-छाँह, मेरीतेरी मर्जी, गिलहरा, गुलबदन** और **चन्दातारई** अधिक प्रसिद्ध हैं।

---

[1] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ६९।

[2] 'राम की ताही भुजा को सिराहनों लेउ लगावहु प्रान पियारी।'
सत्यनारायण कविरत्न (अनुवादक) : भवभूति कृत उत्तररामचरित का हिंदी अनुवाद, रत्नाश्रम, आगरा, सं० १९९४, अंक १, छंद ३७।

[3] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हिन्दी के सौ शब्दों की निरुक्ति, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५४, अंक २-३, पृ० १००।

अध्याय २

§३६४—स्त्रियों के कपड़े—स्त्रियों के स्तनों के ढकने के लिए तीन कपड़े अधिक प्रचलित हैं— (१) अँगिया (२) चोली (३) बखोई।[1] चोली को पेटी या बंडी भी कहते हैं। अँगिया का वह कटोरीनुमा हिस्सा जो स्त्री के स्तन को ढकता है कटोरी, टुक्की या मुलकट कहाता है। दोनों टुक्कियों को मिलाकर जब सीं दिया जाता है, तब उनके द्वारा बना हुआ गला कंठा कहाता है। दोनों टुक्कियों के निचले किनारे पर लटकती हुई एक चौड़ी पट्टी इस तरह जोड़ी जाती है कि अँगिया पहननेवाली स्त्री का पेट उससे ढक जाता है उसे अँतरौटा (सं० अन्तर-पट) या घाट कहते हैं। अँतरौटे का निचला भाग टूँड़ी (नाभि) तक लटकता है। अँगिया की बाँहें कुहनियों से ऊपर ही रहती हैं। बाँहों के किनारे मुहरी या म्होरी और ऊपरी भाग मुड्ढे कहाते हैं। अँगिया का पिछला भाग, जिसमें तनी बँधी रहती है, पल्लुआ कहाता है। स्तन को ढकनेवाली टुक्की कई कत्तलों को जोड़कर बनाई जाती है, उनमें से प्रत्येक कत्तल खरबूजा कहाती है। दोनों टुक्कियों की सिलाई की जगह, जो बीच छाती पर दोनों स्तनों के बीच में रहती है, दीवार कहाती है। टुक्कियों पर तिकोना टँका हुआ साज लहर या माँड़नी[2] कहाता है। किसी-किसी अँगिया की बगलों में दो चौखुंटी कत्तलें लगाई जाती हैं। उनमें प्रत्येक को कक्खी (सं० कक्षिका > कक्खिआ > कक्खी) कहते हैं। पल्लुओं में बँधी हुई सूत की डोरियाँ तनियाँ कहाती हैं।

चरखा कातनेवाली स्त्रियाँ कभी-कभी चरखे के तकुए से कूकरी उतारकर अँगिया की टुक्की में रख लेती हैं। टुक्की के नीचे का वह भाग गोझा (सं० गुह्यक > गुज्झअ > गोझा) कहाता है। स्तनों को ढकनेवाली एक चौड़ी पट्टी-सी, जिसके निचले किनारे में एक डोरी पड़ी रहती है, चोली कहाती है।

ब्याह में कन्या के लिए मामा लाल रंग का एक डुपट्टा (दुपट्टा) लाता है, जिस पर लाल बूँदें होती हैं। लड़की उसे ओढ़कर भाँवरों पर बैठती है। उसे चोरा कहते हैं। मामा भानजी के लिए चोरा-चारी (चोरा वस्त्र और कानों की बाली) और भानजे के लिए म्हौर-पन्हइयाँ (मौर और पाँवों के जूते) ब्याह के समय अवश्य लाता है।

३६५—कमर पर बँधनेवाला एक पहनावा लहँगा है। बड़े घेर का लहँगा घाँघरा कहाता है। क्वारी तथा छोटी उम्र की लड़की का छोटा लहँगा घँघरिया कहाता है। लहँगानुमा अथवा पेटीकोट की भाँति का एक पहनावा जो घेर में एक जगह सिला हुआ रहता है, चनिया (सं० चलनिका > प्रा० चलणिआ > पा० स० म०) कहाता है। ढीला-ढाला जनाना पजामा, जिसे प्रायः छोटी लड़कियाँ पहनती हैं, इजरिया कहा जाता है। जिस इजरिया की म्होरियाँ काफी चौड़ी होती हैं, और पाँयचे भी चौड़े होते हैं, उसे गरारा (अ० गिरार—स्टाइन०) कहते हैं। छोटे लहँगे को फरिया (अत० अनू० में) भी कहते हैं। सूरदास ने इस शब्द का प्रयोग किया है।[3]

लहँगे में मुख्य चार भाग होते हैं—(१) नेफा (२) घेर (३) संजाफ या गोट (४) दामन।

---

[1] बरनी को भाँवरों के समय एक चोलीनुमा कपड़ा पहनाया जाता है, जिसे लड़केवाला कन्या के लिए लाता है। उसे बखोई कहते हैं।

[2] "अँगिया नील माँड़नी राती निरखत नैन चुराइ।"—सूरसागर, १० । १०५३

[3] "नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रुलति झकझोरी।"

—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १० । ३०२

की ऊपरी **डाँड़ी** (डंडी) में एक गोल कपड़ा लगा दिया जाता है, जो **चँदुआ** या **चँदउआ** कहाता है। तानों के सिरों पर जो छेद होते हैं, वे '**नकुए**' कहाते हैं। नकुए के पास की तान की घुंडी **गोलिआ** कहाती है। मूँठ के पास का घोड़ा, जो छतरी बन्द करते समय गुजरी के **घारे** (खाँच) में ऊपर निकल आता है, **खुटका** कहाता है। छोटी तान का सिरा जहाँ बड़ी तान के बीच हिस्से में जुड़ा रहता है, वहीं कपड़े की एक कतरन लगी रहती है, उसे **टिकरी** कहते हैं। मूँठ पर एक खाँचदार छपका लगा रहता है, जिसमें तानों के **गोलिए** (घुंडियाँ) फँस जाते हैं, उस छपके को **हुलका** कहते हैं। कपड़ा रहित छतरी **ढाँच** कहाती है। रेशमी कपड़े की बड़ी और बढ़िया छतरी, जो प्रायः ब्याह में दूल्हे पर तानी जाती है **छत्तुर** (सं० छत्र) कहाती है।

§३६२—सोते समय सिर को ऊँचा रखने के लिए सिरहाने **तकिया** लगाया जाता है। तकिये के ऊपर का कपड़ा **खोखा, खोल** या **गिलाफ** (अ० ग़िलाफ़-स्टाइन०) कहाता है। लम्बा, भारी और गोल तकिया, जो बैठते समय पींठ के सहारे के लिए लगाया जाता है, **मसन्द** (अ० मसनद) कहाता है। मसन्दनुमा एक तकिया **गेंडुआ** (खुर्जे में) या **गेंदुआ** कहाता है। बाणभट्ट ने हर्षचरित (हर्षचरित, निर्णयसागर प्रेस, पंचम संस्करण, पृ० १४०) में 'गंडक-उपधान' शब्द लिखा है।[1]

'तकिया' को इगलास और माँट में '**सिराहना**' भी कहते हैं (सं० शिरस् + आधान > सिराहना > सिराना)। भवभूति द्वारा उत्तररामचरित नाटक में प्रयुक्त संस्कृत के 'उपधान' शब्द का अनुवाद कविरत्न स्व० सत्यनारायण ने हिंदी उत्तररामचरित नाटक में '**सिराहनों**' किया है।[2]

§३६३—फर्श पर बिछाने के मोटे, रंगीन और ऊनदार कपड़े **कालीन** (तु० कालीन-स्टाइन०) और **गलीचा** हैं। सूती कपड़े जो फर्श पर बिछाये जाते हैं, **फ़र्स, जाजिम** और **दड़ी** हैं। खजूर और **गाँड़र** (एक घास) से बननेवाला फर्श **चटाई** कहाता है। बढ़िया चटाई जो प्रायः ठंडी रहती है, **सीतलपट्टी** कहाती है।

छत में लगनेवाला कपड़ा **चाँदनी** कहाता है। नीचे बिछानेवाली सफेद चादर भी **चाँदनी** कहाती है। डा० वासुदेवशरण अग्रवाल का कथन है कि "यह शब्द 'फर्श-ए-चन्दनी' से निकला है" अर्थात् चन्दन के रंग का फर्श जिसे पहली बार नूरजहाँ ने चलाया था (आईन अकबरी, फिलोट, अँगरेजी अनुवाद, पृ० १। ५७४)।[3]

बजाजों के यहाँ बिकनेवाले कपड़ों में **मलमल, मारखीन, कसमीरा, लट्ठा, लहरिया, नैनसुख, दिल की प्यास, धूप-छाँह, मेरीतेरी मर्जी, गिलहरा, गुलबदन** और **चन्दातारई** अधिक प्रसिद्ध हैं।

---

[1] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हर्षचरित एक सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ६९।

[2] 'राम की ताही भुजा को सिराहनों लेउ लगावहु प्रान पियारी।'
सत्यनारायण कविरत्न (अनुवादक) : भवभूति कृत उत्तररामचरित का हिंदी अनुवाद, रत्नाश्रम, आगरा, सं० १९९४, अंक १, छंद ३७।

[3] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हिन्दी के सौ शब्दों की निरुक्ति, नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५४, अंक २-३, पृ० १००।

अध्याय २

§३६४—स्त्रियों के कपड़े—स्त्रियों के स्तनों के ढकने के लिए तीन कपड़े अधिक प्रचलित हैं— (१) अँगिया (२) चोली (३) चखोई।[1] चोली को पेटी या बंडी भी कहते हैं। अँगिया का वह कटोरीनुमा हिस्सा जो स्त्री के स्तन को ढकता है कटोरी, टुक्की या मुलकट कहाता है। दोनों टुक्कियों को मिलाकर जब सीं दिया जाता है, तब उनके द्वारा बना हुआ गला कंठा कहाता है। दोनों टुक्कियों के निचले किनारे पर लटकती हुई एक चौड़ी पट्टी इस तरह जोड़ी जाती है कि अँगिया पहननेवाली स्त्री का पेट उससे ढक जाता है उसे अँतरौटा (सं० अन्तर-पट) या घाट कहते हैं। अँतरौटे का निचला भाग टूँड़ी (नाभि) तक लटकता है। अँगिया की बाँहें कुहनियों से ऊपर ही रहती हैं। बाँहों के किनारे मुहरी या म्होरी और ऊपरी भाग मुड्ढे कहाते हैं। अँगिया का पिछला भाग, जिसमें तनी बँधी रहती है, पछुआ कहाता है। स्तन को ढकनेवाली टुक्की कई कत्तलों को जोड़कर बनाई जाती है, उनमें से प्रत्येक कत्तल खरबूजा कहाती है। दोनों टुक्कियों की सिलाई की जगह, जो बीच छाती पर दोनों स्तनों के बीच में रहती है, दीवार कहाती है। टुक्कियों पर तिकोना टँका हुआ साज लहर या माँड़नी[2] कहाता है। किसी-किसी अँगिया की बगलों में दो चौखुंटी कत्तलें लगाई जाती हैं। उनमें प्रत्येक को कक्खी (सं० कक्षिका > कक्खिआ > कक्खी) कहते हैं। पछुओं में बँधी हुई सूत की डोरियाँ तनियाँ कहाती हैं।

चरखा कातनेवाली स्त्रियाँ कभी-कभी चरखे के तकुए से कूकरी उतारकर अँगिया की टुक्की में रख लेती हैं। टुक्की के नीचे का वह भाग गोभा (सं० गुम्फक > गुम्फअ > गोभा) कहाता है। स्तनों को ढकनेवाली एक चौड़ी पट्टी-सी, जिसके निचले किनारे में एक डोरी पड़ी रहती है, चोली कहाती है।

ब्याह में कन्या के लिए मामा लाल रंग का एक डुपट्टा (दुपट्टा) लाता है, जिस पर लाल बूँदें होती हैं। लड़की उसे ओढ़कर भाँवरों पर बैठती है। उसे चोरा कहते हैं। मामा भानजी के लिए चोरा-बारी (चोरा वस्त्र और कानों की बाली) और भानजे के लिए म्हौर-पन्हइयाँ (मौर और पाँवों के जूते) ब्याह के समय अवश्य लाता है।

३६५—कमर पर बँधनेवाला एक पहनावा लहँगा है। बड़े घेर का लहँगा घाँघरा कहाता है। क्वारी तथा छोटी उम्र की लड़की का छोटा लहँगा घँघरिया कहाता है। लहँगानुमा अथवा पेटीकोट की भाँति का एक पहनावा जो घेर में एक जगह सिला हुआ रहता है, चनिया (सं० चलनिका > प्रा० चलणिआ > पा० स० म०) कहाता है। ढीला-ढाला जनाना पजामा, जिसे प्रायः छोटी लड़कियाँ पहनती हैं, इजरिया कहा जाता है। जिस इजरिया की म्होरियाँ काफी चौड़ी होती हैं, और पायँचे भी चौड़े होते हैं, उसे गरारा (अ० गिरार—स्टाइन०) कहते हैं। छोटे लहँगे को फरिया (अत० अनू० में) भी कहते हैं। सूरदास ने इस शब्द का प्रयोग किया है।[3]

लहँगे में मुख्य चार भाग होते हैं—(१) नेफा (२) घेर (३) संजाप या गोट (४) लामन।

---

[1] बरनी को भाँवरों के समय एक चोलीनुमा कपड़ा पहनाया जाता है, जिसे लड़केवाला कन्या के लिए लाता है। उसे चखोई कहते हैं।

[2] "अँगिया नील माँड़नी राती निरखत नैन चुराइ।"—सूरसागर, १० । १०५२

[3] "नील वसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठि रुलति झकझोरी।"

—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०। ३०२

सबसे ऊपर का भाग जिसमें **नारा** (कमरबन्द) पड़ता है, **नेफा** कहाता है। नेफे का वह खुला हुआ हिस्सा जहाँ नारे की गाँठ लगती है, **निबिया** या **नीबिया** कहाता है। अथर्ववेद (८।२।१६) में 'नीवि'[1] शब्द का उल्लेख हुआ है। धोती की घूमें भी, जिन्हें चुनकर स्त्रियाँ नाभि के नीचे उरस लेती हैं, **नीबी** कहाती हैं। सूर ने 'नीबी' शब्द का प्रयोग किया है।[2]

बुना हुआ नारा **बुनैमा**; बटा हुआ **बटैमा**; जिसमें सूत के लच्छे लटकते हों वह **फुलना** या **झब्बुआ** और जिसमें लम्बी और गोल गाँठें सिरों पर बनाई गई हों, वह नारा **करेलिया** कहाता है। बुनैमा को **जालिया** और बटैमा को **गोला** भी कहते हैं। चौड़ा और **गफ** बुना हुआ सूत का नारा **पटार** और सोने चाँदी के तारों का बुना हुआ **'बादला'** कहाता है।

लहँगे के घेरे में जो कपड़े के पर्त जुड़े रहते हैं, **पाट** कहाते हैं। अधिक पाटों का बड़ा लहँगा **घाँघरा** कहाता है। घाँघरे में २४-३० पाट तक होते हैं। पाटों की मोड़ **घूम** कहाती है। हेमचन्द्र ने 'घग्घर' (देशीनाममाला २। १०७) शब्द जाँघों के पहनावे के अर्थ में लिखा है। लोकोक्ति है—

"लहँगा सोई जो घूम-घुमारौ। लामनि झारति चलै गिरारौ॥"[3]

घेर के नीचे किनारे-किनारे एक पट्टी लगती है, जो **घोट** या **'गोट'** या **संजाप** कहाती है। बढ़िया कपड़े के लहँगों में **बाँकड़ी** (जालीदार गोट), **लहस** (मखमली फूलदार पट्टी), **लहरिया** (लहरदार बुने हुए पल्ले) और **सकलपारे** (त्रिभुजाकार कत्तलें) भी संजाप के स्थान पर लगाये जाते हैं। घेर में जहाँ संजाप लगती है, वहीं नीचे की ओर भिन्न रंग की एक पट्टी लगती है, जिसे **लामन** कहते हैं। ब्याह के लहँगे में जो चौड़ी माल की पट्टी या संजाप लगती है, उसके लिए **'झलाबोर'** (=कलाबत्तून का बुना हुआ साड़ी आदि का चौड़ा अंचल, हि० श० सा० कोश) शब्द व्यवहृत होता है।

लहँगे में टँकी हुई बाँकड़ी, लहरिया और लहस आदि को **झल्लर** भी कहते हैं। लहस पर **कढ़ाई** (कसीदा) होती है।[4]

जिस स्त्री के पुत्र पैदा होता है, उसके पीहर से **छोछक** में लहँगा और ओढ़ना आते हैं। उस समय (नामकरण के दिन) वह लहँगा **लुगरा** और ओढ़ना **जगमोहन** कहाता है। ब्याह के समय लड़की के लिए लड़केवाले के यहाँ से लाल धारियों का एक लहँगा और एक चद्दर आती है, जिन्हें पहनकर लड़की भाँवरों पर **माँड़ये** (सं० मण्डप) के नीचे बैठती है। उस लहँगे को **मिसरू** और चद्दर को **सालू** कहते हैं। ब्राह्मणों और क्षत्रियों में एक झिरझिरी-सी ओढ़नी भी लड़की के

---

[1] "यां नीविं कृणुषेत्वम्"—अथर्व० ८। २। १६

[2] "नीबी ललित गही जदुराइ।"
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०। ६८२

[3] लहँगा वही अच्छा होता है, जो अधिक घूमोंवाला हो और जिसकी लामन (अन्दर की ओर को किनारे पर लगी पट्टी) गलिहारा झाड़ती हुई चले।

[4] ऋक् और अथर्व वेद में तथा ऐतरेय ब्राह्मण (७।३२) में 'सिच' शब्द और शतपथ ब्राह्मण (३।१।२।१३) में 'आरोकाः' शब्द आया है। ये शब्द संभवतः कपड़े पर बने हुए बेलबूटे तथा अलंकारों के अर्थ में आये हैं। "डा० सरकार के मत से 'आरोकाः' शब्द की व्युत्पत्ति तामिल 'अरुकणि' से है, जिसका अर्थ होता है—कपड़े के अलंकृत किनारे।" डा० मोतीचन्द्र : प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृ० १६।

लिए आती है, जिसे ओढ़कर लड़की भाँवरें फिरती है। उस ओढ़नी को **चकला की चद्दर** कहते हैं। सालू मिसरू का उल्लेख निम्नांकित रनझाँझन लोकगीत में हुआ है—

"बाबा नन्द हाट में ठाड़े सालू-मिसरू बिसाँइ।"[1]
(पुत्र-जन्म के समय गाया जानेवाला एक गीत—रनझाँझन)

§३६६—किसान-स्त्रियाँ लहँगे के साथ सिर पर एक कपड़ा ओढ़ती हैं, जो लगभग ५ हाथ लम्बा और ३ हाथ चौड़ा होता है। उसे **ओढ़नी, ओन्नी, लूगरी** या **फरिया** (त० हाथ०)कहते हैं। रंगीन तथा **भाँत** (सं० भक्ति>भत्ति>भाति>भाँत=विशेष प्रकार की छपाई) की ओढ़नी **चूँदरी, चुँदरी** या **चूनरी** कहाती है। चूनरी हलके तथा बारीक सूत की होती है। अलीगढ़ क्षेत्र की जनपदीय बोली में 'फरिया' शब्द का विचित्र इतिहास है। यह शब्द त० अत० अनू० सिकं०, और कास० में लहँगा या घँघरिया के अर्थ में प्रचलित है, किन्तु त० इग०, कोल०, हाथ० और सादा० में ओढ़नी के अर्थ में बोला जाता है। बढ़िया कपड़े की ओढ़नी को **'डुपटिया'** भी कहते हैं। फरिया के संबंध में एक लोकोक्ति प्रचलित है—

"जैसौ रंग कसुमी फरिया कौ। तैसौ रंग पराई तिरिया कौ॥"[2]

चूँदरी अथवा ओढ़नी के ऊपर एक कपड़ा और ओढ़ा जाता है, जिसे **ओढ़ना, ओम्रा, उपरना, उपन्ना** (सं० उपरि+आवरण), **परेला** या **चद्दर** (फ़ा० चादर—स्टाइन०) कहते हैं। जरी के काम की जनानी बनारसी चादर **सेला** कहलाती है। ओढ़ने का **नपाना** (=लम्बाई-चौड़ाई) चूँदरी से कुछ बड़ा होता है। कपड़े की चौड़ाई को **बर** या **पना** (सं० परीणाह) कहते हैं। साधारणतः ओढ़ने का बर ५ हाथ और लम्बाई ६ हाथ होती है। सूरदास ने ओढ़ने के अर्थ में 'उपरना' शब्द का प्रयोग किया है।[3] लहँगा-दुपट्टा मिलकर **तीहर** कहाते हैं। भाँवरों के समय **बन्नी** (दुलहिन) को एक लाल चूनरी उढ़ाई जाती है, जिसके एक पल्ले पर चाँदी के छोटे-छोटे घुँघरू टँके रहते हैं। उस चूनरी को **चाँची** कहते हैं। तभी माँग पर कन्द (लाल रंग का कपड़ा) का एक लम्बा टुकड़ा बँधता है, जो **सिरगुँदिया** कहाता है।

रेशम आदि बढ़िया कपड़े की दुहरे पर्त की ओढ़नी, जिसके किनारों पर गोट लगी रहती है, **दुलाई** कहाती है। हेमचन्द्र ने देशीनाममाला (५।४१) में 'दुल्ल' शब्द कपड़े के अर्थ में लिखा है। 'दुलाई' शब्द का सम्बन्ध देशी 'दुल्ल' से मालूम पड़ता है। दुलाई की धारीदार गोट **हाँसिया** कहाती है। हाँसिये के कोनों पर चौकोर कतलें लगी रहती हैं, जिन्हें **चौकी** कहते हैं। प्रायः दुलाइयाँ **कीनखाँप** (फ़ा० किमख़ाब=चिकन के काम का एक कपड़ा) की बनती हैं। 'ओढ़ना' के लिए हेमचन्द्र ने देशीनाममाला (१।१५५) में 'ओड्ढण' लिखा है। **जच्चा** (बच्चे की माँ) छटी के दिन दस हाथ लम्बा और तीन हाथ चौड़ा **खासा** (बारीक मारकीन) पहिनकर छटी पूजती है। उस कपड़े को **दसौता** कहते हैं।

---

[1] नन्द बाबा बाजार में खड़े हुए सालू और मिसरू नाम के कपड़े खरीद रहे हैं।

[2] कसूम (सं० कुसुम्भ=एक पीला फूल) के रंग में रँगी हुई चादर जिस प्रकार थोड़े समय तक चटक दिखाकर फीकी पड़ जाती है, ठीक उसी प्रकार व्यवहार और प्रेम-भाव पराई स्त्री का होता है।

[3] "पहिरे राती चूनरी सेत उपरना सोहै (हो)।"
—सूरसागर : काशी ना० प्र० सभा, १।४४

यदि कोई मनुष्य नया कपड़ा पहने और पहनने के कुछ दिन बाद वह कपड़ा जल जाय या किसी कील आदि में हिलगकर फट जाय अथवा पहननेवाले का कोई अनिष्ट हो जाय तो उसके लिए कहा जाता है कि—**'लत्ता** (कपड़ा) **छजो नायँ** अर्थात् कपड़ा छजा नहीं। कपड़ा छजे, इसलिए प्रायः नया कपड़ा शुक्रवार, शनिवार और रविवार को पहना जाता है। लोकोक्ति भी प्रचलित है—

'लत्ता पहरै तीन वार। सुक्कुर सनीचर ऐंतवार ॥ [1]

§३६७—स्त्रियाँ अपनी ओढ़नियों या धोतियों को छपवाती और कढ़वाती भी हैं। कसीदे के काम करवाने के लिए **'कढ़वाना'** क्रिया का प्रयोग होता है। काठ (सं० काष्ठ=लकड़ी) का साँचा, जिससे छपाई की जाती है, **छापा** या **ठप्पा** (सं० स्थाप्य+क>ठप्पा=स्थापित करने योग्य) कहाता है। ठप्पे के निशानों पर कपड़े में सुई से जो डोरे निकाले जाते हैं, उस काम को **कढ़ाई, सुईकारी** या **कसीदा** कहते हैं। अलग से एक ठप्पे का निशान व्यक्तिगत रूप से **बूटा** कहाता है। बूटों के मिलान को **बेल** कहते हैं। सुईकारी में जो बेल-बूटे बनते हैं, उनके कई भेद और नाम हैं। उनके प्रचलित नाम इस प्रकार हैं—

(१) **चिरइया-चिरौटा** (२) **फूल-पत्ती** (३) **साँकर-छल्ली** (४) **जाली** (५) **गुलदस्ता** (६) **बुंदकी** (७) **चौखाना** (८) **सकलपारा** (९) **चिड़ो** (१०) **पान** (११) **पंखा** (१२) **चौफड़** (१३) **मकड़ीजाला**।

सफेद रंग के कच्चे रेशम से जब छोटे-छोटे बूटों की कढ़ाई की जाती है, तब उसे **चिकनिया कढ़ाई** कहते हैं। यह दोनों तरफ एक-सी होती है। दुहरे सूत की कढ़ाई **दुसूतिया** कहाती है। यह प्रायः दुसूती कपड़े पर की जाती है। सादा कपड़े पर की हुई कढ़ाई **सीधी** या **सादा** कहाती है। पक्के रेशमी धागों की ऊपरी कढ़ाई **सिन्धी** कहाती है। इसमें पहले लहरिया तार पूर लिये जाते हैं, और उनके मध्यवर्ती स्थान को **उलझन** (पक्के रेशमी डोरे) से भर देते हैं।

कढ़ाई में काम आनेवाला लकड़ी का गोल घेरा **अड्डा** कहाता है, जिसमें कपड़े का कढ़ाई किये जानेवाला भाग फाँसकर कस लिया जाता है।

सुईकारी के अलग-अलग नमूने

चिरैया-चिरौटा
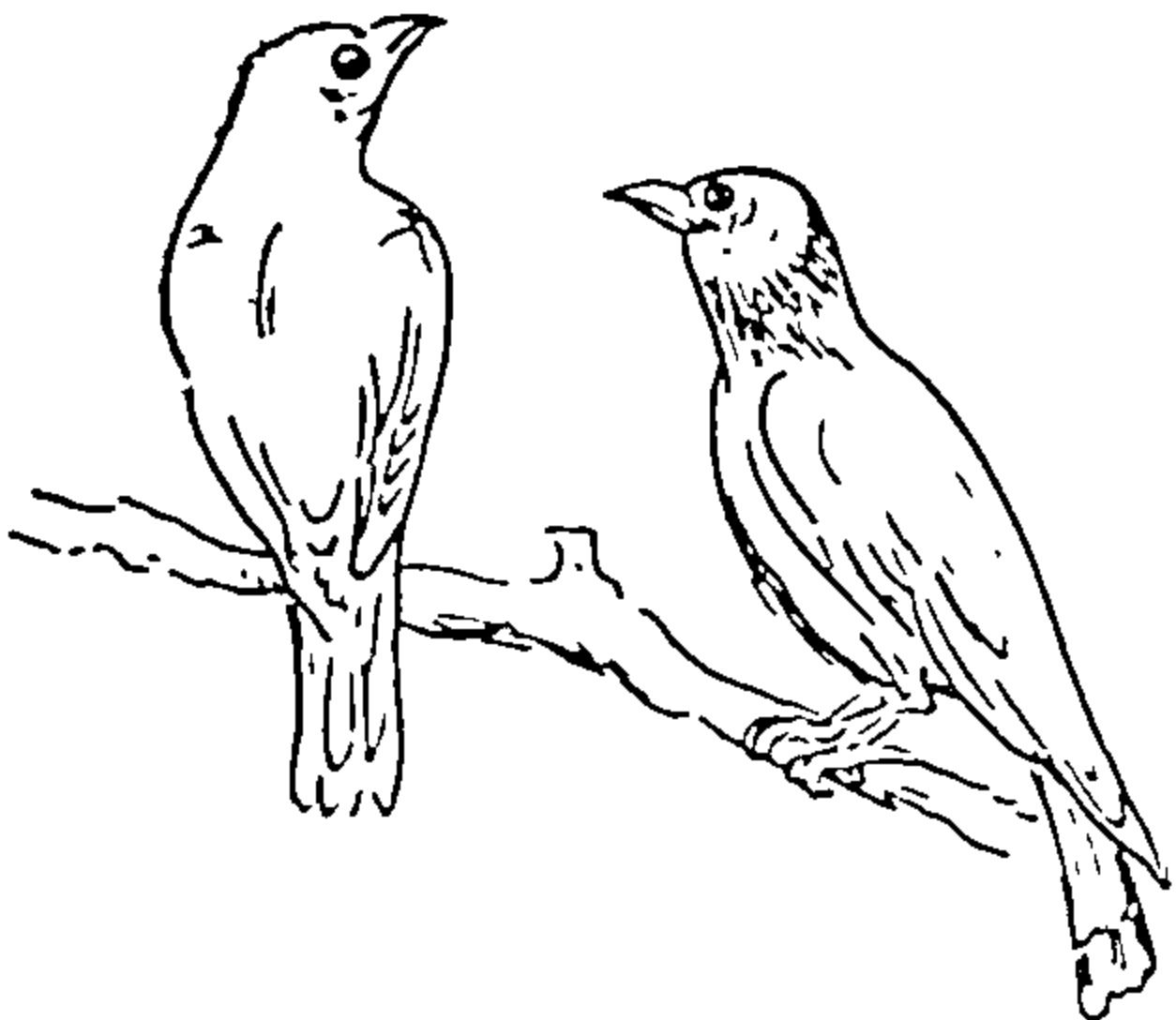
(रेखा चित्र १२६ से १२७ तक)

(१) चिरइया-चिरौटा १२६, (२) गुलदस्ता १२७।

---

[1] छजने के दृष्टिकोण से कपड़ा शुक्रवार, शनिवार और आदित्यवार को पहनना चाहिए। अन्य दिनों में पहना हुआ कपड़ा पहननेवाले को नहीं छजेगा।

सुईकारी के विभिन्न काम
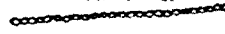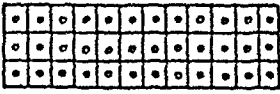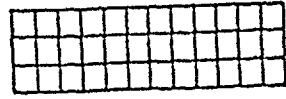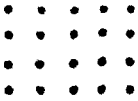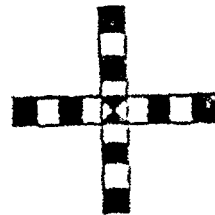
(रेखा-चित्र १२८ से १३७ तक)

(१) फूल-पत्ती १२८, (२) साँकरी या साँकलनुमा १२९, (३) जाली १३०, (४) बुँदकी या बूँदकी १३१, (५) चौखाना १३२, (६) सकलपारा १३३, (७) चिड़ी १३४, (८) पान १३५, (९) पंखा १३६, (१०) चौकड़ १३७।

बूटा
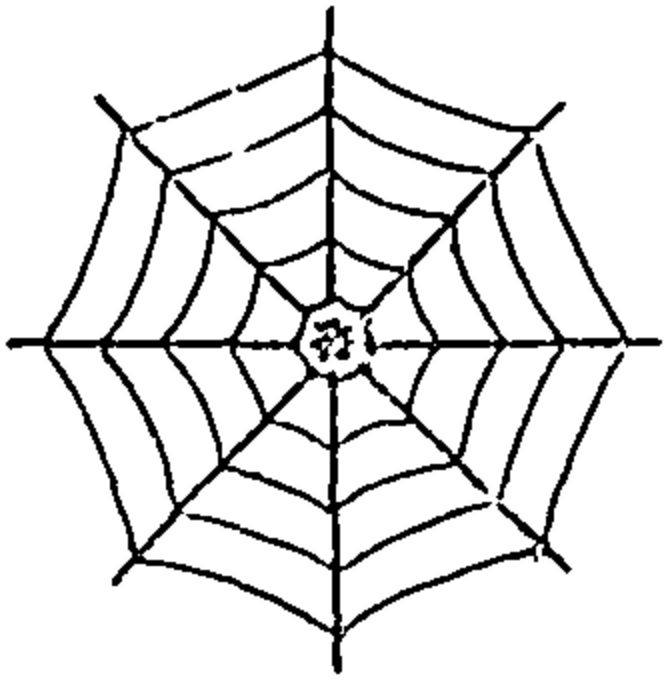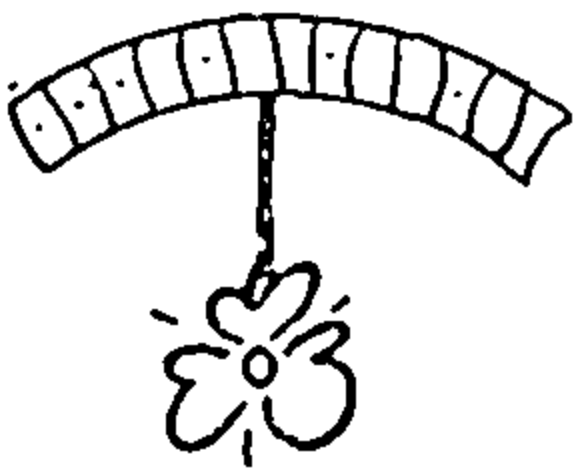
चिकनिया कढ़ाई
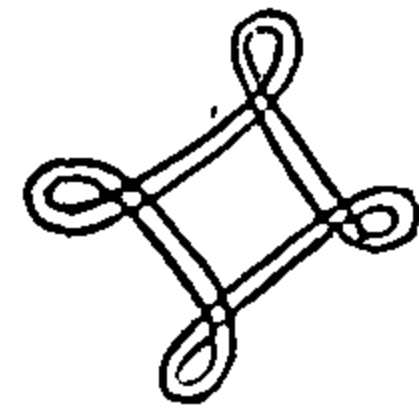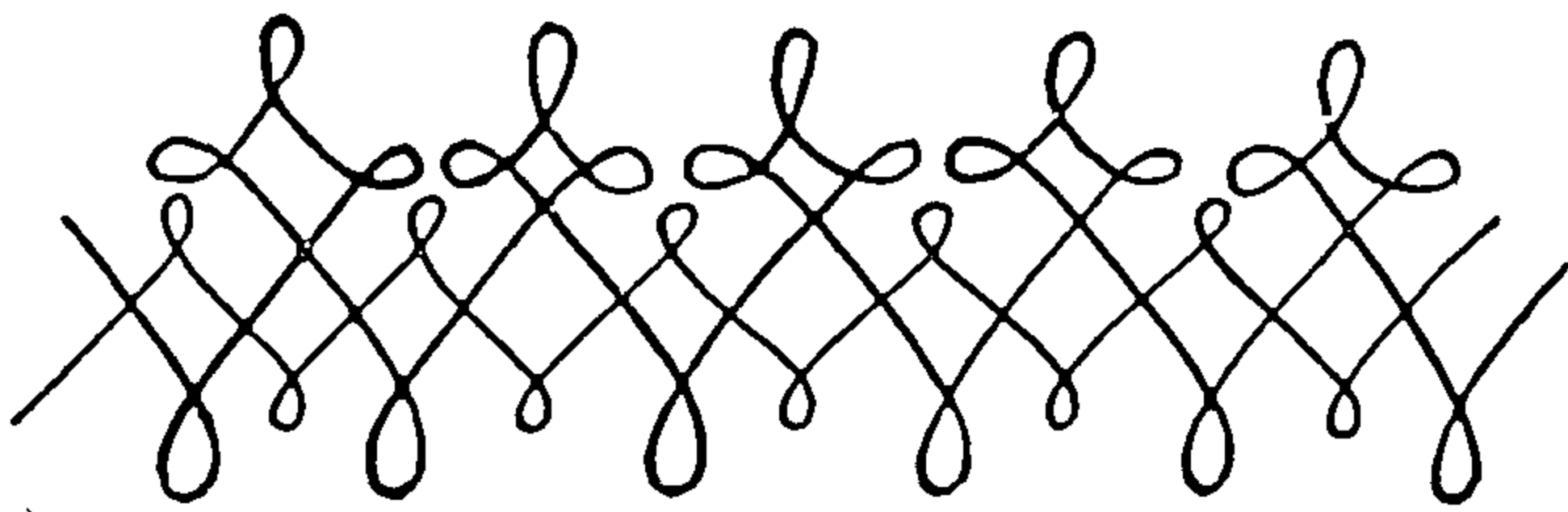
सिन्धी कढ़ाई

(रेखा-चित्र १३८ से १४३ तक)

(१) मकड़ी-जाला १३८, (२) गूजरी या गुजरिया १३९, (३) बेल १४०, (४) बूटा १४१, (५) चिकनिया १४२, (६) सिंधी कढ़ाई १४३।
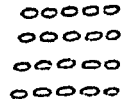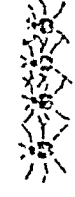
बुनी हुई वस्तुएँ
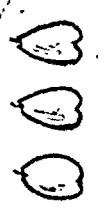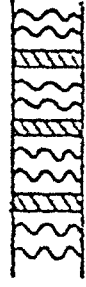
§२९८—ऊन की बुनाई जिस यंत्र से की जाती है, वह **सरइया** या **सराई** कहाता है। धोतियों के **पल्ले** (सं० पल्लव) जिस यंत्र से बुने जाते हैं, वह **कुरसिया** या **किरोसिया** कहाता है। कुरसिया नोंक पर कुछ कटी हुई होती है। उसके कटे भाग में **डोरा** फँस जाता है।

ऊन की बुनी हुई छोटी-सी एक ओढ़नी **माल** कहाती है। ऊन की बुनाइयों के बहुत से नाम हैं। प्रायः निम्नांकित बुनाइयाँ आजकल मिलती हैं—**धनियाँ, मछली, पान, फर्न, लहर,**

पट्टा, सकलपारा, सिंघाड़ा, गाँठन, खजूरा, नामिया अथवा हरूफी (अ० हरूफ से सम्बन्धित) फुलपतिया, अमरूदी या सपड़िया, माकड़ी और रसगुल्ला।

ऊपर की ओर की बुनाई सूदी या सूधी (सीधी) कहाती है। नीचे की ओर की उलटी कहलाती है।

(१) पनिरे की बुनाई १४४, (२) करी की बुनाई १४५, (३) लहर की बुनाई १४६, (४) सकलपारे की बुनाई १४७, (५) माँकड़ी की बुनाई १४८, (६) पान की बुनाई १४९, (७) अमरूद की बुनाई १५०, (८) लहर-पट्टे की बुनाई १५१, (९) रसगुल्ले की बुनाई १५२।

अध्याय ३

स्त्रियों के सिर के बाल, गुदना तथा अन्य शृंगार

§३६९—स्त्रियों के शृंगारों में सिर के बालों का विशेष स्थान है। काले बाल **स्याह** और सुनहले **लोहरे** कहाते हैं। लम्बे और सीधे बालों को **सटकारे** और छल्लेदार टेढ़े बालों को **घुँघरारे** कहते हैं। घुँघरारे बालों की मोड़ **'घूमर'** कहाती है।

माथे और कान के छोटे-छोटे बाल जो **गुहने** (गुथने) में नहीं आते, **छाँहरे** कहाते हैं। बीच माथे पर के बाल जो आगे को कुछ लटके होते हैं **'भौंरा'** कहाते हैं। छाँहरे माथे में दाईं-बाईं ओर होते हैं और **भौंरे** बीच में। छाँहरों की **बैनी** (सं० वेणी) नहीं बनती बल्कि **चौंटिया** (पतली बैनी) बनता है। बहुत पतली-पतली बैनी गुहना **चौंटना** कहाता है। चौंटने से जो छाँहरे बालों की पतली बैनी बनती है, वह **चौंटिया** कही जाती है। बैनी से बड़ा और मोटा **बैना** कहाता है। बैनी बनाने से पहले कुछ बालों की लट हाथ में पकड़ी जाती है। उस लट के तीन हिस्से किये जाते हैं। प्रत्येक हिस्सा **पखिया** कहाता है। उन तीनों पखियों को क्रम से एक दूसरी के साथ लपेटते चलते हैं। इस के लिए **'गुहना'** क्रिया है। गुही हुई तीनों पखियाँ **एक बैनी** या **एक बैना** कही जाती हैं। टेढ़ी लट **बंक लट** (वक्र + लट) कहाती है इसके लिए संस्कृत में **अलक**[1] शब्द है।

§३७०—सिर के मुख्य चार भाग होते हैं—(१) आगे का भाग **माथा** (सं० मस्तक > मत्थअ > मत्था > माथा) (२) पीछे का भाग **पिछाई**। (३) माथे और **पिछाई** के बीच का **तरुआ** (४) तरुआ के दायें-बायें भाग **पक्खे** कहाते हैं। पक्खों पर की बैनी **मेठी** कहाती है।

पिछाई के बालों की लट **चुटिया** या **चोटी** कहाती है।

बालों को धोने के बाद स्त्रियाँ उन्हें निचोड़कर आम या नीम की डंडी से झाड़ती हैं। फिर हाथ की उँगलियों से उलझे हुए बालों को सुलझाकर अलग-अलग करती हैं। इस क्रिया को **ब्योरना** कहते हैं। ब्योरे हुए बालों में तेल पड़ता है और फिर वे **ककई** (सं० कंकतिका) से काढ़े जाते हैं। इस क्रिया को **ककई करना** भी कहते हैं। इसके बाद बाल बाँधे जाते हैं। बालों का बाँधना **'सिर करना'** या **'सिर बाँधना'** कहाता है।

§३७१—सिर के बँधाव के मुख्य प्रकार दो हैं—(१) **इकचुटिया** (२) **बैनियाँ**।

इकचुटिया में सारे बालों को तीन हिस्सों में बाँटकर उनको आपस में गुह लिया जाता है। इस तरह एक चोटी पीछे बन जाती है। यदि इस चोटी को ईंडुरी की भाँति लपेट लिया जाता है, तो वह **जूड़ा** (सं० जूट + क) कहाता है। पीछे का जूड़ा **चुट्टा** और सिर के ऊपर का **ईंडुरा** कहाता है।

ब्याह-शादी आदि शुभ अवसरों पर लड़की के सिर पर बैनियों सहित जूड़ा ही बँधता है। वह **सिरगूँदी** कहाता है। ऐसा मालूम पड़ता है कि इकचुटिया अर्थात् एक वेणी का सिर प्राचीन काल में क्रोधवती, वियोगिनी और विधवा नारियाँ ही बाँधती थीं।[2] वियोगावस्था में

---

[1] 'शुद्धस्नानात्परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम्।'
—कालिदास : उत्तरमेघ, श्लोक २८।

[2] "एकवेणीं दृढं बद्ध्वा गतसत्त्वेव किन्नरी।"
—वाल्मीकि रामायण, अयोध्याकाण्ड, पूर्वार्द्ध, प्रकाशक रामनारायण लाल, इलाहाबाद, सन् १९४६, १०।३

कालिदास की शकुंतला और यक्षी एक वेणी का इकचुटिया सिर बाँधे हुए ही दिखाई गई हैं।[1]

§३७२—सिर का बैनियाँ बँधाव पाँच तरह का होता है—(१) **तुक्की माँग** (सीधी माँग) (२) **बंकी माँग** (टेढ़ी माँग) (३) कउआ (४) **खोंपा** (५) **छल्लिया**।

बैनियाँ बँधाव में कम से कम तीन बैनियाँ और अधिक से अधिक पाँच बैनियाँ गुहीं जाती हैं।

जब '**सीधी माँग**' का सिर बाँधना होता है, तब माथे के बीच से नाक की सीध में एक रेखा बनाते हुए बालों को दो हिस्सों में बाँट देते हैं। फिर दाई ओर आगे-पीछे दो बैनियाँ और बाई ओर आगे-पीछे दो बैनियाँ गुहते हैं। ये दो-दो बैनियाँ पक्खों में बनाई जाती हैं। पिछाई में चोटी रहती है, जिसमें **चुटीला** (बाल बाँधने का ऊनी डोरा) गुहा जाता है। उस चोटी से चारों बैनियों को मिला दिया जाता है।

इसी प्रकार **टेढ़ी माँग** में भी चार बैनियाँ बनती हैं, परन्तु माँग आँख के कोए की सीध में निकाली जाती है।

कउआ (सं० ककुत् > कउअ > कउआ) के बँधाव में तीन बैनियाँ बनती हैं। दो पक्खों में और एक तालू पर के बालों से। तालू पर के बालों के जुट्टे को इस तरह गुहा जाता है, कि सिर के केन्द्र भाग में कउए के सिर तथा चोंच की-सी शक्ल बन जाती है। यह **कउआ-बैनी** कहाती है। तीनों बैनियों को चोटी से मिला दिया जाता है।

खोंपा-बँधाव और **छल्लिया-बँधाव** बड़े महत्त्व के हैं। प्रायः तीज-त्योहारों पर स्त्रियाँ खौंपा (खोंपा) ही बँधवाती हैं। ब्याह में बरनी का सिर छल्लिया-बँधाव का बँधता है।

खोंपे के बँधाव में पहले सिर के बीच में से एक सीधी माँग निकाली जाती है, फिर तलुए पर से कुछ बाल लेकर एक पान की-सी शक्ल में बैनी गुह दी जाती है। पक्खों में दो-दो के हिसाब से चार बैनियाँ गुही जाती हैं। पिछाई में चोटी के बाल रहते हैं। पाँचों बैनियों को चोटी से सम्बन्धित कर दिया जाता है। अन्त में उस चोटी को जूड़े की शक्ल में लपेट देते हैं। तलुए के ऊपर के बालों को गुहकर पान की-सी शक्ल बनाई जाती है, जो **खोंपा** कहाती है। 'खोंपा'[2] द्रविड़ भाषा का शब्द है। तामिल में 'कोप्पु' शब्द है, जिसका अर्थ है—बालों का जूड़ा। इसी प्रकार धम्मिल

---

[1] "वसने परिधूसरे वसाना नियमक्षाममुखी धृतैकवेणिः॥"

—कालिदास : अभिज्ञान शाकुंतल, निर्णयसागर प्रेस बम्बई, पंचम संस्करण, ७।२१

"गण्डाभोगात् कठिनविषमामेक वेणीं करेण"

—कालिदास : मेघदूत, उत्तरमेघ, श्लोक २९।

[2] खोंपे की चाल ही द्रविड़ों या तमिल चाल होने के कारण 'दुमिल' या 'धम्मिल' कहलाती है। इसी से स्त्री 'धम्मिल्लिनी' कहलाई। गुप्तकाल के लगभग 'धम्मिल्ल' शब्द संस्कृत भाषा में आया।

"द्रविड़ीनन्दिनीनां नु धम्मिल्लस्य विमोक्षणः।"

—मत्स्य पुराण, संपा० हरिनारायण आप्टे, आनन्दाश्रम संस्क०, अध्याय १४७।१८

"केशो मल्लिकाभ्यो (भ्यां) च धम्मिल्लमकुटा (टौ) स्मृतम्।"

डा० प्रसन्नकुमार आचार्य (संपादक) : मानसार, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, सन् १९३३, अध्याय ४९, श्लोक १६।

में 'कोप्पु'; कुइ भाषा 'कोप' (स्त्री का जूड़ा); कर्कु भाषा 'खोपा' (=बालों का जूड़ा)। प्रायः सभी आर्य भाषाओं में यह शब्द पहुँच गया है।[1] जायसी ने भी पदमावत में 'खोंपा' शब्द का उल्लेख किया है।[2]

§३७३—सिर बँध जाने के उपरान्त सधवा स्त्रियाँ अपनी माँगों में सिंदूर जैसा लाल रंग का एक चूर्ण भरती हैं, जिसे **ईंगुर** या **सिंदरप** कहते हैं। ईंगुर माँग में लगाना **'माँग भरना'** कहाता है। माँग के लिए वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में 'सीमन्त' शब्द आया है। सिर पर बालों के बीच की रेखा **माँग** (सं० मङ्ग > प्रा० मंग > माँग = एक रंजन द्रव्य—पा० स० म०, पृ० ८१६) कहाती है। संस्कृत में एक प्रकार के रंजन-द्रव्य को 'मङ्ग' कहते थे, जिसे स्त्रियाँ सिर में लगाया करती थीं। सीमन्त में मङ्ग भरा जाता था, इसलिए कालान्तर में सीमन्त को ही मङ्ग (माँग) कहने लगे। कालिदास ने उत्तर मेघ में माँग के लिए 'सीमन्त' शब्द का प्रयोग किया है।[3]

कानों के पास का वह भाग जो कान और आँख के मध्य में होता है, **कनपुटी** या **कनपटी** कहाता है। माँग के दायें-बायें कनपुटी के ऊपरवाले बालों में मोम लगाया जाता है और उनके धरातल को उससे चिकना बनाया जाता है। बालों को इस प्रकार मोड़ने और सजाने को **'पटिया पारना'** कहते हैं। माँग निकालने के लिए भी 'पारना' क्रिया का प्रयोग होता है। सूरदास ने इस धातु का उल्लेख किया है।[4]

एक लोकगीत में भी 'पाटी पारना' प्रयोग आया है—

'आजु गौरा चली हैं रूँठि, न पाटी पारी मोंम ते।'[5]

प्राचीन काल में भी स्त्रियाँ अपने सटकारे बालों में एक विशेष द्रव्य लगाकर उन्हें घुँघराले बनाया करती थीं। सिर की **लटों** (सीधे और बिना तेल के रूखे बाल) में कुंकुम और कपूर आदि का चूर्ण लगाकर उन्हें वंकलट (अलक) के रूप में परिवर्तित किया जाता था। अमरकोशकार ने 'अलक' के लिए 'चूर्णकुन्तल' शब्द लिखा भी है ('अलकाश्चूर्णकुन्तलाः' अमर० २।६।९६) सिर के बालों के धरातल को क्रमशः ऊँचा-नीचा बनाकर जब उन्हें लहरदार किया जाता है, तब वह रूप **घूँघर** या **घूँघरा** कहाता है। सिर के अग्र भाग में ऊपर को उभरे हुए तथा फूले हुए बाल **गुब्बारा** कहाते हैं। गुब्बारे में घूँघर बनाया जाता है। कंघे से छोटी वस्तु, जिससे बाल काढ़ते (बहाते) हैं, **ककई** (सं० कंकतिका) कहाती है। प्रायः ककई (कंघी) से ही स्त्रियाँ बाल काढ़ा करती हैं। जूओं को **डोंगर** या लूलू भी कहते हैं। जूओं के बच्चे **लीख** (सं० लिक्षा > लिक्खा > लीख) कहाते हैं। सिर की मैल मिट्टी और लीख आदि निकालने के लिए एक वस्तु विशेष काम में लाई जाती है, जिसे **लिखुआ** कहते हैं। जूओं के बच्चे **चुटइयाँ** कहाते हैं।

---

[1] टी० बरो : डेविडियन वर्ड्स इन संस्कृत, ट्रेंजेक्शन्स फाइलोलाजिकल सोसाइटी. १९४५, पृ० ९१।

[2] "सरवर तीर पदुमिनीं आई। खोंपा छोरि केस मोकराई॥"
डा० माताप्रसाद गुप्त (संपादक) : जायसी ग्रंथावली, पद्मावत, ६१।१

[3] 'सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्।'
—कालिदास : मेघदूत, उत्तरमेघ, श्लोक २।

[4] 'किन तेरे भाल तिलक रचि कीनों किहिं कच गूँदि माँग सिर पारी।'
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।७०८

[5] आज गौरी रूठ (सं० रुष्ट) कर चल दीं। उन्होंने मोम से सिर पर पाटी भी नहीं पारी।

ककई के मध्य की लकड़ी **पटिया** कहाती है। पटिया के दायें-बायें दाँते बने रहते हैं। दाँतों के बीच की खाली जगह **झिरी** कही जाती है। दाँतों के सिरे **कोर** (सं० कोटि) कहाते हैं।
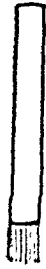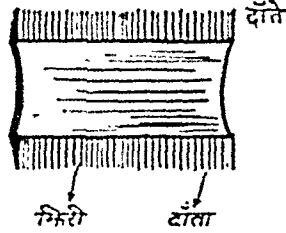
[रेखा-चित्र १५३, १५४]

§३७४—सिर के छुल्लिया बँधाव में छुल्ले डाले जाते हैं। पीछे लटकनेवाली चुटिया (चोटी) में **कलायों** (लाल-पीले रंग में रंगे हुए सूत के धागे) से बनाये हुए फन्दे **छुल्ले** कहाते हैं। छुल्लिया बँधाव का सिर भी पाँच बेनियों का बाँधा जाता है। इस प्रकार के बँधाव में **चुटीला** (ऊनी डोरे सहित गुही हुई चोटी) और **जूड़ा** (सं० जूटक=वृत्ताकार गाँठ-विशेष) भी बनाते हैं। प्रायः ब्याह के समय बरनी का सिर **छुल्लिया बँधाव** का ही बाँधा जाता है।

क्वार (आश्विन) के महीने में क्वारी लड़कियाँ शुक्ल पक्ष की **परिवा** (सं० प्रतिपदा> पड़वा> परिवा) से **नौमी** (नवमी) तक गौरी का पूजन करने के लिए जाया करती हैं। जाते समय गैल (मार्ग) में गीत गाती जाती हैं। यह लोकोत्सव **नौरता** (सं० नवरात्रक) कहाता है। जब लड़कियाँ गौरी के मन्दिर से लौटकर घर आती हैं, तब मार्ग में एक दूसरी पर सींकें मारती हैं। इसे **नौरता खेलना** कहते हैं। नौरता खेलनेवाली लड़कियों के सिर भी छुल्लिया बँधाव के ही बाँधे जाते हैं। यदि इस दिन कोई लड़की सिर न बँधवावे तो घर में बड़ा **चबड्या** या **चकल्लस** (शोर की चर्चा) रहती है (तु० चपकश> हिं० चकल्लस। तु० चपकलश=तलवार की लड़ाई)।

§३७५—केशों की सजावट ईंगुर अर्थात् सिंदरफ, मोम और तेल से होती है। दाँतों पर एक प्रकार का काला मंजन-सा लगाया जाता है, जो **मिस्सी** कहाता है। यह स्वाद में कुछ-कुछ खट्टा-सा होता है। सामने के ऊपर के दो दाँतों में सोने की बिन्दीदार बारीक कील-सी ठुकवाई जाती है, जिसे **चौंप** कहते हैं। अलग से भी एक फूलदार चौंप सामने के चौके (सामने के ऊपरी चार-दाँत) में लगा ली जाती है, जिसे **फूल** या **दँतौना** (सं० दन्तार्पक> दन्तवप्पअ> दन्तवना> दँतउना> दँतौना) कहते हैं। मिस्सी, चौंप और दँतौने से स्त्रियों के दाँतों की सजावट होती है।

§३७६—माथे की शोभा **बिन्दी** से रहती है। बिन्दी से बड़ी चीज **बिन्दा** कहाती है। बिन्दी स्त्री के '**सुहागिलपन** (सधवात्व) का चिह्न भी है। गाल या ठोडी पर लगी हुई काली बिन्दी **तिल** कहाती है। धातु-विशेष की बनी हुई गोल और गड्ढेदार बिन्दी **कटोरी** कहाती है। सफेद रंग का बारीक बुरादा-सा **बुकनी** कहाता है। बुकनी में थोड़ा-सा पानी मिलाकर फिर उसके ब्याह में बरनी के माथे पर छोटी-छोटी बूँदें बनाई जाती हैं। उन बूँदों को **सिपिरियाँ** कहते हैं। सिपिरियाँ बनाने के लिए '**चीतना**' क्रिया का प्रयोग किया जाता है। सूखी बुकनी को जब थोड़ा-थोड़ा डालते हैं, तब उस क्रिया को '**बुरकना**' कहते हैं।

§३७७—स्त्रियाँ ब्याह, पाले (द्विरागमन=गौना) और रौने (गौने के उपरान्त ससुराल का ससुराल आना) में तथा अन्य तीज-त्यौहारों पर एक लाल द्रव पदार्थ पैरों पर लगाती हैं, जिसे

महावर कहते हैं। महावर से स्त्रियों के पाँवों पर **बुँदकी, कउआ-सतिये** और **फूल छबरियाँ** बनाई जाती हैं। देखिए (रेखा चित्र १७७ से १८० तक)

§३७८—स्त्रियाँ प्रायः **सुहाग** (सं० सौभाग्य) के त्योहारों पर अपने हाथ-पाँव **महँदी** या **मेंहदी** (सं० मेन्धिका, मेन्धी) से रँगती हैं। इस प्रकार रँगने के लिए **'रचना'** क्रिया प्रचलित है। अधिक रचनेवाली मेंहदी **चहचही** (चुहचुही) और न रचनेवाली **रूखी** या **धूरिया** कहाती है।

जब पिसी हुई गीली **महँदी** (मेंहदी) को हथेली पर रखकर **मुट्ठी** (सं० मुष्टिका) बाँध लेते हैं, तब वह **रचाई** (रँगने की विधि) **मुट्ठिया** कहाती है।
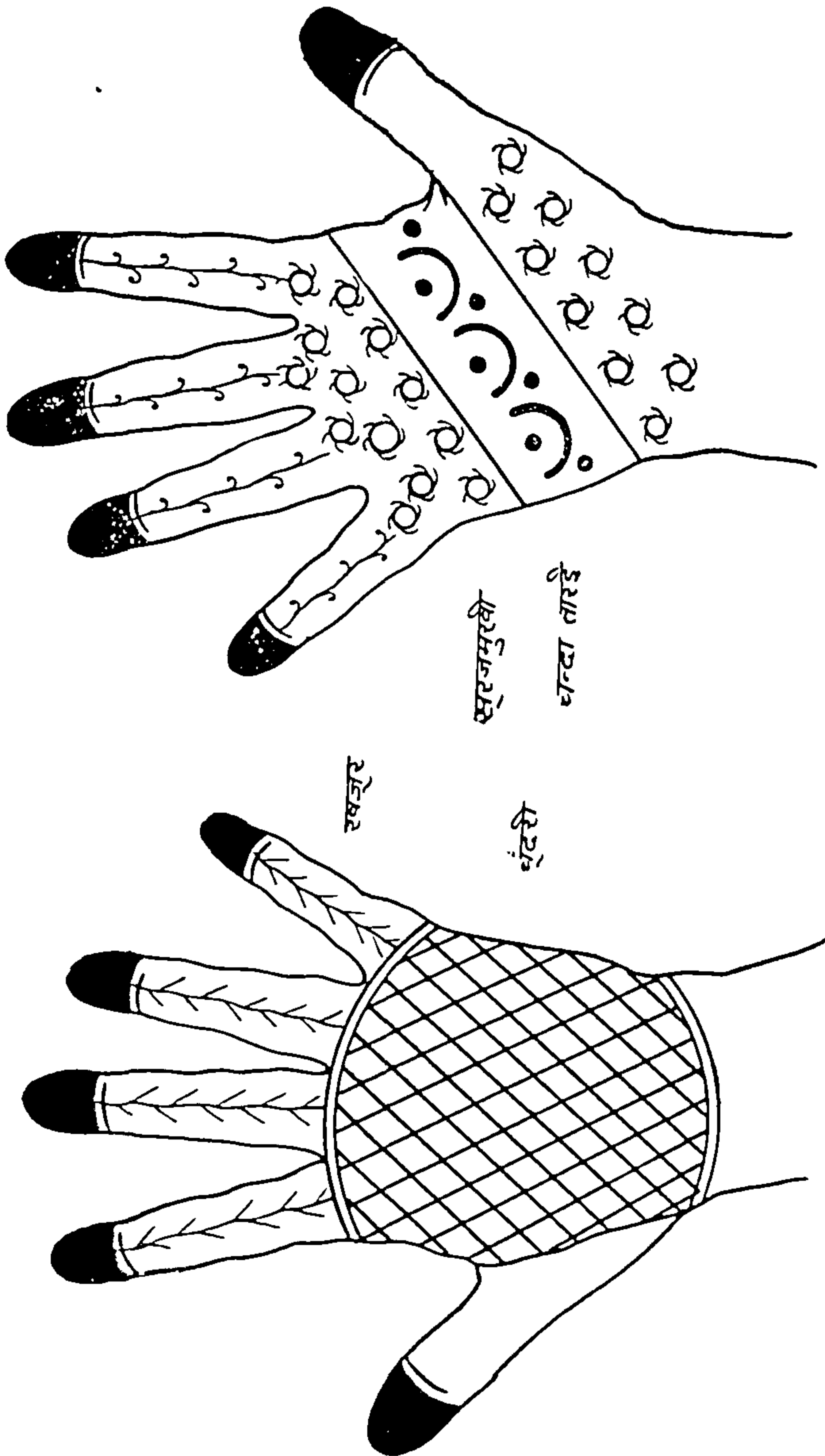
(रेखा-चित्र १५५ से १५६ तक)

जब मेंहदी को हाथ की हथेली पर पूरी तरह बिना जगह छोड़े लगा लेते हैं, तब वह **लिहसिया** या **लिहसँमा** कहाती है।

यदि हाथ और हथेली पर फूल-पत्तियाँ और बूँदें रखते हैं, तो वह रचाई **चितैमा** या **मड़ैमा** कहाती है। इन क्रियाओं को **चीतना** और **मँड़ना** कहते हैं। 'चीतना' शब्द सं० चित्रण से और 'मँड़ना' सं० मण्डन से है।

यदि चीतने में मेंहदी की बूँदें बड़ी-बड़ी तथा गोल हैं, तो वे **पैसा-टका** कहाती हैं। हथेली के पीछे एक गोले के अन्दर रखी हुई बूँदें **हथफूल** कहाती हैं। 'हथफूल' शब्द सं० हस्तफुल्ल से व्युत्पन्न है।

पाँव के किनारे-किनारे रक्खी हुई मेंहदी की धारी **सुहागी** या **पेचकी** कहाती है। नाखूनों पर रक्खी जानेवाली बूँदें **न्होंरची** कहाती हैं।

जब हाथ या हथेली पर क्रमशः एक बूँद और एक छोटी रेखा बनाते जाते हैं, तब वह रचाई **फुलपतिया** कहलाती है। इनके अतिरिक्त महँदी की रचाई के निम्नांकित ढंग भी हैं, जो कला से परिपूर्ण हैं—(१) **कंगूरिया**, (२) **खजूरी**, (३) **चंदातारई**, (४) **चूँदरी**, (५) **निवेदिया**, (६) **पँखैनी**, (७) **मुठिया**, (८) **लहरिया**, (९) **सतैनी**, (१०) **साँकरी**, (११) **सुरजमुखी**।
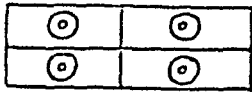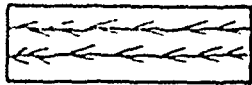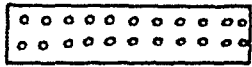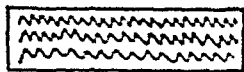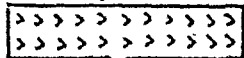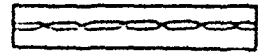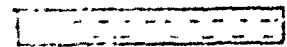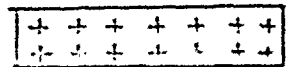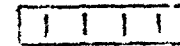
(रेखा-चित्र १५७ से १६८ तक)

§२७६—स्त्रियाँ **सिंगार** (सं० शृंगार) करते समय अपने पास **कंघा**, **कंघी**, **शीशा** और **बीजना** (सं० व्यजनक=पंखा) रख लेती हैं। कंघी को **फकई** नाम से अधिक पुकारा जाता है। शीशा को **चट्टा** और छोटे पंखे को **बिजनियाँ** (सं० व्यजनिका) कहते हैं। एक लाल पाउडर जिससे **बेंदी** (बिन्दी) लगाई जाती है, **ईंगुर** (सं० हिंगुल > प्रा० इंगुल > इंगुर > ईंगुर) कहाता है।

ईंगुर की भाँति की एक और लाल वस्तु होती है, जिसे **सिंदूर** कहते हैं। इसे भी स्त्रियाँ बालों की माँग में भरती हैं।

ब्याह के दिन दुलह जो अपनी कलाई में बाँधते या [illegible] पहनते हैं, लेकिन [illegible]

कोहनी से ऊपर बाँहों में फन्देदार लटकते हुए डोरे, जिनमें नीचे रंगीन रुई के फूल होते हैं, बाँधती हैं, जिन्हें **खयेला** कहते हैं। ये दोनों बाहों में पहने जाते हैं।

लीला या गुदना

§३८०—लीला या गुदना भी स्त्रियों का शृंगार है। नील या कोयले के पानी में डूबी हुई सुइयों से स्त्रियों के शरीर पर जो चिह्न बनाये जाते हैं, वे **लीला** या **गुदना** कहाते हैं। सुइयों से शरीर पर चिह्न बनाना **'पाँछना'** कहाता है। उन सुइयों को **पाँछी** कहते हैं। 'पाँछना' के लिए **'गोदना'** भी कहा जाता है।

गुदना गोदनेवालों की एक अलग जाति है, जो **लिलगोदा** कहाती है। लिलगोदे अपने को शेख मुसलमान कहते हैं। लिलगोदे ढोलक मढ़ते हैं और उनकी स्त्रियाँ लीला गोदती हैं। वे **लिलगोदी** कहाती हैं। लिलगोदी को **गुदनारी, लिलहारी** या **गुदनहारी** भी कहते हैं। लिलगोदियों की कला ही जनपदीय नारियों के अंगों पर अनेक रूपों और शैलियों में दिखाई पड़ती है।

§३८१—दोनों **भौंहों** (सं० भ्रू > अप० **भोहा** > भौंह) के बीच में नाक के ऊपर स्त्रियाँ लीलों की एक बिन्दी गुदवाती हैं। इस बिन्दी को **कुच्ची** कहते हैं। बीच माथे में गुदवाई हुई बिन्दी **लिलारी** कहाती है। 'कुच्ची' सं० 'कूर्चिका' से और 'लिलारी' सं० 'ललाटिका' से व्युत्पन्न ज्ञात होता है। **कुच्ची** और **लिलारी** **सुहागिलें** (सधवा) ही गुदवाती हैं। ये **सुहाग** (सं० सौभाग्य) और **सोहने** (सं० शोभन) के चिह्न माने जाते हैं।

§३८२—छाती पर उरोजों के बीच में जो गुदना गुदाये जाते हैं, उन्हें **'मोर-पपइया'** कहते हैं। स्त्रियों की धारणा है कि 'मोर-पपइया' गुदवाने से उनके मालिकों (पतियों) के मन में उनके प्रति सदा प्यार बना रहता है। मोर-पपैया इस प्रकार बनाये जाते हैं—

मोर-पपैया
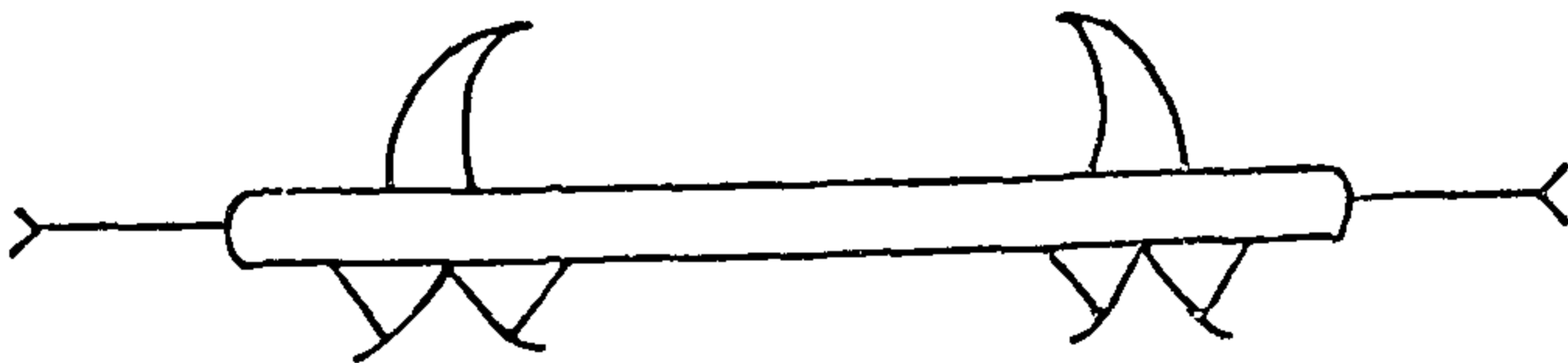
(रेखा-चित्र १६६)

छाती पर **अँगिया** (सं० अंगिका) और **कोख** (सं० कुक्षि) पर **घोड़ी** (सं० घोटिका) भी गुदती हैं।
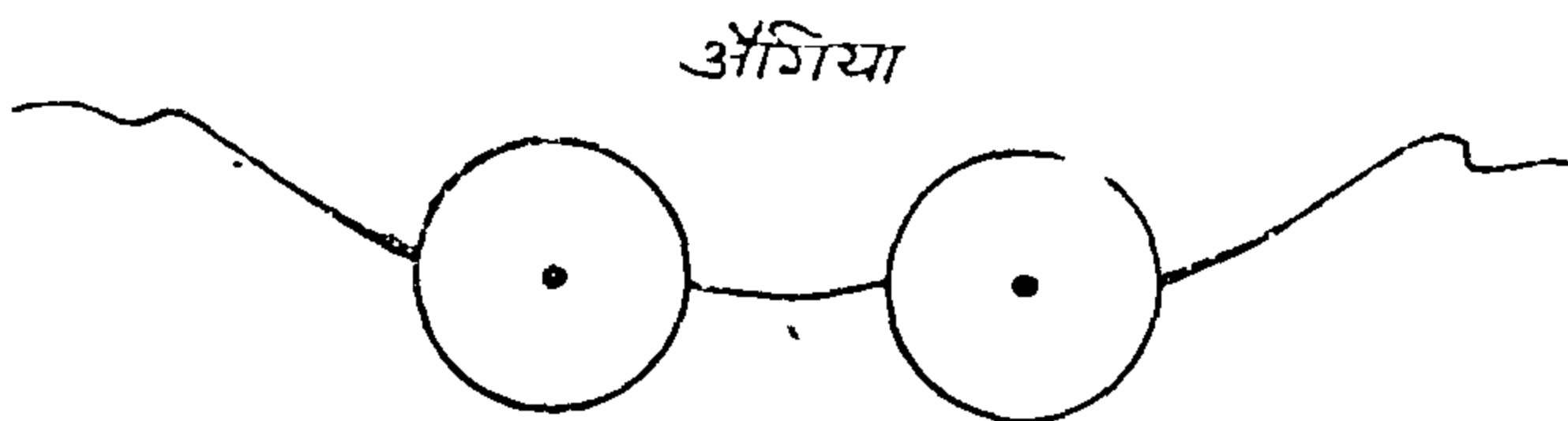
(रेखा-चित्र १७२ से १७३ तक)

§३८३—कुछ वैंयरवानियाँ (स्त्रियाँ) अपनी नाक की डेरी लँग (बाँई ओर) अपनी बाईं आँख की बाँई कोर (सं० कोटि>कोरि>कोर) के नीचे गाल (कपोल) के ऊपर एक बिन्दीदार रेखा गुदवाती हैं। कोई-कोई एक ही बिन्दी या बूँद गुदवाती है। इसे आँसू (सं० अश्रु>प्रा० अंसु>आँसू) कहते हैं।
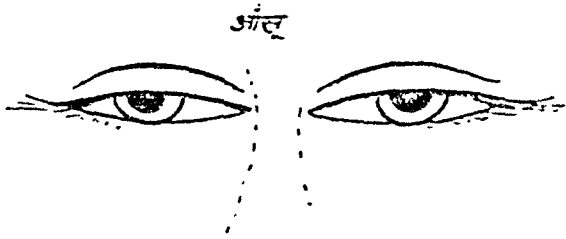
(रेखा-चित्र १७०)

§३८४—होंठ के नीचे ठोड़ी के बीच में किसी-किसी स्त्री के गड्ढा होता है उस गड्ढे में स्त्रियाँ एक बूँद अथवा एक छोटी आड़ी रेखा गुदवा लेती हैं, जो ठोड़ी या चिडआ कहाती है।

§३८५—बाँयें हाथ में कलाई से कुछ ऊपर जो गुदना गुदाया जाता है, वह सीता-रसोई कहाता है। स्त्रियों का कहना है कि 'सीता रसोई' से ब्याँहताओं (विवाहिताओं) की सुसरारि सं० श्वशुरालय) में चौका-रसोई की सदा सहबरक्कत (अ० बरकत=वृद्धि) होती है। कोन्हीं या कुहनी (सं० कफोणिका) और कलाई के बीच का भाग 'पोंहचा' कहाता है। इसे संस्कृत में प्रकोष्ठ भी कहते हैं। सीता-रसोई प्रकोष्ठ भाग पर ही गुदती है।
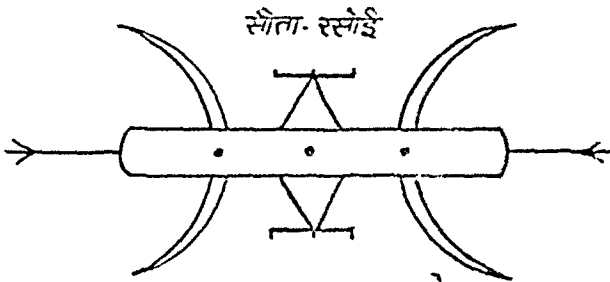
(रेखा-चित्र १७१)

(रेखा-चित्र १७२)

§३८६—बाँई बाँह (सं० बाहु) में [illegible] साँई [illegible] 'राधाकिसनजी' [illegible]
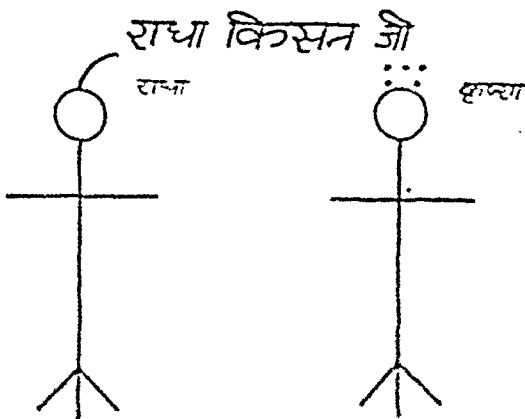
गुदवाया जाता है। इसके सम्बन्ध में स्त्रियों का कहना है कि **'राधाकिसनजी'** गुदना से **मालिक** और **बइअरबानी** (पति-पत्नी) में **तावे जिन्दगी** (जिन्दगी भर) प्यार बना रहता है।

'राधाकिसनजी' गुदना दिखाया गया है। पाँच बूँदों से तात्पर्य श्रीकृष्ण के **मोरमुकुट** (सं० मयूर-मुकुट) से है और टेढ़ी रेखा राधा की **चन्द्रिका** बताती है।

§३८७—**अँगूठे** (सं० अंगुष्ठक) के पास की **उँगली** (सं० अंगुलिका) **तिन्नी** (सं० तर्जनी) कहाती है। मध्यमा उँगली **'बीच की'** कहाती है। अनामिका को **अन्नी** और कनिष्ठा को **कन्नी** कहते हैं।

अँगूठा और तिन्नी के नीचे का भाग **गाई** कहाता है। इसके लिए अमरकोशकार (अमर० २।६।८३) ने 'प्रादेश' शब्द का उल्लेख किया है। स्त्रियाँ अपने बाँयें हाथ की गाई पर एक गोल तथा बीच में खुली हुई बूँद (सं० इस तरह की) गुदवाती हैं। वह **कुइआ** (सं० कूपिका > कूविआ > कूइआ > कुइआ) कहाती है।

कुइया गुदवाने से घर में दूध-दही की **रेज** (अधिकता) रहती है, स्त्रियों की ऐसी धारणा है।

अँगूठे के पीछे बीच की गाँठ पर चौड़ी रेखा गुदाई जाती है, जो **छल्ला** कहाती है।

§३८८—उँगलियों के सिरे जो नाखूनों के नीचे के भाग होते हैं, **पोरुआ** या **पोटुआ** कहाते हैं। सीधे हाथ की कन्नी उँगली (कनिष्ठा) के पोटुआ में एक बिन्दी या बूँद गुदाई जाती है। इसे **'धर्मचुकटी'** कहते हैं। स्त्रियों का कहना है कि धर्मचुकटी से घर में कभी **दलिद्दर** (सं० दारिद्र्य) नहीं आता और दान करने का फल तुरन्त मिलता है।

उँगलियों के पीछे की गाँठों के ऊपर एक रेखा और तीन बूँदें गुदाई जाती हैं, जो **बाँक** कहाती हैं।

बाँक—

§३८९—घुटने और एड़ी के बीच में टाँग का नीचे का भाग **पिंडली** या **तिली** कहाता है। तिलियों पर **'खजूर'** नाम का लीला गुदाया जाता है।

खजूर
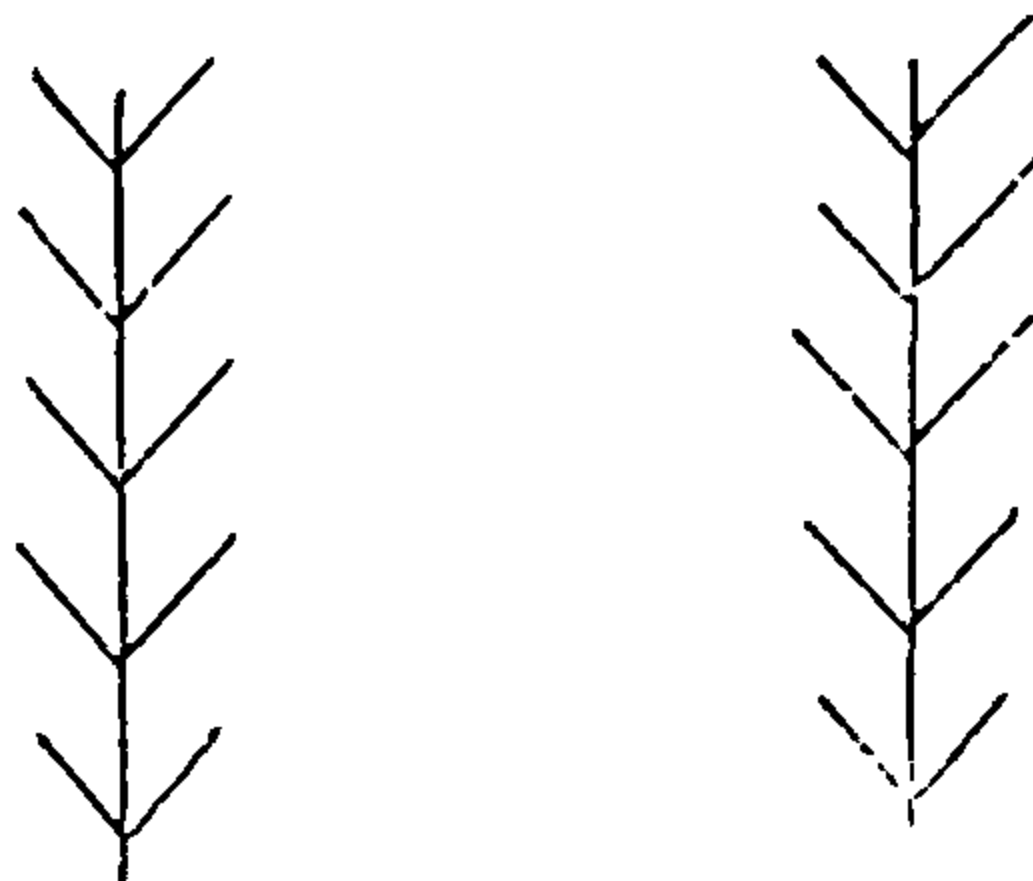
(रेखा-चित्र १७५)

§३९०—एड़ी के ऊपर दोनों ओर की गाँठों का **गट्टा** कहते हैं। 'गट्टा' के ऊपर और तिली से नीचे का भाग **मुराया** कहाता है। मुराये के चारों ओर एक गोल धारी गुदाई जाती है। उसे **नेवड़ी** कहते हैं। यदि उस धारी को दुहरा गुदवाया जाता है, तो वह **खड्डुआ** कहाती है। पैर के पंजे पर **पुनसतिया** (सं० पुत्रस्वस्तिक>पुत्तसत्थिय>पुतसतिया) व **छुवरिया** गुदाये जाते हैं। स्त्रियाँ प्रायः पाँवों के किनारे-किनारे और पंजों के ऊपर **महावर** गुदाती हैं।
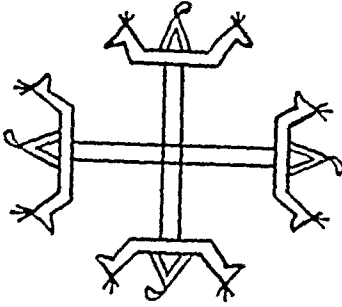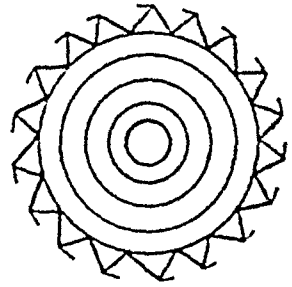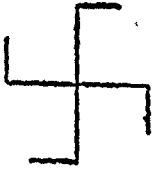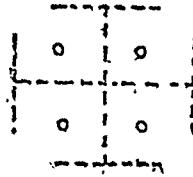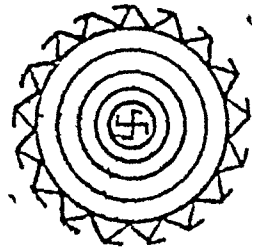
(रेखा-चित्र १७६ से १८० तक)

§३६० (अ)—आँख में बहुत छोटी तिल जैसी सफेदी छूड़ कहाती है। बड़ी छूड़ को फुली कहते हैं। बड़ी और ऊपर उठी हुई फुली टेंट कहाती है। अपने बड़े-बड़े दोषों पर भी जो ध्यान नहीं देता और दूसरे के मामूली दोषों का भी बखान करता है, उसके सम्बन्ध में लोकोक्ति प्रचलित है—

"अपनी टेंट्ठ तक नाइँ दीखत, दूसरे की फुलीऊ दीखत्यें।"[1]

कुछ बइअरबानियों (स्त्रियों) की आँख में फज (दोष) होती है, किन्तु फिर भी वे अच्छी मानी जाती हैं। यदि किसी स्त्री की आँख की पुतली (आँख का तारा) नाक के पास के कोये में घुस जाती है, तो वह ढेरो कहाती है। ग्रामीण जनों का विश्वास है कि ढेरो सन्तान के ढेर लगा देती है। जिस स्त्री की आँख का तारा नाक के कोए से भिन्न दिशा में दूसरे कोए में घुसता हो, उसे चोर कहते हैं। जिस स्त्री की आँख का तारा आँख के केन्द्र भाग से कुछ हट जाता है या ऊपर चढ़ जाता है, वह भैंड़ो या भैंड़ी कहाती है।

जिस स्त्री की दोनों आँखों की पुतलियाँ भूरी (बादामी रंग की) होती हैं, वह फंजी कहाती है। जिसके सिर पर बाल न हों, उसे गंजी कहते हैं। सफेद दागवाली को भुरी कहाती है। ग्रामीणों की धारणाएँ और विश्वास ही प्रायः स्त्रियों के सुलक्षणों या कुलक्षणों के विषय में स्याने (प्रमाण) माने जाते हैं। ढेरो चाहे आँख की चितवन में अच्छी न लगती हो लेकिन घरवाले उसे प्यार करते हैं और सास, जिठानी आदि उसका डौंप (अ० खौफ=डर) भी मानती हैं।

---

[1] अपनी आँख का टेंट तक नहीं दीखता और दूसरे की फुली भी दीखती है।

अध्याय ४

बच्चों और पुरुषों के गहने और बाल

§३६१—छोटे-छोटे बच्चों के पैरों में चाँदी के बने गोल **खड़ुआ** पहनाते हैं। पाँवों के पतले **खड़ुओं** में जब बजनेवाले छोटे-छोटे घूँघुरू जोड़ दिये जाते हैं, तब वह **गहना** (सं० ग्रहणक) **पैंजनी** (सं० पादशिंजिनी) कहलाता है। गहने को **जेवर** (फा० ज़ेवर) और **चीज** (फा० चीज़) भी कहते हैं। बहुत छोटे घुँघुरू को **रौना** और **रवा** भी कहते हैं।

§३६२—हाथ के **पौंचे** (पहुँचा) या **करइया** (कलाई) में पहना जानेवाला सोने या चाँदी का गहना **कड़ा** (सं० कटक), **खड़ुआ** या **कड़ूला** कहाता है। एक लाल मूँगा एक डोरे में पिरोकर हाथ की कलाई में बाँध देते हैं, वह **लालौरी** कहाता है।

§३६३—कमर में छल्लीदार साँकरीनुमा गोल चीज जो चाँदी या सोने की बनी होती है, **कौंधनी** कहाती है। कभी-कभी डोरे की कौंधनी में एक लम्बा मूँगा डाल दिया जाता है, वह **टुनुआँ** कहाता है।

§३६४—बच्चों के गलों में नजर-गुजर के लिए कुछ चीजें पहनाते हैं, जो प्रायः गले के डोरे में डाल दी जाती हैं। शेर के पंजे का नाखून डाल दिया जाता है। इसे **बघना**[1] या **बगनखा** (सं० व्याघ्रनख) कहते हैं। गोल चाँदी का छल्ला **सूरज** और आधा गोल छल्ला **चन्दा** कहाता है। एक डोरे में चाँदी के बने हुए गोल-गोल पैसे-से पुहे हुए होते हैं; उसे **कठुला**[2] कहते हैं। यह गले का गहना है। गले से चिपटा हुआ एक भूषण **कंठा** (सं० कण्ठक) कहाता है। इसके दाने गोल और बड़े होते हैं।

§३६५—गले का एक भूषण **गड़ेली** (सं० गंडेरिका) होता है। गोल और लम्बी अण्डे के आकार की बहुत छोटी वस्तु **गड़ेली** कहाती है। इसके बीच में एक कुन्दा होता है। उस कुन्दे में डोरा डालकर गले में पहनाई जाती है। चाँदी की बनी वर्गाकार वस्तु **तावीज** कहाती है।

§३६६—कान के नीचे का भाग, जो गाल को छूता है, **लौर** कहाता है। **कनछेदन** (सं० कर्णछेदन) पर बालकों की **लौर** छिदती हैं। इन लौरों के छेदों में कुछ बालक **मुरकी**, कुछ **बारी**, कुछ **लौंग** और कुछ **दुर** पहनते हैं। ये सब चीजें प्रायः सोने की ही बनती हैं।

एक सोने के तार की दो-तीन चक्करों के साथ गोल बनाया जाता है, उसे '**मुरकी**' कहते हैं। बारी (बाली) में इकहरा तार ही गोल कर दिया जाता है।

एक बूँद के रूप में बना हुआ कान का गहना **लौंग** (सं० लवंग) कहाता है। आँकड़ेनुमा घुंडीदार लटकनी वाली '**दुर**'[3] (अ० दुर्र=मोती) कहाती है। दुर से मिलता हुआ भूषण **कुंडल** होता है। कुंडल की घुंडी बड़ी और पोली होती है।

---

[1] "सूरदास प्रभु ब्रजबधु निरखति रुचिर हार हिय सोहत **बघना**।"
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।११३

[2] "**कठुला** कंठ वज्र केहरि-नख राजत रुचिर हिये॥"
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।९९

[3] "कंचन के द्वै दुर मँगाइ लिए कहीं कहा छेदनि आतुर को।"
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।१८०

सूर ने भी कृष्ण के कनछेदन के वर्णन में दुर और मुरकी का उल्लेख किया है।[1]
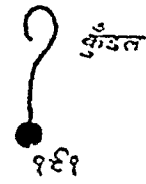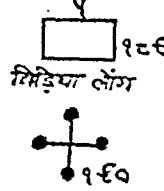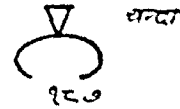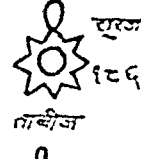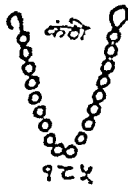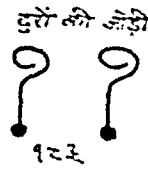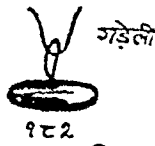
(रेखा-चित्र १८१ से १९१ तक)

§३९७—मोर के पंखों की डंडी डढ़ीर कहाती है, और आगे का भाग जिस पर आँख की-सी शक्ल बनी रहती है, चँदउआ कहाता है। डढ़ीर के अन्दर का गूदा निकालकर बालकों के कानों के छेदों में डाल देते हैं। इसे मोरपँच कहते हैं।

§३९८—बालक को नजर न लगे, इसलिए काजर लगाने के बाद उसके माथे पर आड़ा काजर का टिप्पा लगा देते हैं, वह डिठौना[2], डिठ बँधना (सं० दृष्टि-बंधन) या चखौटा (मांट में) कहाता है। उसमान कृत चित्रावली (१५४।५; २३४।३) में इसे 'चौलंडा' कहा गया है।

§३९९—जब तक बालक का मूँड़न (सं० मुण्डन) नहीं होता तब तक उसके बाल लटूरियाँ, जरूले या कुल्लियाँ कहाते हैं। मुंडन के बाद उगे हुए बाल गुँड़ीले कहे जाते हैं। 'जरूले' शब्द के लिए सूरदास ने 'झँडूले'[3] शब्द लिखा है (जट + उल्ल > जटउल्ल > जडूल + क > जडूला = जड अर्थात् गर्भ के पैदायशी बाल)[4]।

§४००—बड़ी उम्र के आदमी कन्नी (कनिष्ठा) और अन्नी (अनामिका) उँगलियों में अँगूठी पहनते हैं। इसे छाप, मुदरी या मुदरिया (सं० मुद्रिका) भी कहते हैं। अँगूठी की भाँति की चाँदी-ताँबे की गोल पत्ती छल्ला कहाती है। ऐंठा हुआ तार जो छल्लेनुमा बना दिया जाता है, बेड़ा या बेढ़ा (सं० वेष्टक) कहाता है। ये सब उँगलियों में ही पहने जाते हैं।

---

[1] लोचन भरि-भरि दोउ माता कनछेदन देखत जिय मुरकी ॥"
वही, १०। १८०

[2] "सिर चौतनी डिठौना दीन्हौं आँखि आँजि पहिराइ निचोल ॥"
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।९४

[3] 'उर बघनहौं, कंठ कठुला, झँडूले बार,
बेनी लटकन मसि-बुन्दा मुनिमनहार।'
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा० १०।१५१

[4] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हिन्दी के सौ शब्दों की निरुक्ति,
—नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५२, अंक ३—४, पृ० १००।

§४०१—**कौन्ही** (कुहनी) से ऊपर कुछ लोग भादों उतरती चौदश (भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी) को अपनी बाँहों में सोने या ताँबे का एक कड़ा पहनते हैं, जिसे **अन्त** (सं० अनन्त) कहते हैं। इसमें चौदह गोलियाँ-सी बनी रहती हैं। डोरे के अन्त में चौदह गाँठें लगी रहती हैं। उक्त चौदस को **अन्त चौदस** (सं० अनन्तचतुर्दशी) भी कहते हैं।

§४०२—सोने के तारों को ऐंठकर आपस में मिला दिया जाता है, तब एक प्रकार का गले का मर्दाना भूषण बनता है, जिसे **तोड़ा** कहते हैं। सेनापति ने **'तोरा'** का प्रयोग भूषण-विशेष के अर्थ में किया है।[1]

अध्याय ५

स्त्रियों के गहने

§४०३—माथे के गहने **भागवानों** (अमीर लोगों) की स्त्रियाँ माथे, सिर और कान आदि में पहने जानेवाले **गहने** (सं० ग्रहणक>गहनअ>गहना=आभूषण) सोने के ही बनवाती हैं। निर्धन हिन्दुओं तथा मुसलमानों की स्त्रियाँ चाँदी के भी बनवाती हैं। सामने माथे पर पहना जानेवाला **साँकरी** (शृंखला=जंजीर) में लटका हुआ अर्द्धचन्द्राकार रौनोंदार एक आभूषण **बैना, लटकन, चन्दा** या **टीका** कहाता है। तलुए पर सिर की माँग के ऊपर पहना जानेवाला गोलाकार सोने का एक भूषण **बौरिया, सीसफूल, बोरला** या **बोल्ला** कहाता है (सं० शीर्षफुल्ल>सीसफूल)। सिर के अग्रभाग का एक भूषण **पँचबैनी** कहाता है। इसमें पाँच लड़ें होती हैं। इस प्रकार के छोटे-छोटे गहने सामूहिक रूप में **'टूमछल्ला'** कहाते हैं। बड़े-बड़े गहनों को सामूहिक रूप में **गहना-पाता** कहते हैं।

माथे पर दाईं-बाईं ओर एक गहना पहना जाता है, जिसका आकार त्रिभुज का-सा होता है, और नीचे घुंडीदार छोटे-छोटे रौने लटके रहते हैं। उसे **भुवभुवी, झुलनियाँ, झिलमिलिया** या **झूमर** कहते हैं। झूमर जोड़े में पहनी जाती है। मुसलमान स्त्रियाँ प्रायः चाँदी की झूमर पहनती हैं। झूमर के ऊपर **सहारा** नाम का गहना पहना जाता है, जो झूमर के बोझ को साधता है। सहारे के आस-पास ही **काँटे** और **झेले** नाम के गहने भी पहने जाते हैं।

सोने की तीन पत्तियों का बना हुआ माथे का एक आभूषण **खौर** कहाता है। एक पत्ती से बना हुआ एक गहना **बन्दनी** या **सिंगारपट्टी** कहा जाता है। स्त्रियाँ प्रायः बन्दनी के साथ ही माथे पर **ढेंड़ी**[2] भी पहनती हैं। माथे के ठीक मध्य में सोने की बनी हुई एक बड़ी बिन्दी-सी चिपकाई जाती है, जिसे **तिलक** कहते हैं।

---

[1] 'सौ बारहमासी तोरा तोहि बनि आयौ है।'

—सेनापति : कवित्त-रत्नाकर, हिंदी-परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय, तरंग १; छन्द ४४।

[2] "मरियो ठेकेदार गैल में टाड़ी लुटि गई लाँगुरिया।
ढेंड़ी लुटी बन्दनी लुटि गई, झूमर ऊपर खड़खड़िया॥"
(त० कोल में प्रचलित लँगुरिया नामक लोकगीत)

टीका

बोल्ला

झुम्मर या झुबझुबी

टीका-बैना
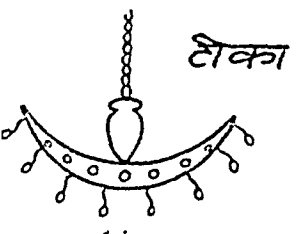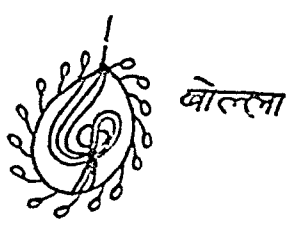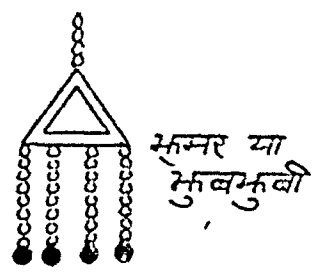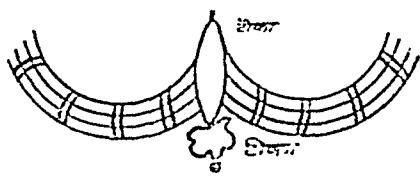
खौर
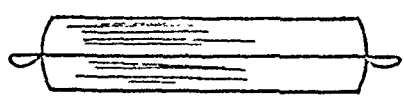
तिलक

(रेखा-चित्र १६२ से १६७ तक)

§४०४—सिर के आभूषण—सिर के जूड़े के ऊपर एक गोल चक्राकार-सा भूषण पहना जाता है, जिसे जूड़ा कहते हैं। इसमें दो पत्तियाँ निकली रहती हैं, जो चोटी के जूड़े में फँस जाती हैं। ब्याह में बरनी के बालों की चोटी में जो चाँदी या सोने के सरवों या सरइयोंकी भाँति एक आभूषण गूँथा जाता है, उसे **चोटी** कहते हैं। बालों को अपनी जगह जमाये रखने के लिए चोटी के दायें-बायें **काँटे** भी लगते हैं।
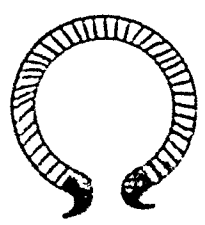
(रेखा-चित्र १६८ से २०१ तक)

§४०५—कान के आभूषण—स्त्रियाँ प्रायः कान के चार भागों में [illegible] पहनती हैं। गाल से सिरा हुआ कान के अंश का नाम **[illegible]** कहता है। इसमें [illegible]

गहना पहना जाता है, उसे **बारी** या बाली (सं० बालिका[1]; सं० वल्ली[2]) कहते हैं। बाली के छेद में **गूँज** (बाली का टेढ़ा सिरा जो छेद में पोह दिया जाता है) लगा दी जाती है। कान की चिचकनी में ही चाँदी का एक गहना पहना जाता है, जिसे **गुच्छी** कहते हैं। इसमें रौनों का गुच्छा-सा लगा रहता है। कान को ढक लेनेवाला एक आभूषण **कान** कहाता है। कान के नीचे का भाग जो कुछ लटकता हुआ-सा होता है **लौर** कहलाता है। बहुत-सी सोने-चाँदी **चीजें** की (गहने) लौरों में पहनी जाती हैं। एक प्रकार की बाली, जिसमें दो मोती पड़े रहते हैं, **बीर** कहाती है। **बुन्दे, कुंडल,**

(रेखा-चित्र २०२ से २१० तक)

---
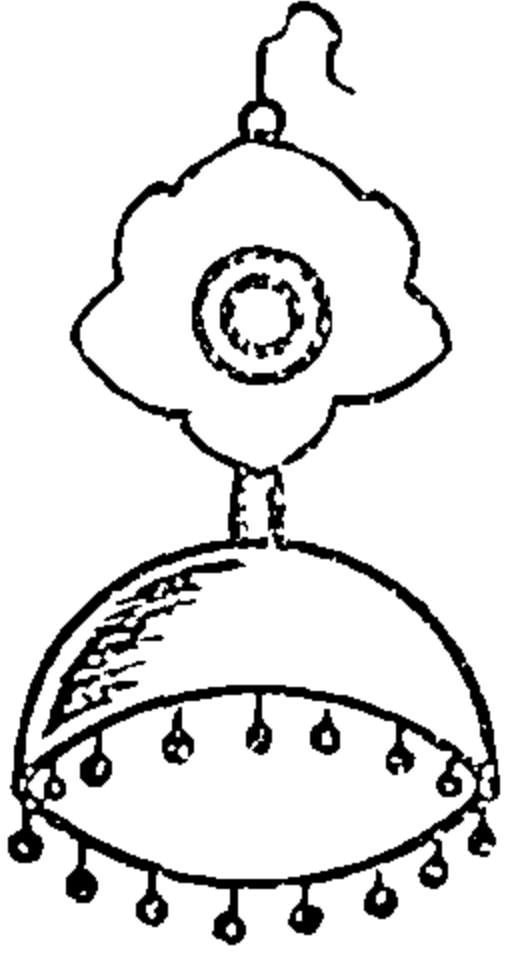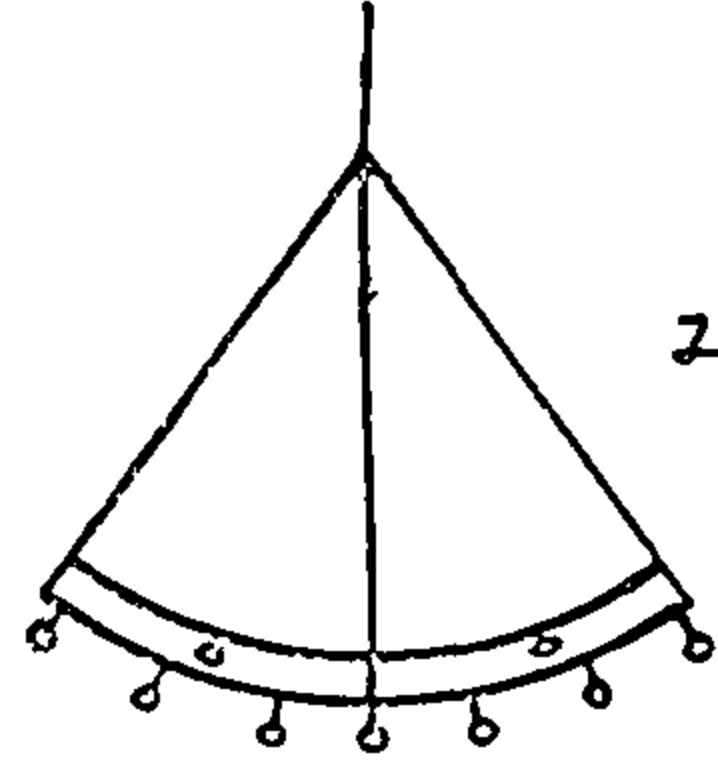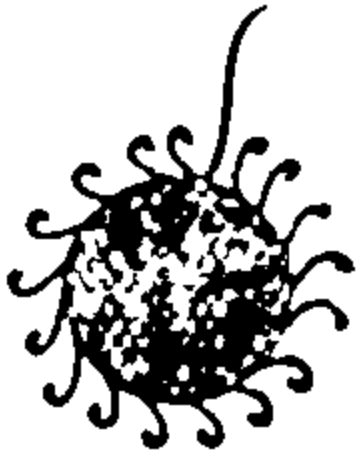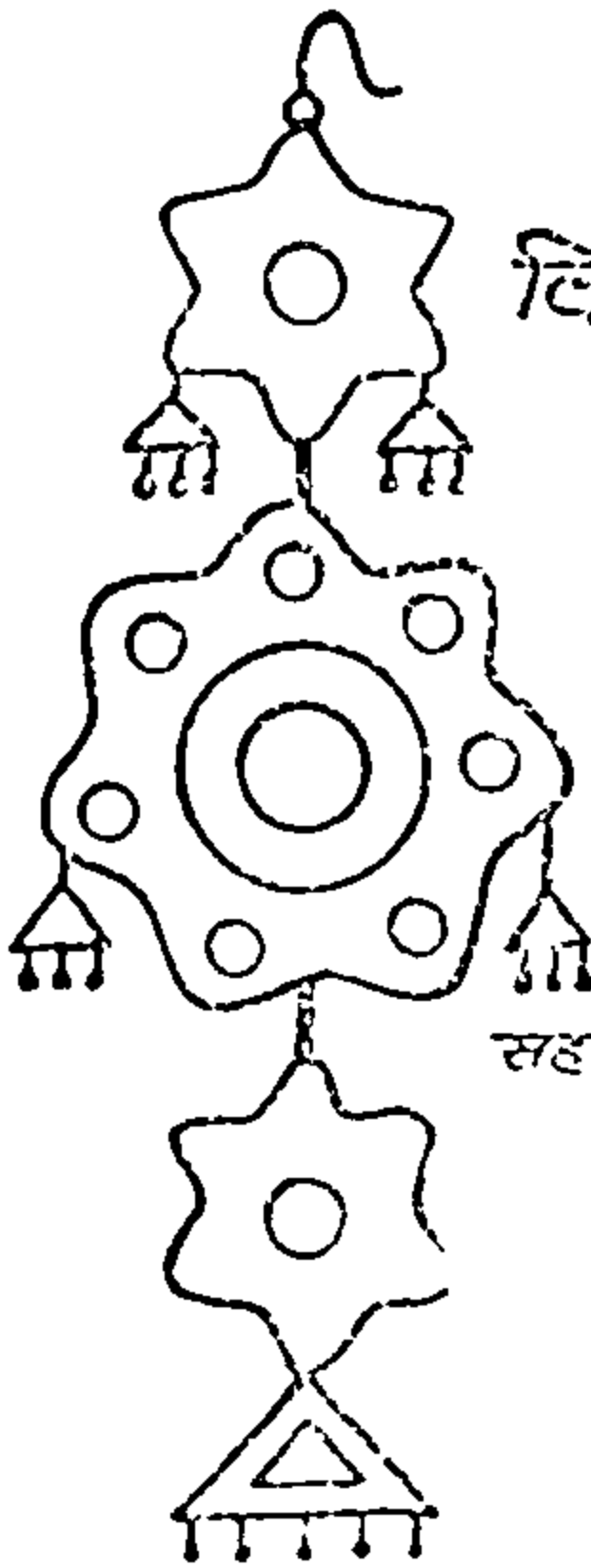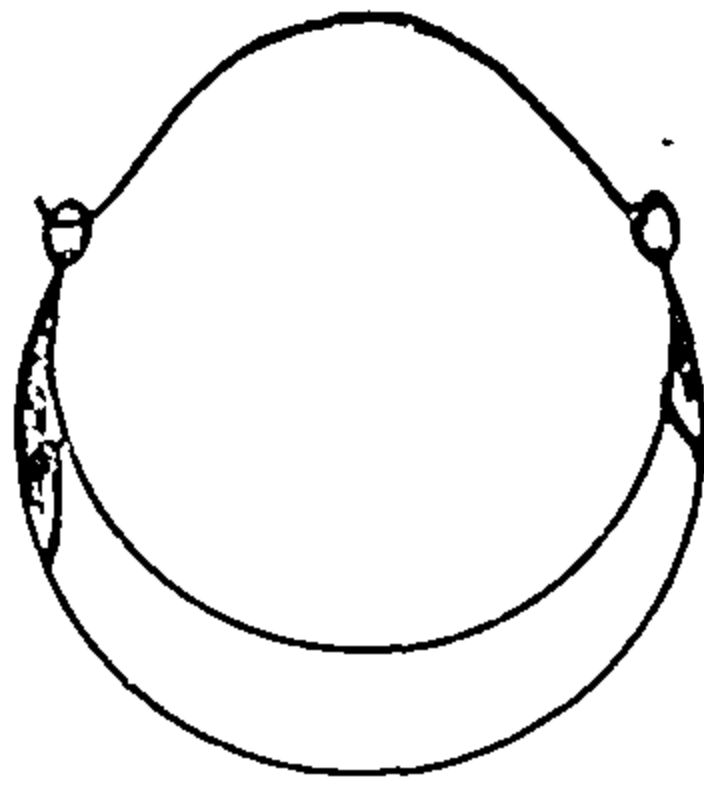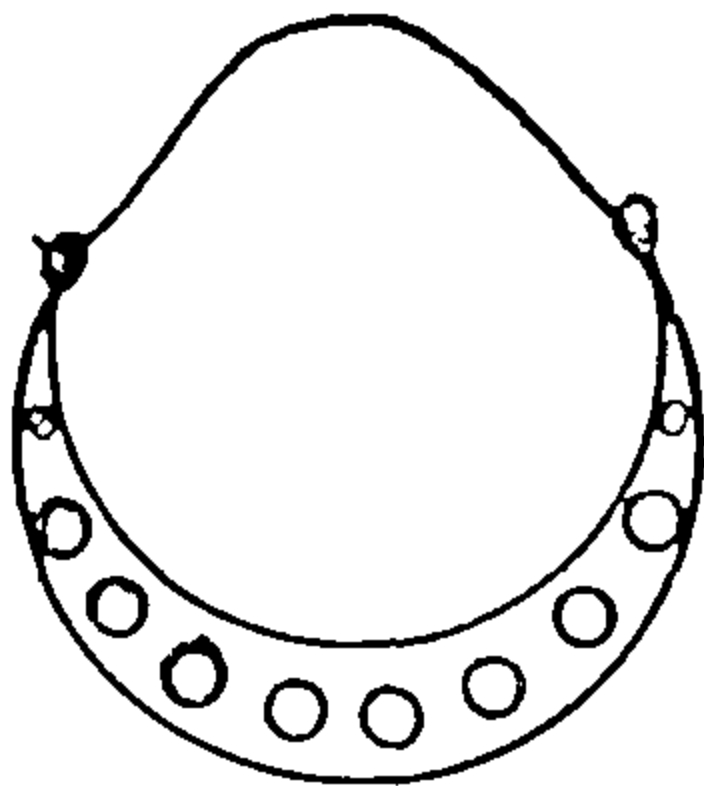
[1] बाण ने बाली के लिए 'बालिका' शब्द लिखा है।

—हर्षचरित, निर्णयसागर, पंचम संस्करण, पृ० १४७, १६६।

[2] पाणिनि के सूत्र 'चतुर्थी तदर्थे' (अष्टा० ६।२।४३) की वृत्ति में काशिकाकार वामनजयादित्य ने 'वल्लीहिरण्यम्' (=बाली के लिए सोना) सामासिक पद लिखा है।

—काशिका, चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय, सन् १९५२, पृ० ५२२।

तरकी, झूमकी, खटका, झाले, बिजली और करनफूल आदि आभूषण लौरों में ही पहने जाते हैं। बाण ने कान के एक भूषण के लिए 'कर्णपूर' शब्द का उल्लेख किया है।[1]

तरकी की बनावट रौनांदार टॉप्स की भाँति होती है। झूमकी उलटी छोटी कटोरी-सी होती है, जिसमें नीचे रौने लटके रहते हैं। सोने या चाँदी की छोटी-सी गोल प्याली में एक शीशा जड़ा रहता है। कान का वह आभूषण ठेंटी या करनफूल कहाता है। इसके आगे का भाग ढाल या फूल कहलाता है। पीछे के हिस्से को डाँड़ी कहते हैं।

कान का मध्य भाग, जो लौर के ऊपर होता है, गोखरू कहाता है। इसमें बाला (मोटी और बड़ी बाली) पहना जाता है। एक धनुषाकार आभूषण गोसा (फा० गोश = कान) कहाता है, जो कान को चारों ओर से घेर लेता है।

§४०६—नाक के आभूषण—नाक के नीचे बीच के जोड़ में बुलाक पहनी जाती है। नाक के नथुए की बाईं ओर की खाल में नथ (बाली की भाँति का एक भूषण) पहनी जाती है। एक प्रकार की नथ को, जिसमें मोती और लालरी (एक प्रकार का लाल मूँगा) पड़ी रहती है, बेसर[2] कहते हैं। बेसर की गूँज को छेद में डाल देते हैं। किसी-किसी नथ में छेद के पास गोल तार के अन्दर मोती लगा देते हैं। उसे 'भलुका' कहते हैं। भलुके की नथ भलुकिया नथ कहाती है।
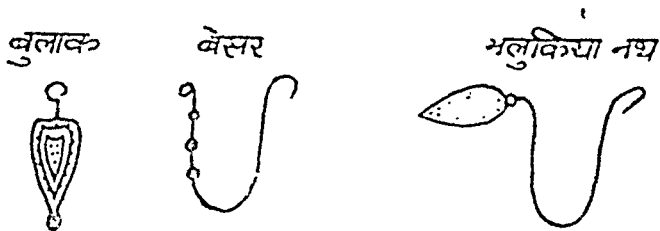
(रेखा-चित्र २११ से २१३ तक)

४०७—नाक में लौंग, पोंगनी और सेंटा भी पहना जाता है। लौंग एक घुंडी या बूँद-
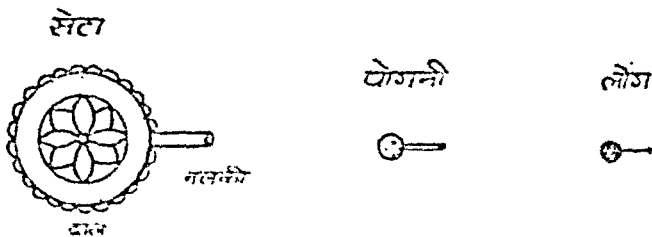
(रेखा-चित्र २१४ से २१६ तक)

---

[1] जिस समय कुलवर्धना दासी रानी विलासवती के गर्भ का समाचार राजा तारापीड और मंत्री शुकनास को सुनाती है, उस स्थल पर बाण ने कादम्बरी में 'कर्णपूर' शब्द का उल्लेख किया है—

"नील कुवलय कर्णपूर-शोभाम्।"

—कादम्बरी, रानी गर्भपालनम्, निर्णय सि० कलकत्ता, पृ० २६३।

[2] "नाक बास बेसरि लह्यौ, बसि मुकुतनु के संग।"

—जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (संपादक) : बिहारी-रत्नाकर, दो० ३०।

सी होती है। लौंग से बड़ी **पौंगनी** और पौंगनी से बड़ा **सेंठा** होता है। **सेंठा** नाक के आगे के भाग में गोल-गोल बूँदोंदार काफी बड़ा दिखाई देता है।

'सेंठा' में तीन अंग होते हैं। फूल-सा भाग **ढाल,** पोली डंडी **नलकी** और नलकी में लगनेवाली टोपीदार कील **पल्ला,** **डाट** या **ठेंठी** कहाती है।

दाँतों में सामने लगनेवाला एक भूषण **चौंप** कहाता है।

४०८— गले में बँधनेवाले गहने—गले से चिपटकर बँधनेवाले आभूषण **पाटिया, चिक, गुलीबन्द, कंठा** और **ठुस्सी** हैं। चिक, गुलीबन्द और ठुस्सी, ये तीनों गहने सोने के होते हैं, और मखमल के कपड़े पर डोरों से पुहे हुए रहते हैं। चिक के **पक्खे** (पत्ते) वर्गाकार और गुलीबन्द के आयताकार होते हैं। उन पत्तों पर फूल तथा जुड़वाँ बुँदकियाँ बनी रहती हैं। ठुस्सी में तीन-तीन जुड़वाँ सोने के मोती खड़ी हालत में लड़ों में पुहे हुए रहते हैं। चिक के बीच में एक पत्ता-सा लटकाया जाता है, जिसे **जुगनू** कहते हैं। गुलीबन्द और ठुस्सी के बीच में नगों का जड़ाव होता है। गुलीबन्द से मिलते-जुलते गले के गहने **टीप** या **गुलचीप** और **टिमनी** भी हैं।

(रेखा-चित्र २१७ से २२० तक)
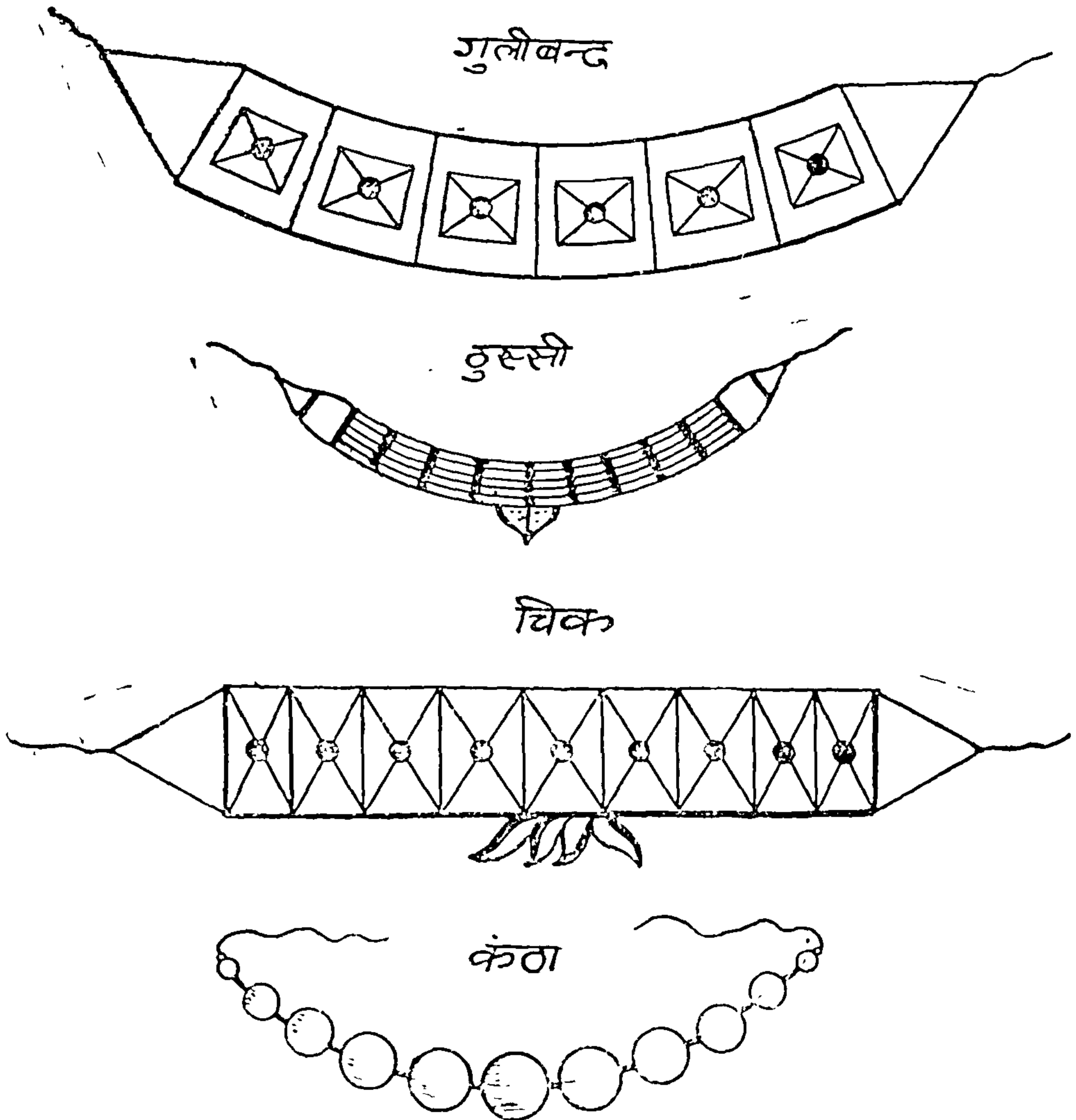
§४०६—**गले में लटकनेवाले भूषण**—सोने के आभूषणों में एक जो सोने के ठोस लट्टे की बनती है, **हँसली** कहाती है। इसके बनाने में ताँबे के लट्टे के ऊपर सोने का पत्तूर (सं० पत्र) भी चढ़ा दिया जाता है। पाँच मूँगों (गोल दाने) की कंठी **पचमनिया** और तीन की **तिमनिया** कहाती है।

माला के दानों की भाँति सोने के दाने जिन डोरों में पुहे हुए रहते हैं, वे कई नामों से पुकारे जाते हैं। आकृति की भिन्नता के कारण उनके नाम भी अलग-अलग हैं। **जौमाला** या **चम्पाकली**, **शंखमाला**, **मोहनमाला**, **आममाला**, **मटरमाला**, आदि मालाओं के ही नाम हैं। चम्पाकली के बीच में लटकता हुआ जुगनू, जो काफी बड़ा होता है, **जुगना** या **उरबसी**[1] कहाता है।

हारों में **औकल-चौकल हार**, **कैरीहार**, **चंदनहार** और **मोलसिरीहार** प्रचलित हैं।

दुलरी, **तिलरी**, **चौलरी** और **पचलरी** नाम के गहने लड़ों के बने हुए होते हैं। 'चौलरी' एक प्रकार का चार लड़ियों का हार ही है। दुलरी के सम्बन्ध में कहावत है—

"घर में नाहिं नौन की डरी। बहुअरि माँगै नथ दुलरी॥"[2]

सीतारामी, **रामनौमी**, **पटिया** और **हमेल** (अ० हमायल) भी गले में शोभा बढ़ाने-
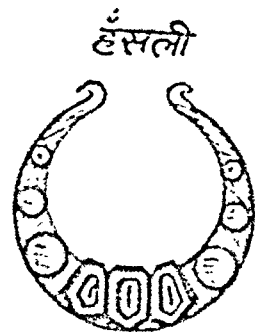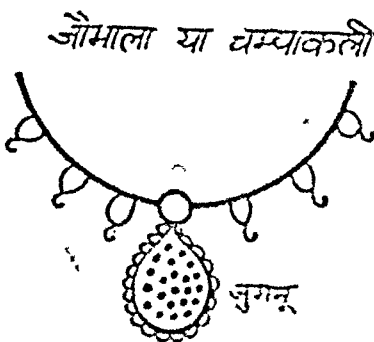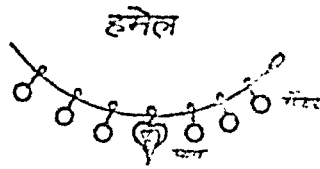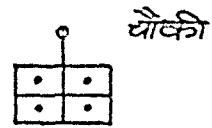
(रेखा-चित्र २२१ से २२५ तक)

---

[1] "तू मोहन कैं उरबसी ह्वै उरबसी-समान।"
—बिहारी रत्नाकर, दो० २५।

[2] घर में नमक की डली भी नहीं है, परन्तु बहू पहनने के लिए नथ और दुलरी माँगती है।

स्त्रियों के पाँवों की उँगलियों में जो छल्ले पड़े रहते हैं, उनके ऊपर एक-एक कुन्दा लगा रहता है। उनमें होकर एक **साँकरी** (जंजीर) डाली जाती है। उन कुन्दों सहित छल्लों और साँकरी को **साँकरछल्ली** कहते हैं। **अँगूठे** (सं० अंगुष्ठ) के लिए जनपदीय बोली में **गूँठा** भी कहते हैं। किसी के आगे अँगूठा दिखाना **"सींग दिखाना"** या **"सिगट्टा दिखाना"** कहाता है। सींग दिखाकर किसी को **चिराया** (चिढ़ाया) भी जाता है। किसी को तुच्छ या नगण्य समझने के अर्थ में **"सींग पर समझना"** एक मुहावरा भी प्रचलित है। पाँवों की उँगलियों में विशेष प्रकार के चौड़ी पत्ती के छल्ले पहने जाते हैं, जो **चुकटी** कहाते हैं।

§४१३—**बाँह में कुहनी से ऊपर पहनने के गहने**—कुहनी से ऊपर पहने जानेवाले भूषण सोने अथवा चाँदी के ही बनते हैं। ढाई मोड़ का मुड़ा हुआ गोल आभूषण **बलडाँड़ा** या **टड्डा** कहाता है, त० माँट में इसे **'बहुँटा'** भी कहते हैं। मुड़ा हुआ गोल लट्टा **बरा** कहलाता है। चौड़ी पत्तियाँ, जिन पर बूँदें होती हैं, डोरे में पुही रहती हैं। ये **बाजूबन्द** कहाती हैं। नीचे एक लटकते हुए डोरे में घुण्डी पड़ी रहती है, जिसे **जंग** कहते हैं। जंग बाजूबन्द के साथ रहती है। लम्बी-लम्बी गँड़ेलियाँ-सी जब डोरे में एक दूसरी के नीचे पोह दी जाती हैं, तब **'जोशन'** कहाती है। बाँह में **इकनगा** और **नौनगा** या **नौरतन** नाम के गहने भी पहने जाते हैं। ये जड़ाऊ होते हैं।
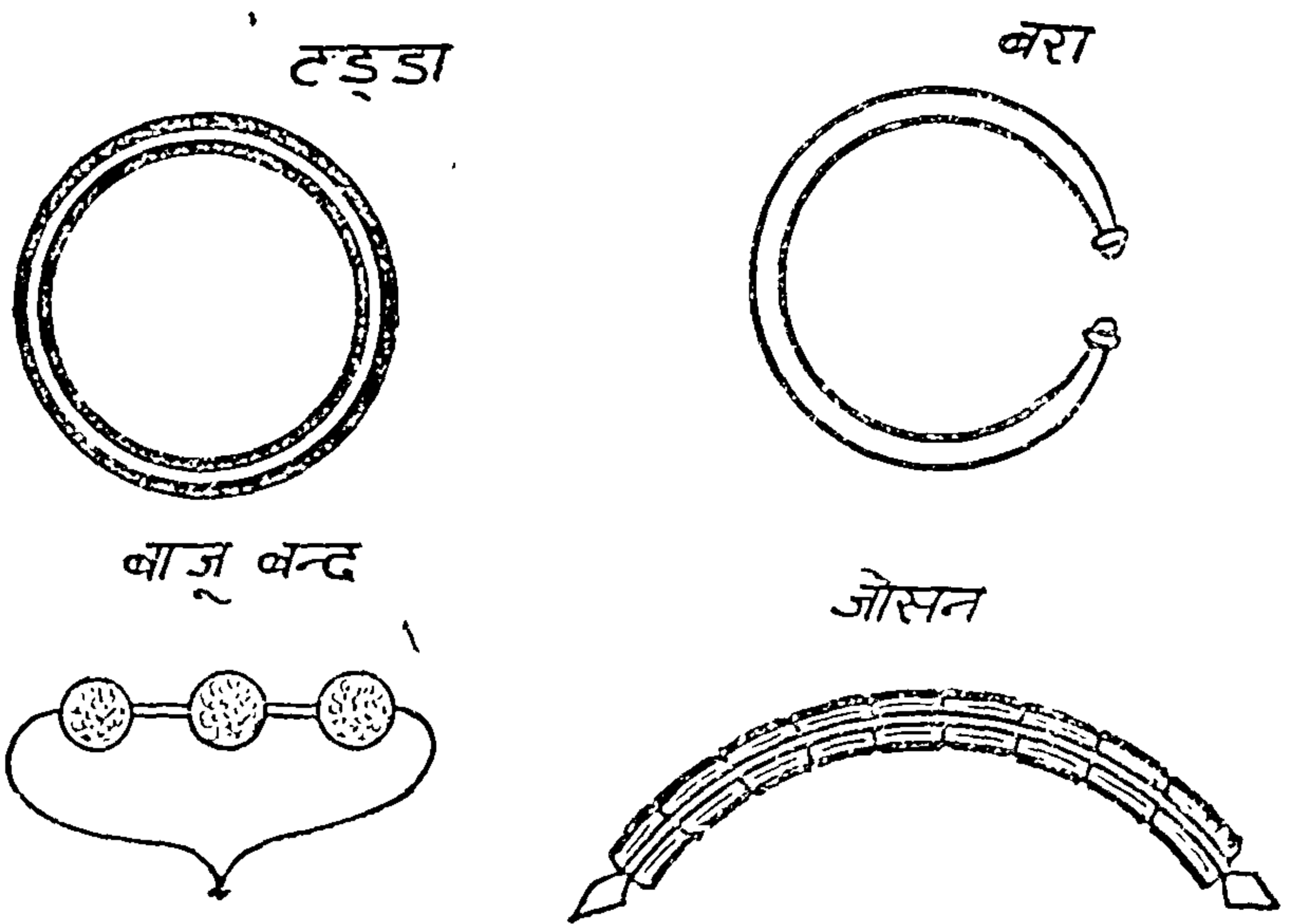
(रेखा-चित्र २३० से २३३ तक)

'बरा' और अन्त (सं० अनन्त) की आकृति एक-सी ही होती है। इन्हें स्त्री-पुरुष दोनों ही पहनते हैं। वाल्मीकि रामायण में संभवतः 'बरा' जैसी वस्तु के लिए ही 'केयूर'[1] शब्द आया है।

"[1] नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरेत्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात ॥"
—वाल्मीकि रामायण, किष्किन्धा काण्ड, ६।२२

§४१४—**पहुँचे के गहने**—काँच की चूड़ियों के साथ-साथ पहुँचे में स्त्रियाँ कई सोने या चाँदी के गहने पहनती हैं। चाँदी का बना हुआ गोल लड़ुआ-सा जिसके ऊपर गोलियाँ-सी जमी रहती हैं, **डार** या **दूआ** कहाता है।

एक गोल आभूषण जो चाँदी का होता है **परीबन्द, जहाँगीर, छन** या **बंगली** कहाता है। इस पर फूल और गोल-गोल रुपये-से बने रहते हैं। 'बंगली' को भोजपुरी में 'बँगुरी' कहते हैं। वही शब्द अँगरेजी में 'बैंगल' है। बंगली प्रायः चूड़ियों के बीच में पहनी जाती है।

पहुँचे में कुहनी की ओर सबसे पीछे **पछेली** रहती है। गोल चौड़ी पत्ती पर मटका के-से दाने जमे रहते हैं; वह भूषण 'करा' कहाता है। लड़ुओं (सं० लट्टक) की भाँति प्रत्येक हाथ में एक-एक पहना जाता है। ये सब गहने प्रायः चाँदी के ही होते हैं।

पहुँची सोने की होती है। एक कपड़े पर पोली गोलियाँ-सी डोरे से पुही होती हैं। सोने की फूल-पत्ती और कड़ियों की लड़ों से फूलदार **दस्ताने** बनाये जाते हैं। जौ की भाँति के दानों के दस्ताने **सुमिरन** कहाते हैं। नौ दानों की बनी हुई छोटी पहुँची **नौगरी** कहाती है। दानों की शक्ल के आधार पर पहुँची की कई किस्में हैं - **इलाइचिया, मौलसिरिया, लौंगिया** और **पहलदार**।

(रेखा-चित्र २३४ से २३९ तक)
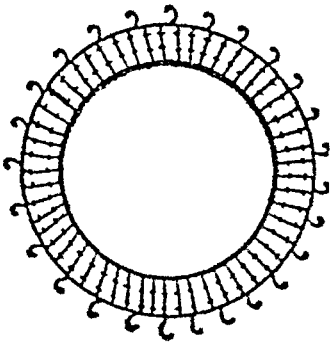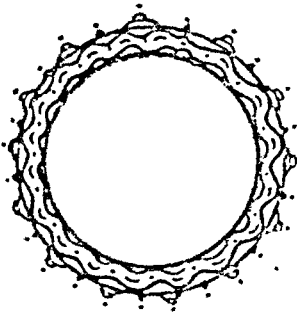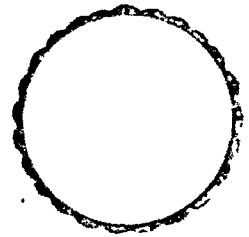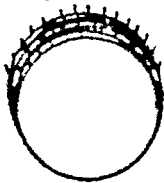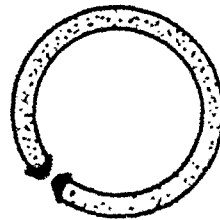
एक प्रकार का खडुआ जिस पर बाल से उठे रहते हैं, **कंगन** या **ककना** कहाता है। इसे **गजरा** भी कहते हैं। गजरे के पास **बंद** भी पहना जाता है। ककने से मिलता-जुलता एक गहना **च्यूहेदन्ती** कहाता है, जिस पर छोटे-छोटे बालों की भाँति तार उठे रहते हैं।

गजरे के सम्बन्ध में एक कहावत है—

"बाजूबन्द पछेली और हाथ कौ गजरौ।
अपने-अपने टिमाक के लैं सास-बहू कौ झगरौ॥" [1]

§४१५—**हथेली के पीछे पहनने के गहने**—पहुँचे और उँगलियों के बीच में चाँदी का एक फूल और उसमें लगी हुई साँकरी पहनी जाती है। इसे **हथफूल** और **हथसंकरी** कहते हैं।

§४१६—**अँगूठे और उँगलियों के गहने**—उँगलियों में **अँगूठी**, **छाप** या **मुदरिया** भी पहनी जाती है। **बाँक**, **पोरुआ**, **छल्ला** और **बेढ़ा** भी उँगलियों में ही पहने जाते हैं। पोरुओं को **चुटकी छल्ला** भी कहते हैं। एक गोल भूषण जिसमें शीशा लगा रहता है, **आरसी** कहाता है। इसे स्त्रियाँ बायें हाथ के अँगूठे में पहनती हैं। **आरसी** (सं० आदर्शिका) की भाँति मुसलमानियों में **गुस्ताने** की रिवाज है। गुस्ताना एक अँगूठी की तरह का होता है, जिसके पत्ते पर ऊँची उठी हुई रौनेदार गुच्छियाँ लगी रहती हैं।
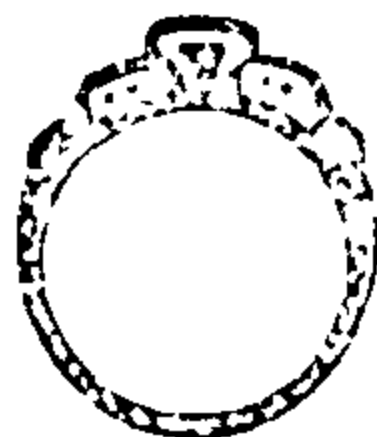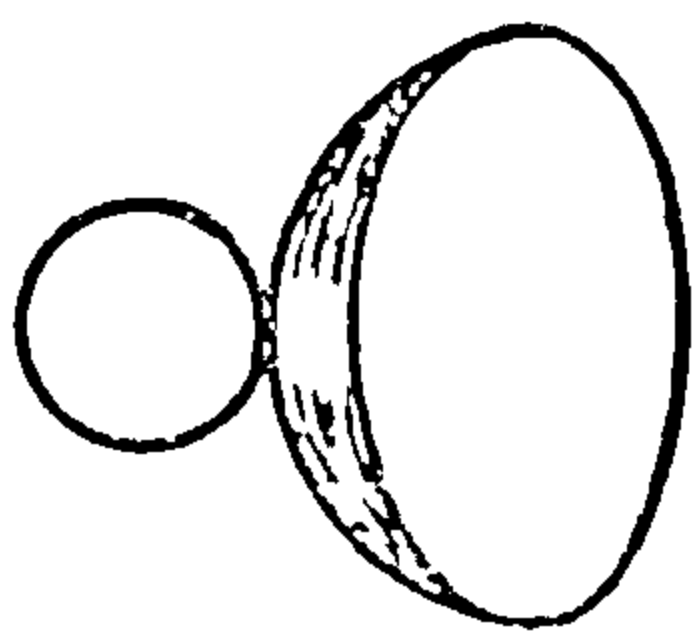
(रेखा-चित्र २४० से २४२ तक)

रौने को **रवा** या **घुँघरू** भी कहते हैं। ये **बजरिया**, **मटरुआ** और **बाजने** या **चौगसिया** (दो कटोरियाँ-सी मिलाकर जोड़ दी जाती हैं, तो वे चौरासी घुँघरू कहे जाते हैं) नाम से भी पुकारे जाते हैं। **बजरिया घुँघरू** ठोस होते हैं, आकार में बाजरे के समान। **मटरुआ** घुँघरू पोले और गोल होते हैं। उनकी शक्ल मटर के दानों के समान होती है। **कंदिया**, **कड़िया**, **कलसादार** और **चिरइया** नाम के भी घुँघरू होते हैं। दो पल्लों के चपटे और किनारीदार बड़े घुँघरू **कछुवाये** कहाते हैं। जिन घुँघरुओं में नोक निकली हुई होती है, वे **चोंचिया** कहाते हैं। लम्बे घाट के जिनमें कुछ टेढ़ होती है, उन घुँघरुओं को **बाँकदार** कहते हैं।

---

[1] बाजूबन्द, पछेली और गजरे को पहनने के लिए सास और बहू दोनों अपने-अपने शृंगार के हेतु झगड़ा करती हैं।

अध्याय ६

भोजन

§४१७—भोजन के लिए सामान्यतः **रोटी**[1] और **रसोई** (सं० रसवती) कहा जाता है। भोजन करने के लिए 'पाना' और 'जीमना' क्रियाएँ प्रचलित हैं। यदि किसी कारज (उत्सव या संस्कार) के समय कई मनुष्य मिलकर भोजन करते हैं, तो वह **पाँति** (सं० पंक्ति, प्रा० पत्ति) कहाती है। स्वाद में जल्दी से कोई चीज खाना **चाँड़ना**[2] कहाता है।

दिन भर में भोजन तीन समय किया जाता है। प्रत्येक समय को **छाक** कहते हैं। प्रातः का भोजन **कलेऊ**, दोपहर का **रोटी** और **साँझ** (सं० सन्ध्या) का **ब्यारू** (सं० विकाल > विआल > बयाल + उक = बयालू > बयारू) कहाता है।

प्रायः किसानों की स्त्रियाँ खेत पर ही किसानों के लिए क्वार के महीने में रोटियाँ ले जाती हैं। वह भोजन भी **छाक** कहाता है। सूर ने भी इसी अर्थ में 'छाक'[3] शब्द का प्रयोग किया है। यात्रा करते समय **गैल** (मार्ग) में जो भोजन काम आता है, उसे **टोसा** (फा० तोशा) कहते हैं। संस्कृत में इसके लिए '**पाथेय**' और '**संवल**'[4] शब्द आते हैं। पं० नाथूराम शंकर शर्मा 'शंकर' ने अपने एक पद में 'टोसा'[5] शब्द का प्रयोग किया है।

एक बार में रोटी का जितना टुकड़ा मुँह में दिया जाता है, वह **कौर** या **गसा** कहाता है (सं० कवल > कवर > कउर > कौर)। 'गसा' शब्द सं० ग्रास से व्युत्पन्न है। रोटी के बहुत छोटे टुकड़े को **टूँक** कहते हैं। **टूँक** पूरी रोटी के चौथाई भाग (चतुर्थांश) से भी कम होता है।

कच्चा भोजन (दाल, रोटी, कढ़ी, चावल, खिचड़ी आदि) **सकरा** और पक्का भोजन (पूड़ी, परामठे, साग, भाजी आदि) **निखरा** कहाता है। भूखा बुदबुदानेवाला आदमी यदि रोटी देख ले, लेकिन किसी कारण खाने की इच्छा होने पर भी खा न सके तो वह **आँतमा—ओजा** कहाता है। चैत-बैसाख के महीने में खेत में से प्रथम बार काटे हुए जौओं की रोटी "**आरमनी**" कहाती है।

§४१८—**रोटी के लिए आटा माँड़ना**—चून (आटे) में पानी मिलाना 'सानना' कहाता है। आटा सानने के उपरान्त उसे मुट्ठियों से दाबते हैं। वह क्रिया **गूँधना** कहाती है।

---

[1] हेमचन्द्र ने देशीनाममाला (वर्ग ७। छन्द ११) में चावल के आटे के लिए 'रोट' शब्द लिखा है।

[2] 'बिरह सँचान भँवै तन चाँड़ा।'
—डा० माताप्रसाद (संपा०) : जायसी ग्रन्थावली, पद्मावत, ३५०।७

[3] 'जाति-पाँति सब की हौं जानौं, बाहिर छाक मँगाई।'
'सूरदास प्रभु सुनि हरषित भये घर तैं छाक मँगाई।'
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, प्रथम आवृत्ति, १०।४४४

[4] संवल, सम्बल, शंवल, शम्बल—संस्कृत के इन चारों शब्दों का अर्थ पाथेय अर्थात् टोसा ही है।

[5] 'चलने की तैयारी कर ले। टोसा बाँधि गैल को धर ले।
हालाहाल विदा की बिरियाँ को पकवान बनाऊँगी॥'
(शंकर, अनुरागरत्न)

गूँधने से आटे में जो लचीलापन पैदा होता है, उसे **लोच** कहते हैं। लोच आने के बाद हथेली के किनारे से आटे को बार-बार तोड़ते और मिलाते हैं। यह क्रिया **ईंछना** कहाती है। प्रायः मक्का, बाजरा आदि के आटे ही ईंछे जाते हैं। ये सब क्रियाएँ **माँड़ना** के अन्तर्गत ही हैं। पूरी-कचौड़ी आदि के लिए माँड़े हुए आटे को **लूँड़** कहते हैं। उस लूँड़ में से तोड़े हुए आटे के टुकड़े को **लोई** (सं० लोप्तिका) कहते हैं। लोई को चकरे पर बेलकर **पूरी** या **परामठे** बनाते हैं। रोटी की लोई को हाथ से ही बढ़ाते हैं। यह क्रिया **पबना** कहाती है।

§४१९—**भोजन की किस्में (पकवान)**—'**पूरी**' या '**पूड़ी**' शब्द के लिए मोनियर विलियम्स कोश में 'पोलिका' शब्द लिखा है। पाइअसद्दमहण्णवो कोश में भी 'पूरी' के लिए सं० पोलिका और प्रा० पोलिआ शब्द हैं। सं० पोलिका > पोलिआ > पोली > पौली > पूली > पूरी—यह विकास-क्रम सम्भव है।

परामठों को **पल्टा, टिक्कर** या **कटौरा** (सादा०) भी कहते हैं। **कचौड़ी** का बड़ा रूप **वेड़ई** कहलाता है। मूँग या उर्द की कच्ची पिसी दाल को **पिठी** या **पिट्ठी** (सं० पिष्टिका) कहते हैं। सं० पिष्टिका>पेट्ठिआ>पेट्ठि>पिट्ठी>पिठी यह विकास-क्रम सम्भव है। **कचौड़ी** और **वेड़ई** में पिठी भरी जाती है। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी के मतानुसार 'कच' शब्द का अर्थ 'दाल' है। 'कचौड़ी शब्द के मूल में यही 'कच' शब्द है। सं० कचपूरिका > कचउरिआ > कचौरी—यह विकासक्रम संभव है।

उर्द की सूखी दाल, चक्की द्वारा जो दरदरी पीस ली जाती है, **धाँस** कहाती है। धाँस भी पानी में गलाकर कचौड़ियों में भरी जाती है।

मैदा की पूड़ियाँ **लुचई** कहाती हैं। आटे की छोटी और बहुत पतली पूड़ी **खीकरी** कहाती है। आटे की बड़ी और मोटी मोंमनदार पूड़ी को जब खाँड़ में पाग दिया जाता है, तब वह **सोहार**[1], **सुहार** या **टिकरी** कहाती है। आटे में पड़ा हुआ घी या तिल का तेल **मोंमन** कहलाता है।

§४२०—भादों लगती **नौमी** (भाद्रपद कृष्णा नवमी) को **गाजें** (सफेद सूत के धागे-विशेष) खुलती हैं। उस दिन एक मीठी पूड़ी सवा पाव या ढाई पाव आटे की बनती है। उसे **ल्होल** या **गजरोटा** कहते हैं। क्वारी लड़की का गजरोटा सवा पाव (पाँच छटाँक भर) का और ब्याही हुई का ढाई पाव (दस छटाँक भर) का बनता है। गजरोटों को लड़कियाँ और स्त्रियाँ ही खाती हैं। लोकोक्ति प्रसिद्ध है—

"गाज कौ बनौ गजरोटा। बाप खाइ न बाप कौ बेटा॥"[2]

गेहूँ के मीठे आटे के बने हुए और घी में सिके हुए गोल-गोल छल्लों की भाँति का **पकवान** (सं० पक्वान्न) **गुना** कहाता है। भीगे हुए गेहुँओं की मिंगी से बनी हुई गोल टिकियाँ **अँदरसे** कहाती हैं। बाजरे के आटे की बनी हुई और घी या तेल में सिकी हुई छोटी और गोल वस्तु **टिकिया** कहाती है। पहले पानी में फिर घी या तेल में सिकी हुई कचौड़ी **फर** कहाती है।

---

[1] 'हार के सरोज सूकि होत हैं सुहार से।'
—उमाशंकर शुक्ल (संपादक) : सेनापति कृत कवित्तरत्नाकर, हिंदी परिषद् इलाहाबाद, ३।५२

[2] गाज खुलने के उपलक्ष्य में बने हुए गजरोटे को न बाप खाता है और न बाप का बेटा खाता है।

बेसन (चना का आटा), गेहूँ का आटा या मूँग की दाल की पिटी को पतली करके पानी में घोल लिया जाता है और उसमें गुड़ मिला दिया जाता है। इस घोल को **फैन** (सं० फेन[1]) कहते हैं। इस फैन को तवे या कढ़ाई में फैलाकर जो परामठेनुमा पकवान सेका जाता है, वह **चीला** कहाता है। इसी प्रकार फेन तैयार करके **पूआ** और **मालपूआ** (देश० मल्लय + सं० पूपक) भी बनते हैं। 'पूआ' शब्द सं० पूपक से व्युत्पन्न है। हेमचन्द्र ने पूए के अर्थ में 'मल्लय' (देशी नाममाला) ६।१४५) शब्द लिखा है।

त्रिभुजाकार पकवान **सकलपारा** कहाता है। सकलपारों की भाँति का **अलोना** (सं० अलवणक) पकवान जो **खजूरिहाई** (श्रावणी से एक दिन पहले का त्योहार) को होता है, **खजूरा** कहाता है। नमकीन और मोमनदार सकलपारे **मठरी** कहाते हैं। जमे हुए हलुए को काट-काटकर जो टुकड़े बनाये जाते हैं, वे **कतरा** या **कतरी** कहाते हैं।

जब पूड़ियों को चूर-चूर करके उनमें बताशे या बूरा मिला दिया जाता है तब उसे **चूरमा** कहते हैं। **घुइयाँ** (अरई) के पत्तों पर बेसन लपेटकर जो पूए-से बनाये जाते हैं, वे **पतौड़ा** कहाते हैं। असाढ़ उतरते पाख (आषाढ़-शुक्लपक्ष) में सोमवार या शुक्र को **माता** (नगरकोट की ग्रामदेवी) पूजने के लिए जो पकवान (पूआ, छल्ला, लपसी, खीकरी आदि) बनता है, वह **नेवज**[2] (सं० नैवेद्य) कहाता है। यही **नेवज** दूसरे दिन **बासौड़ा** कहाता है।

रोटियाँ

§४२१—रोटियाँ कई तरह की होती हैं। चूल्हे के तवे पर जो मिट्टी का पोता फेरा जाता है, वह **लेआ** कहाता है। सं० लेप्यक > लेवअ > लेवा > लेआ—यह विकास-क्रम संभव है।

रोटी बनाने में जो सूखा आटा लगाया जाता है, उसे **परोथन** कहते हैं। रोटी की किनारी **'ढिंग'** कहाती है।

पानी लगे हाथ से बनाई हुई बिना परोथन की मोटी रोटी **पनपथी** या **पनफती** कहाती है। छोटी पनपथी को **चँदिया** कहते हैं।

परोथन लगाकर चकरा-बेलन से बेलकर जो हलकी और पतली रोटी बनाई जाती है, उसे **फुलका** कहते हैं।

पतले आटे से परोथन लगाकर हाथ से बनाई हुई हलकी और छोटी रोटी **रूआँ** कहाती है। बड़ा और भारी रूआँ मुसलमानों में **चपाती** कहाता है। घी मिले हुए आटे से बनी हुई रोटी **रोगनी** कहाती है।

जिस रोटी को बने हुए एक रात बीत जाती है, वह **बासी** कहाती है। ताज़ी या तची को **सद** (सं० सद्यस्) कहते हैं। कहावत है—

---

[1] 'केयूरकोटिलग्नमग्न फेन पिण्डपाण्डुरं पवनतरलमंशुकोत्तरीयमाकर्षन्।'
—कादम्बरी, महाश्वेतावृत्तान्तोपसंहारः, सिद्धान्त विद्यालय कलकत्ता द्वितीय संस्करण, पृ० ३२६।

[2] 'जसुमति भोजन करति चँदाई, नेवज करि-करि धरनि स्याम डर।'
सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा० १०।८१७
"महरि सबै नेवज लै संतति। स्याम पुर्ण कहुँ गावैं बरनति।"
वही १०।८९२

"कहैं घाघ सब अकलि बिनासी। रोटी जानें खाई **बासी**॥"[1]

बहुत गर्म तवे पर सिकने पर रोटी जलकर जहाँ-तहाँ काली और दगीली हो जाती है। उन काले दागों को '**लखना**' कहते हैं। इससे नाम धातु '**लखियाना**' है।

§४२२—गेहूँ के आटे की छोटी लोई को पिचकाकर जब **भूभर** (गर्म राख) में सेक लिया जाता है, तब वह **बाटी** कहाती है। बड़ी बाटी **अंगा** कहलाती है।

मक्का या बाजरा की रोटी को मीड़कर चूरा बना लिया जाता है। उसमें बूरा और घी मिला देते हैं। उसे **मलीदा** कहते हैं।

रँधैन

§४२३—दाल, चावल या दलिया आदि के लिए जो पानी गर्म होने के लिए चूल्हे पर रख दिया जाता है, उसे '**अधैन**' कहते हैं। अधैन में जो चीज रँधती है, उसे '**रँधैन**' कहते हैं। हिन्दी की 'राँधना' क्रिया रंध् से व्युत्पन्न है, जो पकाने के अर्थ में आती है। दाल में जो छौंक लगता है, उसे **बघार** कहते हैं (सं०√रध् + ल्युट् = सं० रन्धन > रँधैन)।

§४२४—अधैन में रँधे हुए जौ **घाटा** कहते हैं और चावल **भात** (सं० भक्त > भत्त > भात) कहाते हैं। दले हुए गेहूँ जब अधैन में राँधे जाते हैं, तब वे पककर **दरिया** (दलिया) कहाते हैं। रँधे हुए दाल चावल **खिचड़ी** या **खीचरी** कहाते हैं।

मठे में रँधा हुआ चने का आटा **बेसन** या **कढ़ी** कहाता है। मूँग की दाल की पिठी जब मठे में राँधी जाती है, तब उसे **झोल** या **करार** (सिकं०) कहते हैं।

§४२५—जब मठे में चावल और गुड़ डालकर राँध लिये जाते हैं, तब वे **महेरी** कहाते हैं। मठे में मक्का या बाजरे का दलिया डालकर जब राँधा जाता है, तब वह रँधी हुई वस्तु भी **महेरी** ही कहाती है। ब्रजभाषा में '**मही**' मठा को कहते हैं। 'मही' शब्द संभवतः सं० मँथित से सम्बन्धित है। सूर ने भी '**मही**' शब्द का प्रयोग **छाछ** या **मठा** (तक्र) के अर्थ में कई स्थलों पर किया है (सं० मथित > मठा)।[2]

'**महेरी**' शब्द के मूल में '**मही**' शब्द ही है। गन्ने के रस में पके हुए चावल '**रसवाई**' कहाते हैं।

§४२६—मैदा के बने हुए सूत के-से टुकड़े **सेंमई, सेंवई** या **सेंमरी** कहाते हैं। जौ के बराबर के टुकड़े **जवा** (सं० यवक) कहाते हैं। यदि ये चावल सहित दूध में पका लिये जाते हैं, तो **खीर** (सं० क्षीर) कहाते हैं। गाजर का भात **गजरवत** या **गजरभत** (सं० गर्जर + सं० भक्त) कहाता है।

उबाले हुए चावल में मीठा मिलाकर जब **सइयद** (एक ग्रामदेवता) पर भोग के रूप में चढ़ाये जाते हैं, तब वे **सैनिक** कहाते हैं। सइयद के आगे एक दीपक भी जलाया जाता है, जिसे '**सरइया-देना**' कहते हैं।

मठे में गुड़ या शक्कर घोलकर बनाया हुआ द्रव पदार्थ **सिकिन्न** या **सिकरन** (सं० शिखरिणी = एक पेय, श्रीखंड) कहाता है। उबाले हुए चने-गेहूँ **कोमरी** और कूटकर उबाली हुई ज्वार **ठोमर** कहाती है।

---

[1] घाघ कहते हैं कि जो बासी रोटी खाता है, उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है।

[2] "दही **मही** मटुकी सिर लीन्हें बोलति हौ गोपाल सुनाइ।"
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०। १६४४

§४२७—गेहूँ का आटा भूनकर और उसमें गुड़ तथा पानी डालकर लदका लेते हैं। उसे **लपसी** (सं० लप्सिका) कहते हैं। यदि दूध डाल दिया जाता है, तो उसे **दुधलपसी** कहते हैं।

पानी की भाँति पतली लपसी **सीरा** (फा० शीरा) कहाती है। पके हुए आमों का उबाला हुआ रस **टपका** कहाता है।

एक प्रकार की सूखी लपसी **हलुआ** कहाती है। बूरा मिला हुआ गेहूँ का भुना आटा **पँजीरी** या **कसार** (दिश० कंसार—पा० स० म० कोश) कहाता है।

भुने हुए जौओं का आटा जब पानी में घोल लिया जाता है, तब उसे **सत्त्** या **सतुआ** (सं० सक्तुक) कहते हैं

"सत्त् मनभुत्त्; जब पीसे और घोरे तब खाये।
धान बिचारे प्यारे जब राँधे तब खाये॥"[1]

उबले हुए गेहूँ-चने **'कौम्हरी'** या **भाजी** कहाते हैं। चनों के दानों को **मकौना** कहते हैं।

§४२८—यदि बासी दाल-साग में खट्टापन और **बास** (बदबू) आ जाती है, तो उसके लिए **'बुसना'** क्रिया का प्रयोग होता है। यदि दाल-साग दो-तीन दिन तक रक्खे रहें, तो उनके ऊपर सफेद-सी चीज जम जाती है, वह **फफड़ूँड़**, **फफूँड़** या **फफूँड़न** कहाती है। 'फफूँड़' शब्द मुण्डारी भाषा के 'फुफुंड' से व्युत्पन्न है।[2]

साग तरकारी को **तैमन** (सं० तेमन—अमर० २।६।४४), कहते हैं। हरे साग में कुछ आटा डाला जाता है। उस आटे को **'आलन'** कहते हैं। बेसन की छोटी छोटी टिकियों को अधन (औटता हुआ पानी) में पकाकर उनका जो साग बनाया जाता है, वह **पैसा-टका** कहाता है। पिसी हुई उर्द की दाल की छोटी पकौड़ी की भाँति की वस्तु **बरी**; और मूँग की दाल की **मँगौरी** कहाती है।

नमकीन और चाट

§४२९—दाल, आलू, साबूदाना और चावल आदि की बनी हुई एक नमकीन वस्तु **पापड़** कहाती है। तमिल भाषा में दाल के लिए पर्पु शब्द आता है। डा० सुनीतिकुमार चटर्जी के मतानुसार 'पापड़' के मूल में 'पर्पु' शब्द है। सं० 'पर्पट' से पापड़ शब्द की व्युत्पत्ति मालूम पड़ती है।[3]

---

[1] इस लोकोक्ति से एक कहानी सम्बन्धित है। एक चालाक आदमी ने धानों की प्रशंसा करके दूसरे आदमी से सत्तू लेकर खा लिये। धान की प्रशंसा करते हुए उसने कहा—सत्तू तो मन का भुरता करनेवाले हैं। इन्हें पहले पीसा जाता है, फिर घोला जाता है, तब कहीं खाने के योग्य बनते हैं। धान अच्छे हैं, जोकि राँधि लिये और खा लिये।

[2] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हिंदी के सौ शब्दों की निरुक्ति, ना० प्रा० पत्रिका वर्ष ५४ अंक २-३, पृ० ९२।

[3] 'पापड़=सं० पर्पट, प्रा० पप्पड़ से पापड़ बना है। लेकिन मूल शब्द पर्पु=दाल, से बना है। यह सूचना मुझे श्री सुनीतिकुमार चटर्जी से प्राप्त हुई। इसी प्रकार उनका विचार है कि 'कचौड़ी' शब्द में 'कच' भी दाल का वाचक है। कचपूरिका>कचउरिया>कचौरी।

—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल : हिन्दी के सौ शब्दों की निरुक्ति, ना० प्र० पत्रिका, वर्ष ५४, अंक २—३, पृष्ठ १०२।

चावल के आटे की बनी एक नमकीन वस्तु **कौरी, कचरिया, मोहनपकौड़ी** या **कुरैरी** कहाती है। हाथरस में इसे **मिरचौनी** भी कहते हैं। 'मिर्च' सं० मरीच से व्युत्पन्न है।

§४३०—बेसन या पिठी की बनी हुई एक वस्तु **पकौड़ी** या **फिलौरी** कहलाती है। **डुमकौरी, बरौरी, कुम्हडौरी, पिठौरी** और **गुरबरी** आदि पकौड़ियों के ही नाम हैं। मटरा जैसी पकौड़ियाँ **बूँदियाँ** कहाती हैं। गेहूँ के आटे की बनी हुई एक वस्तु **पड़ाका** या **टिकिया** कहाती है। उर्द की दाल की पिठी से बनी हुई गोल और हलकी चँदिया **बल्ला** या **रामचक्कर** कहलाती है। जीरे आदि मसालों को मिलाकर तैयार किया हुआ पानी **जलजीरा** कहाता है।

§४३१—मूँग की दाल या आलू भरी हुई मैदा की तिकौनी चीज **तिरकौन** (सं० त्रिकोण) या **समोसा** कहाती है। सोंठ आदि मसाले और गुड़ मिला हुआ इमली (सं० अम्लिका) का घोल **सोंठ** कहाता है। **पिठी** (पिसी हुई मूँग की दाल) भरी हुई गेहूँ की पकौड़ी **पिठौरी** कहाती है।

§४३२—**राई** (सं० राजिका) डालकर खट्टा किया हुआ पानी **काँजी** (सं० कांजिका) कहाता है। बहुत खट्टे को **चूक खट्टा** कहते हैं। 'चूक' सं० चुक्र (अमर० २।६।३५) से व्युत्पन्न है। कच्चे आम भूनकर और उनका रस निकालकर उसमें नमक-मिर्च आदि मिलाते हैं। यह **पना** या **पन्ना** (सं० पानक) कहाता है।

बेसन से बना हुआ सूत-सा पतला नमकीन या मीठा पकवान **सेब** कहाता है। दाल की छोटी-छोटी टिकियों को तेल में सेककर दही में डाल देते हैं। ये **दही—बड़े** कहाती हैं। अधिक नमकदार आम की सूखी खटाई **नोनचा** कहाती है।

मिठाइयाँ

§४३३—**खाँड़ से बननेवाली मिठाइयाँ**—खाँड़ की चासनी से **बतासे** (बताशे) बनते हैं। बड़े-बड़े बताशे **फैना** कहाते हैं। कुटे हुए तिलों में गुड़ या खाँड़ मिलाकर बनाई हुई एक विशेष वस्तु **गजक** कहाती है। तिल और गुड़ को मिलाकर बनाई हुई गोलियाँ सी **रेवड़ी** कहाती हैं।

गुड़ या खाँड़ की टिकियाँ **सावौनी, चानसाई** या **चाँदसाई** (चाँदशाही) कहाती हैं। यह अलीगढ़ नगर में पहले बहुत प्रसिद्ध मिठाई थी। इलायची के दानों अथवा बिना चोकले के चनों पर जब खाँड़ चढ़ा दी जाती है तब वह गोल-गोल वस्तु **चनौरी** कहाती है।

रंगीन खाँड़ से बनी हुई लम्बी सराई सी **दनदान** और कटोरी की भाँति की मिठाई **तिनगिनी** कहाती है।

खाँड़ के बने हुए लड्डू **ओरालडुआ** कहाते हैं। खाँड़ की बनी हुई बड़ी और गोल टिकिया **गिंदोरा** कहाती है। यह ब्याह में तेल के दिन चलन में बँटता है। लगभग ७ या ८ सेर खाँड़ का बना हुआ एक गोल पहिये-सा **हतौना** कहाता है। यह लड़केवाले के यहाँ से **नेगियों** (पुरोहित और नाई) को दिया जाता है, जो लड़की के हाथ पर रखा जाता है।

§४३४—**ब्याह में बननेवाला बायना**—जो मिठाई ब्याह-शादी के चलन-व्यौहार में बँटती है, वह **बायना** कहाती है। 'बायना' शब्द सं० 'वायन + क' से व्युत्पन्न है। बायने को **'भाजी'** भी कहते हैं।

बायने में प्रायः **छाक, मट्ठे, गुजिया, टिकरी, खुरमा, मुठिया** आदि मिठाइयाँ बनती हैं। खोवे की छोटी गुजिया (गुझिया) **पिड़किया** कहाती है।

मोंमनदार मैदा से छाक बनाई जाती है। यह आकार में थाली की भाँति होती है और किनारों पर गड्ढे बना दिये जाते हैं। यदि छाक में खाँड़ मिला दी जाती है, तो वह **मट्ठा** कहाती है।

§४२५—घी में मैदा भूनकर उसमें बूरा मिला दिया जाता है। इसे **मगद** कहते हैं। सूखी पूड़ियों के चूरे में यदि बूरा मिला दिया जाता है, तो वह **गुली** कहाता है। मोंमनदार मैदा की पूड़ी बेलकर उसमें मगद और गुली भर देते हैं। पूड़ी के किनारों को बन्द करके उन्हें कुछ-कुछ मोड़ते जाते हैं। यह क्रिया **गोंठना** कहाती है। इस प्रकार गुली-मगद से भरी हुई और गुँठी हुई पूड़ी **गूँजा (गूँझा)** कहाती है।

§४२६—आटे या मैदा की बनी हुई मुट्ठी की भाँति की वस्तु **मुठिया** कहाती है। इसे खाँड़ में पाग भी देते हैं।

गेहूँ के आटे में मोंमन डालकर गोल-गोल टिकिया-सी बनाई जाती है, और उसे खाँड़ में पाग दिया जाता है। उसे **खुरमा** कहते हैं।

मैदा की बनी हुई पोली और गोल वस्तु, जो खाँड़ में पगी हुई होती है, **खजुला** कहाती है।

गेहूँ के आटे की बनी हुई लम्बी-लम्बी आयताकार मीठी वस्तु **नाकखेब** कहाती है। इसी को **हेसमा** भी कहते हैं। गेहूँ के आटे से मीठे **चीलों** की भाँति की बनी हुई वस्तु **भोरी** कहाती है। चने के आटे की मीठी पूरी **सुख-पूरी** कहाती है।

§४२७—**दाल से बननेवाली मिठाइयाँ**—उर्द की दाल की पिटी से बनी हुई गोल और छल्लेदार मिठाई **इमरती** कहाती है। उर्द की दाल की पिठी से बनी हुई पोली गोली की भाँति की वस्तु **गुलदाना** कहाती है। **गुलदाना** खाँड़ की चाशनी में पगा हुआ होता है। मूँग की दाल की पिठी पीसकर उसे घी में भूनते हैं और फिर उसमें बूरा मिलाते हैं। इस तरह बनी हुई मिठाई **खीरमोहन** या **मोहनभोग** कहाती है।

§४२८—**बेसन (चने का आटा) से बननेवाली मिठाइयाँ**—भुने हुए बेसन में खाँड़ मिलाकर कतरियाँ जमा दी जाती हैं। उन कतरियों को **ढारमा** कहते हैं।

बेसन की बनी हुई और घी में सिकी हुई गोलियाँ-सी **बूँदी** या **नुकती** कहाती हैं। इन्हें खाँड़ की चाशनी में पागकर लड्डू बना लेते हैं। ये बूँदी या नुकती के लडुआ (लड्डू) कहाते हैं।

घी में भुने हुए बेसन के लड्डू **बेसनी लड्डू** कहाते हैं।

भुने हुए बेसन में खाँड़ मिलाकर थाल में जमाते हैं। फिर उसके छोटे-छोटे टुकड़े काट लेते हैं। इसे **सोनहलुआ** कहते हैं।

§४२९—भुने हुए और खाँड़ मिले हुए बेसन की टिकियों की बनी हुई मिठाई **केसरबाटी** कहाती है। यदि इसमें बादाम, पिस्ता, किशमिश आदि पड़ जाते हैं, तो वह **मेवाबाटी** कहाती है।

बेसन के सेवों को खाँड़ में पाग देते हैं। यह मिठाई **चबैनी** कहाती है।

खोये से बननेवाली मिठाइयाँ

§४३०—भुने हुए खोये या खोवे (मावा) में बूरा मिलाकर गोल या चौकोर टिकियाँ बनाई जाती हैं। उन्हें **पेड़ा** (सं० पिंड > पेंड > पेड़ा = एक मिठाई) कहते हैं। [illegible]

और **लड्डू** भी बनते हैं। बरफी को **लौज** भी कहते हैं। खोवे को बूरे की चाशनी में मिलाकर कतरियाँ बनाई जाती हैं। उन्हें **कलाकन्द** कहते हैं।

लौके के लम्बे-लम्बे लच्छों को खाँड़ की चाशनी में पाग दिया जाता है। इन्हें **घीयाकस के** या **कपूरकन्द के लच्छे** कहते हैं। चीनी या खाँड़ की सूखी अथवा कड़ी चाशनी **कन्द** कहाती है।

§४४१—सूखी मलाई की पापड़ी में मीठा मिला दिया जाता है। इसे **खुरचन** कहते हैं।

दूध पर से मलाई के लच्छे उतार कर उनमें मीठा मिला दिया जाता है। उसे **रवड़ी** कहते हैं।

§४४२—भीगे हुए गेहुँओं की मींग से बने हुए पेड़े **निशास्ते के पेड़े** कहाते हैं। वह मींग खोवा में मिला दी जाती है (सं० पिंड>पेंड>पेड़ा)।

खूब भुना हुआ खोवा जब घी छोड़ने लगता है, तब वह **कुन्दा** कहाता है। भूनने की क्रिया को '**कुन्दा करना**' कहते हैं।

छेने (फटे दूध) से बननेवाली मिठाइयाँ

§४४३—फटे हुए दूध का पानी निचोड़ देने पर जो अंश बच रहता है, उसे **छेना** कहते हैं। चाशनी के साथ छेने की कई मिठाइयाँ बनाई जाती हैं। गोल-गोल मिठाई **रसगुल्ला** और लम्बी-लम्बी टिकिया-सी **चमचम** कहाती है। **खीरमोहन, केसरबाटी, छेनिया सँदेस, आम, कालाजाम, छेनिया, मक्खन—बड़ा** आदि मिठाइयाँ भी बनती हैं। फटे हुए दूध का **बरा** बनाकर उसे दूध में ही सेकते हैं; यही **दुधबरा**[1] कहाता है। फटे हुए दूध से और मलाई के योग से बने हुए विशेष प्रकार के लड्डू **खीरकदम्ब** कहाते हैं।

चावल के आटे से बननेवाली मिठाइयाँ

§४४४—चावल के आटे में मीठा मिलाकर लम्बी-लम्बी साँखें-सी घी में सेक ली जाती हैं। उन्हें **गिजा** कहते हैं। गोल-गोल बनी हुई वस्तु **खजूर** कहाती है। यदि खजूर में ऊपर को तीन-चार पंखड़ियाँ निकाल दी जाती हैं, तो वह **गुलाब खजूर** कहाती है। चावल के मीठे आटे की छः पहलूदार मिठाई **तरबेजी** और **बालूसाई** जैसी गोल-गोल मिठाई **अकबरी** कहाती है। मीठा मिले चावल के आटे की गोल-गोल टिकियाँ **अँदरसे** कहाती हैं। चावल के आटे और खाँड़ से एक मिठाई तैयार की जाती है, जो सूरत-शकल में मालपूओं से मिलती-जुलती होती है, उसे **बाबरा** या **बाबरी** कहते हैं। चावल के चूरे में बूरा और दूध मिलाकर जो लड्डू बनाये जाते हैं। वे **पिन्नी** कहाते हैं। ये पिन्नियाँ बरना या बरनी पर हल्दी चढ़ानेवाली **हथलगुनों** (विवाह के नेग-चार करनेवाली मुख्य पाँच या सात स्त्रियाँ) को **कजैतिन** (बरना या बरनी की माँ) द्वारा दी जाती हैं।

मैदा से बननेवाली मिठाइयाँ

§४४५—गेहूँ के आटे को कपड़े में छान लेते हैं। छनी हुई वस्तु **मैदा** और छनने के बाद कपड़े के ऊपर बची हुई वस्तु **बूर** कहाती है। बूर को छलनी में छानने पर जो मोटे-मोटे छिलके-से रह जाते हैं, उन्हें **भुसी** (सं० बुसिका) कहते हैं।

---

[1] '**दूध बरा** उत्तम दधि बाटी, गालममूरी की रुचि न्यारी।'
—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०।२२७

मैदा, बूरा और चाशनी से बहुत-सी मिठाइयाँ बनती हैं।

§४४६—पानी में घुली हुई पतली मैदा से बनी हुई गोल-गोल छत्तेदार मिठाई **जलेबी** या **जलेबा** कहाती है।

§४४७—मैदा में मोमन डालकर गोल-गोल टिकियाँ बनाई जाती हैं और वे घी में सेक ली जाती हैं। उन्हें फिर खाँड़ की चाशनी में पाग लेते हैं। वे **बालूसाई** कहाती हैं। मैदा की बनी हुई बड़ी रोटी-सी जो खाँड़ में पगी होती है, **खाजा** कही जाती है। बालूसाई की तरह की एक मिठाई जिसमें अन्दर भुना हुआ खोवा भरा जाता है, **लौंगा** कहाती है।

§४४८—मोमनदार मैदा की बनी हुई दो जुड़वाँ छोटी पूड़ियाँ, जो खाँड़ में पगी होती हैं, **चन्द्रकला** कहाती हैं। इसी तरह **पगैमा** (खाँड़ में पगी हुई) **गुजियाँ** भी बनती हैं। छोटी गुजिया **पिरकी** या **पिड़किया** कहाती है।

§४४९—सकलपारे की भाँति की खाँड़ में पगी हुई मिठाई **तबरेजी** कहाती है।

§४५०—मैदा घोलकर गोल-गोल छेददार छत्ते बनाये जाते हैं। उन्हें घी में सेककर चाशनी में पाग देते हैं। वे **घेवर** (सं० घृतपूर > घिपुउर > घेवर) कहाते हैं। 'घेवर' शब्द का उल्लेख हेमचन्द्र (देशी नाममाला २। १०८) ने भी किया है।[1]

§४५१—मैदा घोलकर सूतदार कचौड़ी बनाली जाती है। फिर उसे चाशनी में पाग देते हैं। उसे **फैनी** या **सूतफैनी** कहते हैं।

§४५१(अ)—बेसन और मैदा की बनी हुई छेददार मिठाई **गालमसूरी**,[2] **मसूरी** या **मैसूरी** कहाती है।

§४५२—भुनी हुई मैदा में बूरा मिलाकर एक गोल पहिया-सा बनाया जाता है। फिर उसे काटकर कतरी बना लेते हैं। वह मिठाई **पाट का हलुआ** कहाती है।

मैदा की गोल-गोल वस्तु जो घी में सिकने के बाद चाशनी में डुबाई जाती है, **गुलाबजामुन** कहाती है।

§४५३—मैदा को घी में भूनकर उसमें पानी और मीठा मिला दिया जाता है। आग पर रखके पानी जला देते हैं। तब वह मिठाई **मैदा का हलुआ** कहाती है।

§४५४—**पँजीरी और पाग**—गेहूँ का आटा भूनकर उसमें बूरा मिला लेते हैं। उस मिश्रण को **पँजीरी** या **कसार** कहते हैं। इसे ही सत्यनारायण की कथा में प्रसाद रूप में देते हैं, इसलिए यह **नारायन-भोग** भी कहाता है।

§४५५—गोला, बादाम, पिस्ता, चिरौंजी, मिंगी (खीरा, खरबूजे आदि के बीज) आदि को बूरे या खाँड़ की चाशनी में मिलाकर जमा देते हैं। उसे **पाग** कहते हैं। बबूल के गोंद को भूनकर खाँड़ में पागते हैं और कतरी बनाते हैं। इसे **गोंदपाग** कहते हैं। इसी तरह इलाइचियों से **इलाइचीपाग** बनता है। पागों की भाँति विभिन्न प्रकार की लौजें भी बनती हैं। खोये में जो चीज

---

[1] "पायारम्मिम घारो घारंतो घेवरे चेअ।"

—आर० पिशल द्वारा संपादित, हेमचन्द्र कृत देशी नाममाला, रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना, सन् १९३८, वर्ग २। श्लोक १०८।

[2] "फक तैसियै गालमसूरी। जो खावहिं सुरनुन्न सूरी॥"

—सूरसागर, काशी ना० प्र० सभा, १०। १८३

मिला दी जाती है, उसी के नाम से लौज पुकारी जाती है। लौके से तैयार की हुई बरफी **लौकिया लौज** कहाती है।

अध्याय ७

हुक्का

§४५६—**हुक्का**—(अ० तथा फ़ा० हुक़्क़ा—स्टाइन०) प्रायः रोटी खाने के बाद पिया जाता है। यह **आउभगत** (स्वागत) में **गौंतरिये** (सं० ग्रामान्तरीय > गौंतरिया = महमान, अतिथि) के आगे **खातिरदारी** (अ० ख़ातिर + दारी) के लिए रखा जाता है। हुक्का पीते-पीते उसकी ऐसी **बान** (आदत) पड़ जाती है कि फिर छूटती नहीं। हुक्का-पिवइया उसकी **हुड़क** (इच्छा, तलब) हुक्का पीकर ही बुझा सकता है। वास्तव में जिसकी जैसी बान पड़ जाती है, वह छूटती नहीं। प्रसिद्ध है :—

'बानिया की बान न जाइ। कुत्ता मूतै टाँग उठाइ ॥'[1]

हुक्का चार तरह का होता है :—(१) **कली** (२) **फरसी** (फ़ा० फ़रशी) (३) **हुक्किया, नरियल** या **गुड़गुड़ी** (४) हुक्का या **खड़ियल**।

§४५७—कली पीतल आदि धातुओं की बनी हुई होती है उसमें काठ का एक ओर **न्हैंचा** (फ़ा० नैचा—स्टाइन०) लगा रहता है। फरशी का नैचा दुहरा होता है। बाँस की दो नलियाँ एक साथ बँधी रहती हैं। नैचा बनानेवाला **'न्हैंचाबन्द'** कहाता है। उसके काम को **न्हैंचाबन्दी** कहते हैं। नारियल के ऊपरी खोपटे को ठीक करके उसमें एक काठ का छोटा-सा नैचा ठोंक देते हैं। उसे **नरियल** या **गुड़गुड़ी** कहते हैं।

यदि फरशी मिट्टी की बनी होती है तो वह **खड़ियल** या **हुक्का** कहाता है। खड़ियल नाम का हुक्का प्रायः मुसलमानों में ही अधिक देखा जाता है। हिन्दुओं में **कली** का रिवाज है।

कली के अंग-प्रत्यंग

§४५८—नैचे की सबसे ऊपर की नोंक जिस पर चिलम रक्खी जाती है **'चिलमदरा'** कहाता है। चिलम (फ़ा० चिलम) के छेद के ऊपर अन्दर के भाग में एक गोल कंकड़ी रक्खी जाती है, जिसे **चुगुल** (फ़ा० चुग़ुल) कहते हैं। चिलम में यदि चुगुल के ऊपर **तमाखू** (तम्बाकू) रखकर आग भर देते हैं, तो वह चिलम **सुलफा** या **सुलपा** (फ़ा० सुल्फ़ह) कहाती है। घड़े आदि के टुकड़े में से बनायी हुई चकई-की भाँति की गोल वस्तु **तवा** या **तया** कहाती है। यदि चिलम में तम्बाकू के ऊपर तवा रख लिया जाता है, तो वह चिलम **तवे की चिलम** कहलाती है।

ऊपर से नीचे की ओर नैचा में क्रमशः **कटोरी, गिलास, नारि** और **काँकनी** (पतली कटोरी) बनी रहती है। कटोरी की शक्ल चकई की भाँति और गिलास की लम्बे लट्टू की भाँति होती

---

[1] बानिये (आदतवाले) की बान (आदत) कभी छूटती नहीं। देख लीजिए कुत्ते को टाँग उठाकर पेशाब करने की आदत है। अतः वह सदा टाँग उठाकर ही पेशाब किया करता है।

है। नैचा का वह भाग जो कली के मुँह पर ही रहता है **गट्टा** कहाता है। कली के अन्दर पानी भरा रहता है। नैचे का जो भाग पानी में डूबा रहता है, वह **जलतुरङ्गा, गड़गड़ा** (तादा० में) या **जलहली** कहाता है।

कली में एक टोंटी लगी रहती है, जिसमें काठ की **नगाली** या **नै** (फ़ा० नै—स्टाइन०) लगा दी जाती है। नगाली में मुँह लगाकर साँस खींचते हैं और हुक्के के धुएँ का स्वाद लेते हैं।

नगाली के मुँह पर लगी हुई पीतल या चाँदी की नली **मोंनार, मुँहनलिया** या **पेंचिया** कहाती है। बिना पेंचिया की किसी-किसी नगाली में एक छोटी-सी लकड़ी भी लगा दिया करते हैं, ताकि नगाली के मुँह में **घिरघुली** (एक उड़नेवाला कीड़ा) आदि कोई कीड़ा न घुस सके। उस लकड़ी को **सिटकनी** कहते हैं।

नगाली (नै) की जगह पर फ़रशी में एक लम्बी, पतली, मोड़दार और लचकदार नगाली लगाई जाती है, वह **सटक** कहाती है। लम्बी सटक के ऊपर तारों की भोगली लगाई जाती है। इसे **पेचवान** (फ़ा० पेचवान) भी कहते हैं। पेचवान की लम्बाई लगभग ६-७ गज होती है। सटक पेचवान से छोटी होती है।

फ़रशी की नै को एक खमदार नली में लगाते हैं। ये नलियाँ पीतल आदि धातुओं की बनी होती हैं। इन्हें **कौनी** या **कुहनी** कहते हैं। सीधी नली **कुलफी** कहाती है।

फर्शी के नैचे पर डोरे लपेटे जाते हैं। उन डोरों के ऊपर खूबसूरती के लिए कुछ दूर-दूर पर गोटे के तार लपेटे जाते हैं। तार की वह लपेटन **गंडा** कहाती है। गंडों के बीच-बीच में पड़ी हुई फूल-पत्तियाँ **'फूल-चिड़ी'** कहलाती हैं।

हुक्का बनाने में काम आनेवाले औज़ार

§५५९—लोहे की लम्बी और गोल सलाई-सी **गज** कहाती है। इससे नगाली को सीधी करते हैं और उसका रास्ता भी साफ करते हैं।

कपड़े की ईंडुरीनुमा गोल गद्दी **पेंडुआ** कहाती है। इस पर नरियल को रखकर **बरमा** (लोहे का नोकदार एक औज़ार) से उसमें छेद करते हैं।

नगाली के लिए बाँसी **आरी** से काटी जाती है। नरियल को चिकना करने के लिए रेती से रेतते हैं। नैचा का सूराख साफ करने के लिए एक लोहे की सींकनी काम में आती है; उसे **नकुली** कहते हैं।

§५६०—जिस छोटी **थैली** या **थैलिया** में किसान अपने हुक्के का **तमाखू** (पुर्त० टोबैको) रखता है, वह **तमैखुली** कहाती है। बड़ी थैली **तमाखुला** कही जाती है।

हुक्के के सम्बन्ध में निम्नांकित तीन पहेलियाँ अलीगढ़-क्षेत्र में अधिक प्रचलित हैं—

'गोल गोल दिल्ली बनी, तामें है बुर्जदार।
हाथ जोड़ि बेगम खड़ी, सिर पै धरी अँगार ॥१॥'

---

१ गोल-गोल दिल्ली से तात्पर्य फर्शी से है, जिसमें नैचा लगा रहता है। 'बेगम का हाथ जोड़ना' नगाली को और 'अंगार' चिलम को प्रकट करता है।

'एक गाम में बाँसु गड़्यौ है, एक गाम में कूआ।
एक गाम में आगि लगी है, एक गाम में धूआँ ॥[1]॥'

'चार चोर चोरी कूँ निकरे बिन ब्याई लाये गाय।
पीवत-पीवत हारि गये, तब धौनी धरी उठाय ॥[2]॥'

तवे के हुक्के के सम्बन्ध में लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—

'हुक्का तये कौ। बेटा कहे कौ ॥[3]॥'

हुक्के के अंग
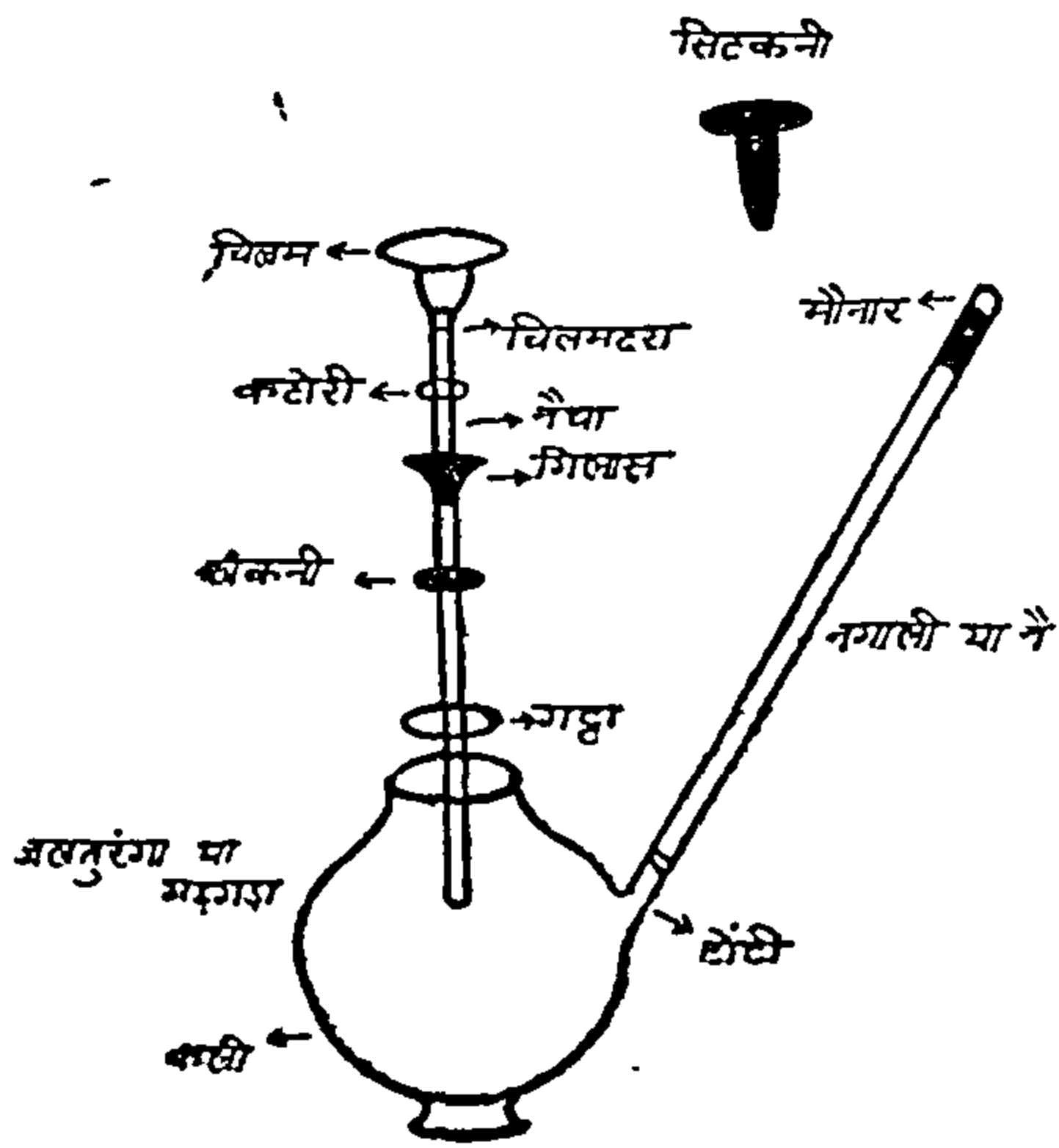
(रेखा-चित्र २४३)

[चित्र १६]

चिलमदरा, कटोरी, गिलास, काँकनी, गट्टा और गड़गड़ा ये नैचे के ही अंग हैं

'चिलम भरना' एक मुहावरा भी है, जिसका अर्थ 'खुशामद करना' है। **टहल** (सेवा) करने के अर्थ में **'कुन्नस बजाना'** भी कहा जाता (तु० कोरनिश >कुन्नस) है। दीनता सहित प्रार्थना करने के लिए **'हा हा खाना'** मुहावरा प्रचलित है। खुशामद में इधर-उधर भागने के अर्थ में **'सपड़ दलाली'** शब्द प्रयुक्त होता है। 'बेकार' के लिए **'खामखाँ'** शब्द प्रचलित है।

———

[1] बाँस का लक्ष्यार्थ नैचा और कूआ से तात्पर्य कली में भरे पानी से है। आग लगे गाँव से मतलब चिलम है और नगाली धूएँ वाला गाँव है।

[2] बिना ब्याई हुई गाय हुक्का ही है। जब हुक्के को पिवैया (पीनेवाला) खूब पी चुकता है और तम्बाकू समाप्त नहीं होता, तब वह उसे उठाकर रख देता है। धौनी (दोहनी) से तात्पर्य 'हुक्का' या 'कली' से है।

[3] हुक्का वही स्वाद देता है, जिस पर कि तवे की चिलम भरी हुई रक्खी हो और पुत्र आज्ञाकारी ही अच्छा होता है।

शब्दानुक्रमणी

[शब्द के साथ अंकित पहली संख्या ग्रन्थ के पृष्ठ की द्योतक है और दूसरी संख्या अनुच्छेद की द्योतक है। अक्षर-क्रम अँ, अं, अ, आँ, आं, आ, इँ, इं, इ, ईँ, ई, उँ, उं, उ आदि रूप में है।]

(औ)

(क)

(ख)

(ग)

(घ)

(च)

(छ)

(ज)

(झ)

(ट)

(ठ)

(ड)

(ढ)

(त)

(थ)

(द)

(प)

(ब)

(भ)

(म)

(य)

(र)

(ल)

(स)

(ह)

शुद्धि-पत्र

अशुद्ध पाठ	पृष्ठ एवं पंक्ति	शुद्ध पाठ
अधडन	१६४।३०	अधउन
इले	२५६।६	इसे
उठना धातु	१२८।२६	उठना या गरमाना क्रिया
उनके	५०।८	के
करकना धातु	१२।८	करकना क्रिया
कलिका	२२४।२५	कलिक
कोरियाँ	४८।१४	कौरियाँ
कोष्ठअ	१७२।२	कोट्ठअ
खाँगे	६४।११	खांगे (खाङ्गे)
खाट के पेठ	१६०।१४	खाट के पेट
खोरा	५३।५	खौरा
गधा ने	१५२।५	गधा नैं
गान	१०।२ (ग्रंथ के संबंध में)	गौन
गुदनाटा	६१।१०	गुदनौटा
घिपुउर	२७१।१३	घियुउर
प्रा० चउकण्ठ	१७१।१२	प्रा० चउकट्ठ
तु० चपकश	२४३।१४	तु० चपकलश
सं० चरणामृती	१३२।३	चरणामृता या चरणामृतिका
चिन्नामिरता	१३२।३	चिन्नामिरती
जौ	११६।२०	जो
झंडना धातु	१५।७	झंडना क्रिया
झाँगी	१८७।१५	झौंगी
टोहका	१६२।२४	टहोका
ठरना धातु	१५।८	ठरना क्रिया
डरा	११।२१ (ग्रंथ के संबंध में)	ढरा
तो	५१।११	तौ
तो	२।८	तौ
दुहरी गाँठें	१४५।२६	दुहरी भौंरी
ध्यार	१३१।३	घ्यार
नेम	१६६।१०	नेत्र
न्हौंनो	२४।१०	न्हैंनौं
पछैयाँ	३१।१२	पछइयाँ
पुरस् + वा	३१।१२	पुरस् + वात
पेउँआ	४२।१३	पैउआँ
पौपलेन	२२६।२२	पौपलैंन
बरस्यो	१।६ (ग्रंथ के संबंध में)	बरस्यौ
बारात	१६३।१	बरात
बल्टी	२१८।८	बाल्टी
बाह	१८७।१६	बाइ
बिड़लया	१७४।१४	बिलइया
बिजारमानना धातुओं	१२६।१	बिजारमानना क्रियाओं
भाजो	१३६।२४	भाजौ
भिलमिलिया	२५२।१८	झिलमिलिया
भीतर घर	१७६।१७	भीतरौ घर
भूँगमोरी	८४।२२	भूँगरभोरी
मेखउखेर	१४५।२४	मेखउखेर
मतान	११३।३०	मुतान
मादा के	१५१।२६	मादा के लिए
मेथी	३८।११	मैंथी
मोहनपकौड़ी	२६६।२२	मौंहनपकौड़ी
मोहनभोग	२६६।२२	मौंहनभोग
मोहनमाला	२५७।७	मौंहनमाला
रसीकुर	४।१६ (ग्रंथ के संबंध में)	सीकुर
लँगोट	१६०।३	लंगोट
लगोटिआ	१२१।२७	लँगोटिआ
ललसा	८५।१२	तलसा
वरना	२७०।३०	बरना
सकारना	२३१।२६	सकोरना
साँप	२६।२६	साँझ
सुडी	८०।८	सुड़ी
सोऊ	१३६।१६	सौऊ
हाँथ०	२३५।६	हाथ०
हृद	८।२७ (ग्रंथ के संबंध में)	हृद